प्रकाशक
भगवानदास केला
भारतीय ग्रन्थमाला
वृन्दावन

मुद्रक
गयाप्रसाद तिवारी बी० काम०
नारायण प्रेस
नारायण बिल्डिंग्स
प्रयाग

# भारतीय ग्रन्थमाला के सत्ताइस वर्ष

यह ग्रन्थमाला सन् १६१५ ई० में स्थापित हुई थी। अब इसके जीवन के सत्ताइस वर्ष हो गये हैं। इसका उद्देश्य विशेषतया नागरिक, राजनैतिक और आर्थिक साहित्य तैयार करना है। माला के पच्चीस वर्ष के कार्य का सिलसिलेवार वर्णन लिखकर रख दिया गया है।

सत्ताइस वर्ष में हमारी ४२ पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जिनमें से इस समय ३७ हैं; इस माला में २६ और अन्य प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित ११ हैं। माला की २६ पुस्तकों में से भारतीय शासन का आठवाँ संस्करण प्रचलित है। भारतीय विद्यार्थी विनोद, हमारी राष्ट्रीय समस्याएँ, भारतीय जागृति, नागरिक शिक्षा, भारतीय अर्थशास्त्र, और निर्वाचन पद्धति के तीन-तीन संस्करण हुए हैं। भारतीय राजस्व, राजनीति शब्दावली, कौटल्य के आर्थिक विचार, और अर्थशास्त्र शब्दावली का दूसरा संस्करण हुआ है। हिन्दी में अर्थशास्त्र और राजनीति साहित्य, भारतीय सहकारिता आन्दोलन, विश्व वेदना, भारतीय चिन्तन, नागरिक कहानियाँ, ब्रिटिश साम्राज्य शासन, श्रद्धाञ्जलि, भारतीय नागरिक, भव्य विभूतियाँ, अपराध चिकित्सा, पूर्व की राष्ट्रीय जागृति, गाँव की बात, साम्राज्य और उनका पतन, मातृबन्दना, और देशी राज्य शासन का प्रथम संस्करण चल रहा है।

इन पुस्तकों में से चौदह श्री० भगवानदास जी केला की लिखी हुई हैं, और तीन उन्होंने प्रोफेसर दयाशंकर जी दुबे एम० ए० के साथ, एक श्री० दुबेजी और श्री० गजाधरप्रसाद जी अम्बष्ट के साथ, एक श्री० अम्बष्ट जी के साथ, और एक श्री० जगनलाल जी गुप्त के साथ मिलकर लिखी है। तीन पुस्तकें श्री० शंकरसहाय जी सक्सेना

एम०ए० की, एक श्री० सत्येन्द्र जी एम०ए० की, और एक श्री० भगवत प्रसाद जी शुक्ल साहित्य-शास्त्री की रचना है। अब तक इन २६ पुस्तकों की कुल ४७,५०० प्रतियाँ छपी हैं, जिनमें से लगभग ४१,५०० प्रतियाँ पाठकों के पास पहुँची हैं।

गत दो वर्षों में निम्नलिखित प्रकाशन हुआ है:—

( १ ) साम्राज्य और उनका पतन ( नयी पुस्तक )

( २ ) निर्वाचन पद्धति ( तीसरा संस्करण )

( ३ ) अर्थशास्त्र शब्दावली ( दूसरा संस्करण )

( ४ ) नागरिक शिक्षा ( तीसरा संस्करण )

( ५ ) कौटल्य के आर्थिक विचार ( दूसरा संस्करण )

( ६ ) मातृवन्दना ( नयी पुस्तक )

( ७ ) भारतीय अर्थशास्त्र ( तीसरा संस्करण )

( ८ ) देशी राज्य शासन ( नयी पुस्तक )

बहुत से मित्र इस साहित्य कार्य में हमें क्रियात्मक सहयोग प्रदान करते हैं। लगभग तीस सम्पादक अपने दैनिक, साप्ताहिक, या मासिक पत्र ग्रन्थमाला के लिए निश्शुल्क भेजते हैं। कुछ तो माला का विज्ञापन भी समय-समय पर छापते रहते हैं। कई शिक्षा-संस्थाओं के अधिकारी अपने-अपने क्षेत्र में इस साहित्य के प्रचार का विशेष ध्यान रखते हैं। ऐसे सब महानुभावों के सहारे ही यह कार्य बन आया है। हम इन सब के अत्यन्त ऋणी हैं।

भगवानदास केला

# निवेदन

भारतवर्ष बहुत संकट में से गुजर रहा है, पर यह संकट हमारे कल्याण का अग्रदूत है, यह हमारी राष्ट्रीय जागृति का सूचक है। हमारे देशी राज्यों के निवासी भी नागरिक स्वाधीनता और उत्तरदायी शासन-पद्धति प्राप्त करने के उद्योग में लग गये हैं। ऐसी दशा में यह बात कुछ कम खटकने वाली नहीं है कि अभी तक देशी राज्यों की वर्त्तमान स्थिति, उनकी शासनपद्धति तथा उनके भविष्य का विवेचन करने वाले साहित्य का यहाँ की राष्ट्र-भाषा हिन्दी में प्रायः अभाव ही है। हम उन सज्जनों के प्रयत्नों की अवहेलना करना नहीं चाहते, जो अनेक विपत्तियाँ सहन करके देशी राज्यों सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ निकाल रहे हैं, या जिन्होंने उनके सम्बन्ध में कुछ फुटकर बातों का संग्रह किया है। परन्तु क्या यह पर्याप्त है ! क्या नौ करोड़ भारतीयों के प्रश्न पर इतना सा प्रकाश संतोषजनक कहा जा सकता है !

आवश्यकता है कि देशी राज्यों की केवल पुरानी गाथाओं से संतुष्ट न रहा जाय। किसी नरेश के चन्द्रवंशी या सूर्यवंशी आदि होने से उसके वर्त्तमान दोषों को ढकने का काम लेना, वंशाभिमान का दुरुपयोग करना है। यदि प्राचीन या प्रतिष्ठित कुल का अभिमान करने वाले व्यक्ति अपने उत्तरदायित्व को नहीं समझते तो यह और भी अधिक शोक का विषय है। इसी तरह, यदि किसी राज्य में अच्छे सुन्दर वैभव-शाली राजभवन, अन्य इमारतें तथा बाग-बगीचे हैं, हाथी, घोड़े, मोटर,

बग्गी, पालकी आदि साजोसामान हैं, गेस और बिजली की रोशनी है, तो उसकी चकाचौंध से भी हमारी दृष्टि कलुषित न हो जानी चाहिए। हमारे सामने विचार यह रहना चाहिए कि राज्य का अर्थ है, जनता का राजनैतिक संगठन—वह संगठन जिसमें शासक एक आवश्यक अंग तो है परन्तु वह एक अंग मात्र ही है। राज्य में दिखलायी देने वाले वैभव के सम्बन्ध में हमें सोचना चाहिए कि उससे जनता का क्या हित सम्पादन होता है। यदि कोई शासक राजमहल में ऐश्वर्य का उपभोग कर रहा है, और प्रजा भूख-प्यास से व्याकुल है, और अपनी वाणी या लेखनी का उपयोग करने से भी वचित है तो यह बात शासक और शासित दोनों के लिए शोचनीय है।

निदान, देशी राज्यों के सम्बन्ध में विशेष आवश्यकता ऐसे साहित्य की है, जिससे ज्ञात हो कि इनकी राजनैतिक समस्याएँ क्या हैं, इनकी शासनपद्धति कैसी है, उसमें क्या दोष हैं, उनके निवारण के लिए, तथा नागरिक स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए भिन्न-भिन्न राज्यों में कैसे-कैसे आन्दोलन हुए, मार्ग में क्या-क्या बाधाएँ आयीं, और अब जनता का क्या कर्त्तव्य है। ऐसे विराट् कार्य के लिए मेरी शक्ति और साधन कितने क्षुद्र हैं, यह मैं भली-भाँति जानता हूँ; और, जानता था सन् १९२९ में भी, जब मैंने प्रथम बार इस प्रकार की पुस्तक लिखने का विचार किया था। परन्तु हिन्दी भाषा में ऐसी कृति न होने की बात से जब मुझे बहुत वेदना हुई तो मैं यह दुस्साहस करने के लिए विवश हो गया। इसके लिए कई सज्जनों से पत्र-व्यवहार किया, कुछ राज्यों की वार्षिक रिपोर्टें मंगायीं, अंगरेजी की कई पुस्तकों के नोट भी

लिये। पर थोड़ा सा ही कार्य हो पाया था कि मन में यह विचार आगया कि नया शासन-विधान बनने वाला है, देशी राज्यों सम्बन्धी नयी सामग्री तैयार हो रही है, उसकी प्रतीक्षा की जाय। कार्य स्थगित कर दिया। सब कागज-पत्रों को एक बंडल में बाँध कर रख दिया, और मैं दूसरी रचनाओं में लग गया। दिन बीतते गये, महीनों ही नहीं वर्षों गुजर गये। इस बीच में कई सज्जनों से इस पुस्तक के लिखे जाने के सम्बन्ध में विचार हुआ। श्री० सिद्धराज जी ढड्डा एम० एम०, एल-एल० बी० तो बाकायदा सामग्री संग्रह करने लग गये थे। पर कुछ विघ्न आ जाने के कारण आप के द्वारा भी काम पार न पड़ा। अन्ततः बारह वर्ष बाद, सन् १९४१ में मैंने फिर इस कार्य को हाथ में लिया।

मेरे निश्चय की बात जानने पर श्री० ढड्डा जी ने अपनी संग्रह की हुई समस्त सामग्री मेरे पास भेज दी और इस कार्य के लिए ऐसी लगन दर्शायी जैसा कि यह स्वयं उनका ही कार्य है। उनके सहयोग का लाभ मुझे अनायास ही मिल जाने पर भी मुझे सामग्री के लिए पत्र व्यवहार बहुत करना पड़ा। कुछ राज्यों ने, देर में ही सही, अपनी शासन-रिपोर्ट या अन्य प्रकाशन भेज दिये, परन्तु मेरे निश्चित प्रश्नों का उत्तर देने का कष्ट न उठाया। अन्य राज्यों ने इतनी भी कृपा नहीं की। पर मैं उनसे विशेष आशा भी न करता था। हाँ, जब सावजनिक कार्यकर्त्ताओं में भी किसी-किसी ने उपेक्षा का परिचय दिया तो मुझे अफसोस हुए बिना न रहा। अस्तु, मुझे तो यहाँ उन सज्जनों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करनी है, जिन्होंने सामग्री जुटाने में मेरी बहुमूल्य

सहायता की। इनमें विशेष उल्लेखनीय सर्वश्री विजयसिंह जी 'पथिक' (सम्पादक 'नवसंदेश'), ठाकुर देशराज जी (सम्पादक, 'जाट-जगत'), विष्णुदत्त जी मिश्र 'तरंगी', अचलेश्वरप्रसाद जी शर्मा (सम्पादक, 'प्रजा सेवक'), जयनारायण जी व्यास, मंत्री अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद, हैं।

जिन पुस्तकों आदि से इस रचना में विशेष सहायता ली गयी है, उनका उल्लेख इस में प्रसंगानुसार किया गया है। उनके लेखकों, सम्पादकों और प्रकाशकों का मैं बहुत कृतज्ञ हूँ। इस पुस्तक के दूसरे भाग के सम्बन्ध में सब से अधिक सहायता अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद द्वारा प्रकाशित पुस्तकों, रिपोर्टों तथा सामयिक पत्र 'स्टेट्स पीपल' से मिली है। परिषद ने यह साहित्य प्रकाशित करके बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। हाँ, यदि इसके प्रकाशन हिन्दी तथा अन्य देशी भाषाओं में प्रकाशित हों तो उनकी उपयोगिता सर्वसाधारण पाठकों के लिए भी बढ़ जाय।

अस्तु, प्रकाशित साहित्य से ही मेरी आवश्यकता पूरी नहीं हुई। मुझे और भी बहुत सी बातों की जानकारी की ज़रूरत थी। इसके लिए मैंने एक प्रश्नावली बनायी। उसे टाइप कराके जगह-जगह कार्यकर्त्ताओं के पास भेजने का कार्य मित्रवर श्री० अचलेश्वरप्रसाद जी शर्मा ने किया। वास्तव में आपको इस पुस्तक के लिखे जाने से बहुत ही प्रसन्नता हुई। आपके उद्योग के फल-स्वरूप मुझे कई राज्यों के सम्बन्ध में अच्छी हस्तलिखित सामग्री मिली। राजपूताना-मध्यभारत सभा के अध्यक्ष श्री कन्हैयालाल जी कलयंत्री, तथा पंजाब के कई

सज्जनों ने भी अपने-अपने क्षेत्र के विषय में आवश्यक बातें नोट करके मेरे पास भेजने की कृपा की।

जिन महानुभावों से मुझे इस पुस्तक के विषय के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करने का लाभ मिला है, उनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं—सर्वश्री पथिक जी; प्रोफेसर शंकरसहाय जी सकसेना एम० ए०; प्रेमनारायण जी माथुर एम० ए०; हीरालाल जी शास्त्री (अध्यक्ष, जयपुर राज्य प्रजामंडल); सिद्धनाथ जी माधव आगरकर बी० ए० (सम्पादक 'स्वराज्य') और जगदीशप्रसाद जी चतुर्वेदी बी० ए०, एल-एल० बी०। धन्यवाद देकर इनसे उऋण नहीं हुआ जा सकता। वास्तव में यह काम ही ऐसा है, कि जितने अधिक सज्जनों का सहयोग मिले, उतना ही उपयोगी हो। अस्तु, मुझे हर्ष है कि उक्त सज्जनों के सहयोग से यह कार्य इतना बन आया। श्री० पथिक जी ने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखकर भी मुझे कृतार्थ किया है।

पुस्तक प्रकाशन की समस्या तो मेरे लिए सदैव ही रहती है, फिर इस समय तो कागज की मँहगायी और बाजार में उसकी कमी का भी सवाल था। जयपुर के कुछ मित्रों ने इस पुस्तक की कुछ प्रतियों का मूल्य पेशगी दिलाने की व्यवस्था करके मेरी यह कठिनाई घटा दी; तदर्थ, मैं उनका बहुत कृतज्ञ हूँ।

इस पुस्तक का प्रथम भाग व्यापक है। उसमें जिन प्रश्नों पर विचार किया गया है, वे सभी राज्यों से सम्बन्धित है। दूसरे भाग में नमूने के तौर पर कुछ रियासतों की शासनपद्धति और राजनैतिक जागृति आदि का अलग-अलग विचार किया गया है। ये रियासतें भारतवर्ष के

सभी भागों की, तथा सभी प्रकार की हैं। इस पुस्तक में मेरा उद्देश्य न तो किसी राज्य को आवश्यकता से अधिक अच्छा दिखाना है, और न ख्वाहमख्वाह किसी की निन्दा करना। साधनों की कमी के कारण सम्भव है, एक राज्य की कुछ अच्छी बातें छूट जायँ, अथवा दूसरे के किसी दोष को अनावश्यक महत्व दे दिया गया हो। देशी राज्यों सम्बन्धी प्रकाश में आनेवाली सामग्री कितनी कम है; और जो सामग्री है, वह कितनी बिखरी हुई और दुष्प्राय है, इसका ध्यान रखने पर प्रारम्भिक लेखकों की कठिनाइयों का सहज ही अनुमान हो सकता है। तथापि त्रुटियाँ-त्रुटियाँ ही हैं, उनका निवारण किया जाना चाहिए; और, अनुकूलता होने पर मैं उनका अवश्य ही संशोधन करूँगा।

देशी राज्यों सम्बधी कुछ समस्याओं पर प्रकाश डालने की मेरी और भी इच्छा है। पर अभी तो यह प्रतीक्षा करनी है कि हिन्दी-संसार इस कृति का कैसा स्वागत करता है। आशा है देशी राज्यों से सहानुभूति रखने वाला प्रत्येक सज्जन अपने-अपने क्षेत्र में इसका भरसक प्रचार करेगा। यदि यह पुस्तक देशी राज्यों में जनहितकारी और उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित कराने में कुछ अंश में भी सहायक होगी, तो यह लेखक परिश्रम को सफल समझेगा। शुभम्।

विनीत

भगवानदास केला

# समर्पण

देशी राज्यों की जनता की मूक वेदना सुनकर जिन सज्जनों ने अपनी सहायता का परिचय दिया है, उसके कष्टों को दूर करने में जिन महानुभावों ने अपने लिए अनेक आपत्तियों को निमंत्रित किया है, यहाँ तक कि वे जीते-जी शहीद हो गये हैं, उनमें से बहुत सों के शुभनाम यथेष्ट रूप से प्रकाश में ही नहीं आये हैं। उन ज्ञात एवं अज्ञात समस्त व्यक्तियों को सादर बन्दना पूर्वक, यह पुस्तक ऐसे सब पुरुषों एवं स्त्रियों, युवकों एवं वृद्धों को श्रद्धा सहित समर्पित की जाती है, जो देशी राज्यों की जनता-जनार्दन की सेवा-पूजा में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर रहे हैं, जिनकी संख्या भारत माता के सौभाग्य से उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है, और जिनके त्याग और बलिदान के फलस्वरूप देशी राज्यों का शासन निकट भविष्य में ही उत्तरदायी तथा जन-हितकारी होने वाला है।

विनीत

भगवानदास केला

# प्रस्तावना

श्री० भाई भगवानदास जी केला राष्ट्रीय जागृति के उन मूक सेवकों में से हैं, जिन्हें सेवा की लगन होती है। यदि वे अवसरवादी और चतुर कहे जाने वाले लेखकों में से होते, तो आज वे न केवल सुखमय जीवन बिताते होते, प्रत्युत देश के ख्यातनामा प्रकाशकों में भी उनकी गणना होती। किन्तु वे केवल लोगों की सेवा और ज्ञान-वृद्धि की दृष्टि से काम करने वालों में से हैं। लोगों की, खास कर धनिकों और रईसों की गन्दी रूचियों को सन्तुष्ट कर, साहित्य के गन्दे होने की परवाह न करके, अपना स्वार्थ सिद्ध करने की प्रवृत्ति उनके स्वभाव में ही नहीं है। यही कारण है कि वे आज भी वैसे ही 'सुदामा' बने हुए हैं, जैसे शायद इस उद्योग को शुरू करने के समय थे। साहित्य-सेवा करने में अद्वितीय होने पर भी आज उनकी गिनती साहित्य-मन्दिर के पुजारियों में यथेष्ट रूप में नहीं की जाती। उनकी यह स्थिति ही

हमारे साहित्य-प्रेम और हमारी अभिरुचियों पर इतनी कड़ी और स्पष्ट टिप्पणी है कि उस पर कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाना होगा।

× × × ×

भाई केला जी राष्ट्रीय जागृति के मूक सेवक होने के साथ-साथ राजस्थानी भी हैं। आप जैसलमेर के निवासी हैं। ऐसी दशा में स्वभावतः आप को इस बात पर बराबर खेद बना रहा कि वे राजस्थान के सम्बन्ध में कोई पुस्तक लिख और प्रकाशित नहीं कर पाये। देशी राज्यों के सम्बन्ध में हिन्दी में साहित्य है भी बहुत कम। अंगरेजी में कुछ पुस्तकें हैं, किन्तु प्रथम तो वे अधिक मूल्य की हैं। दूसरे सर्वसाधारण उनसे कोई लाभ नहीं उठा सकते। हिन्दी में तो यह स्थिति है कि आज कोई पाठक देशी राज्यों के नाम और आंकड़े जानना चाहे, तो भी इस आवश्यकता की पूर्ति करने वाली कोई पुस्तक उसे नहीं मिलेगी। फिर राज्यों की पृथक्-पृथक् परिस्थिति, शासनपद्धति, संस्थाएँ और उनकी हलचलों के आधुनिक इतिहास की तो बात ही कहाँ! आज राजपूताना वाले दक्षिण के राज्यों की शासनपद्धति से सर्वथा अपरिचित हैं, और पंजाब वाले उड़ीसा या आसाम आदि के राज्यों और उनकी प्रजा के विषय में अंधकार में हैं।

× × × ×

श्री० केला जी ने एक ऐसी पुस्तक लिखने का उपक्रम किया जिससे पाठकों को देशी राज्यों की राजनैतिक समस्याओं, शासनपद्धति और नागरिक स्थिति का आवश्यक ज्ञान हो जाय। उसी उद्योग का परिणाम यह रचना है। मुझे उन्होंने इस पुस्तक की पांडुलिपि दिखायी थी, और साथ ही साथ अपनी कठिनाइयाँ भी बतायी थीं। उन्होंने एक बार नहीं, कई-कई बार देशी राज्यों, वहाँ के कार्यकर्त्ताओं और वहाँ की संस्थाओं को तात्कालिक और पुरानी गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करने के लिए लिखा। पर कई-एक ने उनके पत्रों पर ध्यान ही नहीं दिया। इतने धनाढ्य वे थे नहीं कि सब जगह घूम-फिर कर सामग्री एकत्र करते। दूसरी ओर उनके सामने वर्त्तमान कागज की मँहगायी आदि की भी असुविधाएँ थीं। इसलिए पुस्तक के कलेवर को यथा-साध्य छोटा रखने का प्रयत्न करना अनिवार्य था। फिर भी उन्होंने उपलब्ध सामग्री का अच्छे-से-अच्छा उपयोग किया है और पुस्तक को देशी राज्यों के निवासियों के लिए अधिक-से-अधिक उपयोगी बनाने की चेष्टा की है। इस सब से ऊपर, केलाजी ने निष्पक्ष भाव का ध्यान रखा है। उन्होंने इस पुस्तक को न किसी विशेष विचारधारा का साधन बनाया है, और न किसी विशेष बात के विरोध करने का अस्त्र। हाँ, यथातथ्य स्थिति का वर्णन अवश्य स्पष्टता से किया है। इस पुस्तक में भारतवर्ष के प्रत्येक भाग के देशी राज्यों

की शासन-शैली, नये सुधार, प्रजा की सार्वजनिक हलचलों आदि के बारे में बहुमूल्य सामग्री भरी हुई है।

× × × ×

मैं श्री० केलाजी को इस पुस्तक के लिखने और इस कठिन समय में भी प्रकाशित करने के लिए बधाई देता हूँ, और आशा करता हूँ कि राजस्थानी और देशी राज्यों के प्रश्नों में रुचि रखनेवाले हिन्दी-भाषा-भाषी इसे अपनाकर उन्हें इस दशा में अपनी अन्य आकांक्षाएँ पूर्ण करने के लिए उत्साहित करेंगे। इति।

'नवसन्देश' कार्य्यालय,<br>आगरा

विजयसिंह पथिक

# विषय-सूची



## प्रथम भाग

# द्वितीय भाग

# प्रथम भाग

इस ( देशी राज्यों की ) विशालकाय निरंकुशता का कायम रहना ही अँगरेज़ों की प्रजासत्ता का सब से बड़ा प्रतिवाद है, और वह न तो राजाओं के लिए अच्छी बात है और न उन अभागे लोगों के लिए, जिन्हें इस शुद्ध निरंकुश तंत्र में रहना पड़ता है। राजाओं के लिए यह कोई तारीफ़ की बात नहीं है कि वे अपने पास ऐसी सत्ता रखलें, जो किसी भी इनसान को, यदि उसे अपने गौरव का भान है, नहीं रखनी चाहिए। उन लोगों के लिए यह कोई तारीफ की बात नहीं है, जिन्होंने चुपचाप प्रारम्भिक मानवीय स्वतन्त्रता का छिन जाना बर्दाश्त कर लिया है। और, शायद भारत में ब्रिटिश राज पर यह सबसे बड़ा धब्बा है।......यह प्रथा अपने ही असहनीय बोझ से दब कर चकनाचूर हो जायगी। मेरा विनम्र अहिंसात्मक प्रयत्न उन तीनों दलों को यह तिहेरा पाप धोने के लिए प्रेरित करना है। उनमें से कोई एक भी निर्णयात्मक कदम उठा सकता है और उसका असर सब पर पड़ेगा। लेकिन अगर तीनों मिलकर एक साथ इस पाप की जघन्यता को समझें और सम्मिलित प्रयत्न से उसे धो डालें तो वह बात शानदार होगी।

—म० गांधी

# पहला अध्याय

## विषय प्रवेश

भौगोलिक तथा जातिगत दृष्टि से देशी राज्यों के, तथा भारतवर्ष के अन्य भागों के निवासी एक और अविभाज्य हैं। भारतवर्ष के पैंतीस करोड़ नर नारियों का परस्पर में रक्त सम्बन्ध है। हमें किसी वैधानिक या सैनिक युक्ति से पृथक् नहीं किया जा सकता।

—म० गांधी

'राज्य' शब्द से हम सिर्फ राजाओं का ही अर्थ न समझें, क्योंकि राज्य जिसको अँगरेजी में 'स्टेट' कहते हैं, राजाओं का ही बना हुआ नहीं होता। उसमें राजा हो भी सकते हैं और नहीं भी; किन्तु जनता के बिना कोई राज्य नहीं हो सकता। राज्य तो वास्तव में वह संगठन है, जो समाज के विकास और नियमन के लिए कायम किया जाता है।

—शोभालाल गुप्त

भारतीय राजनीति का एक मुख्य प्रश्न यहाँ के देशी राज्यों की शासनपद्धति है। प्रकृति ने इस विशाल भू-खण्ड को एक देश बना रखा है, परन्तु इसकी शासन सम्बन्धी स्थिति बहुत जटिल है। तनिक विचार कीजिये। एक मात्र नेपाल को छोड़ कर सारा भारत पराधीन है और पराधीनता के भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। पांच नगर फ्रांस के अधीन

हैं, और तीन पुर्तगाल के। लंका ( सीलोन ) को अंगरेजों ने पहले ही भारत से अलग कर रखा था; सन् १९३५ ई० के विधान से बर्मा भी जुदा कर दिया गया, और इस समय तो उसे जापान ने रौंद रखा है। स्वाधीन भारत अपने किसी छोटे-से-छोटे अंग की भी उपेक्षा नहीं कर सकता। तथापि स्थूल दृष्टि से भारतवर्ष के दो भाग हैं—ब्रिटिश भारत और देशी राज्य। ब्रिटिश भारत का क्षेत्रफल साढ़े आठ लाख वर्ग मील और जन-संख्या साढ़े उनतीस करोड़ है; देशी राज्यों का क्षेत्रफल सात लाख वर्ग मील और जन-संख्या सवा नौ करोड़ है। जहाँ ब्रिटिश भारत में जनता पर अंगरेजी सरकार की हकूमत है, देशी राज्यों में न्यूनाधिक रूप में राजा महाराजाओं का शासन है, परन्तु वह शासन एकमात्र उनकी इच्छा पर ही अवलम्बित नहीं है, राजाओं पर ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त वायसराय का, भारत सरकार के राजनैतिक विभाग द्वारा, नियंत्रण हैं। इस प्रकार देशी राज्यों में दोहरी हकूमत है।

देशी राज्यों का प्रश्न नौ करोड़ मानव जनता का प्रश्न है। और, ये राज्य किसी एक ही स्थान पर इकट्ठे नहीं हैं, वरन् जहाँ-तहाँ बिखरे हुए हैं। इन राज्यों की संख्या भी दस-बीस या पचास-सौ ही नहीं, लगभग छः सौ है। कल्पना कीजिए एक देश के अन्दर इतने राजनैतिक भागों का होना कैसी राजनीति है! इससे तो राष्ट्र खण्ड-खण्ड हुआ ही समझिए। इङ्गलैंड का पड़ोसी आयर्लैंड अपना एक ही टुकड़ा 'अलस्टर' अलग होने के कारण परेशान है, परन्तु हमारे यहाँ तो सैकड़ों 'अलस्टर' बने हुए हैं। इन्हें कम करने की ओर गम्भीरता पूर्वक ध्यान ही कहाँ

दिया जा रहा है। सवाल तो यह भी तय करना है कि इस बीसवीं शताब्दी के मध्य में, जब कि भारतीय जनता स्वराज्य-प्राप्ति के लिए बेचैन हो रही है, यहाँ अँधकार युग की ऐसी एक भी यादगार क्यों रहनी चाहिए, जिसमें स्वेच्छाचार का राज्य हो, उत्तरदायी शासन की तो बात ही क्या, प्रारम्भिक नागरिक अधिकारों की भी सुरक्षा न हो। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि देशी राज्यों का विषय कितना महत्व-पूर्ण है।

भारतवर्ष के नक्शे में लाल ( ब्रिटिश भारत ) और पीले ( देशी राज्य ) मुख्य दो भाग दिखाये जाते हैं। परन्तु यह भेद कृत्रिम है। भारतवर्ष अखंड और अविभाज्य है। देशी राज्य भारतीय राष्ट्र के के अभिन्न अंग है। संस्कृति, इतिहास, आर्थिक स्थिति या रक्त-सम्बन्ध आदि की दृष्टि से इनमें और शेष भारत में ऐसा अन्तर नहीं है कि इन्हें पृथक् माना जाय। इन्हें अलग रखना अव्यावहारिक है। ये स्थान-स्थान पर विद्यमान हैं। उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पच्छिम तथा मध्य में कोई भी भाग ऐसा नहीं है, जहाँ ये न हो। ब्रिटिश भारत के प्रायः प्रत्येक बड़े प्रान्त में थोड़े-बहुत देशी राज्य है। यही नहीं, ठेठ उत्तर से दक्षिण तक अथवा पश्चिम से पूर्व तक लगभग दो-दो हजार मील की यात्रा इस प्रकार करना सम्भव है कि अधिकांश में देशी राज्यों में से ही गुजरना हो। पुनः एक ओर तो हैदराबाद और कशमीर जैसे राज्य अपने विस्तार और जन-संख्या में योरप के एक-एक राष्ट्र के समान हैं, और दूसरी ओर कितने ही राज्य गाँव सरीखे अथवा साधारण गाँव से भी छोटे हैं।

देशी राज्यों सम्बन्धी अन्य बातों के विषय में लिखने से पूर्व हमें 'देशी राज्य' शब्द पर विचार कर लेना चाहिए। पहले 'देशी' शब्द को लें। अंगरेजी में 'नेटिव' शब्द है, जिस का अर्थ देशी किया जाता है। परन्तु अंगरेज इस शब्द का प्रयोग प्रायः अपमानसूचक भाव से करते हैं, इसलिए देश में आन्दोलन होने पर, अब इसकी जगह बहुधा 'इंडियन' लिखा जाता है, जिसका अर्थ भारतीय है। भारतवर्ष के देशी राज्यों को अब 'नेटिव' स्टेट्स न कहकर 'इंडियन' स्टेट्स कहा जाता है। यह अंगरेजी शब्द की बात हुई। हमारे 'देशी' शब्द में कोई दोष नहीं है, यह भारतीय (जो विदेशी न हो) के अर्थ में पूर्ववत चल रहा है।

अब 'राज्य' शब्द पर विचार करें। यह एक राजनैतिक पारिभाषिक शब्द है। अनेक लेखकों ने इसकी भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ की हैं। उनका उल्लेख करने की यहाँ आवश्यकता नहीं। संक्षेप में राज्य उस जन-समूह को कहा जाता है, जो एक निर्धारित भू-भाग पर रहता हो, जिसका एक राजनैतिक संगठन हो, और जो अपने क्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्र हो; किसी अन्य सत्ता के अधीन न हो। इस प्रकार राज्य के निम्नलिखित तत्व होते हैं: (१) जनता, (२) भूमि, (३) राजनैतिक सङ्गठन, और (४) प्रभुत्व शक्ति। अस्तु, 'राज्य' की परिभाषा का ध्यान रखते हुए भारतवर्ष के देशी राज्यों में से किसी एक को भी वास्तव में राज्य नहीं कहा जाना चाहिए।* परन्तु व्यवहार में

* यद्यपि ब्रिटिश भारत अधिक राजनैतिक अधिकारों का उपभोग कर रहा है, तथापि क्योंकि वह ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत तथा ब्रिटिश सरकार के अधीन है, उसे भी सिद्धान्त से 'राज्य' नहीं कहा जा सकता।

यह सिद्धान्त की बात ध्यान में नहीं रखी जाती। अंगरेजी में इनके लिए 'स्टेट' शब्द का प्रयोग होता आ रहा है, और हिन्दी में इन्हें 'राज्य' कहे जाने में कोई आपत्ति नहीं मानी जाती। नये (सन् १९३५ ई० के) भारतीय शासनविधान के अनुसार भारतीय राज्य ऐसे किसी भी भू-भाग को कह सकते हैं, जो ब्रिटिश भारत का भाग न हो, और जिसे सम्राट् ने राज्य मान लिया हो, चाहे वह राज्य कहा गया हो, या रियासत, या जागीर या और कुछ। इस प्रकार भारत के देशी राज्यों के सम्बन्ध में मुख्य लक्षण यही रह जाता है कि सम्राट् ने उन्हें राज्य माना है।

बटलर कमेटी की जाँच के समय (सन् १९२८ में) ५६२ राज्यों में से केवल ३० राज्यों में व्यवस्थापक सभाएँ थीं, केवल ४० में हाई-कोर्ट थे, और ३४ ने न्याय विभाग को शासन से पृथक् कर रखा था। केवल ५४ में पेन्शन देने का नियम प्रचलित था, ४६ में नौकरियों की दर्जाबन्दी थी, और ५६ में राजा को निजी व्यय के लिए मिलनेवाली रकम निश्चित की हुई थी। इस प्रकार ५६२ राज्यों में से ४०० में उन सुधारों का भी होना नहीं पाया गया, जिनका बटलर कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में उल्लेख किया है।

स्मरण रहे कि उपर्युक्त हाईकोर्ट न्याय-कार्य में ऐसे स्वतंत्र नहीं थे, जैसा इस नामवाली संस्थाओं से प्रायः समझा जाता है। इसी प्रकार देशी राज्यों की व्यवस्थापक सभाओं को प्रायः उतना भी अधिकार नहीं था, जितना ब्रिटिश भारत में उस समय था। उसके बाद सन् १९३७ ई० में जब कि ब्रिटिश भारत की प्रान्तीय व्यवस्थापक

सभाओं का सङ्गठन ऐसा हो गया कि शासक इन के प्रति बहुत-कुछ उत्तरदायी होने लगे, देशी राज्यों की उपर्युक्त थोड़ी सी व्यवस्थापक सभाएँ भी प्रायः पुराने अविकसित ढङ्ग की बनी रहीं। पिछले वर्षों में कुछ राज्यों में एक हद तक सुधार हुआ है, पर ऐसे राज्यों की संख्या तथा सुधार का परिमाण बहुत कम ही है।

इस प्रसङ्ग में 'राजा' शब्द पर भी थोड़ा विचार कर लिया जाय। साधारणतया राजा को छः विषयों के अधिकार वाला माना जाता है—शासन, न्याय, कानून-निर्माण, कर-निर्धारण, सिक्का ढालना और संधि-विग्रह। भारतवर्ष के बहुत से छोटे-छोटे राजाओं की तो बात ही क्या, कितने ही बड़े-बड़े राजाओं को भी इनमें से कुछ अधिकार एक परिमित सीमा तक ही प्राप्त हैं, और कुछ अधिकार तो बिल्कुल ही नहीं है। उदाहरणवत् किसी राजा को अपने राज्यान्तर्गत छावनी, रेजीडेन्सी, या योरपियन जनता पर कुछ अधिकार नहीं है। अन्य क्षेत्रों में उनकी नीति उसी सीमा तक चलती है, जहाँ तक कि अंगरेज सरकार चाहे, अर्थात् सरकार को आवश्यकतानुसार हस्तक्षेप करने का अधिकार है। बहुत से राजा सरकार की स्वीकृति बिना कोई नया कर नहीं लगा सकते। प्राण-दंड देने तथा अपना सिक्का ढालने का अधिकार तो इने गिने राजाओं को ही है। कितने ही राजा तो ऐसे हैं जिन्हें प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के ही अधिकार हैं, अथवा वे भी नहीं हैं। अन्य राज्यों से मित्रता की संधि करने, किसी से युद्ध करने अथवा दूसरे के आक्रमण से स्वयं अपनी रक्षा करने का अधिकार तो किसी भी राजा को नहीं है। इस दृष्टि से भारतीय राजाओं के

लिए वास्तव में राजा महाराजा आदि पद का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

अब देशी राज्यों की संख्या की बात लें। यह बड़ी अनिश्चित और अस्थायी है। भारतीय शासन-सुधार सम्बन्धी मॉंट-फोर्ड रिपोर्ट सन् १९१८ में प्रकाशित हुई है, उससे विदित होता है कि उस समय तथा उससे पहले उन्नीसवीं सदी में देशी राज्यों की संख्या लगभग सात सौ रही। परन्तु पीछे कुछ बड़े-बड़े राजाओं को विशेषाधिकार मिल जाने से कितने-ही छोटे रजवाड़े उनके अधीन कर दिये गये, जिससे देशी राज्यों की संख्या में स्पष्ट कमी हुई। भारतीय राज्य जाँच कमेटी ( बटलर कमेटी ) ने जो १९२७ ई० में नियुक्त हुई थी, अपनी रिपोर्ट में ५६२ राज्यों का उल्लेख किया। सरकार द्वारा, १ जनवरी १९२९ तक ठीक करके, प्रकाशित 'दि इंडयन स्टेट्स' में कुल ५६० राज्यों का ब्यौरा दिया गया है। सन् १९३५ ई० में बर्मा भारतवर्ष से पृथक् किया गया, फल-स्वरूप उस प्रान्त के राज्यों की, देशी राज्यों में गणना की जानी बन्द हो गयी। इससे इनकी संख्या में कुछ और कमी होनी चाहिए थी, पर सरकार के सन् १९४० ई० के प्रकाशन * में देशी राज्यों का जो विवरण दिया गया है, उसके हिसाब से उनकी कुल संख्या ५८४ होती है। बात यह है कि यद्यपि बड़े-बड़े राज्यों की संख्या सीमित है, छोटे-छोटे राज्यों में समय-समय पर कमी-बेशी होती रहती है।

यह तो हम पहले ही बता चुके हैं कि देशी राज्यों का कुल क्षेत्रफल

*Memoranda on the Indian States.

सात लाख वर्ग मील और जन-संख्या सवा नौ करोड़ है। परन्तु इस क्षेत्रफल और जन-संख्या का ५८४ देशी राज्य नाम धारी भागों में कैसा विषम विभाजन हुआ है, और इनकी आय में कितनी विभिन्नता है, यह देखते ही बनता है। श्री० शान्तिधवन जी ने हिसाब लगाकर बताया है * कि इस विचार से देशी राज्यों का किस प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता है। उनका दिया हुआ, जन-संख्या और आय का व्यौरा तो अब बदल गया है। अतः यहाँ उनका केवल क्षेत्रफल की दृष्टि से ही किया हुआ वर्गीकरण दिया जाता है।

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| ५०,००० वर्ग मील से अधिक | | | | | | ३ |
| २०,००० | ,, | ,, | और ५०,००० वर्ग मील से कम | | | ४ |
| १०,००० | ,, | ,, | २०,००० | ,, | ,, | ७ |
| १,००० | ,, | ,, | १०,००० | ,, | ,, | ६९ |
| १०० | ,, | ,, | १,००० | ,, | ,, | १३१ |
| १० | ,, | ,, | १०० | ,, | ,, | १६८ |
| १ | ,, | ,, | १० | ,, | ,, | १६५ |
| | | | १ | ,, | ,, | १४ |
| अज्ञात | | | | | | २३ |
| योग | | | | | | ५८४ |

विविध राज्यों की शासनप्रणाली में कुछ अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। नमूने के तौर पर कुछ खास-खास राज्यों की शासनपद्धति

* देखिये What are Indian States.

का इस पुस्तक के दूसरे भाग में वर्णन किया जायगा। प्रथम भाग में ऐसी बातों का ही विचार किया जायगा जो सामूहिक रूप से कही जा सकती हैं।

देशी राज्यों की एक बात बहुत जल्दी ही हमारा ध्यान आकर्षित कर लेती है; वह है, इनकी प्रतिक्रियावादिता या अपरिवर्तनशीलता। प्रायः राज्य सैकड़ों वर्ष पहले की बातों को रूढ़ियों के तौर से चिपटाये हुये हैं; जो समय बीत गया है, उसकी यादगार बनाये रखने में ही ये अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं। आज की स्थिति क्या है, और कल क्या होना चाहिए, इसकी इन्हें रत्ती भर चिन्ता नहीं। नवयुग का संदेश सुनने को ये बहुत कम तैयार हैं। बहुधा जिन राज्यों ने कुछ अंश में प्रगतिशीलता का परिचय दिया है, वहाँ भी कितनी ही बातें पुराने ढङ्ग से चलायी जा रही हैं, चाहे उनमें कुछ तत्व न रह गया हो। इनकी यह अपरिवर्तनशीलता यहाँ तक है कि इसके कारण ये भारतीय राष्ट्र की एक अत्यन्त प्रतिक्रियावादी शक्ति के रूप में सामने आते हैं। भारतवर्ष की स्वतंत्रता और प्रगति में देशी राज्यों की यह स्थिति अत्यन्त बाधक है। देशी राज्यों की यथेष्ट उन्नति के बिना भारतवर्ष उन्नत नहीं हो सकता। अस्तु, अगले अध्यायों में पहले इनके प्राचीन इतिहास पर एक नज़र डालकर फिर अन्य बातों का विचार किया जायगा।



# दूसरा अध्याय



## अंगरेजों के आने से पूर्व

लोगों को साधारणतः विश्वास हो गया है कि भारतवर्ष के इतिहास में कभी ऐसा समय नहीं था जब कि समाज एक राजा के अनियंत्रित शासनाधिकार में न रहा हो। इस प्रकार की धारणाएँ वेद शास्त्र और श्रुति-स्मृतियों के विरुद्ध हैं।

—राधाकृष्ण

हमारा वर्तमान काल बहुत-कुछ भूत काल का परिणाम होता है। हमने अनेक बातें पूर्वकालीन घटनाओं के परिणाम-स्वरूप प्राप्त की हैं। देशी राज्यों की वर्तमान परिस्थिति को समझने के लिए भारतीय इतिहास के कुछ पृष्ठों को अवलोकन करना आवश्यक है। हमारे देश ने चिरकाल तक स्वतन्त्रता का उपभोग किया, विविध मुसलिम राजवंश भी यहाँ के ही निवासी होजाने के कारण विदेशी नहीं कहे जा सकते। अठारहवीं शताब्दी के मध्य से स्वाधीन भारत में किस प्रकार क्रमशः अंगरेजों का प्रत्यक्ष या परोक्ष शासन स्थापित हुआ, किस प्रकार एक मुख्य भाग ब्रिटिश भारत हो गया, और दूसरा देशी राज्य में परिणत हुआ, यह बहुत मनोरंजक और शिक्षाप्रद विषय है, परन्तु जटिल और गहन भी है। हमें तो इसका संक्षेप में ही विचार करना है।

इसमें सन्देह नहीं कि राजा और राज्य अति प्राचीनकाल से रहे हैं। परन्तु इस का यह अर्थ नहीं कि इतिहास में इनका स्वरूप सदैव एकसा ही रहा। वास्तव में इनके स्वरूप में समय-समय पर परिवर्तन होता रहा है। और, एक समय में भी इनके विविध स्वरूप देखने में आते हैं, जैसा कि इस समय भी है। कुछ पाठकों को यह एक नयी बात मालूम होगी कि किसी समय गण राज्यों की परिषदों के सदस्य ही 'राजा' कहलाते थे। कृष्ण के समय जरासंघ ने साठ हजार राजाओं को बन्दी कर रखा था; इसका अर्थ यह नहीं है कि साठ हजार पृथक-पृथक राज्यों के प्रधान शासक कैद थे, वरन् इसका आशय यही है कि गणों के साठ हजार प्रतिनिधि अथवा गण-परिषदों के साठ हजार सदस्य कारागृह में डाले गये थे। इसी प्रकार जो यह कहा जाता है कि लिच्छवी संघ में ८४ हजार 'राजा' थे तो इसका अर्थ यही है कि उस संघ के इतने सदस्य थे।*

अस्तु, आर्य लोगों के प्राचीन काल में बहुत समय तक गणतन्त्र या प्रजातन्त्र राज्य भी रहे। हाँ, पीछे यहाँ विशेषतया एकतन्त्र राज्य या साम्राज्य का ही आदर्श रखा जाने लगा। यद्यपि कभी-कभी कुछ सम्राट् बहुत स्वेच्छाचारी और अत्याचारी भी हुए हैं, पर यहाँ के आर्य सम्राटों की नीति प्रायः यह रही है कि अपने साम्राज्य

---

* स्थानाभाव से यहाँ इस विषय का विशेष विवेचन नहीं किया जा सकता। श्री० काशीप्रसादजी जायसवाल की 'हिन्दू राजतंत्र', श्री० अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी की 'हिन्दुओं की राज कल्पना', श्री० देशराज जी की 'जाट-इतिहास' आदि पुस्तकों में इसका अच्छा विचार किया गया है, और, इस समय श्री० विजयसिंहजी 'पथिक' इसी विषय की 'भारतीय राजनैतिक संस्कृति' पुस्तक लिख रहे हैं।

के सब भागों पर स्वयं शासन न करके केवल कुछ भाग को ही अपने प्रत्यक्ष नियंत्रण में रखा जाय, और शेष भागों के स्थानीय शासकों और स्वतन्त्र पंचायतों या जातियों से अपनी प्रभुता स्वीकार करायी जाय, एवं विशेष अवसरों पर उनसे कुछ भेंट या कर आदि लिया जाय। इस प्रकार वे सम्राट विजित राज्य की राष्ट्रीयता बनी रहने देते थे, उसके आन्तरिक शासन-प्रबन्ध में हस्तक्षेप न करते थे। जहाँ तक सम्भव होता, विजित राज्य के राज़परिवार के ही किसी व्यक्ति को उत्तराधिकारी बनाया जाता था; हाँ, वह उत्तराधिकारी सम्राट् की प्रभुता मानता, तथा सम्राट् सम्बन्धी उत्सव आदि में उपस्थित होता और अपनी हैसियत के अनुसार कुछ उपहार भी देता था। इस प्रकार साम्राज्य में सम्राट् के अतिरिक्त अनेक स्थानीय शासक ऐसे होते थे, जिन्हें अपने-अपने क्षेत्रों में राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त होती थी, जो अपने-अपने राज्यों में निर्धारित कायदे कानून और शासन-नीति प्रचलित करते थे। उस समय यातायात के साधनों तथा आर्थिक विकास की अवस्था भी इसी प्रकार के राजनैतिक सङ्गठन के अनुकूल थी।

हिन्दुओं में अब तक भी राज्य का आदर्श राम-राज्य माना जाता है। राम-राज्य का अर्थ ही आदर्श राज्य है। इसकी विशेष चर्चा करने का यहाँ प्रसंग नहीं है, हम पूर्वोक्त कथन के उदाहरण-स्वरूप पाठकों का ध्यान केवल इस बात की ओर दिलाना चाहते हैं कि रामचन्द्र जी ने रावण का वध करके लङ्का को जीतने पर उसे कौशल राज्य में नहीं मिलाया, वरन् रावण के भाई विभीषण का ही वहाँ

अभिषेक किया। रामचन्द्र जी की ही तरह हिन्दू श्रीकृष्ण को याद करते हैं। इनके सम्बन्ध में भी हम देखते हैं कि कंस का बध करने पर, इन्होंने मथुरा की राजगद्दी पर उसके पिता उग्रसेन को बैठाया, जरासंध को मार कर मगध के शासन के लिए उसके पुत्र सहदेव की नियुक्ति की, और शिशुपाल को मारने पर चेदि (जब्बलपुर) के राज्य के लिए उसके पुत्र को ही राजतिलक दिया। नये उत्तराधिकारी अपने क्षेत्र का शासन-प्रबन्ध करने में स्वतन्त्र रहे, केवल सम्राट् की प्रभुता मानते रहे।

पराजित या अधीन राज्यों सम्बन्धी इसी प्रकार की नीति प्रचलित रहने का परिचय हमें पीछे के इतिहास में मिलता है। अशोक का साम्राज्य हो, गुप्त काल हो, या सम्राट् हर्षवर्द्धन का समय हो, अनेक छोटे-बड़े राजा सम्राट् की छत्र-छाया में अपनी स्वाधीनता का उपयोग करते रहे। सम्राट् के लिए इन राजाओं को पदच्युत करने का अवसर बहुत कम आता था, कारण ये अपनी प्रजा को संतुष्ट रखते थे, मनमाने कायदे-कानून नहीं चलाते थे, और नित्य नये करों से जनता को पीड़ित नहीं करते थे। वास्तव में नियमों या कानूनों का आधार राजसत्ता न मानी जाकर धर्मशास्त्र माने जाते थे, जिनकी रचना निर्लोभी, निर्भीक, तेजस्वी और लोकहितैषी आचार्यों द्वारा होती थी। जब कभी धर्मशास्त्र के आदेशों को समझने में कुछ कठिनाई या संदेह होता था, तो बड़े-बूढ़े बुजुर्गों और विद्वानों की राय ले ली जाती थी। यही बात करों के सम्बन्ध में थी। प्रायः कर धर्मशास्त्र के अनुसार परम्परा से चले आते थे, यदि किसी विशेष परिस्थिति में

राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वे पर्याप्त न होते तो राजा राज्य के महाजनों और गण्य-मान्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों से परामर्श करके विशेष आय की व्यवस्था करता था।

यहाँ इस बात का तनिक विस्तारपूर्वक उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि प्राचीन काल में यहाँ राजा के कर्तव्य क्या माने जाते थे, तथा शासन-नीति क्या होती थी। इस सम्बन्ध में हिन्दू धर्मशास्त्रों में, विविध स्मृतियों एवं महाभारत आदि में बहुत विस्तारपूर्वक लिखा हुआ है। उनके सुदीर्घ उद्धरण न देकर हम यहाँ एक राजा के हाल के ही भाषण का कुछ अंश देते हैं, जिससे इस विषय पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। महाराजा बीकानेर ने अक्टूबर १९४१ में युद्धक्षेत्र में जाने से पूर्व कहा था * कि हिन्दू धर्मानुसार सब से प्रथम राजा को यह शपथ दिलायी गयी थी—'इस देश को ब्रह्म ही मान कर मैं सदा मन, वचन और कर्म से इसकी रक्षा करूंगा। जो कुछ धर्म-नीति द्वारा कहा गया है, और जिसका दंड-नीति से कोई विरोध नहीं, उसका मैं बिना किसी हिचकिचाहट के पालन करूंगा, किन्तु मैं कभी स्वेच्छाचारी नहीं बनूंगा।' इसके अतिरिक्त ऐतरेय ब्राह्मण का भी आदेश है—'यदि मैं तुझे (राज्य को) धोखा दूं तो मेरे धार्मिक कृत्यों तथा दान, मेरे स्थान, मेरे जीवन और मेरी सन्तान तक का नाश हो जाय।'

---

*यह न समझना चाहिए कि बीकानेर में इन सिद्धान्तों के अनुसार ही शासन-कार्य होता है। बीकानेर की राजनैतिक स्थिति का विचार इसी पुस्तक के दूसरे भाग में स्वतन्त्र रूप से किया गया है।

आगे महाराजा साहब ने कहा कि प्राचीन हिन्दू शास्त्रों के अनुसार राजधर्म के आठ सिद्धान्त है:—

१—धर्मयुक्त राज्य, कानून का निश्चित होना, और कानून के सामने राज्य के छोटे-बड़े सब लोगों का एक ही भाव से देखा जाना।

२—जान और माल की तथा निजी स्वाधीनता और हकों की सुरक्षा।

३—सुयोग्य, सुशिक्षित और स्वाधीन अदालतें; प्रजा के आपस के, और प्रजा और राज्य के बीच के मामलों को तय करने के लिए मुनासिब साधनों का होना।

४—आर्थिक पैठ और दृढ़ता।

*५—राजकाज में प्रवीणता और स्थिरता।*

६—राजा का निजी खर्च और राज्य का खर्च अलग-अलग रखना, और राज्य की आमदनी में से एक खास और निर्धारित भाग को राजा की 'सिविल लिस्ट' (निजी व्यय) निश्चित करना, जो राजा के निजी व्यय और उसकी मानमर्यादा रखने के लिए काफी हो।

७—प्रजा की भलाई के कामों के लिए और खासकर राष्ट्र-निर्माणक और परोपकारी विभागों के लिए यथा-सम्भव खर्च करना।

८—राजप्रबन्ध ऐसा उपकारी बनाना, जो प्रजा की भलाई करने वाला और प्रजा के लिए संतोषदायक हो, और जिसमें हर तरह से सोच विचार करने के बाद राज्य की मौजूदा हालतों को ध्यान में रखते हुए राज सभा, लोकल बोर्ड, म्युनिसिपैलटियां तथा निर्वाचित

व्यक्तियों की अन्य संस्थाओं के द्वारा राज्य के कार्यों में प्रजा को दिनों दिन अधिक शामिल किया जाय।

ये आठ सिद्धान्त हैं, जो राज्य के शासन की मजबूत नींव हैं, अच्छे राजकाज के लिए आवश्यक और अनुभव की कसौटी पर ये खरे उतरे हैं।

प्राचीन भारत में चिरकाल तक राजाओं ने साधारणतया इस आदर्श को सामने रखा और इसके अनुसार अपनी शासन-नीति निर्धारित की। अपने मन, वचन और कर्म से उपर्युक्त राजधर्म का पालन करने से प्रायः राज्य 'राम राज्य' रहे हैं। खेद है कि पीछे वह बात नहीं रही। हिन्दू समाज एवं शासकों में बहुत विकार आ गये। ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में तो राजाओं की स्वेच्छाचारिता, संगठनहीनता, धार्मिक संकीर्णता और आपस की फूट के विनाशकारी रूप प्रत्यक्ष हो चले थे। कभी-कभी सम्राट् विलासिता में भी लीन होता था; उससे राजधर्म का यथेष्ट पालन कैसे हो सकता था। ऐसी स्थिति में अफगानिस्तान से जोशीले मुसलमान यहाँ आक्रमण करने लगे, और पीछे दिल्ली की गद्दी पर बैठने का भी स्वप्न चरितार्थ करने लगे।

निदान, जब मुसलमान यहाँ आये तो उन्हें थोड़े-बहुत भेद से यहाँ उपर्युक्त शासन-व्यवस्था देखने को मिली। राज्यारूढ़ होने पर उन्होंने भी यथा-सम्भव इसी को अपनाने में अपना हित समझा। वास्तव में ऐसा किये बिना उनकी गुजर भी न थी। तेरहवीं शताब्दी से सवा तीन सौ वर्ष दिल्ली की राजगद्दी

पर गुलाम, खिलजी, तुगलक, सैयद और लोदी इन पाँच वंशों के बादशाह हुए। इनमें कोई स्थिरता न थी। इनके आर्थिक साधन बहुत परिमित थे; फिर, इनमें ऐसी राजनीतिज्ञता का भी प्रायः अभाव ही था कि स्थानीय नेताओं की सहायता से अपना शासन दृढ़ कर सकते। मुगलों के समय में, विशेषतया सम्राट् अकबर के राज्य-काल में, उसकी उदार नीति तथा जनता के सहयोग से यहाँ शासन में दृढ़ता आयी। अब इस प्रश्न पर विशेष ध्यान दिया गया कि विविध राज्यों का केन्द्रीय सत्ता से क्या सम्बन्ध रहे। यद्यपि अकबर ने मुगल साम्राज्य की खूब वृद्धि की, उसने यह अच्छी तरह समझ लिया कि भारतवर्ष में हिन्दुओं से मेल बढ़ाना और उनकी ही शासन-व्यवस्था का उपयोग करना अच्छा होगा। उसने राजपूताना और बुन्देलखण्ड के राज्यों में कोई हस्तक्षेप न किया, केवल यही चाहा कि उनके राजा मुगल सम्राट् की छत्र-छाया में रहना स्वीकार कर लें। वास्तव में, इन प्रदेशों में राजपूत राजाओं का अपना-अपना राज्य था, परन्तु मुगल बादशाहों ने उनका स्वतन्त्र शासक होने का दावा मान्य न किया। ये उनके संरक्षक के रूप में रहे और आवश्यकतानुसार उन्हें गद्दी पर बैठाने या उतारने के अधिकार का उपयोग करते रहे। मेवाड़ के राणा प्रताप ने दिल्ली की अधीनता स्वीकार न की, वह अनेक कष्ट सहकर भी अपनी आन पर डटा रहा। अन्य राजा मुगल साम्राज्य के विरोधी रहने के बजाय उसके सहायक और आधार-स्तम्भ रहे।

दुर्भाग्य से औरङ्गजेब के समय में शासन-नीति में परिवर्तन किया गया। उसके धार्मिक या जातिगत पक्षपात तथा उसके उत्तराधिकारियों की निर्बलता और विलासिता आदि के कारण साम्राज्य को क्षीण करने वाले साधन जुट गये। असंतुष्ट राजपूत अब सहायक न रहे, जाटों ने आगरा और मथुरा आदि पर अधिकार जमा लिया। दक्षिण भारत में, भिन्न-भिन्न प्रान्तों के सूबेदार प्रायः स्वाधीन हो गये। शान्त और सहिष्णु सिक्खों ने सैनिक रूप धारण करके पंजाब, पश्चिमोत्तर भारत तथा अफ़ग़ानिस्तान आदि में अपना राज्य स्थापित कर लिया, मध्य प्रदेश में शिवा जी ने महाराष्ट्र-निर्माण का कार्य किया; उनके उत्तराधिकारी पेशवाओं की शक्ति क्रमशः बढ़ती गयी, यहाँ तक कि एक बार दिल्ली पर भी उनका अधिकार हो गया। अस्तु, अठारहवीं शताब्दी में यहाँ कई शक्तियों का उदय हुआ। साम्राज्य-सूत्र-संचालन की दृष्टि से, इनमें से किसी का यथेष्ट संगठन या विकास न होने पाया था कि अन्य घटनाएँ अपना प्रभाव दर्शाने लगीं।

हुआ यह कि इस बीच में डच, फ्रांसीसी, पुर्तगीज और अंगरेज आदि योरपीय जातियों के साहसी व्यापारियों ने यहाँ आकर क्रमशः अपने अड्डे जमा लिए। इनकी कई कम्पनियाँ स्थापित हुईं। कालान्तर में ये पाश्चात्य जातियाँ पारस्परिक प्रतिद्वन्दिता के कारण आपस में लड़ने लगीं। फूट, अज्ञान या लोभवश, इन लड़ाइयों में कितने ही भारतवासियों ने भी भाग लिया; कुछ एक पक्ष की ओर रहे, कुछ दूसरे पक्ष की ओर। क्रमशः कुछ बल पाकर ये योरपीय शक्तियाँ भारतवर्ष के राजा महाराजाओं से भी लड़ीं। इन शक्तियों में अन्ततः अंगरेज़ों

का पलड़ा भारी रहा। उनकी प्रत्येक विजय से आगे का मार्ग कुछ प्रशस्त होता गया, एक अधीन भाग का जन धन दूसरे भाग को अधीन करने में सहायक हुआ। इस प्रकार भारतवासियों के सहयोग से, इनकी तलवार और इनके ही पैसे से, अंगरेज यहाँ अपनी प्रभुता स्थापित करने लगे। इसके विषय में अगले अध्याय में लिखा जायगा; उसी में यह भी बताया जायगा कि अंगरेज व्यापारियों की ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने भारतीय शासकों से लड़ कर अथवा मिल कर किस प्रकार की संधियाँ की, उसकी नीति क्या थी; जिन राजा महाराजाओं से उसका पहले बराबरी का व्यवहार था, वे किस प्रकार अपनी वर्तमान गति को प्राप्त हुए।

# तीसरा अध्याय

## देशी राज्य और कम्पनी

क्या सचमुच वह (कम्पनी) इन राज्यों को लेना ही चाहती थी, या अनायास किसी और युक्ति के न होने से उसे ऐसा करना ही पड़ा? बहुत लोग उसे पूरा निर्दोष ठहराते हैं, पर ब्लन्ट साहब अपनी पुस्तक 'आइडियाज एबाउट इंडिया' में लिखते हैं कि प्रारम्भ से ही यह एक प्रकार से निश्चित सा कर लिया गया था कि भारत में अपनी वृद्धि की जाय, और बड़े निर्लज्ज रूप से यह कार्य किया गया।

—सम्पूर्णानन्द

प्रत्येक कार्य का कोई कारण होता है, और बहुधा उस कारण का भी कार्य होता है। इस प्रकार बड़ी-बड़ी घटनाओं में कारण और

कार्य का क्रम बहुत दूर तक चला जाता है। उनके सूत्रपात का ठीक समय निर्धारित करना कठिन और वादग्रस्त होता है। तथापि स्थूल रूप से यह कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में अंगरेजी राज्य की स्थापना का श्रीगणेश सन् १७५७ ई० से हुआ।

स्थानीय शासकों की निर्बलता का विचार करके अंगरेज अपनी शक्ति बढ़ाने की फ़िक्र में रहते थे, उन्होंने कलकत्ते के किले में सैनिक तैयारी की। बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला ने इसका विरोध किया। इस पर दोनों में लड़ाई ठन गयी। नवाब के लोभी सेनापति मीरजाफर आदि ने ऐन समय पर नवाब को धोखा दिया और उधर अंगरेज सेनापति क्लाइव और वाट्सन ने बड़ी युक्ति और चालाकी से काम लिया। निदान, विशेषतया अपनी संगठन शक्ति और कूटनीति से अंगरेज़ सन् १७५७ ई० में प्लासी की लड़ाई में विजयी रहे।

इस लड़ाई में मीरजाफर अंगरेज़ों से मिल गया था। वह अब बंगाल का नवाब बना दिया गया। उसने भी अंगरेजों को खूब धन लुटाया, कुछ भूमि पर ( जिसे अब 'चौबीस परगना' कहते हैं ) ज़मींदारी का अधिकार, तथा कुछ विशेष व्यापारिक अधिकार प्रदान किये। वह 'उनका आदमी' था, अपने पद की रक्षा के लिए उनका आश्रित था। वह नाममात्र का नवाब था, वास्तविक शक्ति अंगरेजों के हाथ में आगयी थी। जब उनकी उससे न निभी, उन्होंने उसे गद्दी से उतार दिया और उसके सम्बन्धी मीरकासिम को नवाब बना दिया। उसने कम्पनी के आदमियों की अनीति रोकनी चाही, संघर्ष बढ़ता गया।

अन्ततः विवश हो उसे युद्ध छेड़ना पड़ा। उसने सम्राट् शाहआलम द्वितीय और अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला की सहायता ली। सन् १७६४ में बकसर की लड़ाई हुई, उसमें कम्पनी जीत गयी। अगले वर्ष संधि हुई, जिसे इलाहाबाद की संधि कहते हैं। इससे सम्राट् ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी कम्पनी को दे दी। दीवान को मालगुज़ारी वसूल करने और खर्च करने का अधिकार होता है। इस प्रकार कम्पनी एक व्यापारिक समुदाय मात्र न रहकर शासक बन गयी। ध्यान देने की बात यह है कि कम्पनी ने इस अवसर पर अपने आपको सम्राट् का 'वफादार नौकर' ('फेथफुल सर्वेंट') माना था। इसके सौ वर्ष बाद अंगरेज 'वफादार नौकर' से प्रभुता-प्राप्त स्वामी बन गये; ये सम्राट् के कानूनी एवं वास्तविक उत्तराधिकारी हो गये; इस बीच की मंजिलों का इस अध्याय में आगे उल्लेख किया जायगा।

पहले कहा जा चुका है कि मुगल साम्राज्य के ह्रास के समय, देश के भिन्न-भिन्न भागों के प्रबन्धक स्वतंत्र शासक बनने लगे। अधिकांश भागों में हिन्दुओं का राज्य तथा प्रभाव था। विविध प्रान्तीय शासकों में परस्पर सहयोग या एकता न थी। अस्तु, जब कम्पनी को इनसे काम पड़ा तो उसे मालूम हुआ कि यद्यपि ये कहने को मुगल सम्राट् के प्रतिनिधि हैं पर ये नाममात्र को ही उसके अधीन हैं, वास्तव में ये अपने-अपने क्षेत्र में स्वाधीन हैं और इन्हें प्रभुत्व प्राप्त है। और, क्योंकि कम्पनी को भी बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी सम्राट् की ओर से मिली थी, उसकी स्थिति अन्य प्रान्तीय शासकों के

1806

समान ही थी। इसीलिए कम्पनी की आरम्भ में अवध और मैसूर आदि से जो संधियाँ हुईं, वे उसी प्रकार की हुईं जैसी दो बराबरी के पक्षों में होती हैं।

यह तो सर्वमान्य ही है कि आरम्भ में अंगरेज यहाँ व्यापारियों के रूप में आये। परन्तु यहाँ की तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति का अनुभव करने पर उनका उद्देश्य और आकांक्षा राज्य-विस्तार हो गयी, या उन्हें विवश होकर राज्य का भार ग्रहण करना पड़ा, इस विषय में बड़ा मतभेद है। कितने ही लेखकों ने यह सिद्ध किया है कि केन्द्रीय सत्ता की निर्बलता, स्थान-स्थान के प्रबन्धकों का क्रमशः प्रभुता प्राप्त करना और इनका परस्पर में संगठन या मेल न होना, वरन् एक दूसरे की ईर्षा और छीना-झपटी करना—ये बातें अंगरेजों को यहाँ अपनी सत्ता जमाने के लिए प्रबल आकर्षण हुईं, उनकी महत्वाकांक्षा बढ़ती गयी। यद्यपि किसी विशेष समय उन्होंने अपनी प्रगति को रोके रखने में ही अपना हित समझा, साधारणतया उनके सामने विस्तार और वृद्धि का कार्य क्रम रहा, उन्होंने यहाँ के राष्ट्रीयता और एकता के अभाव से भरसक लाभ उठाया, और छल, बल, कौशल से, जैसे भी बना, वे अपना राज्य और अधिकार बढ़ाते रहे।

इसके विपरीत, अधिकाँश अंगरेज ऐतिहासिकों का मत यह है कि कम्पनी तो अपना व्यापार ही करना चाहती थी, परन्तु यहाँ की अशान्ति के कारण उसे देशी राज्यों से आत्म-रक्षा करने के लिए स्वतंत्र सेना की व्यवस्था करनी पड़ी, और कभी-कभी अपना राज्य भी

स्थापित करना पड़ा। परन्तु कम्पनी की इच्छा यही रही कि वह देशी राज्यों के आपसी झगड़ों में न पड़े। उसने अपने राज्य के चारों ओर एक प्रकार के घेरे की कल्पना अपने सम्मुख रखी, इस सीमा से बाहर के राज्यों से वह कोई राजनैतिक सम्बन्ध करने की इच्छुक न थी। यह 'वलय या घेरा नीति'* सन १८१३ ई० तक रही, उसके बाद कम्पनी इसे छोड़ने को बाध्य हुई। यह मत अंगरेज लेखकों का है।

वास्तव में बात यह थी कि कम्पनी के लिए अपनी सुविधा और परिस्थिति का विचार मुख्य था। वह जब जैसा उचित समझती, भारतीय राज्यों से बर्ताव करती। उसकी देशी राज्यों सम्बन्धी नीति का विचार करने से पूर्व यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि सन् १७७२ ई० तक बंगाल, बम्बई और मदरास प्रान्त में उसका अधिकार काफी बढ़ गया था, अब वह व्यापार के साथ शासन भी करती थी। पार्लिमेंट में समय-समय पर उसके अधिकारों के सम्बन्ध में चर्चा होती थी। पीछे कम्पनी के रुपया मांगने पर, उसे ऋण देते समय सन् १७७३ में 'रेग्यूलेटिंग एक्ट' नामक कानून बनाया गया। इससे कम्पनी पर पार्लिमेंट का नियंत्रण प्रत्यक्ष रूप से होने लगा। सन १७८४ में 'पिट का इंडिया बिल' पास हुआ, उससे देशी राज्यों के सम्बन्ध में 'उदासीनता या अ-हस्तक्षेप नीति'† का सूत्रपात हुआ।

---

* The Policy of the Ring Fence.

† The Policy of Non-Intervention.

उका आशय यह था कि कम्पनी देशी राज्यों में हस्तक्षेप न करे। परन्तु यह नीति काम में कितनी लायी गयी ? सन् १७९० ई० की बात लीजिए। मैसूर के टीपू ने ट्रावंकोर पर चढ़ाई की, तो लार्ड कार्नवालिस ने ट्रावंकोर की मित्रता की दुहाई देकर टीपू पर आक्रमण कर दिया। यह उक्त-नीति के अनुसार अनुचित था। परन्तु इस समय मराठे तथा निजाम टीपू के विरुद्ध थे, अतः अंगरेजों ने भी विरोध में सम्मिलित होना ठीक समझा। १७९५ में जब निजाम पर मराठों ने कर न देने के अपराध में चढ़ाई की, और निजाम ने अंगरेजों की सहायता मांगी तो सर जान शोर ने इनकार कर दिया, यद्यपि निजाम अंगरेजों का मित्र था। बात यह थी कि इस दशा में मित्र की शक्ति कम थी, मराठे बहुत बलवान थे। इसलिए निजाम को सहायता न दी गयी। सन् १७९७ में अवध के नवाब आसफुद्दौला के मरने पर वजीरअली नवाब बना, पर शोर साहब ने उसे गद्दी से उतार कर सआदतअली को नवाब बनाया। इस समय अ-हस्तक्षेप-नीति कहाँ चली गयी थी ? अस्तु, प्रत्येक अवसर पर परिस्थिति का विचार करके प्रसंगानुसार नीति निर्धारित की गयी। सन् १७९८ ई० में तो अ-हस्तक्षेप नीति हानिकर समझकर प्रत्यक्ष रूप में उठा दी गयी।

लार्ड वेलजली (१७९८-१८०५) की नीति 'सहायक संधि'*-नीति के नाम से प्रसिद्ध है। इसका आशय यह है कि (१) जिस देशी राज्य से संधि हो, वह कम्पनी का आधिपत्य माने। (२) वह राज्य अपने बाहरी सम्बन्ध कम्पनी को सौंप दे, कम्पनी की आज्ञा ( रेजीडेन्ट की सलाह )

* Subsidiary Alliances.

बिना, किसी अन्य राज्य से कोई सम्बन्ध न रखे। (३) वह अपनी सेना घटा दे ; उसकी रक्षा का भार कम्पनी पर रहे, इसके लिए वह अपने राज्य में कम्पनी की सेना रखे, इस सेना का सब खर्च वह राज्य दे, अथवा खर्च के बदले अपना कुछ प्रदेश कम्पनी को दे। (४) कम्पनी की आज्ञा बिना, किसी अन्य योरपीय जातिवाले को अपने यहाँ न रखे। इससे स्पष्ट है कि थोड़े-से समय में कम्पनी ने कैसी प्रगति की, वह अन्य राज्यों से मित्रता और अन्योन्य आश्रयिता की संधि करने के स्थान पर अब उन्हें अपना आश्रित मानने लगी। इस नीति ने देशी राज्यों के अधिकारों और स्वतन्त्रता को बहुत कम कर दिया। सहायक संधियों और सहायक सेना ने मानो उनकी कमर ही तोड़ डाली। न उनका यथेष्ट प्रभाव या सत्ता रही और न शक्ति ही। वेलजली के शासन ने भारतवर्ष का अन्तर्राष्ट्रीय पद एक दम गिरा दिया, उसे यह बात सहन न हुई कि टीपू सुलतान विदेशी ( फ्रांसीसी ) जनरल रखे, और फ्रांसीसियों से संधि करे। इस लिए उसने अपनी 'सहायक संधि' नीति चलायी जिसने यहाँ अंगरेजी सत्ता को बहुत प्रबल कर दिया; यों कहने को सन् १८१३ तक वलय-नीति रही, इसके बाद नयी नीति आरम्भ हुई। इसका नाम है 'आश्रित पार्थक्य नीति' *।

पहले कम्पनी यह कहती थी कि हमें अपने राज्य तथा अपने सहायकों के राज्य ( जिनसे सहायक संधि हुई है ) से ही मतलब है; बाहर के राज्यों से हमारा कुछ वास्ता नहीं। पर अब उसने निश्चय किया कि राज्यों के पारस्परिक झगड़े हैं, और चहुँओर अशान्ति है, इस

* The Policy of Subordinate Isolation.

लिए सारे देश पर ही प्रत्यक्ष या गौण रूप से अधिकार करना आवश्यक है। निदान, यह आयोजन किया गया:—

(१) सब राज्य कम्पनी के आश्रित हों, उनकी रक्षा कम्पनी करे; इसके बदले में वे कम्पनी को कुछ भूमि या वार्षिक कर दें।

(२) कम्पनी राज्यों के भीतरी प्रबन्ध में हस्तक्षेप न करे।

(३) सब राज्य एक दूसरे से पृथक् रहें, साधारण पत्र-व्यवहार के अतिरिक्त, उनका आपस में कोई सम्बन्ध न रहे; यदि किसी विषय पर दो राज्यों में मतभेद हो तो उसका निपटारा कम्पनी करे और सम्बन्धित राज्यों को कम्पनी का निर्णय मान्य हो।

इस नीति से राज्यों के पारस्परिक झगड़े तथा अशान्ति अवश्य कम हुई, पर साथ ही उनके शासकों को अपनी रक्षा का पूरा आश्वासन हो जाने से वे अब बाहरी शत्रुओं से निश्चिन्त होने के साथ ही अपनी प्रजा के प्रति भी उदासीन हो गये। कम्पनी ने उनके भीतरी प्रबन्ध में हस्तक्षेप न करने का वचन दिया था, अतः वे अपने क्षेत्र में मनमानी निरंकुशता का व्यवहार कर सकते थे। कोई रोकने वाला न था। प्रजा को नरेशों की मानो व्यक्तिगत सम्पत्ति समझ लिया गया; उसकी ओर कम्पनी ने कुछ ध्यान नहीं दिया। फल-स्वरूप कई राज्यों में कुशासन और प्रजा का असंतोष बढ़ने लगा। कम्पनी उसे चुपचाप देखती रहती, जब वह चरम सीमा को पहुँच जाता, अथवा जब उसका परिणाम कम्पनी अपने लिए अनिष्टकारी समझती, तब वह उस राज्य को अपनी सेना द्वारा परास्त करके अपने राज्य में मिला लेती। कम्पनी ऐसा ही क्यों करती थी? कुछ लेखकों का स्पष्ट

मत है—'अपने राज्य के विस्तार के लिए'। हां, कुछ दशाओं में कम्पनी के ध्यान में आत्म-रक्षा और लोकहित का भी विचार रहा। इस नीति से राजपूताना, मध्यभारत और काठियावाड़ में अंगरेजों का अधिकार हो गया। लार्ड डलहौजी के शासन-काल (१८४८-५६) में यह सिद्धान्त बहुत काम में लाया गया कि कम्पनी के अधीन माने जाने वाले जिस राजा के पुत्र न हो, उसका राज्य कम्पनी के राज्य में मिला लिया जाय। वह राजा कम्पनी की आज्ञा बिना कोई लड़का गोद नहीं ले सकता, और कम्पनी ऐसी आज्ञाएँ सहज ही न देती थी।*

इस प्रकार सन् १७५७ ई० से सौ वर्ष के भीतर कई प्रकार की नीति का अवलम्बन करके कम्पनी ने अपने राज्य का खूब विस्तार किया। अधिकांश भारत पर उसका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष (देशी नरेशों द्वारा) शासन होने लगा। पर इस राज्य-विस्तार का परिणाम कम्पनी के लिए अच्छा न हुआ। स्थान-स्थान पर असंतोष और विद्रोह की भावना उत्पन्न होने लगी, जो अन्ततः सन् १८५७ ई० के स्वातंत्र्य-युद्ध में प्रकट हुई। विविध कारणों से, जिनके ब्यौरे की यहाँ आवश्यकता नहीं, भारतवासी उस युद्ध में असफल रहे, और कम्पनी का अन्त किया जाकर सन् १८५८ में यहाँ का शासन-सूत्र इंगलैंड की स्व० महारानी विक्टोरिया ने अपने हाथ में ग्रहण किया। अब से भारतवर्ष में अंग्रेजी राज्य की शृंखला और भी दृढ़ हो गयी; ब्रिटिश पार्लिमेंट का शासन होने लगा।

---

* इस सिद्धान्त को अंगरेजी में 'डाक्टरिन-आफ-लेप्स' (Doctrine of Lapse) कहते हैं।

यद्यपि सन् १८०३ में कम्पनी ने दिल्ली के मुगल सम्राट् को अपने अधीन कर लिया था, और उस समय से 'भारत-सम्राट्' अंगरेजों की पेन्शन पानेवाला एक अशक्त व्यक्ति था, तथापि अंगरेज अपने आपको उसकी 'प्रजा' मानते थे, और उसी से अपने सब अधिकार और सत्ता ग्रहण करते थे। यह बात सन् १८५७ ई० तक रही, जब अभागा सम्राट् बहादुरशाह राजक्रान्ति में भाग लेने के अभियोग में, कैदी के रूप में, रंगून भेजा गया। अगरेजों का शासन कानून की दृष्टि से, यहाँ सन् १८५८ से ही स्थापित हुआ है।

भारतवर्ष का शासन ब्रिटिश पार्लिमेंट के द्वारा होने लगने पर देशी राज्यों सम्बन्धी क्या नीति निश्चित हुई, तथा उसके व्यवहार में समय-समय पर क्या परिवर्तन हुए, इसका विचार आगे किया जायगा। यहाँ, हम यह जान लें कि सन् १८५७ के युद्ध के फल-स्वरूप देशी राज्यों की पुनर्रचना किस प्रकार हुई। संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'जो राज्य अंगरेजों से लड़े, वे छिन्न-भिन्न कर दिये गये। उनके कुछ भाग सीधे ब्रिटिश शासन में मिला लिये गये। शेष भाग अंगरेजी सेना को सहायता देनेवाले साथी राज्यों को दे दिये गये। जो करद राज्य विजित राजा को कर देते थे, वे अब अंगरेजों को कर देने लगे और अंगरेजों के अधीन हो गये। कुछ विजित राज्य भी अंगरेजों को कर देने लगे और उनके मित्र बन गये। साम्राज्य को बढ़ाने वाले सदा अपनी युद्ध-कुशलता और वीरता पर ही निर्भर नहीं रहते। वे अपने विपक्षी के दगाबाज नौकरों को मिला लेते हैं। कुछ दशाओं में यहाँ भी ऐसे लोग राजा या नवाब बना दिये

गये। इस प्रकार भारतवर्ष में कई प्रकार के देशी राज्य हैं। कुछ राज्य बहुत पुराने और प्रतिष्ठित हैं। कुछ नये राज्यों की नींव विश्वासघात और देशद्रोह पर पड़ी है।'* स्मरण रहे कि पुराने राज्य भी अब एक प्रकार से ब्रिटिश साम्राज्य की ही कृति हैं; उनका जो स्वतन्त्र स्वरूप पहले था, वह विलुप्त हो गया है। और, उनकी वर्तमान राजनैतिक स्थिति अंगरेजी अमलदारी का प्रसाद है। इसका विशेष विचार आगे किया जायगा।

# चौथा अध्याय

## सन् १८५७ के बाद

अगर हम सारे हिन्दुस्तान के अंगरेजी ज़िले बनादें तो कुदरती तौर पर हमारे साम्राज्य का पचास साल भी टिकना सम्भव न होगा। लेकिन अगर हम कुछ देशी रियासतें, बिना किसी तरह की राजनैतिक सत्ता के, अपने साम्राज्य के औजारों की तरह कायम रख सकें तो हम तब तक हिन्दुस्तान पर अपनी हुकूमत कायम रख सकेंगे जब तक कि योरप में हमारी समुद्री ताकत सबसे ऊपर बनी रहेगी।

—सर जान मालकम

आज देशी राज्य का शासक ब्रिटिश गवर्मेन्ट की नीति से दबकर और साथ ही उसकी फौज से सुरक्षित होकर प्रजा के अधिकारों की

* 'भूगोल; देशी राज्य अंक'।

अवहेलना करता है। पहले उसके लिए यह सम्भव नहीं था। ब्रिटिश शासन के न होते हुए उसकी मनोवृत्ति दूसरी ही थी; उसको प्रजा पर निर्भर रहना पड़ता था और प्रजा का मुँह ताकना पड़ता था।

—पुरुषोत्तमदास टंडन

सन १८५७ की घटनाओं ने ब्रिटिश अधिकारियों को अपनी भारतीय शासन सम्बन्धी नीति पर तथा देशी राज्यों सम्बन्धी अपने व्यवहार पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने को बाध्य किया। यद्यपि विगत वर्षों में, कम्पनी के शासन-प्रबन्ध में ब्रिटिश सरकार का हस्तक्षेप उत्तरोत्तर बढ़ता गया था, यहाँ तक कि अन्त में वह बहुत-कुछ अधीन संस्था की तरह हो गयी थी, तथापि शासन में नाम तो कम्पनी का ही था, जो मूलतः एक व्यापारी संस्था थी। अब ब्रिटिश अधिकारियों को उसके नाम से राजकाज होना ठीक न जचा। अतः उसका तथा उसकी संचालक समिति (बोर्ड-आफ-डायरेक्टर्स) और नियंत्रण समिति (बोर्ड-आफ-कंट्रोल) का अन्त किया गया। भारतीय शासन का सीधा सम्बन्ध ब्रिटिश पार्लिमेंट से स्थापित किया गया। भारतवर्ष के प्रधान शासक गवर्नर-जनरल को वायसराय (राजप्रतिनिधि) भी कहा जाने लगा। भारतीय शासन कार्य के निरीक्षण और नियंत्रण के लिए एक राजमंत्री (भारत मंत्री) और उसकी सभा (इंडिया कौंसिल) की सृष्टि की गयी।

अब देशी राज्यों की बात लें। कम्पनी के दुर्दिनों में, अधिकांश राजाओं ने अपनी मित्रता का कर्तव्य पूरी तरह निभाया, यद्यपि इससे वे भारतवर्ष की मुक्ति में बाधक, और फलतः भावी विवेकशील

भारत-सन्तान की दृष्टि में राष्ट्र-हित-घातक सिद्ध हुए। यदि इन राजाओं ने अंगरेजों का साथ न दिया होता तो भारतवर्ष का सन् १८५७ से पीछे का इतिहास कुछ और ही होता। भारतवर्ष का बड़ा भाग ब्रिटिश भारत न होता, देश स्वाधीन होता, और केन्द्रीय सत्ता स्वदेशी होती, कुछ स्थानों में आन्तरिक स्वतंत्रता का उपयोग करने वाले राज्य भी होते पर वे इङ्गलैंड-नरेश को सम्राट् न मानते तथा ब्रिटिश पार्लिमेंट के नियंत्रण में न आये होते।

यद्यपि १८५७ की घटना ने कुछ अंगरेजों को देशी राज्यों की ओर से चौकन्ना भी किया, प्रायः अधिकारियों ने उनकी 'वफादारी' से प्रभावित होकर यही विचार किया कि उन्हें मित्र बनाकर रखने में ही अंगरेजी राज्य का हित है, संकट के समय में उनका सहयोग बहुमूल्य होगा; अतः न केवल उनका अस्तित्व बना रहे ( उन्हें अंगरेजी राज्य में न मिलाया जाय ), वरन् उन्हें यथा-सम्भव संतुष्ट भी रखा जाय। साम्राज्यवादी अंगरेजों ने अनुभव किया कि 'देशी नरेश हमारे बल को बढ़ाने वाले हैं, न कि घटाने वाले।' ब्रिटिश सरकार की ओर से नियुक्त सर्व-प्रथम वायसराय लार्ड केनिंग ने ( जिसे सन् १८५७ की घटनाओं का प्रत्यक्ष अनुभव था, और जो कम्पनी के शासन-काल में अन्तिम गवर्नर-जनरल था ) कहा था कि 'यदि गदर के तूफान में देशी राज्यों ने बांध का काम न दिया होता तो वह ( तूफान ) हमारी सारी सत्ता को बहा ले गया होता।'

देशी राज्यों सम्बन्धी भावी नीति का विचार करने में इस आशंका का भी बड़ा प्रभाव पड़ा कि यदि उन्हें अंगरेजी राज्य में मिला लिया

जाता है तो समस्त भारत में एकसूत्रता और संगठन हो जाने से, अंगरेजी राज्य के लिए बहुत खतरा हो सकता है। इसलिए ब्रिटिश नीतिज्ञों ने यही ठीक समझा कि भारतवर्ष को राजनैतिक दृष्टि से दो टुकड़ों में विभक्त रखा जाय, जो एक दूसरे से भिन्न प्रकार के हों।

ये विचार हैं, जिनको ध्यान में रखकर महारानी विक्टोरिया की सन् १८५८ की घोषणा के देशी राज्यों सम्बन्धी निम्नलिखित शब्दों का वास्तविक अर्थ समझा जा सकता है—'ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने उनसे जो संधियाँ या प्रतिज्ञाएँ की हैं, वे सब हमें मान्य हैं, हम उनका अच्छी तरह पालन करेंगे। हम आशा करते हैं कि देशी राज्यों की ओर से भी इस विषय में ऐसा ही कर्तव्य पालन किया जायगा। हम अपने वर्तमान (भारतीय) राज्य का और अधिक विस्तार नहीं चाहते। जब कि हम अपने राज्य या अधिकारों पर किसी को आक्रमण न करने देंगे, हम दूसरो के (राजाओं के) राज्य या अधिकारों पर भी कोई आघात न होने देंगे। हम देशी राजाओं के अधिकारों तथा मान-प्रतिष्ठा का अपने अधिकारों तथा मान-प्रतिष्ठा की तरह सम्मान करेंगे।'

सन १८५७ के बाद देशी राज्यों को ब्रिटिश भारत में मिलाना बन्द कर दिया गया।* परन्तु इस समय से भारतीय राजा महाराजाओं

* यही नहीं, आवश्यकता समझने पर सरकार ने कितने ही नये राज्य भी बनाये। उदाहरणवत् जैसा श्री० प्यारेलाल जी ने लिखा है, मध्यप्रान्त में, १८१८ में पेशवा द्वारा अन्तिम रूप से छोड़े हुए मरहठा राज्य के पुनरुत्थान को रोकने के लिए, राजपूत रियासतों की स्थापना ही ठीक नीति मालूम हुई; और इस प्रकार इस विस्तृत प्रदेश का प्रत्येक भाग, जहाँ घरेलू और लूट-खसोट की लड़ाइयों ने सब प्रकार के राजनैतिक चिन्हों को विलुप्त कर दिया था, एक संगठित सत्ता के अधीन किया गया और इन खंडहरो में से कम नहीं, १४५ रियासतें पैदा हुईं।

की वैधानिक स्थिति में भारी परिवर्तन हो गया। पहले राज्यों का सम्बन्ध उस कम्पनी से था, जो स्वयं सत्ताधारी न थी, वरन् सब शासन-अधिकार इङ्गलैंड-नरेश से प्राप्त किये हुए थी। बड़े-बड़े राज्य इस कम्पनी के स्वतंत्र मित्र थे। अब वे राज्य इङ्गलैंड-नरेश के संरक्षित और अधीन हो गये, जिसकी अपनी प्रभुता और सत्ता स्पष्ट तथा असंदिग्ध है और जिसके पास आवश्यकता होने पर काम में लाने के लिए विशाल सैनिक बल भी है। छोटे-छोटे नरेशों को तो अब जागीरदार या तालुकेदार की ही स्थिति में लाने का प्रयत्न किया जाने लगा। लार्ड केनिंग ने १६० राज्यों के नरेशों को दत्तक पुत्र लेने का अधिकार प्रदान करने वाली सनदें दीं, उन सनदों में यह स्पष्ट कर दिया गया कि देशी राज्यों में कुशासन या अन्य अत्याचार होने पर, सरकार हस्तक्षेप करेगी।

अब हम उस नीति का तनिक विस्तार से विचार करें, जो ब्रिटिश सरकार ने भारतीय शासन-प्रबन्ध अपने हाथ में लेकर देशी राज्यों के साथ वर्ती। उसे 'आश्रित सहकारिता नीति' * अथवा 'मेल और सहयोग' † की नीति कहते हैं। इसका आशय है कि देशी राज्य और ब्रिटिश सरकार एक-दूसरे के सहायक तो हैं, परन्तु देशी राज्य ब्रिटिश सरकार के आश्रित हैं, बराबरी के नहीं। इसलिए ब्रिटिश सरकार इनके शासन-प्रबन्ध में जब चाहे हस्तक्षेप कर सकती है, ये उसके शासन-कार्य में

*The Policy of Subordinate Co-operation or Subordinate Union.

† Union and Co-operation.

नहीं कर सकते। इसी के साथ अब राजाओं के व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का सिद्धान्त माना जाने लगा, अर्थात् यदि भारत-सरकार किसी देशी राज्य के शासन से बहुत असन्तुष्ट हो तो वह दंड-स्वरूप उसके राजा को गद्दी से उतार दे, यह नहीं कि उस राज्य से युद्ध करे, और उसे परास्त करके अँगरेजी राज्य में मिला ले। इससे देशी राजाओं का गौरव बहुत घट गया, वे एक सरकारी कर्मचारी की स्थिति में आ गये, जिसे असन्तोषजनक कार्य करने की दशा में पदच्युत या बर्खास्त किया जा सकता है। इसका परिणाम यह हुआ कि राजाओं को अपने अस्तित्व के लिए जनता के बजाय सरकार को प्रसन्न रखने की चिन्ता बहुत रहने लगी, और अनेक दशाओं में यह सर्वथा सम्भव हुआ है कि प्रजा को अप्रसन्न और कष्ट-पीड़ित रखने वाले नरेश केवल सरकार को खुश रखने के कारण अपने पद पर दृढ़ रहे। साधारणतया उनके राज्य को अंगरेजी राज्य में मिलाये जाने का डर नहीं रहा। औरस पुत्र न होने की दशा में राजाओं को अपना उत्तराधिकारी गोद लेने का अधिकार हो गया, इसके लिए उन्हें सनदें दे दी गयीं। इस प्रकार राज्यों की स्थिति दृढ़ हो गयी, उनके क्षेत्र का ह्रास होना रुक गया, जो कम्पनी के शासन-काल के अन्तिम भाग में विशेष रूप से हुआ था। क्योंकि सरकार ने साधारणतया यह सिद्धान्त कर लिया कि कुप्रबन्ध, बेवफाई या अन्य राजनैतिक आधार पर किसी राज्य को अँगरेजी इलाके में न मिलाया जाय, उस पर इस बात की नैतिक जिम्मेदारी आगयी कि देशी राज्यों में एक हद तक सुशासन, शान्ति और व्यवस्था हो, जान-माल की रक्षा रहे तथा नागरिकों को अपने मूल

अधिकारों के उपभोग में कोई बाधा उपस्थित न हो। सरकार ने इस ओर कितना कम ध्यान दिया है, यह सर्व-विदित है।

ऊपर कहा गया है कि सन् १८५७ के बाद देशी राज्यों को अंगरेजी राज्य में मिलाने की नीति प्रायः त्याग दी गयी। परन्तु इसके साथ ही अब सरकार देशी राज्यों में उच्च पदों पर काम करने के लिए सरकारी कर्मचारी अधिक देने लगी, दीवान नामजद करने लगी, और रेजीडैण्टों द्वारा उनके गुप्त रहस्यों का परिचय प्राप्त करने और राज्यों के आन्तरिक शासन पर कड़ा नियंत्रण रखने लगी। मतलब यह कि अब अंगरेजी राज्य का भौगोलिक क्षेत्र बढ़ाने के बजाय केन्द्रीय सत्ता का अधिकार बढ़ाने का प्रयत्न अधिकाधिक होने लगा। ब्रिटिश सरकार ने न केवल कम्पनी का स्थान ग्रहण किया, वरन् वह अपने आपको दिल्ली के सम्राट् का भी उत्तराधिकारी मानने लगी। सर्वसाधारण में इस बात की विज्ञप्ति करने के लिए सन् १८७६ ई० में महाराणी विक्टोरिया ने 'कैसरे हिन्द' अर्थात् 'भारत की साम्राज्ञी' ( ऐम्प्रेस आफ इन्डिया ) की उपाधि धारण की। १ जनवरी १८७७ को दिल्ली में धूम-धाम से एक दरबार हुआ, और उसमें इसकी घोषणा की गयी। यह घोषणा इस बात का ज्वलंत प्रमाण है कि अब देशी नरेशों का दर्जा बहुत नीचा माना गया। 'इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स'* की व्यवस्था से भी राजाओं की शक्ति और अधिकार कम हो गये। इस व्यवस्था के अनुसार बड़े-बड़े राजा अपने खर्च से, निर्धारित सेना रखने लगे, परन्तु इस सेना की

---

*इसका अर्थ है साम्राज्य-सेवी सेना। इसे अब 'इंडियन स्टेट्स फोर्सेज' ( भारतीय राज्य सेना ) कहते है।

शिक्षा और कवायद ब्रिटिश अफसरों की देखरेख में होती है, और यह हर समय भारत-सरकार की सहायता के लिए प्रस्तुत रहती है। लार्ड कर्जन ने कई प्रसंगों में देशी नरेशों को खूब डाट बतलाई थी तथा उन्हें सुधार करने के लिए कहा था। राजकुमारों की शिक्षा के लिए भी अब सरकार ने अपनी व्यवस्था आरम्भ कर दी, ये शिक्षा-संस्थाएँ ऐसी ही हैं कि भावी नरेशों में पहले से ही अंगरेज सरकार के प्रति अधीनता तथा राजभक्ति की भावना जड़ पकड़ ले।

यद्यपि लोगों ने विशेष ध्यान न दिया, केन्द्रीय सत्ता क्रमशः प्रगति करती रही। रेल, तार, डाक का प्रबन्ध करने में देशी नरेशों के अधिकार में स्वभावतः कमी हुई। सरकारी, या सरकार द्वारा नियंत्रित कितनी ही रेलवे लाइनें कई-कई राज्यों में से होकर जाती हैं, रेलवे लाइन, उसके दोनों तरफ की निर्धारित भूमि, रेलवे स्टेशन और पुल आदि पर सरकार का अधिकार रहता है, और वही इस क्षेत्र में पुलिस और न्याय का प्रबन्ध करती है। यही बात उन नहरों के विषय में है, जो सरकार की निकाली हुई, और देशी राज्यों में होकर बहती हैं। सैनिक आवश्यकतों के आधार पर केन्द्रीय सत्ता ने देशी राज्यों में अपना पैर फैलाया है। कितने ही देशी राज्यों में छावनियाँ हैं, उनके आसपास बाज़ार लग गया, और बस्ती हो गयी, जो क्रमशः बढ़ते-बढ़ते खासे बड़े शहर बन गये। इनके चारों ओर बहुत-सी जगह खुली पड़ी रहती है, जिससे ये स्वास्थ्यप्रद रहें। जब तक इन स्थानों में छावनी रहती है, इनमें सरकार का ही प्रबन्ध होता है, देशी राज्यों का नहीं। इसी प्रकार बड़े राज्यों में रेज़ीडेंट, या कई छोटे-छोटे राज्यों

के समूह के लिए एक एजन्ट रहता है, उसके निवास-स्थान के पास कुछ सेना, पुलिस, स्कूल, अस्पताल आदि होने से वह भी एक नगर का स्वरूप धारण कर लेता है। इस ('रेजीडेन्सी') में भी सरकारी कायदा-कानून चलता है। पुनः देशी राज्यों में रहने वाली ब्रिटिश प्रजा पर, तथा ऐसे स्थानों में जहाँ व्यापार आदि के कारण बहुत-से अंगरेज रहते हों, ब्रिटिश भारत के ही कानून का व्यवहार होता है। ब्रिटिश भारत का कोई अपराधी यदि किसी देशी राज्य में भाग जाय तो उसके नरेश की आज्ञा से पकड़ा जाकर ब्रिटिश भारत में भेज दिया जाता है। अधिकांश राजाओं को अब अपना सिक्का ढालने की अनुमति नहीं है, जिन राज्यों का अपना स्वतंत्र सिक्का है भी, उन्हें अपने यहाँ अंगरेजी रुपये को वही स्थान देना पड़ता है, जो उसे ब्रिटिश भारत में है। आवश्यकता समझने पर सरकार किसी नरेश को गद्दी से उतार कर उसकी जगह उसके किसी सम्बन्धी को पदारूढ कर देती है। वह वहाँ के लिए किसी को एडमिनिस्ट्रेटर नियुक्त करने का भी अधिकार रखती है। देशी नरेशों की नाबालगी में वह राज्य के शासन का प्रबन्ध करती है, या रीजेन्सी द्वारा करवाती है। इससे स्पष्ट है कि यद्यपि सन १८५७ के बाद देशी नरेशों को अपने-अपने राज्य गँवाने की (अंगरेजी राज्य में मिलाये जाने की) आशंका बहुत कम रही, तथापि उनके शासन सम्बन्धी अधिकार कम होते गये, और केन्द्रीय सत्ता का प्रभुत्व बढ़ता गया; यहाँ तक कि वे प्रायः ब्रिटिश सरकार के इशारे पर काम करने वाले रह गये। यों तो यह क्रम अब तक चला जा रहा है, परन्तु बीसवीं शताब्दी में, इस विषय

में कुछ नयी बातों का प्रभाव पड़ने लगा। इस का विचार आगे किया जायगा।

इस प्रकार हमने देखा कि देशी राज्यों के सम्बन्ध में सरकार की नीति समय-समय पर बदलती रही। सरकार ने अपने हित और स्वार्थ का विचार करके कभी उनके प्रति उदासीनता या अ-हस्तक्षेप का व्यवहार किया, कभी उन्हें अपना सहायक और मित्र कहा, और पीछे सुविधा होने पर उन्हें अपना आश्रित बना डाला। कभी उनके राज्य को अपने राज्य में मिला लेने की ओर तेजी से कदम बढ़ाया, और कभी उनके राज्यों को ज्यों का त्यों बनाये रखने का निश्चय किया।

नीति-परिवर्तन सम्बन्धी यह कथन सरकारी तौर पर भी पुष्ट हो चुका है। मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट (१९१८) में कहा गया है—'देशी राज्यों सम्बन्धी सरकारी नीति समय-समय पर बदलती रही है। किसी समय पर यह नीति थी कि अपने दायरे के बाहर वाले किसी मामले में सरकार कुछ भी हस्तक्षेप नहीं करती थी। यह नीति यहाँ तक बदली कि लार्ड हेस्टिंग्ज ने देशी राज्यों को अपनी अधीनता में लाकर आन्तरिक व्यवस्था में उन्हें स्वाधीन रख छोड़ने की नीति (अर्थात् 'सबार्डिनेट आइसोलेशन' की नीति) प्रचारित की। आगे चलकर यह नीति भी बदल दी गयी और उसके स्थान पर राज्यों और भारत-सरकार के बीच में इस समय की प्रचलित नीति स्वीकृत हुई, जिसका मतलब यह था कि राज्यों को प्रधान सत्ता (भारत-सरकार) के साथ मेल और सहकारिता करनी चाहिए।'

सरकार के अन्तिम नीति-परिवर्तन के कारण पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। उसे देशी राज्यों से मेल और सहकारिता की विशेष आवश्यकता क्यों हुई? देश भर में राष्ट्रीय आन्दोलन करने वाली महान संस्था कांग्रेस का जन्म सन् १८८५ ई० में हो चुका था। आरम्भ में उसकी नीति सुधारों के लिए प्रार्थना-पत्र या डेप्यूटेशन भेजने की रही। परन्तु इसे विशेष सफलता न मिली। यही नहीं, सरकार ने जनता की राजनैतिक जागृति को दमन करने का प्रयत्न किया। इससे एक ओर देश में कुछ हिन्सक क्रान्ति की घटनाएँ हुई और दूसरी ओर शासन-सुधार का आन्दोलन बढ़ता गया। इससे सरकार चिन्तित हुई। कांग्रेस का जोर बढ़ता गया। सरकार को भी अपनी शक्ति बढ़ाने की फिक्र हुई। उसने ऊपरी मध्य वर्ग के लोगों को राष्ट्रीय आन्दोलन के विरुद्ध उभारा। उसने मुसलमानो, और सिक्खों को तथा हरिजनों आदि निम्न जातियों को सवर्ण हिन्दुओं के विरुद्ध खड़ा करने, और यथा-सम्भव इन सभी को अपनी ओर मिलाने की कोशिश की। परन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन की गति निरंतर बढ़ती गयी। यह देख कर अब उसने देशी राजाओं का सहयोग प्राप्त करने तथा अपना मोर्चा और अधिक मज़बूत करने की सोची। लार्ड कर्जन ने सन् १९०० में भारत-मंत्री को सूचित किया कि मेरा निजी विश्वास है कि कांग्रेस नष्ट होने वाली है, और 'मेरी प्रबल अभिलाषा है कि मैं इसको नष्ट करने में सहायक हो सकूं। इसके प्रभाव को नष्ट करने के लिए देशी नरेशों को संगठित करना आवश्यक है।' लार्ड मिण्टो ने भी कांग्रेस का प्रभाव और शक्ति घटाने के लिए अन्यान्य उपायों में

देशी नरेशों का सहयोग प्राप्त करना आवश्यक समझा। उसने सन् १९१० में उनकी एक सभा इसलिए आमंत्रित की थी कि भारतवर्ष में बढ़ते हुए 'राजद्रोह' को दमन करने के उपायों पर विचार किया जाय।

इस के अतिरिक्त एक बात और भी हो गयी, जिससे सरकार को देशी राज्यों से प्रीति बढ़ी। सन १९१४ ई० में (प्रथम) योरपीय महा-युद्ध छिड़ गया। इङ्गलैंड के सिर पर संकट खेलने लगा। उसे जन-धन की अपरिमित आवश्यकता हो गयी। उसने भारतवासियों से महायुद्ध के लिए भरसक त्याग करने के लिए हृदयग्राही अपीलें कीं। भारतवर्ष निर्धन था, तथापि भावी उत्कर्ष का आश्वासन पाकर इसने भरसक सहायता की। अंगरेजों ने देखा कि ब्रिटिश भारत की बहुत सी जनता का रुख उनकी ओर अच्छा नहीं है, वहाँ गत वर्षों में राष्ट्रीय आन्दोलन रहा है, अतः उसकी सहायता अन्ततः नपी-तुली ही होगी। हाँ, राजा लोग अपने-अपने राज्य की सम्पूर्ण सम्पत्ति के स्वामी हैं, और वे जनता को दबाकर, उसके भावों की परवाह न करके भी रणक्षेत्र में खूब जन-धन की आहुति प्रदान कर सकते हैं। निदान, सरकार ने उन्हें अपनी ओर मिलाने के लिए विशेष ध्यान दिया। उसकी इस समय की, देशी राज्यों सम्बन्धी नीति 'प्रेम या आसक्ति नीति' * कही जा सकती है।

अब नरेशों की दृष्टि से विचार करें। उनका ब्रिटिश साम्राज्यशाही से मेल करने में क्या विशेष हेतु था? देश में जो राजनैतिक जागृति और प्रजातन्त्र के भाव बढ़ रहे थे, इसमें नरेशों को अपने लिए खतरा

---

* The Policy of Wooing.

प्रतीत होता था। उन्होंने सोचा कि राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर ब्रिटिश भारत की सीमा तक परिमित न रहेगी। जल्दी या कुछ देर में वह देशी राज्यों में भी आ कर रहेगी, और उनके निवासी अपने-अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए आन्दोलन करने से न रुके रहेंगे, उस दशा में हमारी यह मनमानी हकूमत, यह विलासिता और यह ऐश्वर्य कहाँ रहेगा। वे प्रति-क्रियावादी तो थे ही, उन्होंने सरकार की सहायता करने में कोई कसर न उठा रखी। राजाओं की सहायता सरकार के लिए गर्व और आनन्द का कारण हुई; उसका उनकी ओर झुकना स्वाभाविक ही था।

ब्रिटिश भारत की परिस्थिति भी इसमें सहायक हुई। यहाँ की जनता अंगरेजों और मित्र-राष्ट्रों के मुँह से छोटे राष्ट्रों की स्वतन्त्रता और आत्म-निर्णय के सिद्धान्त आदि की बातें सुन कर तथा आयर्लैंड को स्वराज्य पाते देखकर अपने जन्मसिद्ध अधिकार स्वराज्य पाने को उत्सुक थी। उसे सन् १९१७ ई० में भारत-मंत्री द्वारा पार्लिमेंट में की हुई घोषणा* में शासकों की हिचकिचाहट और संदेह की भावना प्रतीत हुई, और उस घोषणा के फल-स्वरूप जो मांट-फोर्ड (मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड) योजना प्रकाशित की गयी वह भी असन्तोषप्रद रही। इसी समय अधिकारियों ने 'रोलेट ऐक्ट' नाम से कुप्रसिद्ध दमनकारी

*घोषणा का आशय यह था—'ब्रिटिश सरकार की नीति शासन के प्रत्येक भाग में अधिकाधिक भारतीयों को स्थान देने तथा क्रमशः स्वराज्य संस्थाओं की वृद्धि करने की है, जिससे भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य का अंग रहता हुआ धीरे-धीरे उत्तर-दायित्वपूर्ण शासन प्राप्त कर सके। क्रम क्रम से ही इस नीति में उन्नति हो सकती है, ब्रिटिश सरकार तथा भारत सरकार पर ही भारतीय जनता के कल्याण और उन्नति का उत्तरदायित्व है। इसलिए वे ही प्रत्येक उन्नति क्रम का निश्चय करेंगी।'

कानून का, लोक-प्रतिनिधियों का घोर विरोध होते हुए, निर्माण किया। इस पर जनता ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में सत्याग्रह और असहयोग का मार्ग अवलम्बन किया। सरकार ने आन्दोलन को दबाने के लिए स्वयं तो भले-बुरे अनेक उपाय किये ही, उसने इस कार्य में राजाओं का भी सहारा लिया।

अब तक सरकार शासनपद्धति में यथेष्ट सुधार न करने के लिए हिन्दू-मुसलिम प्रश्न की आड़ लेती थी, परन्तु असहयोग आन्दोलन के समय प्रकट हो गया कि इन दोनों जातियों का भेदभाव दूर होकर पारस्परिक समझौता हो सकता है। उधर जनता में असंतोष बना ही था, और मांट-फोर्ड सुधारों से उसका निवारण नहीं हुआ था। ऐसी दशा में ब्रिटिश अधिकारियों ने देशी नरेशों का प्रश्न उठाकर अपनी कूटनीतिज्ञता का खूब परिचय दिया। जहाँ पहले सरकार देशी नरेशों को देश की राजनीति में भाग लेने से दूर रखा करती थी, अब व्यवस्थापक सभा में शासन सुधारों का प्रस्ताव उपस्थित होने पर सरकार की ओर से तत्कालीन गृह-मंत्री सर मेलकम हेली साहब कहते हैं कि 'प्रथम प्रश्न यह है कि क्या देशी नरेश, जहाँ तक उनके सम्बन्ध की बात आती है, भारतीय व्यवस्थापक मंडल को उत्तरदायित्व सौंपा जाना स्वीकार करेंगे?' *

यही नहीं, अब सरकार ने देशी नरेशों को एक संगठन में लाने का भी विचार किया। सन् १९२१ में नरेन्द्र मंडल स्थापित किये जाने का रहस्य इसी बात में है। इसके संगठन और कार्य-पद्धति आदि के

* देखिए श्री० पथिक जी की What are Indian States?

सम्बन्ध में विस्तार से आगे लिखा जायगा।

प्रकृति के प्रबल प्रवाह को कृत्रिम कमजोर बाँध कैसे रोक सकता है! स्वतंत्रता का युद्ध एक बार अच्छी तरह आरम्भ हो जाने पर चलता ही रहता है। ब्रिटिश सरकार और देशी नरेशों का गठबन्धन हो जाने पर भी राष्ट्रीय आन्दोलन बन्द न हुआ। देशी राज्यों में भी आन्दोलन की प्रगति होते रहना स्वाभाविक था। जनता स्वेच्छाचारी नीति का विरोध और उत्तरदायी शासन की माँग करने लगी। कई राज्यों में प्रजा परिषद, प्रजा मंडल या लोक परिषद आदि बन गयीं और शासकों का ध्यान उन्नतिमूलक कार्यों की ओर दिलाने लगी। सन् १९२७ ई० में अखिल भारतवर्षीय देशी राज्य लोक परिषद की स्थापना हो गयी, जिसका उद्देश्य समस्त वैध और शान्त उपायों से देशी राज्यों में उत्तरदायी शासन प्रचलित करना है। कांग्रेस ने भी अपनी परिस्थिति और शक्ति के अनुसार इस कार्य में योग दिया है। परन्तु इन बातों का ब्योरा आगे के लिए छोड़कर हमें अभी तो यही विचार करना है कि नरेशों ने विगत वर्षों में संगठित होकर क्या-क्या कार्य किया।

सन् १९२७ में जब कि ब्रिटिश भारत के शासन-सुधारों के सम्बन्ध में विचार करने के लिए 'साइमन कमीशन' नियुक्त हुआ तो नरेशों ने इस विषय की जाँच की जाने की माँग की कि उनका ब्रिटिश-सरकार से कैसा सम्बन्ध रहे। इस पर सरकार ने एक कमेटी नियुक्त की, जिसे उसके सभापति के नाम पर बटलर कमेटी कहते हैं। इसके सम्बन्ध में विशेष आगे लिखा जायगा। यहाँ संक्षेप में यही कहना है कि कुल

मिलाकर कमेटी की सिफारिशें नरेशों की इच्छानुसार न थीं; वे असन्तुष्ट रहे। उन्होंने इङ्गलैंड में अपने पक्ष का प्रचार किया, जब कि वहाँ साइमन कमीशन की रिपोर्ट पर विचार होकर, नये शासन-विधान की योजना बन रही थी। इसके प्रत्युत्तर में कांग्रेस, और देशी राज्य लोक परिषद ने भी अपनी शक्ति भर आन्दोलन किया। परन्तु इनके पास ऐसे साधन कहाँ थे, जैसे राजाओं को सहज ही प्राप्त थे। फिर, अंगरेज अधिकारी भी तो राजाओं की ही ओर झुकने में अपना हित मानते थे। अस्तु, वहाँ यह विचार होने लगा कि भारतवर्ष का भावी शासन संघ-शासन के रूप का हो। सन् १९३५ ई० में जो विधान बना, उसमें देशी नरेशों का आवश्यकता से कहीं अधिक लिहाज़ रखा गया। उसका विचार अन्यत्र किया गया है। संयोग की बात है कि किसी भी भारतीय दल ने संघ का यह ढाँचा पसन्द न किया, यद्यपि विविध दलों के अपने-अपने कारण अलग थे। फिर, वर्तमान योरपीय महायुद्ध आ पहुँचा और संघ स्थापना का प्रश्न ही स्थगित हो गया।

इस महायुद्ध में भी नरेश जी खोलकर ब्रिटिश सरकार की सहायता कर रहे हैं। उनकी सम्राट्-भक्ति के पीछे उनके अस्तित्व का प्रश्न है। अधिकतर नरेश अभी तक भी ब्रिटिश सरकार के ही सहारे अपने पद पर बने रहना और अपनी स्वेच्छारिता को बनाये रखना चाहते हैं। प्रजा के प्रति उत्तरदायी होने, उसकी सहानुभूति और उन्नति को अपना बल समझने तथा जननी जन्मभूमि के प्रति अपना महान कर्तव्य पालन करने की भावना बहुत कम में है।



# पाचवाँ अध्याय

## संधियाँ और सनदें

जिन्हें संधियाँ कहा जाता है, वे कोई बराबर वालों के सुलहनामे नहीं हैं। वे तो दान दी हुई चीजें हैं, जिनमें दाता ने अपनी इच्छा के अनुसार शर्तें और पाबन्दियाँ लगादी हैं। ये ज्यादहतर या सारी-की-सारी सार्वभौम सत्ता को मजबूत बनाने की खातिर दी हुई रियायतें हैं।

—म० गाँधी

पिछले दो अध्यायों में संधियों और सनदों का उल्लेख हुआ है। आगे भी इनकी चर्चा का प्रसंग आयेगा। इसलिए इनके सम्बन्ध में कुछ विशेष विचार किया जाना आवश्यक है। पहले संधि, सनद और इकाररनामे का भेद जान लेना चाहिए। संधि दो ऐसी शक्तियों में होती है, जो एक-दूसरे का स्वतंत्र अस्तित्व मानती हैं, चाहे दोनों का दर्जा बराबरी का हो, या एक का दूसरे से कुछ नीचा। संधि करने वाले दोनों राज्यों में प्रत्येक का कुछ उत्तरदायित्व होता है, जिसका संधि की शर्तों में उल्लेख रहता है। सन् १७५७ से १८१३ तक, जब कि भारतवर्ष में अँगरेजी राज्य की जड़ नहीं जमी थी, कम्पनी की देशी राज्यों से संधियाँ बराबरी या मित्रता के नाते हुईं। किन्तु ऐसे राज्यों की संख्या कुल मिला कर केवल १२ है पश्चात् कम्पनी की स्थिति दृढ़ हो जाने पर उसने जो संधियाँ कीं, वे देशी राज्यों की

अधीनता की सूचक रहीं, चाहे वह आश्रित पार्थक्य हो या आश्रित सहकारिता। यद्यपि देशी राज्यों की वर्तमान संख्या ५८४ है, उपर्युक्त संधि-राज्य केवल ४० ही हैं।

संधि-राज्य और उनके साथ संधि होने का समय इस प्रकार है:— अलवर (१८०३), बहावलपुर (१८३८), भरतपुर (१८०४), बांसवाड़ा (१८१८) बड़ौदा (१८०५), भोपाल (१८१८), बीकानेर (१८०८), बून्दी (१८१८), कोचीन (१८०९), कच्छ (१८१६), दतिया (१८१८), देवास बड़ी और छोटी (१८१८), धार (१८१६), धौलपुर, (१८०६), ग्वालियर (१८०४ और १८४४), हैदराबाद, (१८०० और १८५३), इन्दौर (१८०५ और १८१८), जयपुर (१८१८), जैसलमेर (१८१८), कशमीर (१८४६), झालावाड़ (१८३८), जोधपुर (१८१८), कलात (१८७६), करौली (१८१७), खैरपुर (१८३८), किशनगढ़ (१८१८), कोल्हापुर (१८१२), कोटा (१८१७), प्रतापगढ़ (१८१८), मैसूर (१८८१ और १९१३), ओरछा (१८१२), रामपुर (१७९४) रीवा (१८१२), समथर (१८१७), सावंतवाडी (१८१६), सिक्कम (१८१४), सिरोही (१८२३) ट्रावंकोर (१८०५) टोंक (१८१७), उदयपुर (१८१८)।

इन्हें छोड़कर अन्य बड़े-बड़े राज्यों को सरकार ने अपनी अधीनता में ले लिया, और उनकी रक्षा का वचन देने के लिए सनदें लिख दीं। इन राज्यों में प्रभुत्व तो सर्वोच्च सत्ता का स्थापित हुआ, हाँ, कुछ शासनाधिकार नरेशों के भी बने रहे। बहुत-से रजवाड़ों ने सरकार की अधीनता स्वीकार करते हुए इकरारनामें लिख दिये हैं। इन रजवाड़ों के सरदार आदि अपने उत्तरदायित्व से, ब्रिटिश सरकार से बँधे हैं। विविध राज्यों से जो संधियाँ हुई हैं, उनकी कुछ धाराएँ देश

काल के अनुसार भिन्न-भिन्न होना स्वाभाविक ही है। तथापि स्थूल रूप से संधियों के तीन भेद हैं:—(१) मित्रता की संधि, (२) आश्रित पार्थक्य की संधि, और (३) आश्रित सहकारिता की संधि। इनमें से प्रत्येक प्रकार की संधि का एक-एक उदाहरण संक्षेप में आगे दिया जाता है।

(१) ब्रिटिश सरकार और यशवन्तराव होल्कर में, सन् १८०५ में मित्रता और शान्ति की सन्धि हुई। उसकी कुछ धाराएँ ये हैं— (क) ब्रिटिश सरकार यशवन्तराव होल्कर के विरुद्ध लड़ाई बन्द करने और उनको अब से कम्पनी का मित्र मानने का वचन देती है। यशवन्तराव होल्कर भी यह वचन देते हैं कि वह अब ब्रिटिश सरकार और उनके मित्रों के विरुद्ध लड़ाई बन्द कर देंगे और कोई ऐसा कार्य न करेंगे, जिससे ब्रिटिश सरकार और उसके मित्रों को हानि हो। (ख) यशवन्तराव होल्कर अपने उन सब दावों या स्वत्व * को छोड़ते हैं, जो ब्रिटिश सरकार या उसके मित्रों पर हों। (ग) यशवन्तराव होल्कर यह वचन देते हैं, कि ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति के बिना, किसी योरपियन को नौकर न रखेंगे, चाहे वह ब्रिटिश प्रजा हो या न हो। (घ) यशवन्तराव होल्कर यह वचन देते हैं कि वह सर्जीराव घाटकिया को अपने यहाँ नौकर न रखेंगे और न उनको अपनी सभा में रखेंगे, क्योंकि उक्त व्यक्ति ब्रिटिश सरकार का शत्रु घोषित हो चुका है।

(२) ब्रिटिश सरकार और ओरछा में सन् १८१२ में आश्रित पार्थक्य नीति के अनुसार संधि हुई, उसमें कहा गया कि ओरछा के राजा महेन्द्र विक्रमादित्य ब्रिटिश सरकार के प्रबल आश्रय में आना चाहते हैं, उनकी प्रार्थना स्वीकार की जाती है। (क) उन्होंने ब्रिटिश सरकार के प्रति आज्ञापालन और अनुराग का भाव प्रकट किया है,

---

* Claims

अतः वह अब से उनके मित्रों की श्रेणी में लिये जाते हैं। तदनुसार उक्त राजा उसके मित्रों को अपना मित्र और उसके शत्रुओं को अपना शत्रु समझेंगे, और किसी ऐसे राजा या शासक को न छेड़ेंगे जो ब्रिटिश सरकार का मित्र हो। वे ब्रिटिश सरकार विरोधी व्यक्तियों या उनके परिवार वालों को अपना शत्रु मानते हुए आश्रय न देंगे और न उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध रखेंगे, वरन् उन्हें पकड़ कर ब्रिटिश सरकार के कर्मचारियों के सुपुर्द करेंगे। (ख) जो राज्य राजा साहब को अपने पूर्वजों से मिला है वह सदा उनका ही रहेगा और उनको या उनके वंशजों और उत्तराधिकारियों को इसके भोगने में ब्रिटिश सरकार कभी न छेड़ेगी, और न किसी प्रकार का कर लेगी। ब्रिटिश सरकार इस राज्य की विदेशी शत्रुओं से रक्षा भी करेगी। (ग) यदि ओरछा के राजा को ब्रिटिश सरकार के मित्र-राज्यों में से किसी पर कोई दावा या शिकायत होगी तो वह स्वतः उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही न करके, ब्रिटिश सरकार को सूचना देंगे, और सदा उसके निर्णय को मानेंगे। ब्रिटिश सरकार भी अपने मित्रों और आश्रितो को ओरछा के राजा के विरुद्ध कार्यवाही करने से रोकेगी और उनके झगड़ों में स्वयं मध्यस्थ बन कर न्याय के सिद्धान्तों के अनुसार विचार करेगी। (घ) ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति बिना राजा अपने यहाँ किसी भी प्रकार के योरपियन को नौकर न रखेंगे।

(३) मैसूर का राज्य सन् १८३१ ई० से ब्रिटिश सरकार के प्रबन्ध में था, यह १८८१ में यहाँ के राजा चामराजेन्द्र वाडियर को लौटाया गया तो आश्रित सहकारिता की नीति के अनुसार संधि हुई, इसकी मुख्य शर्तें इस प्रकार थीं:—(क) क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने इस राज्य की रक्षा का भार लिया है, उसे प्रतिवर्ष ( मैसूर राज्य के कोष से ) पैंतीस लाख सरकारी रुपये दिये जायँगे। (ख) चामराजेन्द्र वाडियर को गद्दी मिलते समय यहाँ जो शासनपद्धति प्रचलित हो, उसमें कौंसिलयुक्त

गवर्नरजनरल की स्वीकृति बिना, कोई विशेष परिवर्तन न किया जायगा। (ग) कोष-प्रबन्ध, कर लगाना, न्याय-प्रबन्ध, कृषि उद्योग या व्यापार का प्रोत्साहन, राजा साहब के हित, प्रजा के सुख, तथा राजा और सरकार के सम्बन्ध के विषय में कौंसिलयुक्त गवर्नरजनरल जो परामर्श देंगे, उसका पालन किया जायगा. (घ) यदि किसी समय महाराजा मैसूर इनमें से किसी नियम का पालन न करें, या भंग करें तो कौंसिलयुक्त गवर्नरजनरल को अधिकार होगा कि वह उक्त प्रदेश को ब्रिटिश शासन में मिलालें या अन्य आवश्यक प्रबन्ध करें, जिससे राजप्रबन्ध जन-हितकारी हो तथा इस क्षेत्र में ब्रिटिश हितों और अधिकारों की सुरक्षा हो।

यह संधियों की बात हुई। अब हम सनद या इकरारनामों का विषय लें। इनके भी अनेक भेद हैं। पर एक उदाहरण से इनके स्वरूप का कुछ विचार करने तथा संधियों से इनका भेद मालूम होने में सुविधा होगी।

सन् १८११ में चरखारी के राजा को जो सनद दी गयी थी, उसका आवश्यक भाग इस प्रकार है:—बुन्देलखण्ड प्रान्त के राठ, सेउंदा कटोला आदि परगनों के चौधरियों, कानूनगोओं, आदि को विदित हो कि क्योंकि राजा बिक्रमादित्य विजय बहादुर ने जो बुन्देलखण्ड के एक पुराने और पैत्रिक रईस हैं, जब बुन्देलखण्ड ब्रिटिश सरकार के अधिकार में आया, तब सब से प्रथम उस अधिकार को मान्य किया और पूर्व एजन्ट कप्तान जान बेली के समय ब्रिटिश सरकार को एक इकरारनामा (अधीनता का स्वीकृति-पत्र) लिखा········इसलिए जिन गाँवों के नाम साथ की तालिका में दिये गये हैं वे सारे अधिकारों सहित उपर्युक्त राजा और उनके उत्तराधिकारियों को दिये जाते हैं। इनकी मालगुजारी और सायर, किले और गढ सब राजा के हैं। इनपर ब्रिटिश सरकार

कोई कर न लेगी। जब तक राजा और उनके उत्तराधिकारी अपने इकरारनामे की शर्तों का वफादारी से पालन करेंगे, ब्रिटिश सरकार उनको न छेड़ेगी और न इस राज्य पर अधिकार करेगी। यह आवश्यक है कि तुम सब उक्त राजा को इस क्षेत्र का स्वामी समझो, और राजा का यह कर्तव्य है कि कृषि की वृद्धि करें, जनता की सुख-समृद्धि बढ़ाते हुए अपनी उन्नति करें और ब्रिटिश सरकार के आज्ञानुवर्ती बने रहकर अपने सुशासन के फल का उपयोग करें।

आजकल जब कि जनता में वैधानिक सुधारों का आन्दोलन बढ़ता जा रहा है, प्रायः राजा लोग ब्रिटिश सरकार के साथ की हुई संधियों की दुहाई देते हैं, और कुछ सरकारी अधिकारी भी ऐसा भाव प्रकट करते हैं कि संधियों के कारण उनके हाथ बंधे हुए हैं, और वे देशी राज्यों के भीतरी मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। इस प्रकार इन दिनों संधियों की बात बार-बार सुनने में आती है। इस सम्बन्ध में यह तो पहले कहा ही जा चुका है कि वर्तमान ५८४ राज्यों में से केवल ४० राज्यों से ही संधियाँ हुई हैं। शेष समस्त राज्य तो बिना संधियों के ही हैं। और ये संधियाँ भी कैसी हैं! ये कितनी सार-हीन है, यह बात ब्रिटिश सरकार तो अवश्य ही जानती है, और राजा महाराजाओं को भी जानना चाहिए। इनके सम्बन्ध में ठीक ही कहा गया है कि 'न तो इनके मूल में कोई विधान है, और न इनके सम्बन्ध में कुछ विवाद उठ खड़ा होने पर उसका निर्णय करने के लिए कोई न्यायालय ही है। ये संधियाँ अन्तर्राष्ट्रीय विधान की परिधि में भी नहीं आतीं। एक या दोनों पक्षों की इच्छानुसार इनका अर्थ या प्रयोग किया जाता है। ये वस्तुतः संधि-पत्र न होकर एक तरह के

नियम-पत्र हैं, जिनके अनुसार दोनों पक्षों ने अपना सम्बन्ध बनाये रखने का निश्चय किया था। बाद के रीति-रिवाजों से इनमें बहुत परिवर्तन हो गया। कई अंश बेकाम हो गये। कुछ नयी बातें खड़ी हो गयीं, जिनका निपटारा सरकार के राजनैतिक विभाग ने अपनी इच्छानुसार किया इन निर्णयों का बल संधियों से भी बढ़ गया। सार्वभौम सत्ता का क्षेत्र संधियों की अपेक्षा अधिक व्यापक है। संधियों की मूल बातें उन नियमों में परिणत हो गयी हैं, जो सभी देशी रियासतों के साथ सामान्य रूप में बर्ते जाते हैं।' यह सब होते हुए भी राजाओं की ओर से भोलीभाली जनता को डराने या उस पर व्यर्थ का रौब जमाने के लिए इन संधियों की बात कही जाती है और सरकार लोकहित सम्बन्धी अपना कर्तव्य पालन न करने के लिए इनका बहाना किया करती है।

यदि संधियाँ करते समय उनमें जनता के हितों का यथेष्ट ध्यान नहीं रखा गया है, तो यह कोई कारण नहीं है कि अब जनता के हितों के विरुद्ध उनकी दुहाई दी जाय। सरकार और देशी राजाओं के बीच जो संधियाँ हुई हैं, उनके द्वारा एक तीसरे पक्ष ( जनता ) की उन्नति और विकास में बाधा उपस्थित होना न कानून से ही ठीक है, और न नीति की दृष्टि से ही उचित। पुनः यद्यपि कम्पनी के समय में स्वतंत्र सधि-राज्यों और पराधीन राज्यों में भेद किया जाता था, कम्पनी का अन्त होने पर, पार्लिमेंट के समय में सब राज्यों के साथ बहुत-कुछ समान व्यवहार हुआ। यहाँ तक कि रिवाज से सरकार और देशी राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध में बहुत परिवर्तन हो गया। धीरे-धीरे संधियों की

कितनी ही बातें अब व्यर्थ हो गयीं। समय-समय पर नयी-नयी आवश्यकताएँ उपस्थित हुईं। उनके सम्बन्ध में सरकार के राजनैतिक विभाग ने जैसी उचित समझी, व्यवस्था की। संधियों के सम्बन्ध में अ० भा० देशी राज्य लोक परिषद का अधिकार-पूर्ण मत देकर हम इस विषय को समाप्त करते हैं। उसने लुधियाना अधिवेशन के एक प्रस्ताव में स्पष्ट घोषित कर दिया कि 'संधियाँ करनेवाले देशी राजा वस्तुतः अधिकारी न थे, वे तो केन्द्रीय मुगल सरकार के कमजोर होने पर स्वतंत्र बन बैठे थे। इन संधियों को सरकार स्वयं समय-समय पर तोड़ती रही है। आज की बदली हुई स्थिति में रियासती जनता पर सौ साल पहले की संधियों को, जिनमें उनकी कोई चिन्ता नहीं की गयी, मानने के लिए जोर नहीं दिया जा सकता। इन संधियों का उपयोग अब ब्रिटिश सरकार रियासती जाग्रति के दमन के लिए ही करती है। ये अब वर्तमान समय के बिलकुल प्रतिकूल और अक्रियात्मक हो गयी हैं। इन्हें अब समाप्त कर देना चाहिए।'

# छठा अध्याय

## देशी राज्य और सर्वोच्च सत्ता

अगर राजा लोग यह विश्वास करते हों कि जनता का हित ही उनका हित है तो उन्हें कृतज्ञता पूर्वक कांग्रेस की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। निश्चय ही यह उनके लिए हितकर है कि वे उस संस्था के साथ मित्रता पूर्ण सम्बन्ध स्थापित करें जो भविष्य में,

बहुत शीघ्र ही, भारतवर्ष में सार्वभौम सत्ता का स्थान लेनेवाली है— मैं आशा करता हूँ, मित्रता के ढङ्ग से। क्या राजा लोग दीवार पर लिखे स्पष्ट अक्षरों को न पढ़ेंगे ?

—म० गांधी

राजाओं को अपने-अपने राज्य में शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकार भिन्न-भिन्न परिमाण में हैं। इस अध्याय में हम यह विचार करेंगे कि वे कहाँ तक स्वाधीन कहे जा सकते हैं, अथवा, वे कहाँ तक पराधीन हैं; सर्वोच्च सत्ता कौन है, और वह उनके मामलों में कहाँ तक हस्तक्षेप करती है।

पहले हम देशी राज्यों के बाहरी मामलों की दृष्टि से विचार करते हैं। इनमें तो केन्द्रीय सत्ता प्रत्यक्ष में ही सर्वेसर्वा है। देशी राज्य स्वतंत्र राज्य की तरह किसी अन्य देश पर आक्रमण नहीं कर सकते, कोई दूसरा राज्य इन पर आक्रमण करे तो ये उससे अपनी रक्षा नहीं कर सकते, इनकी रक्षा का उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार ने अपने ऊपर ले रखा है, वह समस्त भारत की सेना का नियंत्रण करती है। सरकार देश भर की ओर से विदेशों में राजदूत भेजती है और विदेशी राजदूतों को यहाँ रखती है। कभी-कभी साम्राज्य-परिषद या राष्ट्र-संघ में देशी नरेशों को भी भेजा जाता है, पर उनका चुनाव सब राजाओं की ओर से न होकर, सरकार की पसन्द पर निर्भर रहता है, और वे वहाँ वही मत प्रगट करते हैं, जो सरकार उनसे कराना चाहती है, या कम से कम जिसमें सरकार को कोई आपत्ति न हो। अभिप्रायः यह है कि उक्त संस्थाओं में उनका स्वतंत्र अस्तित्व या विचार नहीं होता। देशी नरेश किसी विदेशी

सत्ता से, या स्वयं एक-दूसरे से राजनैतिक पत्र-व्यवहार नहीं कर सकते, और न व्यापारिक संधि कर सकते हैं; राजनैतिक संधि की तो बात ही अलग रही। उनके ये सब अधिकार संधियों एवं प्रथा द्वारा ब्रिटिश सरकार को समर्पित हैं, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इनका कोई स्थान नहीं है। बाहरी मामलों में ब्रिटिश सत्ता ही कर्ता-धर्ता है, और यह बात स्पष्ट और सर्वमान्य है।

अब भीतरी मामलों की बात लें। भारतवर्ष में अंगरेजों की शक्ति बढ़ने पर सरकार ने देशी राज्यों के आन्तरिक प्रबन्ध में अधिकाधिक अधिकारों का उपयोग किया। ये अधिकार विविध प्रकार के रहे. उदाहरणवत् उत्तराधिकारि का निर्णय, रीजेन्सी ( राजप्रतिनिधित्व ) स्थापित करना, किसीको गद्दी से उतारना, नाबालिग राजा का संरक्षक होना तथा शिक्षा की व्यवस्था करना, उपाधियाँ प्रदान करना या मान्य करना, दत्तक पुत्र का अधिकार मानना। नवीन शासक को स्वीकार करते समय वायसराय के खरीते में उसकी उपाधियां और पदवियाँ रहती है। यदि किसी राजा के लिए नये सम्मानसूचक शब्द जोड़ने हों तो उनकी स्वीकृति आवश्यक है। राजा विदेशी उपाधियों को, सरकार के सहमत हुए बिना, स्वीकार नहीं कर सकते। वे अपनी प्रजा को वे ही उपाधियां दे सकते हैं, जो सरकार स्वीकार कर ले। सर्वोच्च सत्ता किसी राजा को गद्दी से उतारने या गद्दी छोड़ने को विवश करने के अधिकार का दावा करती है। सरकार ने राजाओं के लिए तोपों की सलामी निर्धारित कर रखी है, वह इसमें समय-समय पर कमी-बेशी कर सकती है।

निम्नलिखित बातों से भी केन्द्रीय सत्ता का अधिकार बढ़ने में बहुत सहायता मिली है—देशी राज्यों में रेल, तार, डाक की व्यवस्था, सरकार की मुद्रा-नीति, देशी राज्यों में आवश्यकतानुसार रेजीडेन्सी अथवा छावनी बनाना आदि। सरकार का अधिकार देशी राज्यों के आन्तरिक विषयों में इतना बढ़ गया है कि राजाओं की शक्ति नाममात्र की रह गयी है। यह अधिकार सदैव नियमानुसार या जाब्ते से नहीं होता। रेजीडेन्ट या पोलिटिकल अफसर परामर्श का रूप देकर समय-समय पर अनेक बातें राजाओं को ऐसी कहते रहते हैं, जिनका उनके राज्य के आन्तरिक शासन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। राजा लोग इस 'परामर्श' की अवहेलना नहीं कर सकते, वे इसे आज्ञा की तरह शिरोधार्य करते हैं। अनेक राज्यों में राजाओं की इच्छा की परवाह न कर, अथवा उसके विरुद्ध भी, मन्त्री नियुक्त कर दिये जाते हैं, या कानून-निर्माण पर नियंत्रण किया जाता है। प्रजा से सीधी दरखास्तें भी लें ली जाती हैं।

ऊपर कहा गया है कि राजा को नाबालगी के समय में भी सर्वोच्च सत्ता को अपने पोलिटिकल अफसरों द्वारा राज्य में हस्तक्षेप करने का खूब मौका मिलता है। इस सम्बन्ध में कुछ विशेष विचार करने की आवश्यकता है। प्रायः देशी राज्यों में नाबालिग शासन के समय ऐसा व्यवहार किया गया जो किसी प्रकार उचित या क्षम्य नहीं कहा जा सकता। उदाहरणवत् बीकानेर और अलवर से नाबालगी में सिक्के ढालने का अधिकार ले लिया गया, यह बात कच्छ और सावंतवाड़ी में भी हुई; इन्दौर में कुछ जमीन रेजीडेन्सी में मिला ली गयी। पटियाला

और भींध की रेलवे सम्बन्धी भूमि पर अधिकार कर लिया गया। ईंदर अपने कुछ जागीरदारों से वंचित कर दिया गया। कच्छ और पटियाला के नाबालगी शासन में उनका नमक का व्यवसाय नष्ट हो गया। ऐसी बातों से इन राज्यों में असंतोष बढ़ा ही, अन्य राज्य भी चिन्ता में पड़ गये। नाबालगी का प्रश्न किसी न किसी समय प्रत्येक राज्य में आ सकता है।

क्रमशः सरकार को अपनी भूल मालूम हुई। इस पर सन् १६१३-१४ में, जब कि लार्ड हार्डिंग वायसराय थे, भारत-सरकार ने कुछ राजाओं और पोलिटिकल अफसरों की सम्मतियाँ माँगी, और सन् १६१७ ई० में गवर्नर जनरल-इन-कौंसिल ने भारत-मंत्री की स्वीकृति से नाबालगी शासन के सम्बन्ध में अपनी नीति तथा सिद्धान्त निश्चित किये।

साधारणतया मुख्य सिद्धान्त ये रहे—नाबालगी में शासन-कार्य एक कौंसिल को सौंपा जाय; वह रीजेन्सी-कौंसिल हो या रीजेन्सी। राज्य की पुरानी रीति-रस्म और परम्परा जारी रखी जायँ। राज्य की स्थापित नीति सम्बन्धी नियम और कागजात सावधानी से अध्ययन किये जायँ। राज्य की नौकरी के लिए यथा-सम्भव स्थानीय सज्जनों की नियुक्ति की जाय। संधियों द्वारा प्राप्त अधिकार यथेष्ट रूप से बने रहें और तत्कालीन संधियों और समझौतों में परिवर्तन करनेवाली बातों से बचा जाय। राज्य की कोई ज़मीन, या अन्य अचल सम्पत्ति न बदली जाय, न दी जाय या बेची जाय। व्यक्तियों या कम्पनियों को स्थायी या दीर्घकालीन व्यापारिक रियायतें या ठेके न दिये जायँ। युवक राजा का शिक्षण तथा अध्ययन, इस कार्य के लिए नियुक्त कमेटी की रिपोर्ट में सूचित पद्धति से हो; साधारणतया यह बेहतर है कि उसकी शिक्षा भारतवर्ष में ही हो, न कि योरप में।

भारत-सरकार ने यह मान्य किया कि वह देशी राज्यों के अधिकार, हित और परम्परा की रक्षक और अमानतदार ( ट्रस्टी ) है, परन्तु विगत वर्षों में जिन-जिन राज्यों की नाबालगी में जो-जो अधिकार अपहरण कर लिये गये थे, उन्हें वे वापिस नहीं किये गये। अस्तु, अब अपेक्षाकृत अच्छे सिद्धान्त स्थिर कर दिये जाने पर भी प्रायः यह विश्वास नहीं किया जाता कि राजा की नाबालगी में सरकार जनता के हित का समुचित ध्यान रखेगी। राजा जिन्हें अपना रीजेंट ( प्रतिनिधि ) नियत कर जाते हैं, उन्हें प्रायः सरकार के इशारे पर चलना होता है।

निदान, साधारणतया यह कहा जा सकता है कि वास्तव में राजाओं को अपने-अपने राज्य के आन्तरिक शासन में भी स्वतंत्रता नहीं है। इन्हें जो कुछ भी अधिकार है, वह केवल इसलिए है कि ब्रिटिश सरकार ने इन्हें वह दे रखा है, और दे इस वास्ते रखा है कि इसी में उसका हित सन्निहित है। अस्तु, जिन राज्यों की स्थिति दूसरी सत्ता की इच्छा पर निर्भर हो, उसे स्वतंत्र कैसे कहा जा सकता है!

देशी राज्यों के स्वतंत्र अस्तित्व के दावे का खंडन बटलर कमेटी ने भी किया है। उसने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट कहा है कि 'इतिहास की दृष्टि से यह सही नहीं है कि जब हिन्दुस्तानी राज्यों का ब्रिटिश-सरकार से वास्ता पड़ा तो वे स्वतंत्र थे।...असल बात तो यह है कि एक भी राज्य का अन्तर्राष्ट्रीय दर्जा कभी रहा ही नहीं। ये लगभग सभी मुगल साम्राज्य, मराठों की सत्ता या सिक्ख-राज के अधीन थे या उनके सामन्त थे, और उन्हीं पर इनका अवलम्ब था। कुछ राज्यों

को तो अंगरेजों ने मरते-मरते बचाया था और कुछ नये बनाये गये थे।' यह होते हुए भी कुछ लोग देशी राज्यों के स्वतंत्र अस्तित्व तथा स्वतंत्र अधिकारों की बात कहते ही रहते हैं। पिछले दिनों त्रावंकोर के दीवान सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर ने ऐसा ही किया था। श्री० प्यारेलाल जी नायर ने स्वयं त्रावंकोर का उदाहरण देकर इसका खंडन किया है। आपने भली भाँति सिद्ध किया है कि इतिहास की दृष्टि से यह सही नहीं है। अन्त में आप लिखते हैं कि "इसके बावजूद यह दावा करना व्यर्थ है कि संधियों के आधार पर त्रावंकोर के सम्बन्ध सम्राट् के साथ बराबरी के हैं और उन्हें सम्राट् रद्द करने या बदलने का इकतर्फा फैसला नहीं कर सकता। यह कठोर सत्य भी याद रखना चाहिए कि संधियों की मूल शर्तें कुछ भी हों, पिछली आधी सदी में ऐसी राजनैतिक परम्परा बन गयी है और राजाओं की कमजोरी और ब्रिटिश सरकार की ताकत ऐसी नजीर कायम हो गयी हैं, जिनसे छोटी-बड़ी सब रियासतों का दर्जा घटकर ब्रिटिश सरकार के साथ मातहती के सहयोग का सम्बन्ध रह गया है।" *

अस्तु, देशी राज्य बाहरी मामलों में तो पराधीन हैं ही, आन्तरिक प्रबन्ध की भी बहुत-सी बातों में इन्हें यथेष्ट स्वाधीनता नहीं है। वास्तविक राजसत्ता सरकार के हाथ में है, वह इनके लिए सर्वोच्च सत्ता या 'पेरेमाउन्ट पावर' है। उसके देशी राज्यों सम्बन्धी अधिकार सुनिर्धारित नहीं हैं, उनका निश्चित करना कठिन है, वे जान बूझकर अस्पष्ट रखे गये हैं। साधारण तौर पर यह माना जाता है कि सर्वोच्च

* 'देशी राजाओं का दर्जा'

सत्ता निम्नलिखित चार कारणों से अपनी शक्ति का प्रयोग करती है, अर्थात् देशी राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप करती हैः—

१—राजा की भलाई के लिए।

२—राज्य के लाभ के लिए।

३—राजा और राज्य के पारस्परिक समझौते और शान्ति के लिए।

४—सम्पूर्ण भारतवर्ष के हित के लिए।

परन्तु सर्वोच्च सत्ता अपने हस्तक्षेप-कार्य के लिए किसी नियम में बँधी नहीं है, वह इसके लिए किसी को जवाबदेह नहीं है कि किस दशा में हस्तक्षेप करेगी, और कब नहीं करेगी। समय-समय पर अनेक ऐसे अवसर आये हैं। जब किसी देशी राज्य की जनता, एवं ब्रिटिश भारत की जनता ने हस्तक्षेप की माँग की है, पर सरकार ने कोई कार्य-वाही करना आवश्यक नहीं समझा। इसके विपरीत, सर्वोच्च सत्ता ने कितने-ही ऐसे राजाओं को गद्दी से उतार दिया या उतरने के लिए बाध्य किया जिनके सम्बन्ध में सर्वसाधारण की बहुत सहानुभूति थी, और जब जनता ने इस सम्बन्ध में कुछ आन्दोलन भी किया तो उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इस विषय के कई उदाहरण इस पुस्तक में मिलेंगे।

प्रायः यही कहा जाता है कि सर्वोच्च सत्ता किसी राज्य का प्रबन्ध ठीक न होने पर उसमें हस्तक्षेप करती है। परन्तु सरकार किस राज्य के कुशासन पर ध्यान देगी, अथवा वह कुशासन किसे कहती है, यह बहुत रहस्यमय है। यह सर्वसाधारण को सहसा प्रकट ही नहीं

होता कि सरकार इस समय हस्तक्षेप कर रही है। अनेक वार जब राजाओं को कुछ आशंका होती है, तो वे स्वयं ही गद्दी छोड़ देते हैं। सन् १६०३ में इन्दौर नरेश स्व० महाराज शिवाजीराव होल्कर ने राज्य परित्याग किया, उन्हें अकस्मात क्यों विरक्ति हो गयी, यह अभी तक भी ज्ञात नहीं हुआ। मेवाड़ के महाराज फतेहसिंह जी ने अपने युवराज को राज्य के अधिकार देकर अवकाश ग्रहण किया और नाभा नरेश रिपुदमन सिंह जी ने भी स्वेच्छापूर्वक राज्य का मोह छोड़ दिया। इन राजाओं ने 'स्वेच्छापूर्वक' राज्य क्यों छोड़ दिया, यह निश्चय रूप से कौन कह सकता है!

सन् १६२० ई० से ऐसी व्यवस्था की हुई है कि जब दो या अधिक राज्यों में, किसी राज्य और प्रान्तीय सरकार में, या किसी राजा और भारत-सरकार में कोई विवाद उपस्थित हो, या जब कोई राज्य भारत-सरकार अथवा इसके किसी प्रतिनिधि के आदेश से असन्तुष्ट हो तो वायसराय एक कमीशन नियुक्त कर सकता है, जो विवाद सम्बन्धी मामले की जाँच करके अपनी सम्मति उसके सामने उपस्थित करे। किसी राजा के घोर दुराचार के विषय में भी कमीशन व्यवस्था है। कमीशन में एक सदस्य न्याय सम्बन्धी योग्यता वाला होगा जिसका दर्जा हाई-कोर्ट के जज से कम न हो, तथा चार अन्य सदस्य होंगे, जिनमें से कम-से-कम दो सदस्य राजाओं में से होंगे। अगर वायसराय इस कमीशन की सम्मति स्वीकार न कर सके तो वह उस मामले को भारत-मन्त्री के पास भेज देगा। एक मात्र रीवा को छोड़कर, अब तक ऐसे कमीशन के प्रयोग का अवसर नहीं आया। जब कभी भारत-सरकार

को किसी नरेश के विरुद्ध बहुत शिकायत हुई तो उसने अन्ततः 'स्वेच्छापूर्वक' राज्य त्याग करने में ही अपनी कुशल समझी। ( उसे किसी विषय में अपने प्रति अन्याय प्रतीत हो तो न वह ब्रिटिश न्यायालय से न्याय प्राप्त कर सकता है, न अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से ही। भारतीय राजाओं का अन्तर्राष्ट्रीय अस्तित्व है ही नहीं। )

इन्दौर के महाराजा तुकोजीराव द्वितीय की ही बात लें। इनका सम्बन्ध मुमताज बेगम से था, जो पीछे बम्बई के मोहम्मदअली बावला के साथ रहने लगीं। बावला को बम्बई में मार डाला गया, और इन्दौर महाराज पर यह हत्या करने का अभियोग लगा। वायसराय ने इस प्रसङ्ग में उन पर कमीशन बैठाना चाहा, पर महाराज ने उसे अपनी मान-प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझा। सम्भवतः उन्होंने कमीशन के जाँच के परिणाम का अनुमान पहले से ही कर लिया, और अपना भविष्य उस पर निर्भर न रख कर स्वेच्छापूर्वक राज्य भार छोड़ देना ही ठीक समझा। यह घटना सन् १६२६ ई० की है।

भरतपुर के महाराजा किशनसिंह का मामला दूसरे प्रकार का है। अपव्यय के कारण इनकी माली हालत खराब थी। इससे सरकार को हस्तक्षेप का अवसर मिल गया। उसके राजनैतिक विभाग की ओर से जनवरी १६२७ में उनसे कमीशन द्वारा जाँच करने के लिए कहा गया। उन्होंने यह स्वीकार कर लिया, पर जाँच के समय में राज्य से बाहर रहने की शर्त नहीं मानी। जनवरी १६२८ में एक अँगरेज सिविलियन को यहाँ का प्रबन्धक (एडमिनिस्ट्रेटर) नियुक्त किया गया। पीछे जब कि महाराज शिमले से लौट रहे थे, उन्हें आज्ञा दी गयी कि

अपने राज्य से १०० मील दूर रहें। लाचार होकर महाराज ने यह आदेश शिरोधार्य किया, और वे बहुत दुखमय जीवन बिताने लगे। १९२९ में उनका देहान्त हो गया।

अलवर नरेश 'महाप्रभु' सवाई जयसिंह की कथा भी विचारणीय है। इनके विरुद्ध बहुत-सी शिकायतें थीं। अपव्यय के लिए तो राज्य में एवं बाहर भी बदनाम थे; पत्र-पत्रिकाओं में खूब टीका टिप्पणियाँ हुईं सन् १९२५ ई० यहाँ निमूचाणा हत्याकांड हुआ। जनता के बहुत चाहने पर भी इस समय सरकार ने कुछ हस्तक्षेप न किया। परन्तु पश्चात् जब सन् १९३२-३३ में अलवर के मेव मुसलमानों ने 'बाहर के कुछ साम्प्रदायिक मुसलमान नेताओं द्वारा उकसाये जाने पर' विद्रोह कर दिया और सरकार ने उसे दबाने के लिए सेना भेजी तो महाराज को 'कुशासन' के कारण राज्य से बाहर कर दिया गया।

यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि मध्य भारत के जिन ए० जी० जी० कर्नल आगलीव ने राजा साहब के, राज्य से निकाले जाने की घोषणा सुनायी, उन्होंने ही नवम्बर १९३२ में राजा साहब के सुशासन की बहुत-बहुत प्रशंसा की थी; राज्य की आर्थिक उन्नति, शिक्षा प्रचार, स्वराज्य संस्थाओं की वृद्धि आंकड़ों तथा तथ्यों सहित बतलायी थी। समय की बलिहारी है! राजा साहब इन्हीं कर्नल आगलीव के शब्दों में अब ऐसे कुशासन के दोषी ठहराये गये कि उनका राज्य में रहना भी अनुचित समझा गया। जनता की यह धारणा स्वाभाविक ही है कि नीमूचाणा कांड के समय राजा साहब सर्वोच्च सत्ता के कृपापात्र

थे, अतः पीड़ितों की शिकायतों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। पीछे परिस्थितियाँ बदलीं, शायद एकता सम्मेलन के भाषण ने राजा साहब को अधिकारियों का कोप-भाजन बना दिया। जो हो, उनके पूर्व सुशासन के प्रमाणपत्र होते हुए भी उन्हें निर्वासित कर दिया गया।

रीवा का उदाहरण ताजा ही है। फरवरी १६४२ में यहाँ के शासक पर कुछ संगीन अभियोग होने के आधार पर उनके शासनाधिकार स्थगित किये गये और जाँच के लिए पाँच सज्जनों का एक कमीशन नियत किया गया। अभियोग की निस्पक्ष जाँच की जाने में किसी विवेकशील व्यक्ति को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। हमें तो पाठकों का ध्यान इस ओर दिलाना है कि रीवा नरेश को १७ तोपों की सलामी है। सरकार उनका बड़ा सम्मान करती रही है। उसने उन्हें लन्दन की गोलमेज परिषदों में राजाओं का प्रतिनिधि बना कर भेजा था। वर्तमान युद्ध में उन्होंने धन जन और सामग्री की खूब सहायता की तथा अपनी व्यक्तिगत सेवाएँ तक भी सम्राट् को समर्पित करना स्वीकार किया था। फिर भी उन्हें उनके पद से चुपचाप हटा दिया। इससे सर्वोच्च सत्ता की शक्ति का सहज ही अनुमान हो सकता है।

बात यह है कि किसी राज्य में किस समय हस्तक्षेप करना, इसके सम्बन्ध में सरकार स्वतन्त्र है। जो इसके मित्र या वफादार हैं, उनके विरुद्ध की जानेवाली शिकायतों पर सहसा ध्यान नहीं दिया जाता। इसके विपरीत, जो स्वाभिमानी हों, जिनके विचार सरकार को न रुचते हों, उनके सम्बन्ध में कार्यवाही करने का कोई निमित्त मिल ही जाता है; चाहे जनता को उनके विरुद्ध कुछ शिकायतें न हों। भारतवर्ष में कितने

ही राजा कुशासन, विषय-वासना या अपव्यय आदि से बचे हुए नहीं है, परन्तु जो सरकारी निगाहों में खटकता हो, उसे कोप-भाजन होना पड़ता है, अथवा उसे 'स्वेच्छापूर्वक' वैराग्य धारण करना होता है। हाँ, कभी-कभी सरकार ऐसे राजा के विरुद्ध भी कार्यवाही करती देखी जाती है, जो कल तक उसकी नजर में बहुत बढ़े-चढ़े थे। इस पर यही कहना पड़ता है, 'जानी न जाय सरकार की माया।'

राजाओं की स्थिति कैसी दयनीय है! पर इसके लिए वे स्वयं ही जिम्मेवार हैं। वे अपने स्वरूप और कर्तव्यों को भूले हुए हैं। वे पोलो आदि अंगरेजी खेलों में भाग लेते हैं, घुड़दौड़ या शिकार का भी शौक रखते हैं, अंगरेजी भाषा के जानकार बनने की चेष्टा करते हैं, प्रजातंत्र और उत्तरदायी शासन के भाषण देकर नेकनामी लेना चाहते हैं, विलायत-यात्रा में, उत्सव, जलसों, पार्टियों, सरकारी मेहमानों के सत्कार, तथा विविध व्यसनों में, अपना समय और जनता की गाढ़ी कमाई का द्रव्य बरबाद करते हैं, और ऐसा करते हुए वे जनता की उपेक्षा करते हैं, उसे अपने स्वार्थ-सिद्धि का साधन मान कर उस पर तरह-तरह की सख्तियाँ करते हैं। वे अपनी रक्षा और अस्तित्व के लिए ब्रिटिश सरकार या सम्राट् का सहारा लेते हैं।

पहले बताया जा चुका है कि ज्यों-ज्यों ब्रिटिश भारत में उत्तरदायी शासनपद्धति व्यवहार में आने की बात आगे बढ़ी है, राजाओं ने सम्राट् से सीधा सम्बन्ध रखने का दावा किया है। उनका कथन है कि हमारी संधियाँ सम्राट् से हुई हैं; सर्वोच्च सत्ता ब्रिटिश सरकार ही है, भारत-सरकार नहीं।

यह दावा कहाँ तक ठीक है ? इस सम्बन्ध में पहले तो ध्यान देने की बात यही है कि मूल संधियाँ ईस्ट इंडिया कम्पनी से हुई थीं * सम्राट् से नहीं। और, कंम्पनी से संधियाँ होने का कारण यही था कि वह भारतवर्ष के महत्वपूर्ण भाग पर शासन करती थी, यह नहीं था कि वह अंगरेजी व्यापार-कम्पनी थी। पुनः क्योंकि कम्पनी के शासित प्रदेश का राजप्रबन्ध सम्राट् को सौंपा गया जो पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायी था और जो भारत-मंत्री, कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल आदि द्वारा यह कार्य करने लगा, इसलिए सम्राट् ने देशी राज्यों सम्बन्धी संधियों और इकरारनामों को मान्य करने का दायित्व स्वीकार किया। इस प्रकार सम्राट् को भारत का शासन सौंपे जाने का ही परिणाम उसके द्वारा संधियों का मान्य किया जाना है। यदि ब्रिटिश भारत का शासन प्रबन्ध किसी अन्य व्यक्ति या संस्था को सौंपा जाता तो देशी राज्यों सम्बन्धी संधियों को स्वीकार करने का उत्तरदायित्व उस पर आता। अस्तु, जिन अधिकारों को पहले कम्पनी काम में लाती थी, उन्हें सन् १८५८ ई० से, भारत-मंत्री के निरीक्षण में भारत-सरकार (स्वयं, अथवा प्रान्तीय सरकारों या अन्य अधिकारियों द्वारा) काम में लाने लगी। इसमें भारतीय नरेशों की स्वीकृति या सहमति ली जाने का कोई प्रश्न ही न था; उन्होंने तथा भारतीय जनता ने इस परिवर्तन को सहर्ष मान लिया, कारण उन्हें इससे

* सन् १८५८ की, महारानी की घोषणा में स्पष्ट कहा गया है कि 'हम भारत के देशी नरेशों को यह सूचित करते हैं कि हम उनकी उन संधियों और इकरारनामों को मान्य करते हैं, और उनका पूर्णतया पालन करेंगे, जो माननीय ईस्ट इंडिया कम्पनी से या उसके अधिकार से हुई हैं।'

सुधार की आशा थी, और तत्कालीन परिस्थिति में यह अनिवार्य हो गया था। भारतवर्ष का शासन-प्रबन्ध सम्राट् के हाथ में चले जाने के समय से ब्रिटिश भारत का अन्य देशों से जो राजनैतिक सम्बन्ध एवं संधियाँ हैं, उनका व्यवहार सम्राट् के नाम से, उसके ब्रिटिश भारत के शासक होने की हैसियत से, किया जाता है। इसी प्रकार ब्रिटिश भारत का देशी राज्यों से जो सम्बन्ध है, उसका भी व्यवहार सम्राट् के नाम से, उसके ब्रिटिश भारत के शासक होने की हैसियत से, किया जाता है। बटलर कमेटी का यह प्रस्ताव 'कि देशी राज्यों सम्बन्धी कार्य कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल के हाथ से लेकर वायसराय को सौंपा जाय,' स्पष्टतया सूचित करता है कि अब तक देशी राज्यों का सम्बन्ध भारत-सरकार से रहा है, न कि सम्राट् से।

निदान, भारतवर्ष की सर्वोच्च सत्ता प्रत्येक समय में वह व्यक्ति या संस्था रही है, जो उस समय यहाँ की शासक हुई, चाहे दिल्ली का सम्राट् हो, या लंदन में प्रधान कार्यालय रखनेवाली ईस्ट इंडिया कम्पनी, या लंदन के महल में रहनेवाला सम्राट् हो। यह कहा जा सकता है कि इस समय सम्राट् सर्वोच्च अधिकारी है, परन्तु वह सर्वोच्च इसलिए नहीं है कि वह इङ्गलैंड का बादशाह है, वरन् इसलिए है कि उसे भारतवर्ष का शासन सौंपा हुआ है। जहाँ तक देशी राज्यों का सम्बन्ध है, भारत-सरकार ही सर्वोच्च सत्ता है; इस का प्रमाण यह है कि खिराज देनेवाले देशी राज्य उसकी रकम भारत-सरकार को देते हैं, और वह रुपया ब्रिटिश भारत की आय में जमा होता है। अगर सर्वोच्च सत्ता ब्रिटिश भारत की शासक-संस्था न होती, और इंगलैंड

की सरकार होती तो खिराज ब्रिटिश सरकार को दिया जाता और उसके हिसाब में जमा होता। इन सब बातों से स्पष्ट है कि देशी राज्यों के लिए सर्वोच्च सत्ता भारत-सरकार ही है, जैसी कि वह ब्रिटिश भारत के लिए है।*

और इस में इस बात से कोई अन्तर नहीं आता कि अब भारत सरकार पर ब्रिटिश सरकार का नियंत्रण कम हो गया है, और भारतवर्ष में उत्तरदायी शासनपद्धति प्रान्तों में प्रचलित हो गयी है, और केन्द्र में भी होने वाली है, अथवा भारतवर्ष अब स्वराज्य-भोगी होने वाला है। वास्तव में सर्वोच्च सत्ता जनता-जनार्दन में ही होती है। भारतीय राजा इस बात को सोचें और समझें। वे इस बात में गौरव अनुभव करें, और उस शुभ दिन का स्वागत करें जब वे भारतवर्ष को पराधीन रखनेवाली ब्रिटिश सरकार के सहायक न होकर जननी जन्मभूमि भारतवर्ष की जनता के सच्चे सेवक होने का अवसर प्राप्त करेंगे, जब सर्वोच्च सत्ता हमारे ही नागरिकों में होगी न कि सुदूरवर्ती किसी विदेशी शक्ति में। राजाओं ने कितना समय और द्रव्य इंगलैंड में लगाया है! उन्होंने कांग्रेस और अ० भा० देशी राज्य लोक परिषद आदि का कितना विरोध किया है। यह सब उनके अज्ञान का द्योतक है, या निकृष्ट स्वार्थ का। यदि वे जनता की सेवा और समृद्धि में लगें तो उनका भी कल्याण हो, और उनकी जन्मभूमि भारत माता का भी। क्या वे अपने कर्तव्यपालन की ओर समुचित ध्यान देंगे?

* Indian States and Br. India के आधार पर



# सातवाँ अध्याय

## राजनैतिक विभाग

यह विभाग केवल देखरेख ही नहीं करता, शासन भी करता है। इसका शासन स्वेच्छाचारी होता है, क्योंकि वह समस्त आलोचनाओं एवं प्रतिबन्धों से मुक्त है।

—निकलसन

अगर कुशासन के लिए कोई यंत्र ईजाद किया जा सकता है तो वह एक ऐसे देशी नरेश का शासन हो सकता है, जिसकी पीठ पर असली हाकिम एक ब्रिटिश रेजीडेन्ट हो।

—सर हैनरी लारेन्स

पहले बताया जा चुका है कि सन् १८५८ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी का भारतीय शासन सम्बन्धी कार्य ब्रिटिश सरकार ने ले लिया। उसी समय भारत-सरकार का एक विभाग 'विदेश विभाग' नाम से बनाया गया; पोलिटिकल एजन्ट, रेजीडेन्ट, सेक्रेटरी या अन्य निम्न कर्मचारी जो देशी राज्यों सम्बन्धी काम करते थे, वे अब विदेश-सेक्रेटरी ('फारेन सेक्रेटरी') के अधीन हो गये। विदेश-सेक्रेटरी देशी राज्यों से जो पत्र-व्यवहार या बर्ताव करता था, उसके लिए वह वायसराय के प्रति उत्तरदायी होता था। भारतवर्ष के बाहरी सम्बन्ध ( जिनमें सीमा तथा फारस की खाड़ी का सम्बन्ध भी

सम्मिलित था ) रखने का काम भी उसी के जिम्मे था। विदेश विभाग में काम करने के लिए उम्मीदवारों की भर्ती अधिकांश में सैनिक व्यक्तियों में से होती थी।

सन् १९१५ में योरपीय महायुद्ध के कारण काम बढ़ जाने पर एक राजनैतिक सेक्रेटरी, देशी राज्यों से सम्बन्धित काम को संभालने के लिए, नियुक्त किया गया। अब विदेश-सेक्रेटरी का कर्तव्य केवल बाहरी विषयों तक परिमित रह गया। इन दोनों अधिकारियों के अधीन कई सौ बड़े-बड़े अफसर तथा असंख्य छोटे-छोटे कर्मचारी होते हैं।

भारत-सरकार का राजनैतिक विभाग देशी राज्यों के शासन की निगरानी करता है। यह विभाग वायसराय के सुपुर्द है, जो केन्द्रीय प्रबन्धकारिणी सभा का प्रमुख सदस्य है। वह प्रति सप्ताह देशी राज्यों के सम्बन्ध में राजनैतिक सेक्रेटरी से परामर्श करता है, और अगर चाहे तो किसी विषय को भारत-मंत्री के विचारार्थ इंगलैंड भेज सकता है। भारत-मंत्री को सलाह देने के लिए इंडिया-कौंसिल नामक सभा है।

वायसराय का ध्यान देश भर के शासन सम्बन्धी विषयों में बटा रहता है। यद्यपि वह समय-समय पर राजाओं से सम्पर्क बढ़ाने के लिए देशी राज्यों में दौरा करता है, तथा नरेन्द्र मंडल का संगठन हो जाने से उसे नरेशों से मिलने-जुलने का प्रसंग पहले की अपेक्षा अधिक आने लगा है, यह स्पष्ट ही है कि उसे देशी राज्यों के ब्यौरे-वार मामलों में सोचने-विचारने का यथेष्ट अवसर नहीं मिलता। इसलिए

राजनैतिक विभाग का नियंत्रण पोलिटिकल सेक्रेटरी करता है। वायसराय को किसी विषय का विचार करना होता है तो उसके सामने अंकों तथा तथ्यों की वही सामग्री आती है, जो पोलिटिकल सेक्रेटरी उसके लिए तैयार करके रख देता है। अनेक बार ऐसा भी होता है कि पोलिटिकल सेक्रेटरी को भी देशी राज्यों के महान और जटिल विषयों का यथेष्ट ज्ञान नहीं होता, और वह उसी सामग्री पर विचार करता है, जो उसके अधीन सेक्रेटरी उपस्थित करते हैं। इस प्रकार बहुधा राजनैतिक विभाग के अधीन सेक्रेटरी किसी मामले को जैसा रूप देना चाहते हैं, वैसा देने में समर्थ हो जाते हैं। इस से इन निम्न कर्मचारियों का महत्व स्पष्ट है। राजा प्रायः इस रहस्य को जानते हैं, इसलिए वे यथा-सम्भव इनकी कृपा-दृष्टि प्राप्त करने के इच्छुक रहते हैं।

स्मरण रहे कि सन् १६१७ तक थोड़े से देशी राज्यों का राजनैतिक सम्बन्ध कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल अर्थात् भारत-सरकार से रहता था, और शेष का प्रान्तीय सरकारों से, जो भारत-सरकार के एजन्ट की भाँति काम करती थीं। इस प्रकार मांट-फोर्ड रिपोर्ट में कहा गया है कि "वर्तमान स्थिति यह है कि चार बड़े-बड़े और एक छोटा राज्य अपने रेजीडेण्ट के द्वारा भारत-सरकार से सीधा सम्बन्ध रखते हैं, परन्तु मध्यप्रदेश में लगभग १५० राज्य, राजपूताने में लगभग २०, और बलोचिस्तान में २ राज्य गवर्नर-जनरल के एजन्ट के मातहत हैं। अन्य समस्त राज्य प्रान्तीय सरकारों से सम्बन्ध रखते हैं।" उपर्युक्त रिपोर्ट के लेखकों को यह व्यवस्था संतोषजनक प्रतीत न हुई,

और उन्होंने यह सिफारिश की कि 'सब बड़े-बड़े राज्यों का सम्बन्ध सीधे केन्द्रीय सरकार के साथ कर दिया जाय।' इस सिफारिश पर क्रमशः अमल होता रहा है। इस समय स्थिति यह है कि केवल आसाम के राज्यों को छोड़ कर भारतवर्ष के किसी भी राज्य का सम्बन्ध प्रान्तीय शासक से नहीं है; सब का सम्बन्ध सम्राट्-प्रतिनिधि से रखा गया है। पुनः अधिकांश राज्यों का सम्बन्ध राजनैतिक विभाग से, और कुछ का विदेश-विभाग से है। कशमीर, हैदराबाद, गवालियर और मैसूर का एक-एक रेजीडेन्ट विशेषतया इन्हीं राज्यों सम्बन्धी काम के लिए है। इनमें से किसी राज्य का सम्राट्-प्रतिनिधि से जो पत्र-व्यवहार आदि होता है, वह उस राज्य के रेजीडेन्ट द्वारा ही होता है। अन्य रेजीडेन्ट कई-कई राज्यों या किसी राज्य-समूह सम्बन्धी काम करते हैं। इनके अधीन प्रायः दो-तीन पोलिटिकल एजन्ट या छोटे रेजीडेन्ट होते हैं जो बहुत से छोटे-छोटे राज्यों सम्बन्धी कार्य निपटाते हैं। इन राज्यों तथा सम्राट् प्रतिनिधि में होनेवाला पत्र-व्यवहार क्रमशः पोलिटिकल एजन्ट और रेजीडेन्ट के द्वारा होता है। यह तो राजनैतिक विभाग से सम्बन्ध रखने वाले राज्यों की बात हुई; अन्य ( विदेश विभाग से सम्बन्धित ) राज्यों में से भूटान और सिक्कम में पोलिटिकल अफसर है, बलोचिस्तान में रेजीडेन्ट है और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के राज्यों में उस प्रान्त का गवर्नर ही पोलिटिकल एजन्ट है।

इस प्रसंग में यह बात ध्यान देने की है कि यद्यपि सन् १८५८ में भारतीय शासन-प्रबन्ध ब्रिटिश पार्लिमेंट के हाथ में चले जाने के समय से ब्रिटिश अधिकारियों की नीति ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों को

एक सूत्र में लाने की ओर रही; और रेल, डाक, तार, मुद्रा आदि द्वारा ही नहीं, देशी नरेशों को राजनैतिक तथा साम्राज्य सम्बन्धी विषयों में सम्मिलित करने से भी इसमें प्रगति हुई, तथापि सन् १९१७ ई० की घोषणा के बाद ब्रिटिश सरकार का विचार देशी राज्यों को ब्रिटिश भारत से अलग रखने की ओर होने लगा। कारण, प्रान्तों में उत्तरदायी शासन स्थापित होता देख कर अधिकारियों की स्वभावतः यह इच्छा हुई कि देशी राज्यों को लोकमत के प्रभाव से तथा जनता के प्रति उत्तर-दायी सरकारों के नियंत्रण से सुरक्षित रखा जाय। संयोग से राजाओं ने भी इसी में अपना हित समझा। इस विषय पर विशेष प्रकाश पहले डाला जा चुका है। अस्तु, पीछे जा कर इस दिशा में एक कदम और बढ़ाया गया, देशी राज्यों को कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल (भारत-सरकार) के नियंत्रण में न रहने देकर अकेले वायसराय (सम्राट्-प्रतिनिधि) से सम्बन्धित करने का विचार होने लगा। बटलर कमेटी ने भी ऐसी ही सिफारिश कर दी। पीछे सन् १९३५ के भारतीय शासन-विधान में इसी प्रकार की व्यवस्था की गयी। अब देशी राज्यों का सम्बन्ध सम्राट्-प्रतिनिधि से कर दिया गया है। इस विषय में विशेष विचार आगे संघ शासन के प्रसंग में किया जायगा।

अब हम राजनैतिक विभाग के अधिकारियों के अधिकारों और कर्तव्यों का विचार करें। आरम्भ में उन का कार्य केवल यह देखते रहना होता था कि देशी राज्य, कम्पनी के अतिरिक्त, किसी अन्य बाहरी शक्ति से सम्बन्ध न रखें। पीछे, जब संधियों में आश्रित सहकारिता की बात आने लगी, तो पोलिटिकल एजन्टों के अधिकार बहुत बढ़ गये।

अब सरकार शक्तिशाली थी। पोलिटिकल अफसरों को सैनिक साधनों का सहारा था, वे अब अंगरेजों और देशी राज्यों के बीच में मध्यस्थ मात्र न होकर अधिनायक या 'डिक्टेटर' हो चले। वर्तमान स्थिति में सिद्धान्त की दृष्टि से चाहे जो कहा जाय, व्यावहारिक बात यह है कि रेजीडेन्ट से लेकर नीचे तक जितने पोलिटिकल अफसर हैं, इनके अधिकार यथेष्ट रूप से निर्धारित नहीं हैं। वे चाहें तो राजाओं के सगाई-विवाह जैसे व्यक्तिगत विषय में भी हस्तक्षेप कर सकते हैं, और उनकी इच्छा न हो तो हत्या या दमन जैसे गम्भीर विषय की ओर भी उदासीनता धारण कर लेते हैं। उनका व्यवहार बहुत-कुछ राज्य के महत्व तथा राजा की निर्बलता या सबलता पर निर्भर होता है। इसके अतिरिक्त वे वायसराय की नीति से भी बहुत प्रभावित होते हैं। सख्त वायसराय राजाओं पर दबाव डालना भी ठीक समझता है और नर्म प्रकृति वाला वायसराय परामर्श या उपदेश देकर ही संतोष कर लेगा। अस्तु, न तो पोलिटिकल अफसरों को ही यह ज्ञात होता है कि उनके क्या-क्या अधिकार है, और न राजा या प्रजा को ही इस सम्बन्ध में कुछ निश्चित ज्ञान होता है। सब अन्धकार में रहते हैं। राजनैतिक विभाग का कार्य गुप्त रूप से गुप-चुप होता रहता है, समय-समय पर तरह-तरह की कानाफूसी होती है, सर्वत्र आशंका का वातावरण रहता है; अभी आकाश निर्मल है तो क्या, कौन जाने कितनी देर में आंधी तूफान का दृश्य विद्यमान हो जाय।

ऊपर राजनैतिक विभाग में काम करनेवालों के अधिकारों का विचार किया गया है, अधिकारों की भांति उनके कर्तव्य भी निर्धारित

नहीं हैं। भिन्न-भिन्न राज्यों की पृथक् पृथक् परिस्थिति तथा अन्य बातों के अनुसार उनके कार्य भी कहीं कम और कहीं अधिक होते हैं। भारत-सरकार और राजाओं में जो पत्र-व्यवहार होता है, वह इनके ही द्वारा होता है। ये देशी राज्यों में होने वाली घटनाओं का ज्ञान रखते हैं और भारत-सरकार को अपने-अपने क्षेत्र के राजा के साधन, व्यवहार और शासन के विषय में सूचित करते हैं, ये राजा को राज्य सम्बन्धी आन्तिरिक एवं बाहरी मामलों में परामर्श और सहायता करते हैं, और आवश्यकता होने पर ये उसके, तथा प्रजा या पड़ौसियों के बीच में मध्यस्थ का कार्य करते हैं। इनकी कार्यपद्धति का एक विशेष लक्षण यह है कि सब कार्य या पत्र-व्यवहार आदि गुप्त रीति से होता है, देश काल के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है, कोई बाहरी आदमी उसे न जानता है, और न समझ सकता है; सब अपनी-अपनी समझ के अनुसार उसका अनुमान ही किया करते हैं। कभी-कभी तो रेजीडेन्सी में उस क्षेत्र के किसी राजा के विरुद्ध कूट षड्यन्त्र तक का कार्य होता रहता है और लोगों को उसका पता नहीं लगता।

"आश्रित सहकारिता नीति सम्बन्धी गलत धारणा के कारण पोलिटिकल एजन्ट निराली शक्ति वाला हो गया है। वह न्याय सम्बन्धी अफसर है, जो सब राज्यों में योरपियनों के और कहीं-कहीं ब्रिटिश भारत वालों के मामले निपटाता है। उसे आयात-निर्यात कर से मुक्ति, और व्यक्तिगत विशेष सम्मान का ऐसा अधिकार होता है, जो राज्य के किसी भी व्यक्ति को नहीं होता। देशी राज्यों के लिए वही भारत-

सरकार का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसे भिन्न-भिन्न प्रकार के अधिकारों के संयोग से रेजीडेन्ट को देशी राज्यों की आश्रित सहकारिता का अर्थ यह लगाने की प्रवृत्ति होती है कि जो कुछ हमारी इच्छा हो, उसे राजा लोग विना किसी हुज्जत के मान्य करें।"*

नरेन्द्र मंडल के सभापति ने बटलर कमेटी के सामने कहा था कि 'राजा और उसका शासन पोलिटिकल अफसर की आज्ञा के अधीन समझा जाता है।......भारतवर्ष के राजा यह निस्संकोच रूप से स्वीकार करते हैं कि संधियों के अनुसार सम्राट् को यह अधिकार है कि घोर अन्याय या कुशासन का निवारण करने के लिए वह अपनी सत्ता का उपयोग करे। परन्तु हमारा यह स्पष्ट मत है कि इससे भारत-सरकार के एजन्टों को यह अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता कि वे राज्यों के भीतरी शासन-प्रबन्ध में अपनी इच्छानुसार हस्तक्षेप करें।'

जब कभी राजा अपने स्वास्थ्य-सुधार आदि के कारण अपने राज्य से बाहर चला जाता है, तो पोलिटिकल अफसरों का हस्तक्षेप खूब ही बढ़ जाता है। राजाओं की नाबालगी तथा रिजेन्सी के समय तो शासन में उनका बहुत ही हाथ रहता है। इसका विचार अन्यत्र किया जा चुका है।

इस प्रकार का शासन है, जो देशी राज्यों में, सरकार के राज-नैतिक विभाग की देखरेख में होता है। सरकार इसे ऐसा बुरा क्यों होने देती है, इसके कई कारण हो सकते हैं। उनका यहाँ विचार न कर केवल यही कहना अभीष्ट है कि सरकार अपने इस विभाग को

* The British Crown and Indian States.

कारगुजारी से ही तो जनता के सामने गर्वपूर्वक यह कह सकती हैं कि देखो हिन्दुस्तानियों द्वारा राजकार्य ऐसा होता है, और यहाँ की अपेक्षा ब्रिटिश भारत का शासन कितना अच्छा है।

# आठवाँ अध्याय

## एजन्सी और रेज़ीडेन्सी

रियासतों की असली शासक अंगरेज सरकार है, जो अपने रेजीडेन्टों और पोलिटिकल एजन्टों की मारफत वास्तविक अधिकार का उपयोग करती है।

—डा० कैलाशनाथ काटजू

पिछले अध्याय में यह बताया गया है कि देशी राज्यों के शासन का निरीक्षण और नियंत्रण पोलिटिकल एजन्ट और रेजीडेन्ट आदि सरकारी अधिकारी करते हैं। अब यह बताया जाता है कि रेजीडेन्सी और एजन्सियों का संगठन किस प्रकार हुआ है, और किस एजन्सी या रेजीडेन्सी में मुख्य-मुख्य रियासतें कौन-कौन सी हैं। स्मरण रहे कि इस विषय में कोई निर्धारित व्यवस्था नहीं है कि अमुक रियासत अमुक एजन्सी या रेजीडेन्सी में ही रहेगी। समय-समय पर, सरकार जैसा उचित समझती है, इसमें परिवर्तन करती रहती है। सन् १९४० के सरकारी प्रकाशन के अनुसार, सरकार से सम्बन्ध रखने की दृष्टि से, देशी राज्यों का विभाजन इस प्रकार है:—

## (क) राजनैतिक विभाग से सम्बन्धित या उसके अधीन

| | |
|---|---|
| आसाम | १६ |
| कश्मीर | ३ |
| कोल्हापुर दक्षिण राज्य एजन्सी | १८ |
| गवालियर रेजीडेन्सी | ४ |
| पश्चिम भारत राज्य एजन्सी | २८५ |
| पूर्वी राज्य एजन्सी | ४२ |
| पंजाब राज्य एजन्सी | ३६ |
| बड़ौदा और गुजरात राज्य एजन्सी | ८२ |
| मदरास राज्य | ३ |
| मध्य भारत | ५८ |
| मैसूर | ३ |
| राजपूताना | २३ |
| हैदराबाद | १ |

## (ख) विदेश विभाग से सम्बन्धित या उसके अधीन

| | |
|---|---|
| पश्चिमोत्तर सीमा एजन्सी | ५ |
| बलोचिस्तान एजन्सी | ३ |
| भूटान | १ |
| सिक्कम | १ |
| योग | ५८४ |

**आसाम**—राजनैतिक विभाग से, इस प्रान्त की रियासतों का सम्बन्ध, आसाम के गवर्नर द्वारा है। वह शिलांग में रहता है। इस प्रान्त की मुख्य रियासत मनिपुर है, उसका 'पोलिटिकल एजन्ट और सुपरिंटैन्डैन्ट' मनिपुर में ही रहता है। आसाम में, इसके अतिरिक्त १५ खासी राज्य हैं, ये बहुत छोटे-छोटे हैं। इनका कुल क्षेत्रफल ३,६०० वर्गमील है। इनका पोलिटिकल अफसर खासी और जैंतिया पहाड़ियों का चीफकमिश्नर है।

**कशमीर**—इस राज्य का भारत-सरकार से सम्बन्ध पहले पंजाब सरकार द्वारा था। सन् १८७७ से भारत-सरकार से सीधा सम्बन्ध हुआ। सन् १८८५ ई० यहाँ कार्य करने वाला सरकारी अधिकारी रेजीडेंट कहलाने लगा, वह श्रीनगर में रहता है, जो कशमीर की राजधानी है। उसकी अधीनता में, गिलगिट में एक पोलिटिकल एजंट रहता है, जो पास की हुंजा और नागिर रियासतों के शासन के लिए उत्तरदायी समझा जाता है।

**कोल्हापुर और दक्षिण राज्य एजन्सी**—इस में १७ रियासतें तथा १ इस्टेट है। कोल्हापुर के अतिरिक्त अन्य उल्लेखनीय राज्य अक्कलकोट, औंध, भोर, जंजीरा, मुधोल, सांगली और सावंतवाड़ी है। इनमें से औंध ने प्रतिनिधि-शासन में प्रगति करके अच्छी ख्याति प्राप्त की है। रेजीडेन्ट कोल्हापुर में रहता है।

**गवालियर रेजीडैन्सी**—सन् १६२१ ई० से गवालियर का सीधा भारत-सरकार से सम्बन्ध हुआ। रामपुर और बनारस राज्य पहले संयुक्तप्रान्त के गवर्नर से सम्बन्धित थे, १६३६ से वे इस

रेज़ीडेन्सी में सम्मिलित है। खनियाधाना राज्य बुन्देलखंड एजन्सी से पृथक् किया जाकर १८८८ ई० से इस रेज़ीडेन्सी के साथ मिलाया गया है।

**पश्चिम भारत राज्य एजन्सी**—इस एजन्सी के राज्य सन् १६२४ ई० से पहले बम्बई-सरकार के अधीन थे। उस वर्ष से ये भारत-सरकार से सम्बन्धित हुए, पीछे इनका पुनर्वितरण हुआ। अब सलामीवाले १६ राज्य तथा गैर-सलामीवाले दो राज्यों का रेज़ीडेन्ट से सीधा सम्बन्ध है, अन्य राज्यों के लिए एजन्सी तीन छोटी एजन्सियों में विभक्त है—(१) पश्चिम काठियावाड़ एजन्सी, (२) पूर्वी काठियावाड़ एजन्सी और (३) साबरकांठा एजन्सी। रेज़ीडेन्ट से सीधा सम्बन्ध रखनेवाले सलामीवाले १६ राज्य ये हैं:—भावनगर, कच्छ, ध्रांगध्रा, ध्रोल, गोंडल, ईडर, जूनागढ़, लिम्बड़ी, मोर्वी, नवानगर, पालिताना, पोरबन्दर, राधनपुर, राजकोट, वधवान और वांकानेर। रेज़ीडेन्ट राजकोट में रहता है।

पश्चिम काठियावाड़ एजन्सी में ४५ गैर-सलामीवाले अख्ति-यारी (जुरिस्डिक्शनरी) राज्य और तालुके हैं तथा ४ थाने हैं। पोलिटिकल एजन्ट राजकोट में रहता है। पूर्वी काठियावाड़ एजन्सी में १५ गैर-सलामीवाले अख्तियारी राज्य हैं, और ६६ बेअख्तियारी स्टेट या तालुके हैं। पोलिटिकल एजंट का सदर मुकाम वधवान है। साबरकांठा एजन्सी का पोलिटिकल एजन्ट सद्रा में रहता है। इसमें ४६ गैर-सलामीवाले अख्तियारी राज्य और १३ बेअख्तियारी स्टेट या तालुके हैं। इन राज्यों में से कितने ही तो बहुत

ही छोटे-छोटे हैं, यहाँ तक कि उनका क्षेत्रफल एक-एक वर्ग मील से कम और जन-संख्या सौ-डेढ़सौ ही है। कितनी ही रियासतों की जन-संख्या तो अलग-अलग प्रकाशित ही नहीं की गयी है, किसी थाने में मिलाकर दिखायी गयी है। काठियावाड़ के उन छोटे राज्यों के सम्बन्ध में, जो बड़ौदा राज्य की सीमा से मिले हुए हैं, सरकार ने एक कमीशन बैठाया था, उसने उन्हें बड़ौदा में मिलाये जाने के पक्ष में सम्मति दी है।

**पूर्वी राज्य एजन्सी**—जिन रियासतों का पहले बंगाल, बिहार, उड़ीसा, और मध्यप्रान्त ( मकरई राज्य को छोड़कर ) से सम्बन्ध था, उनका सन् १९३३ में गवर्नर-जनरल के पूर्वी राज्यों के एजन्ट द्वारा भारत-सरकार से सीधा सम्बन्ध किया गया, (मकरई भोपाल एजन्सी में सम्मिलित किया गया )। नवम्बर सन् १९३६ में नया संगठन होने पर, बंगाल की कूचविहार और त्रिपुरा रियासतों का, तथा मयूरभंज का, पूर्वी राज्यों के रेजीडेन्ट के सेक्रेटरी से सम्बन्ध किया गया, जिसका हेडक्वार्टर कलकत्ता रहा।

इसी वर्ष पुरानी रायपुर एजन्सी को छत्तीसगढ़ एजन्सी के नाम से पुनर्जीवित किया गया; इसमें बस्तर, छुईखदान, कलहंडी, कोरिया, जशपुर, कवर्धा, पटना, खैरगढ़, रायगढ़, सारङ्गगढ़, सरगुजा आदि १६ रियासते हैं।

पुरानी सम्बलपुर एजन्सी का नाम अब उड़ीसा राज्य एजन्सी है। इसमें आटगढ़, ढेंकनाल, हिंडोल, नरसिंहपुर, सरायकेला, तलचर आदि २३ रियासते हैं।

**पंजाब राज्य एजन्सी**—यह एजन्सी १९२१ में बनायी गयी, जबकि पंजाब-सरकार से सम्बन्धित १३ राज्यों का सीधा सम्बन्ध भारत-सरकार से ए० जी० जी० (गवर्नर-जनरल के एजन्ट)-पंजाब द्वारा किया गया। इस एजन्सी के सङ्गठन में पीछे परिवर्तन हुआ। इस समय एजन्ट रेजीडेन्ट कहलाता है। निम्नलिखित राज्यों का तो उससे सीधा सम्बन्ध है—पटियाला, बहावलपुर, खैरपुर, झींद, नाभा, कपूरथला, मंडी, मलेरकोटला, फरीदकोट, चम्बा, और सुकेत। पटौदी, लोहारू और दुजाना उक्त रेजीडेन्ट के सेक्रेटरी के निरीक्षण में हैं, जो अपने पद के कारण इन राज्यों का पोलिटिकल एजन्ट हैं। रेजीडेन्ट एवं उसका सेक्रेटरी लाहौर में रहते हैं।

इस एजन्सी के अन्तर्गत एक छोटी एजन्सी और है, उसका नाम पंजाब पहाड़ी राज्य एजन्सी है। इसमें २२ राज्य हैं, जिनमें से मुख्य टेहरी, सिरमौर, बिलासपुर (कहलूर) और बशहर हैं। टेहरी पहिले संयुक्तप्रान्तीय सरकार से सम्बन्धित थी। इस एजन्सी का पोलिटिकल एजन्ट शिमला में रहता है।

**बड़ौदा और गुजरात राज्य एजन्सी**—पूर्ण अधिकार वाले जिन राज्यों का सन् १९३३ ई० से पहले बम्बई-सरकार से राजनैतिक सम्बन्ध था, उनका उक्त वर्ष बड़ौदा और गुजरात-राज्यों के रेजीडेन्ट द्वारा भारत-सरकार से सम्बन्ध स्थापित किया गया। अब इस एजन्सी में ८२ राज्य हैं, इनमें से जो १२ राज्य भारत-सरकार से सीधे सम्बन्धित हैं, वे ये हैं:—बड़ौदा, बालसिनोर, बांसडा, बरिया,

केम्बे, छोटा उदयपुर, धरमपुर, जौहर, लूनावाडा, राजपीपला, सचिन और सन्त। इनके अतिरिक्त इस एजन्सी में जो ७० दूसरे राज्य हैं, उनका सम्बन्ध उक्त रेज़ीडेन्ट के सेक्रेटरी द्वारा है, जो रेवाकांठा, सरगना और डांग एजन्सियों का पोलिटिकल एजन्ट भी है। इन राज्यों में कितने ही ऐसे हैं, जिनका क्षेत्रफल एक वर्ग मील और जन-संख्या सौ से कम है।

**मदरास राज्य एजन्सी**—यह एजन्सी सन् १९२३ ई० में बनी, जब कि मदरास-सरकार से राजनैतिक सम्बन्ध रखने वाले राज्य एक ए० जी० जी० के सुपुर्द किये गये, जिसका पद सन् १९३७ ई० से मदरास-राज्यों का रेजीडेन्ट कर दिया गया। अब इस में तीन राज्य हैं—कोचीन, ट्रावंकोर और पदूकोटा। रेजीडेन्ट त्रिवेन्द्रम (ट्रावंकोर की राजधानी) में रहता है।

**मध्य भारत**—मध्य भारत की रियासतों के रेजीडेन्ट का प्रधान कार्यालय इन्दौर में है। उसका इन्दौर और रीवा राज्य से सीधा सम्बन्ध है। उसके अधीन भोपाल, बुन्देलखण्ड और मालवा के राज्यों के पोलिटिकल एजन्ट हैं।

भोपाल एजन्सी १८१८ में बनी; इसमें ६ सलामीवाले राज्य हैं—भोपाल, देवास सीनियर, देवास जूनियर, राजगढ़, नरसिंहगढ़, और खिलचीपुर, तथा ४ गैर-सलामीवाले राज्य हैं—कुरवई, मकराई, मोहम्मदगढ़ और पठारी। पोलिटिकल एजन्ट भोपाल में रहता है।

बुन्देलखण्ड एजन्सी १८०२ में बनी, इसमें ३३ राज्य हैं। इनमें से अजयगढ़, बावनी, दतिया ओरछा, बिजावर, चरखारी, छतरपुर, पन्ना, समथर, मैहर, और नागोद मुख्य है। पोलिटिकल एजन्ट नौगाँव में रहता है।

मालवा एजन्सी में १३ रियासतें हैं, इनमें से मुख्य धार, जावरा, रतलाम, अलीराजपुर, बरवानी, झाबुआ, सैलाना और सीतामऊ हैं। पोलिटिकल एजन्ट का सदर मुकाम इन्दौर है। सन् १९३५ के विधान के अनुसार पन्थ पिपलौदा में चीफ कमिश्नर द्वारा शासन होता है।

**मैसूर एजन्सी**—मैसूर के लिए रेजीडेन्ट सन् १७९९ ई० में नियत किया गया था; वह उस समय मदरास-सरकार के अधीन था। १८३१ से वह भारत-सरकार के अधीन रहने लगा। सन् १८४३ में उसका पद हटा दिया गया था, पीछे १८८१ में वह पुनर्जीवित किया गया। सन् १९२६ ई० में बंगनपल्ले और संदूर भी इसी राज्य में मिला लिये गये। इन तीनों राज्यों के लिए रेजीडेन्ट बंगलोर में रहता है, जो मैसूर की राजधानी है।

**राजपूताना एजन्सी**—राजपूताने में २३ राज्य हैं; इन राज्यों का रेजीडेन्ट आबू में रहता है, उसका बीकानेर राज्य से सीधा सम्बन्ध है, और उसके अधीन निम्नलिखित एजन्सियाँ हैं—(१) पूर्वी राजपूताना राज्य एजन्सी। इसमें भरतपुर, बूंदी, कोटा, करौली, झालावाड़, और धौलपुर के राज्य हैं। इनका पोलिटिकल एजन्ट भरतपुर में रहता है। (२) जयपुर रेजीडेन्सी। इसमें जयपुर के अतिरिक्त अलवर, किशनगढ़ टोंक शाहपुरा और लावा राज्य हैं। रेजीडेन्ट का सदर

मुकाम जयपुर है। (३) मेवाड़ और दक्षिण राजपूताना राज्य एजन्सी। इसमें मेवाड़ (उदयपुर), परतावगढ़, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, और कुशलगढ़ के राज्य हैं। मेवाड़ का रेजीडेन्ट इस एजन्सी के अन्य राज्यों का पोलिटिकल एजन्ट है, और वह उदयपुर नगर में रहता है। (४) पश्चिम राजपूताना राज्य एजन्सी इसमें जोधपुर, जैसलमेर, सिरोही, पालनपुर और दांता राज्य हैं। इनका रेजीडेन्ट जोधपुर में रहता है।

**हैदराबाद**—हैदराबाद की रेजीडेन्सी सन् १७७९-८० से चली आयी है। १८५३ और १९०३ के बीच में रेजीडेन्ट को बरार के तथा १८५३ से १८६० तक रायपूर आदि जिलों के शासन-प्रबन्ध का भी कार्य रहता था। अब उसे केवल हैदराबाद सम्बन्धी ही कार्य करना होता है।

**पश्चिमोत्तर सीमा एजन्सी**—इस एजन्सी में मुख्य राज्य चित्राल है; अन्य राज्य दीर, स्वात, अम्ब और फुलरा है। सन् १९०१ से पहले यहाँ के पोलिटिकल एजन्ट का भारत-सरकार के विदेश और राजनैतिक विभाग से सीधा सम्बन्ध था। उक्त वर्ष पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त एक पृथक् प्रान्त बनाये जाने पर वह सम्बन्ध इस प्रान्त के चीफ कमिश्नर द्वारा होने लगा; पीछे जब इस प्रान्त के लिए गवर्नर रहने लगा तो सम्बन्ध गवर्नर द्वारा होने की व्यवस्था की गयी। गवर्नर इस एजन्सी के लिए गवर्नर-जनरल के एजन्ट का काम करता है।

**बलोचिस्तान**—इस एजन्सी में किलात, खरां और लसबेला के राज्य हैं। ब्रिटिश बलोचिस्तान का चीफ कमिश्नर इन राज्यों का एजन्ट होता है।

**भूटान**—पहले यह बंगाल-सरकार से सम्बन्धित था। सन् १९०६ ई० से इसका सम्बन्ध भारत-सरकार से है। पोलिटिकल अफसर गंटोक (सिक्कम) में रहता है।

**सिक्कम**—यह राज्य पहले बङ्गाल-सरकार से सम्बन्धित था। सन् १९०६ ई० से इसका सम्बन्ध भारत-सरकार से है। पोलिटिकल अफसर गंटोक में रहता है।

# नवाँ अध्याय

## देशी राज्यों का वर्गीकरण

देशी राज्यों सम्बन्धी अन्य प्रश्नों पर विचार करने से पूर्व उनके वर्गीकरण के सम्बन्ध में कुछ बातें जान लेना आवश्यक है। वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया जा सकता है, हम उसके मुख्य-मुख्य स्वरूपों का ही उल्लेख करते हुए, यह विचार करेंगे कि कौनसा वर्गीकरण कहाँ तक उपयोगी है।

१—भौगोलिक दृष्टि। देशी राज्यों का भौगोलिक दृष्टि से वर्गीकरण करना बहुत आसान है। नक़शे से यह सहज ही ज्ञात हो

सकता है कि कौन सा राज्य भारतवर्ष के किस भाग में है, कौनसा राज्य इतना बड़ा है कि अकेला ही एक समूह माना जा सकता है, कौन-कौनसे राज्य इकट्ठे एक ही जगह एक-दूसरे से मिले हुए हैं, और कौन-कौन से राज्य छोटे-छोटे होते हुए भी एक-दूसरे से पृथक्-पृथक् हैं। ऐसा वर्गीकरण राज्यों की प्राकृतिक स्थिति और जल-वायु आदि समझने में सहायक हो सकता है। परन्तु राजनैतिक दृष्टि से इसका कोई महत्व नहीं है।

२—संधियाँ और सनदें। इनके सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है। इनके आधार पर भी देशी राज्यों का वर्गीकरण किया जाता है। कम्पनी के समय में स्वतंत्र संधि-राज्यों और पराधीन राज्यों में स्पष्ट भेद किया जाता था। पीछे यह बात न रही। सन् १८५७ ई० के बाद सब राज्यों से बहुत-कुछ एकसा व्यवहार करने की नीति अपनायी गयी है। सम्राट् ( ब्रिटिश नरेश ) ने मुगल बादशाह का स्थान ग्रहण कर लिया है। मुगल बादशाह को जो अधिकार प्राप्त थे, वे अब सम्राट् को प्राप्त हो गये, चाहे उनका उल्लेख संधियों में न भी हो। इस प्रकार संधियों के आधार पर किया हुआ वर्गीकरण अब प्रायः इतिहास या सरकारी कागजों का ही विषय है।

३—सलामी। लार्ड चेम्सफोर्ड को नरेन्द्र मंडल की स्थापना के सम्बन्ध में विचार करते समय यह स्वीकार करना पड़ा था कि लिखित प्रमाण अपूर्ण तथा अपर्याप्त हैं; देशी राज्यों का वर्गीकरण करने की व्यावहारिक विधि यही है कि इस बात का विचार किया जाय कि किन-किन नरेशों को परम्परा के अनुसार कितनी तोपों की

सलामी का अधिकार है।* भारतीय राजाओं में से ११८ को सलामी का सम्मान प्राप्त है। इन राजाओं में से जब कोई अपने राज्य से बाहर जाता है, या बाहर से आता है, अथवा राजा की हैसियत से ब्रिटिश भारत में आता है या यहाँ से लौटता है तो उसके सम्मान के लिए निर्धारित संख्या में तोपें छोड़ी जाती हैं, यह संख्या ६ से २१ तक होती है। किसी के लिए ६, किसी के लिए ११, १३, १५, १७, १६ या अधिक-से-अधिक २१। सलामी के तीन भेद हैं:—(क) स्थायी, जो वंश-परम्परा से मिलती आयी है, और मिलती रहेगी, (ख) व्यक्तिगत, जो किसी नरेश को उसके जीवन-काल के लिए ही हो, उसके उत्तराधिकारियों के लिए नहीं, और (ग) स्थानीय, अर्थात् राजा को केवल अपने राज्य के भीतर मिलनेवाली सलामी।

सलामी से यह अवश्य विदित होता है कि भिन्न-भिन्न राजाओं को कितना सम्मान प्राप्त है, परन्तु यह राज्यों के वर्गीकरण का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं कहा जा सकता।

३—राजाओं का सरकार से सम्बन्ध। लार्ड आलीवर का कथन है कि देशी राज्यों की तीन श्रेणियाँ हैं:—(क) वे अर्द्ध स्वाधीन राज्य जिन का भारत-सरकार से सम्बन्ध ऐसी सन्धियों पर निर्भर है जिन में आन्तरिक शासन की सत्ता और अधिकार भारत-सरकार को अर्पित नहीं किये गये हैं। (ख) वे राज्य जिनमें सरकार के हस्तक्षेप सम्बन्धी कुछ अधिकार संधियों द्वारा स्थापित हो गये हैं, और जिनकी स्वतंत्रता इसलिए स्पष्ट रूप से आंशिक है, जिन पर सरकार का प्रभावपूर्ण

* लार्ड आलिवर

निरीक्षण हो सकता है। (ग) वे सैकड़ों छोटे-छोटे राज्य जिनके पूर्ण नियंत्रण का अधिकार ब्रिटिश सरकार को है, और यह अधिकार उसने उन अन्य नरेशों से ले लिया है, जिनका उनपर पहले आधिपत्य था।

इस वर्गीकरण का आधार यह बात है कि भिन्न-भिन्न देशी राज्यों से सरकार का सम्बन्ध किस तरह का है। इसमें जनता की दृष्टि से विचार नहीं किया गया है। फिर, सरकार का सम्बन्ध विविध देशी राज्यों से इस प्रकार का है कि उसका निश्चित स्वरूप नहीं बताया जा सकता। अधिकांश राज्यों से संधियाँ नहीं हैं, तथा अनेक नयी समस्याएँ तथा परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी हैं, और कितने ही बातें किसी लिखित सूचना के आधार पर न की जाकर, राजनैतिक व्यवहार के अनुसार होती है। इसलिए यह वर्गीकरण दोषयुक्त होने के अतिरिक्त, बहुत कठिन भी है।

४—राजाओं के अधिकार। श्री० के. एम. पानीकर ने देशी राज्यों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है—(क) जिन के राजाओं को संधियों से अपने-अपने राज्य के भीतर पूर्ण और वास्तविक प्रभुता का अधिकार है। इन्हें अपने राज्य की सीमा में शासन और कानून-निर्माण की पूर्ण स्वतंत्रता है।* (ख) जिनके राजा दीवानी और फौजदारी के अधिकार तथा कानून बनाने की सत्ता का उपयोग अंशतः, और सरकार की निगरानी में ही, कर सकते हैं। (ग) जिनके

* वास्तव में किसी भी राजा को अपने राज्य में 'वास्तविक प्रभुता' या 'शासन और कानून-निर्माण की स्वतंत्रता' पूर्णतया नहीं है। यहाँ आपेक्षिक दृष्टि से ही अभिप्राय है।

राजाओं के अधिकारों का आधार सरकार द्वारा दी हुई सनदें हैं। इन्हें शासन और कानून-निर्माण का अधिकार नहीं है। इस श्रेणी में बहुसंख्यक राज्य सम्मिलित है। श्री० पानीकर जी का मत है कि इन्हें राज्य न माना जाकर विशेष सम्मान तथा अधिकारवाली जागीरें घोषित कर दिया जाना चाहिए।

यह वर्गीकरण राजाओं की दृष्टि से चाहे जितने महत्व का हो, पर राजा ही तो राज्य नहीं हैं, राज्यों के वर्गीकरण में जनता को प्रधानता मिलनी चाहिए।

५—नरेन्द्र मंडल। राजाओं की इस संस्था के विषय में विशेष रूप से आगे लिखा, जायगा। इसकी सदस्यता के विचार से राज्यों के तीन भेद हैं—(क) वे राज्य जिनके राजा पृथक्-पृथक् रूप से मंडल के सदस्य हैं। इनकी संख्या १०९ है। (ख) वे राज्य जिनके राजाओं को मिलकर अपनी ओर से १२ सदस्य मंडल में भेजने का अधिकार है। इन राजाओं की संख्या १२६ है। (ग) वे छोटे-छोटे नाम मात्र के राज्य जिनके राजाओं आदि की ओर से मंडल में कोई सदस्य नहीं है। इनकी संख्या ३४९ है। इस वर्गीकरण का आधार कितना निर्बल है, यह इसी से प्रकट है कि नरेन्द्र मंडल के संगठन में एक मुख्य विचार यह है कि नरेशों को मिलने वालीसलामी का लिहाज रखा जाय, जिसके विषय में पहले कहा जा चुका है।

६—खिराज। खिराज देने की दृष्टि से देशी राज्यों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है:—(क) वे राज्य जो सरकार को या किसी अन्य देशी राज्य को, खिराज या 'ट्रिब्यूट' देते हैं, (ख) वे राज्य

जो खिराज से मुक्त हैं। यह विभाजन एक खास विचार से किया जाता है, और कुछ वैज्ञानिक नहीं है। कुछ बड़े-बड़े राज्य भी खिराज देते हैं, जब कि अनेक छोटे-छोटे राज्य इससे मुक्त हैं। फिर, खिराज का परिमाण भी ऐतिहासिक कारणों पर निर्भर है। केवल उसके आधार पर किसी राज्य को छोटा या बड़ा नहीं ठहराया जा सकता।

७—जन-संख्या, आय आदि। प्रत्येक राज्य के सम्बन्ध में उसकी जन-संख्या और आय आदि का बड़ा महात्व होता है। जिन राज्यों की आबादी बहुत ही कम है, उनकी स्वतंत्र राज्य की हैसियत रहनी ही न चाहिए। और, जिन राज्यों की आय बहुत थोड़ी है, वे अपने यहाँ शिक्षा स्वास्थ्य आदि की भी व्यवस्था नहीं कर सकते; फिर हाईकोर्ट और व्यवस्थापक सभा आदि की तो बात ही क्या! इससे स्पष्ट है कि आय और जन-संख्या का बड़ा महत्व है। परन्तु इन्हें वर्गीकरण का आधार मानना ठीक नहीं। यदि किसी राज्य में गत वर्षों में जनता पर बहुत सख्ती करके आय बढ़ा ली गयी है और वह अब इसके कारण ऊँची श्रेणी में गिना जाने लगे तो यह सर्वथा अनुचित है। इसके विपरीत एक राज्य दूसरे राज्य से कुछ कम जन-संख्या रखने पर भी उच्च श्रेणी का हो सकता है। इस प्रकार यह वर्गीकरण भी जाँच की कसौटी पर खरा नहीं उतरता।

८—प्राचीनता या वंश-प्रतिष्ठा। भारतवर्ष में कुछ राजा इसलिए ऊंचे खानदान के माने जाते हैं, अथवा उन्हें उच्च पद दिया जाता है कि उनके किसी पूर्वज ने कोई महत्वपूर्ण सामाजिक या नैतिक आदि कार्य किया था, अथवा बड़ा त्याग और कष्ट सहा था।

उदाहरणवत् उदयपुर के राणा का विशेष आदर इसलिए किया जाता है कि राणा प्रताप ने मुगल सम्राट् की अधीनता स्वीकार नहीं की, और इस वंश की लड़की का शाही घराने से सम्बन्ध नहीं हुआ। इस प्रकार श्री० श्रीकृष्णदत्त जी पालीवाल ने लिखा है कि 'उत्पत्ति और बड़प्पन की दृष्टि से रियासतों को पाँच प्रकारों में बाँटा जा सकता है। सबसे पहले प्रकार की रियासतें राजपूताने के राजाओं की हैं, जिनका इतिहास सहस्रों वर्ष पुराना और वीरता की गौरव गाथाओं से परिपूर्ण है। दूसरे प्रकार की रियासतें उन सरदारों व गवर्नरों की हैं, जो मुगल साम्राज्य के विनाश के समय स्वतंत्र बन बैठे। तीसरे प्रकार की रियासतें उन लोगों की हैं, जिन्होंने मुगल साम्राज्य का विनाश होने पर हिन्दुस्तान में जो अराजकता फैल गयी थी, उसका लाभ उठाकर अपनी रियासतें कायम कर लीं। चौथे प्रकार की रियासतें वे हैं, जिनको ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने हिन्दुस्तान में ब्रिटिश साम्राज्य का श्रीगणेश करते समय बनाया, जैसे मैसूर और कुछ हद तक कश्मीर। पाँचवें प्रकार की रियासतें उन व्यक्तियों की हैं, जो मुगल, मराठा, साम्राज्यों के अन्त होने पर राजा बन बैठे तथा महाराजा रणजीतसिंह के सिक्ख साम्राज्य से बचने के लिए अंगरेजों की गोद में जा बैठे, यथा पटियाला, झीन्द, कपूरथला आदि।'* इस सम्बन्ध में स्मरण रहे कि कोई राज्य चिर काल तक प्राचीनता के आधार पर उच्च पद का अधिकारी नहीं बना रह सकता। व्यक्तियों की भाँति राज्यों को भी स्वावलम्बी होकर अपने ही गुणों के कारण सम्मान की आशा करनी चाहिए।

* अर्जुन—रियासत अंक

अस्तु, अपने आकार-प्रकार, भूगोल, इतिहास, पद या रुतबा, प्राचीनता, और भारत-सरकार के सम्बन्ध आदि की विभिन्नता के कारण भारतवर्ष के देशी राज्यों के वर्गीकरण का विषय बहुत जटिल है। किसी भी प्रकार से वर्गीकरण किया जाय, वह पूर्णतया संतोषप्रद नहीं हो सकता। उसमें कुछ-न-कुछ कमी रह ही जाती है। तथापि अपने-अपने दृष्टिकोण से सभी का उपयोग है। हाँ, आजकल लोक-तंत्र का युग है, और राज्य को निर्माण करनेवाला मुख्य अंग जनता होती है, इसलिए राज्यों का वर्गीकरण जनता की दशा के विचार से करना अपेक्षाकृत ठीक होगा। उन्हीं राज्यों को सर्वोच्च श्रेणी में रखना उचित है, जिन में जनता की वैधानिक राजनैतिक स्थिति दूसरे राज्यों की जनता से अच्छी है।

६—वैधानिक स्थिति। जिस राज्य की वैधानिक, राजनैतिक, या नागरिक स्थिति दूसरे राज्यों की अपेक्षा जितनी अच्छी है, उतना ही हम उसे उच्च श्रेणी में रखना उचित समझते हैं। वैधानिक दृष्टि से राज्यों के दो भेद हैं—वैध शासनवाले और अवैध शासनवाले। वैध शासन में निर्धारित कायदे कानून के अनुसार राजप्रबन्ध होता है। राजा की शक्ति मर्यादित होती है, वह मनमानी कार्यवाही नहीं कर सकता। इसके विपरीत अवैध शासन में राजा को शासन अधिकार पूर्णरूप से रहता है, उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। वह जैसा चाहता है, करता है; उस पर कानून का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता, अथवा यों कह सकते हैं कि उसकी इच्छा ही कानून है। 'राजा करे सो न्याय' का यही भाव है।

वैध शासनवाले राज्यों के कई दर्जे हो सकते हैं। पूर्णतया वैध शासन वह है जिसमें शासक पूरी तरह जनता के प्रति जिम्मेवार हो, प्रत्येक शासन-कार्य पर जनता के ही निर्वाचित प्रतिनिधियों की व्यवस्थापक सभा का नियंत्रण हो। निर्वाचन में प्रत्येक बालिग पुरुष स्त्री को मत देने का अधिकार हो। व्यवस्थापक सभा चाहे जिस मन्त्री को अपने पद से पृथक् कर सके और चाहे जिस कानून का निर्माण या संशोधन कर सके। हमारे देशी राज्यों में ऐसे पूर्ण वैध शासन का गौरव तो किसी को भी प्राप्त नहीं है। औंध ने इस दिशा में अच्छी प्रगति की है। कुछ राज्यों में शासन एक सीमा तक जनता के प्रति जिम्मेवार हैं। इनकी व्यवस्थापक सभाओं को निर्धारित अधिकार हैं, एक-एक या अधिक मन्त्री उसके प्रति उत्तरदायी हैं, उदाहरणवत मैसूर, कोचीन, ट्रावंकोर, बड़ोदा आदि; इनमें भी कुछ बातों की बड़ी कमी है। कुछ राज्यों के राजाओं ने अपने यहाँ व्यवस्थापक सभा स्थापित कर दी है और उन्हें कुछ विषय सौंपने का भी निश्चय किया है, परन्तु अभी तक इन सभाओं को व्यावहारिक स्वरूप नहीं मिला है, अथवा हाल में ही, या बहुत ही कम परिमाण में मिला है; यथा इन्दौर, ग्वालियर, कश्मीर, हैदराबाद, उदयपुर, जोधपुर, राजकोट आदि। इनमें नागरिक अधिकार अभी बहुत अल्प हैं। शासन-कार्य विविध विभागों में विभक्त है, परन्तु प्रायः केन्द्र के अतिरिक्त, अन्य स्थानों में शासन, न्याय और माल विभाग पृथक-पृथक नहीं हैं।

खेद है कि भारतवर्ष के अधिकांश देशी राज्यों में अवैध शासन पद्धति है। राजा अपने आपको राज्य का स्वामी समझता है, और प्रजा

को केवल अपने ऐश्वर्य का साधन। इन राज्यों के केन्द्रीय स्थानों में भी शासन, व्यवस्था, न्याय और माल सब प्रकार के अधिकार राजा को ही हैं। कितने ही राज्यों में अन्य प्रतिनिधि-संस्थाओं की तो बात ही क्या, एक म्युनिसिपैलिटी तक भी नहीं है। जनता की शिक्षा, स्वास्थ्य या आर्थिक उन्नति की कोई व्यवस्था नहीं। इन राज्यों की दशा देखकर लोगों के मन में इस प्रथा के प्रति घृणा के भाव बढ़ते जा रहे हैं। इस में आमूल सुधार होकर, राजाओं को पूर्णतया वैधानिक शासक होना चाहिए। इस विषय में विशेष विचार आगे किया जायगा।

# दसवाँ अध्याय

## राजा

प्रजा के सुख में राजा का सुख है, प्रजा के हित में राजा का हित है। राजा को प्रिय लगनेवाली बात राजा के लिए हितकारी नहीं है, प्रजा को प्रिय लगनेवाली बात ही राजा को हितकारी है।

—आचार्य कौटल्य

देशी राज्यों की शासनपद्धति के सम्बन्ध में विचार करते समय पहली बात जो हमारा ध्यान आकर्षित करती है, वह यह है कि इनमें एकतंत्री शासन-व्यवस्था है। इसमें प्रमुख शासनाधिकार एक व्यक्ति के हाथ में होते हैं, और उसे ये अधिकार अपने गुण-कर्मों से

नहीं मिलते, वरन् जन्म या वंश के कारण प्राप्त होते हैं, चाहे उसमें इन अधिकारों के उपयोग की योग्यता हो या न हो। प्रायः राजा का ज्येष्ठ पुत्र गद्दी का अधिकारी होता है, वह राज्य की जनता का भाग्य-विधाता होता है। राजकाज चलाने के लिए वह अधिकारियों को नियुक्त करता है, और वही उन्हें बर्खास्त भी कर सकता है। इस लिए अधिकारी उसी पर अवलम्बित होते हैं, उसकी रुचि या रुख देख कर काम करते हैं। वे जनता के प्रति अपना उत्तरदायित्व नहीं समझते। उनका प्रत्येक कार्य राजा को प्रसन्न करने के लिए होता है। इस प्रकार वे अपने आपको जनता से पृथक समझते हैं। स्वयं जनता भी अपने मूल अधिकारों या शक्ति को भूल कर राज्य की शक्ति को राजा के लिए अर्पित समझने लगती है।

इस प्रकार एकतन्त्री शासन में राजा के व्यक्तित्व का बड़ा महत्व होता है। यदि वह सुयोग्य और कर्तव्यनिष्ट हो तो वह राज्य की उत्तरोत्तर उन्नति कर सकता है, और यदि उसकी शिक्षा और संस्कार अच्छे न हुए तो शासन-प्रबन्ध बिगड़ने और उसके अधीन लाखों करोड़ों आदमियों का जीवन कष्टमय होने की आशंका रहती है। वैध राजतन्त्र में राजा के नियंत्रित होने से उसका परिणाम बहुत बुरा नहीं होने पाता, परन्तु अवैध राजतन्त्र में तो राजा अनियंत्रित रहता है, उसका जीवन प्रायः ऐश्वर्यभोगी, विलासी, आरामतलब और अत्याचारी हो जाता है। यदि अनियंत्रित राजा संयोग से अच्छा लोक-हितैषी हो तो भी इस पद्धति में यह दोष तो है ही कि जनता का अपने शासन में कोई भाग न होने से उसमें न राजनैतिक जागृति होती है, और न

राजप्रबन्ध सम्बन्धी योग्यता अथवा उत्तरदायित्व या स्वावलम्बन का भाव उत्पन्न होता है। निदान, सर्वसाधारण को अपनी शक्तियों के विकास का अवसर नहीं मिलता। फिर, राजा का पद प्रायः पैत्रिक या वंशानुगत होता है, और एक राजा चाहे जितना योग्य और प्रजा-हितैषी हो, यह आवश्यक नहीं कि उसका उत्तरधिकारी भी वैसा ही गुणवान होगा। अनेक वार सुयोग्य नरेशों के उत्तराधिकारी बहुत ही अयोग्य हुए हैं, और होते हैं।

अब हम इस बात का विचार करें कि आजकल यहाँ देशी राज्यों में साधारणतया राजा कैसा होता है। उसका रहन-सहन, पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा उसके भावी उत्तरदायित्व को पूरा करने में कहाँ तक सहायक होती हैं, एवं उनमें क्या दोष या त्रुटियाँ रह जाती हैं। प्रायः राजकुमार का बचपन में बहुत लाड-चाव और ऐश्वर्य में पालन होता है, उसके मनोरञ्जन और शौक के सब साधन उसे सुलभ होते हैं। उसे किसी प्रकार का शारीरिक या मानसिक परिश्रम करने का अभ्यास नहीं होता। उसका जीवन बड़ी आरामतलबी में बीतता है। उसके संगी-साथियों पर उसके जन्म या वंश के कारण ही बहुत प्रभाव रहता है, उसे अपने गुणों के विकास की वैसी आवश्यकता नहीं रहती। उसकी साधारण बातों की भी बहुत प्रशंसा होती है। उसके चारों ओर ऐसे व्यक्ति रहते हैं, जो जैसे-भी-बने उसे प्रसन्न करने की फिकर में रहते हैं, जिससे वे उसके पिता माता की कृपा-दृष्टि प्राप्त करें और अपना स्वार्थ सिद्ध कर सकें। राजपुत्र ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है, वह अपने जन्मजात पद और गौरव का विचार करने लगता है। जो

राजपुत्र अपने सब भाइयों में बड़ा होता है, वह तो जल्दी ही अपने आप को भावी राजा मान कर चलता है। दूसरे आदमी भी उसका बहुधा अनावश्यक और अनुचित लिहाज करते हैं। इसलिए उसके स्वभाव में कुछ अहंकार, अभिमान, आडम्बर-प्रियता, अविनय आदि सहज ही आ जाता है। युवराज की शिक्षा भी कैसी होती है ! उसके अध्यापक उसके पिता के आज्ञाकारी सेवक तो होते ही हैं, बहुधा उनमें अपनी हीनता या लघुत्व का भाव होता है। वे इस बात को बराबर ध्यान में रखते हैं कि जल्दी या देर में वह समय आने वाला है, जब कि यह युवराज गद्दी का मालिक होगा, और हम नहीं तो हमारा परिवार इसके आश्रित होगा। इसलिए वे, जहाँ तक बनता है, उसके शिक्षण में उसकी योग्यता-वृद्धि की अपेक्षा उसकी इच्छापूर्ति का ही विचार विशेष करते हैं।

सरकार ने युवराजों की शिक्षा के लिए मेयो कालिज ( अजमेर ), डेली कालिज ( इन्दौर ), राजकुमार कालिज ( राजकोट ), एचिसन कालिज ( लाहौर ) आदि कुछ विशेष शिक्षा-संस्थाओं की व्यवस्था की है। उनकी कार्यपद्धति का परिणाम मुख्यतया यह होता है कि युव-राज खूब अमीरी ढङ्ग से रहना, तथा अंगरेजों की नकल करना सीखता है। वह अंगरेजी खेल, शिकार, और मनोविनोद में समय बिताता है। वह जनता के सम्पर्क से दूर और उसकी आवश्यकताओं या हिताहित से अपरिचित रहता है, और कुछ विचित्र से विचारों वाला हो जाता है। भारत-सरकार के राजनैतिक विभाग के एक समय के उच्च पदाधि-कारी और हैदराबाद, मैसूर एवं बड़ौदा सरीखी रियासतों के रेजीडेन्ट

पदों पर अनुभव-प्राप्त सर विलयम वार्टन का कथन है कि ऐकेडेमिक (साहित्यिक) दृष्टिकोण से राजकुमारों की शिक्षा के परिणाम हास्य-जनक रह जाते हैं। उदाहरणवत् राजकुमार कालिज के एक विद्यार्थी से 'पहाड़' पर निबन्ध लिखने को कहा गया तो उसने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये—"पहाड़ वांछनीय चीज होते हैं, वे साधारणतया जंगलों से ढके रहते हैं। जंगलों का अर्थ होता है शेर। शेर वायसराय को आकर्षित करते हैं। सड़कों का पुनर्निर्माण होता है। राजा जी० सी० आई० ई० की उपाधि प्राप्त करता है और राज्य को लाभ होता है।" दूसरा नमूना लीजिए। एक राजकुमार विद्यार्थी की जाँच के लिए उससे पूछा गया कि वह अपने राज्य को ऋणमुक्त कैसे करेगा, तो उसने जवाब दिया कि "मैं अपने मंत्री का विश्वास प्राप्त कर लूंगा, और उससे सब बात जान लेने पर मैं उसे उस समय तक के लिए कैद कर दूंगा, जब तक कि वह मेरी नाबालगी में संचित सारे धन को उगल न दे।"

इस प्रकार की शिक्षा और संस्कार लिये हुए होता है, वह व्यक्ति जो यथा-समय सरकार के प्रतिनिधि द्वारा गद्दी पर बैठाया जाता है। वह यह तो पहले से ही जानता है कि वह सरकार के आश्रित है। गद्दी पर बैठाये जाने की क्रिया से वह अपनी अधीनता को और भी अच्छी तरह जान लेता है। निदान, उसके गद्दी पर बैठने से किसी भी विचारशील सज्जन के मन में, 'हितोपदेश'-रचयिता के ये भाव सहज ही आसकते हैं कि "रूप व यौवन, धन-सम्पत्ति, प्रभुता और अविवेकता में से एक-एक भी अनर्थकारी होती है, जहाँ ये चारों इकट्ठी हो जायँ,

वहाँ क्या होगा।" राजा साहब को अपने समय, शक्ति और द्रव्य पर पूरा अधिकार होता है। प्रजा की आवाज़ की परवाह न कर उन्हें केवल यह विचार रहता है कि हमारे किसी कार्य से सरकार अप्रसन्न न हो जाय। वे चाहे जब तक सोते रहते या आराम करते रहते हैं, जैसा चाहें भोजन वस्त्र, अलंकार आभूषण आदि का उपभोग करते हैं, अपनी रुचि के अनुसार महल बनवाते हैं या उनमें परिवर्तन कराते हैं। कितने ही राज्यों में लाखों रुपये की लागत के बड़े-बड़े बाग़ बगीचे आदि होने पर भी, प्रायः नया निर्माण होता रहता है, कारण, नये राजा साहब को कोई नया डिजाइन पसन्द है।

यद्यपि, बहुत से राज्यों की आय बहुत कम ही है, प्रायः प्रत्येक राज्य की जितनी भी आय है, उस पर राजा का पूर्ण अधिकार है। उस पर व्यवस्थापक सभा या नागरिकों कोई नियंत्रण नहीं। राजा इस आय के खर्च करने में बहुधा स्वच्छन्द होता है। कितने ही बड़े राज्यों में भी आय-व्यय का हिसाब प्रकाशित नहीं होता, इस प्रकार किसी को इस बात के निश्चित अंक नहीं मिलते कि किस मद्द में कितना खर्च किया गया है। यदि रिपोर्ट छपती भी है, तो वह राज्य के नागरिकों की भाषा में न होकर प्रायः अंगरेजी में होती है, सर्वसाधारण को वह बहुधा कीमत देने पर भी नहीं मिलती। पुनः रिपोर्ट में महलों या बाग़-बग़ीचों के बनाने या मरम्मत करने का खर्च सार्वजनिक निर्माण-कार्य में, और राजकुमार की शिक्षा आदि खर्च सार्वजनिक शिक्षा की मद्द में दिखाया जा सकता है। जनता की शिक्षा, स्वास्थ्य और चिकित्सा आदि की चिन्ता न कर शिकार, मनोरंजन, और विदेश-यात्रा में,

तथा कुत्ते और मोटर आदि ख़रीदने में, एवं भारत-सरकार के अफ़सरों आदि का स्वागत-सत्कार करने में असंख्य धन खर्च कर दिया जाता है। निदान, राजा राज्य की आय का अधिकांश भाग अपनी वैयक्तिक इच्छानुसार ख़र्च करते हैं। उनका स्वयं अपने लिए या राजपरिवार के वास्ते लिया जानेवाला द्रव्य निर्धारित नहीं होता, और यदि निर्धारित भी होता है तो प्रायः उसकी मात्रा काफी अधिक होती है; उसमें सर्वसाधारण की आर्थिक स्थिति तथा आवश्यकताओं का यथेष्ट ध्यान नहीं रखा जाता। विविध राज्यों द्वारा प्रकाशित रिपोर्टों के आधार पर, श्री. चूडगर जी ने राजाओं के व्यक्तिगत तथा महलों पर होनेवाले खर्च का उनकी कुल आमदनी से अनुपात इस प्रकार बतलाया है:—कशमीर २०, बीकानेर २०, इन्दौर १७, अलवर २५, पटियाला २५, कपूरथला २५, कच्छ २५ और नवानगर ४५ प्रतिशत।*

जब ख़र्च करने को रुपया पास होता है, और कोई उत्तरदायित्व या नियंत्रण नहीं होता तो आदमी को नाना प्रकार के शौक लग जाना स्वभाविक ही है। बड़ों के शौक भी बड़े ही होते हैं। कुत्ते, मोटर, महल विलायती ढङ्ग के रहन-सहन और साजोसामान से भी संतुष्ट न हो, कितने ही राजाओं को विलायत-यात्रा का शौक लग जाता है। जब यहाँ मन नहीं लगता, ये विलायत चल देते हैं, और वहाँ जी खोल कर बेदर्दी से रुपया ख़र्च करते रहते हैं।

---

* महाराज बीकानेर ने अपना निजी व्यय परिमित करने की घोषणा की है; इस पुस्तक के दूसरे भाग में 'बीकानेर' शीर्षक अध्याय देखिए।

देशी राजाओं की प्रकृति स्वयं तो ख़र्चीली है ही, उन्हें कुछ दशाओं में बहुत सा व्यय इस लिए भी करना होता है कि सरकार से उनका इस तरह का सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ इन्दौर और ग्वालियर आदि प्रति वर्ष लाखों रुपया सेना की मद्द में ख़र्च करते हैं जो उनकी आय का एक महत्वपूर्ण भाग होता है। यह स्पष्ट है कि इन राज्यों के लिए ऐसी सेना पर रुपया ख़र्च करना, जिसका इनके लिए कुछ उपयोग न हो, सर्वथा अपव्यय है।

अब राजाओं की दिनचर्या का विचार करें। विलायत-यात्रा आदि के समय की बात तो छोड़ ही दें। प्रायः राजा लोग अपनी राजधानी में रहते हुए भी राजकाज सँभालने का कष्ट कम उठाते हैं। कभी वे किसी दूसरे राजा आदि के यहाँ जाते हैं, कभी कुछ मेहमान उनके यहाँ आते हैं। खेल-कूद, हवाखोरी या शिकार आदि तो नित्य का काम है ही। फिर, प्रत्येक राजा को कुछ अपना-अपना शौक या व्यसन भी रहता है। खाने-पीने, सोने, आराम करने व दिल बहलाने तथा उपर्युक्त बातों को करते हुए अवकाश ही क्या मिलता है! और, हाँ, थोड़ा-बहुत समय राजा साहब को अपने यहाँ के रईसों, सरदारों जागीरदारों आदि से मिलने-भेंटने को भी तो चाहिए। निदान, राज्य-शासन के तथा सार्व-जानिक कार्यों के लिए न उन्हें समय मिलता है और न उन्हें समय निकालने की चिन्ता रहती है। सर्वसाधारण जनता के आदमियों से मिलकर उनकी परिस्थिति और आवश्यकताओं का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना राजा साहब की शान के खिलाफ होता है। बहुधा अच्छे-अच्छे प्रतिष्ठित कार्यकर्ताओं या विद्वानों को भी उनके दर्शन दुर्लभ होते हैं।

उनके अधिकांश दर्शनाभिलाषियों को प्रधान मन्त्री आदि से ही भेंट करने की अनुमति मिल जाय तो गनीमत है। राजा साहब के पास उनके अधीन उच्च पदाधिकारियों तथा निजी नौकरों के अतिरिक्त ऐसे ही आदमियों की पहुँच होती है जो खुशामदी और ठकुरसुहाती बातें करने में कुशल होने के अतिरिक्ति, धनी-मानी हों और 'राजभक्ति' में प्रवीण हों, और समय-समय पर ऐसे कार्यों में धन-व्यय करते हों, जिनसे उनकी खैरख्वाही सूचित हो।

कभी-कभी राजा साहब अपना प्रजानुराग दिखाने के लिए अपने राज्य में दौरा करने का भी कष्ट उठाते हैं। 'दौरा' उन्हीं स्थानों में होता है, जहाँ प्रधान मन्त्री आदि ठीक समझते हैं। दौरे के लिए पहले तैयारी की जाती है। उन रास्तों की सड़क कुछ ठीक करा दी जाती है, जहाँ से राजा साहब जानेवाले होते हैं। जहाँ राजा साहब का मुकाम होता है, वहाँ कौन-कौन व्यक्ति या संस्थाएँ किस-किस प्रकार स्वागत-सत्कार करेंगे कहाँ-कहाँ अभिनन्दन-पत्र दिया जायगा, उसमें क्या-क्या बातें कही जायँगी, और उनका क्या उत्तर देना ठीक होगा, इसका विचार यथा-सम्भव पहले ही कर लिया जाता है। निदान, सब काम निर्धारित योजना के अनुसार होता है, राजा साहब को शान्ति-पूर्वक जनता की शिकायतें सुनने का अवसर नहीं मिलता। और यदि राजा साहब अपनी मौखिक सहानुभूति दर्शाने के लिए किसी से कुछ पूछते भी हैं, तो उस कृत्रिम आडम्बरमय वातावरण में बेचारे प्रजाजनों को यह हिम्मत नहीं होती कि कोई स्पष्ट सच्ची बात कहें। ऐसा करने से उन्हें आशंका होती है कि कहीं उन्हें पीछे अधिकारियों का

कोप-भाजन न बनना पड़े। बस, वे शिष्टाचार निभाने के लिए कह देते हैं, 'महाराज की छत्रछाया में हमें सब सुख ही सुख है, कष्ट का कहीं पता भी नहीं।' जनता के ऐसे उत्तर की, अधिकारी पीछे खूब विज्ञप्ति करके जहाँ-तहाँ यश के भागी बना करते हैं। अस्तु, दौरे की बात यहाँ ही समाप्त की जाती है।

जब राजा साहब राजधानी में होते हैं, और उनकी तबियत भी ठीक होती है ( यह संयोग कम ही होता है ), तो इच्छा होने पर घन्टे-दो-घन्टे के लिए राजकीय कार्य देखने का कष्ट उठाते हैं। बहुत से कागज ऐसे रहते हैं, जिन पर नियमानुसार उनकी आज्ञा की आवश्यकता होती है। इनका मसविदा बना-बनाया तैयार रहता है, प्राइवेट सेक्रेटरी इन्हें क्रमशः पेश करता है, और किसी-किसी के बारे में कुछ शब्द कहता रहता है, राजा साहब इन पर अपने हस्ताक्षर कर देते हैं। इसके उपरान्त पूछ लेते हैं कि और कोई आवश्यक कार्य तो नहीं है। प्राइवेट सेक्रेटरी खूब होशियार होता है; वह सब पत्र-व्यवहार और लोगों की दरखास्तें आदि देखकर, जिस विशेष मामले को चाहता है, या सुविधाजनक समझता है, उसकी ही चर्चा राजा साहब से करता है। शेष सब मामलों को अनावश्यक मानकर किसी को जाँच के लिए, किसी को दूसरे अधिकारियों की सम्मति के लिए, और किसी को किसी अन्य बात के लिए स्थगित कर देता है। इन मामलों में 'दफ़्तर की काररवाई' होती है, फाइल बनती रहती है, किसी-किसी में महीनों ही नहीं, वर्षों भी लग जाते हैं। यहाँ तक कि प्रार्थियों को कोई वास्तविक लाभ न होकर व्यर्थ की

परेशानी होती है। इसी लिए बहुत से समझदार आदमी किसी मामले को राजदरबार में उपस्थित करने की अपेक्षा चुपचाप कष्ट उठाना ही अच्छा समझते हैं। इस प्रकार अधिकांश देशी राज्यों में शासन-कार्य होता है, जिसे सुखकारी और संतोषप्रद कह कर राजा और उनके प्रशंसक खूब अभिमान किया करते हैं।

हम यहाँ इस बात को भुला देना नहीं चाहते कि कुछ राजा बहुत कुशाग्र बुद्धि, त्यागशील तथा परोपकारी भी होते हैं। वे जनता की भलाई करने के अत्यन्त इच्छुक रहते हैं, और कभी-कभी कोई मार्के का काम कर जाते हैं, और कुछ दशाओं में तो लोकहित की स्थायी व्यवस्था भी कर देते हैं। परन्तु ऐसे महानुभाव कुल मिलाकर कम ही होते हैं। साधारणतया जिस वातावरण में वे रहते हैं, उसमें उनके वैयक्तिक गुणों का विशेष विकास या उपयोग नहीं हो पाता। उन्हें राजसी ठाठ में रहना होता है। उनका सम्बन्ध उच्च या मध्य श्रेणी के कुछ खास-खास व्यक्तियों से ही होता है, और वह भी बहुधा दीवान, मंत्री या प्राइवेट सेक्रेटरी के द्वारा; उनका जनता से सीधा सम्पर्क नहीं होता। अतः वे नागरिकों की वास्तविक असुविधाओं, कष्टों और अभावों को नहीं जान पाते, और जब जान भी लेते हैं तो पूर्व इसके कि वे उसका यथेष्ट सुधार करें, दूसरे आदमियों द्वारा कुछ गलतफहमी पैदा कर दी जाती है, या कुछ ऐसी बाधाएँ उपस्थित कर दी जाती हैं, जिनका निवारण करना अकेले राजा साहब के वश का नहीं होता।

इसके अतिरिक्त, एक और बात भी चिन्तनीय है। प्रायः

राजा अपनी आलोचना सुनना नहीं चाहते। इसलिए अपने राज्य के नागरिकों को राजनैतिक सभाएँ करने या पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित करने की अनुमति बहुत कम देते हैं। बहुधा राज्यों में ऐसे भाषण या प्रकाशन ही होते हैं, जो अ-राजनैतिक हों, या जिनमें राज्य की प्रशंसा ही हो। राज्य के बाहर से आनेवाले वक्ताओं या सार्वजनिक कार्य-कर्त्ताओं, पर कड़ी निगाह रखी जाती है। यही नहीं, कुछ राज्यों में तो बाहर के इन आदमियों को ठहरानेवालों से भी अधिकारी रुष्ट रहते हैं। राज्य के जो व्यक्ति पत्र-पत्रिकाएँ मँगाते हैं, वे भी बहुधा राज-कर्मचारियों की आँखों में खटका करते हैं। फिर, राजाओं से यह तो आशा ही क्या की जाय कि ये अपने यहाँ के किसी नागरिक को किसी स्वतंत्र पत्र का प्रकाशक या सम्पादक आदि बनने का सुअवसर दें। देशी राज्यों की जन-संख्या को देखते हुए उनके पत्र-पत्रिकाओं की संख्या अत्यल्प है। और यदि इनमें से सरकारी या अर्द्ध सरकारी को अलग कर दिया जाय तो शेष की कमी बहुत ही चौंकानेवाली प्रतीत होगी।

अनेक दशाओं में तो अच्छे उन्नत कहे जानेवाले राजा भी स्पष्ट-वक्ता पत्रों के विरुद्ध कठोर और निरंकुश कार्रवाई करते हैं। जिस पत्र में उनकी किसी बात की अप्रिय आलोचना की जाती है, उसका वे अपने यहाँ आना एकदम बन्द कर देते हैं। किसी आलोचना आदि का प्रत्युत्तर देना तो वे अपनी शान के खिलाफ समझते ही हैं, बहुधा उनसे यह भी नहीं बन आता कि उपर्युक्त पत्र पर मामला चलाकर उसके सम्पादक आदि को अपनी सफाई का अवसर दें। इस प्रकार, हमारे राजा कितने असहनशील और सुकुमार हैं!

और, अँगरेज सरकार भी नरेश-रक्षा-कानून या 'प्रिंसेज प्रोटेक्शन एक्ट' ( सन् १६३३ ), आदि बना कर, उनके विषय की आलोचना को बन्द करके उनको सुकुमार बने रहने में सहायक हुई है। ऐसे राजा लोग नौ करोड़ भारतीय जनता के कर्त्ता-धर्त्ता विधाता हैं !



# ग्यारहवाँ अध्याय



## राजकर्मचारी

राजनैतिक विभाग द्वारा नामजद मंत्री ब्रिटिश सरकार के जीव होते हैं और राजा और प्रजा दोनों ही से अपना कोई सम्बन्ध नहीं समझते। वे आते हैं, और अपने मालिक अंगरेज सरकार का मतलब हल होने तक रहकर उड़ जाते हैं।

—डा० कैलाशनाथ काटजू

शासन-कार्य का जनता के लिए यथेष्ट हितकर होना या न होना, कायदे-कानूनों के अतिरिक्त, बहुत-कुछ राजकर्मचारियों की योग्यता, अनुभव और देशहितैषिता पर निर्भर होता है !

—लेखक

पिछले अध्याय में राजा के सम्बन्ध में विचार किया गया। राज-तंत्र में वह प्रमुख व्यक्ति होता है, तथापि शासन-कार्य का संचालन करनेवाले छोटे-बड़े और भी कितने ही व्यक्तियों का उसमें सहयोग होता है। इनमें दीवान या प्रधान मंत्री का पद मुख्य है। जिन राज्यों

में दीवान होता है, वहाँ अन्य सब उच्च पदाधिकारी उसके अधीन होते हैं। कहीं-कहीं दीवान प्रधान मंत्री होता है, और विविध विभागों का प्रबन्ध करनेवाले मंत्री उसके सहायक होते हैं। किसी-किसी राज्य में प्रत्येक मंत्री सीधा राजा की अधीनता में कार्य करता है। कहीं-कहीं प्रबन्धकारिणी कौंसिल है, इसके सदस्य भिन्न-भिन्न विभागों का संचालन करते हैं; हाँ, जैसा पहले सूचित किया गया है, सब पर महाराज का नियंत्रण रहता है।

राजकर्मचारियों को सार्वजनिक नौकर ( 'पबलिक सर्वेंट' ) कहा जाता है। परन्तु विचार किया जाय तो ऐसा कहना अशुद्ध है। वे वास्तव में न तो सार्वजनिक हैं ( वे अपने आपको राजा के, या राजा द्वारा नियुक्त व्यक्ति के, अधीन मानते हैं, और सार्वजनिक जनता के प्रति अपना उत्तरदायित्व नहीं समझते ), और न वे नौकर हैं ( वे अपने आपको जनता पर, तथा अपने अधीन कर्मचारियों पर हकूमत करनेवाला समझते हैं )। अधिकांश देशी राज्यों में उच्च राजकर्म-चारियों या पदाधिकारियों की भर्ती ( नियुक्ति ) की कोई निर्धारित पद्धति नहीं है; न तो वहाँ कोई पबलिक सर्विस कमीशन है, और न किस पद के लिए कैसी योग्यता वाला व्यक्ति नियुक्त होगा, इस विषय में कोई नियम ही हैं। उदाहरणार्थ दीवान पद के लिए जितने आद-मियों में न्यूनाधिक योग्यता होगी, उनमें प्रायः सफल रहने की आशा उसी को हो सकती है, जिसका राजपरिवार से बहुत सम्पर्क रहा है, अथवा जिसने राजा साहब को पहले पढ़ाया था। कभी-कभी यह भी होता है कि एक व्यक्ति साधारण योग्यता का होने पर भी पोलिटिकल

एजंट का कृपापात्र है, और उन्होंने उसके लिए लिखित या मौखिक सिफारिश कर दी है। कुछ दशाओं में राजा साहब किसी ऐसे व्यक्ति को दीवान नियुक्त कर लेते हैं, जिसने पहले सरकार की नौकरी की हो, और जो इस समय अवकाश ग्रहण करके पेन्शन ले रहा हो। निदान, यथेष्ट योग्यता-सम्पन्न, और विवेकवान सज्जन दीवान प्रायः कम ही बनता है और यदि संयोग से ऐसा हो भी जाय तो खुशामद, चुगल-खोरी और छिद्रान्वेशन आदि के वातावरण में उस भले आदमी की गुज़र होनी कठिन है।

कितने ही राज्यों में प्रधान मंत्री स्थानीय व्यक्ति न होकर राज्य से बाहर का होता है। प्रायः उसकी यह प्रवृत्ति होती है कि वह एक ओर तो राजा को अपनी खुशामद-दरामद से प्रसन्न रखने की चेष्टा करता है, और दूसरी ओर जहाँ तक बन सकता है, अपने अधीन पदों पर अपने सम्बन्धियों या मित्रों आदि की नियुक्ति करता है। इस प्रकार उसे अपने स्वार्थ-साधन की चिन्ता रहती है, वह राजकीय विषयों में यथेष्ट ध्यान नहीं देता, वह जनता की उपेक्षा करता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि राज्य की व्यवस्था बहुत बिगड़ जाने पर पोलिटिकल एजंट की ओर से फटकार पड़ती है तो प्रधान मंत्री को बदल कर उसकी जगह कोई दूसरा बाहर का ही व्यक्ति नियुक्त कर दिया जाता है। वह राजा को तो संतुष्ट रखने का प्रयत्न करता ही है, साथ में पोलिटिकल एजंट साहब को भी प्रसन्न करता रहता है। किन्तु वह प्रायः अपना स्वार्थ-सिद्ध करना नहीं भूलता, वह अपने प्रभाव का दुरुपयोग करके राज्य से अधिक-से-अधिक धन संग्रह करने

की फिकर में रहता है। कहीं-कहीं ये बाहरी प्रधान-मंत्री राज्य में बाहर के उन आदमियों को आने या रहने से मना कर देते हैं, जिन्हें वह समझते हैं कि ये जनता की सेवा या जागृति में भाग लेंगे या लोकमत को संगठित करेंगे। ऐसे समय में प्रधान मंत्री यह क्यों भूल जाते हैं कि वे स्वयं बाहर के हैं !

अनेक कर्मचारी अपने कर्तव्यपालन की ओर इतना ध्यान नहीं देते, जितना उच्च अधिकारियों को प्रसन्न करने की ओर देते हैं। ये बहुधा डाली-भेंट, रिश्वत और खुशामद आदि निन्द्य उपायों को काम में लाते हैं। इन की वेतन प्रायः कम रहती है, तथापि ये बड़े मज़े से रहते हैं; और अपने अफसरों को डाली या रिश्वत आदि से खुश रखते हैं; इससे स्पष्ट है कि ये स्वयं रिश्वतखोर होते हैं और जनता से गैर-कानूनी ढङ्ग से रुपया ऐंठते हैं। कभी-कभी कुछ अधिकारी रिश्वतखोरी की निन्दा करते हैं, तथा जिनका रिश्वत लेना साबित हो जाता है, उन्हें दंड भी दिया जाता है, परन्तु रोग का ठीक इलाज नहीं किया जाता; इसके लिए तो कर्मचारियों की वेतन का पैमाना ही ऊंचा करना आवश्यक है। कितने ही आदमी अधिक आयवाले अन्य पेशों के बजाय अल्प वेतनवाली राजकीय नौकरी अधिक पसन्द करते हैं; इसका कारण यह है कि राजकर्मचारी होने पर उन्हें एक तो 'ऊपर की आमदनी' की आशा बहुत रहती है; दूसरे, इससे उन्हें जनता पर हकूमत करने का खूब मौका मिलता है। यह बात विशेषतया पुलिस विभाग में बहुत अधिक पायी जाती है, तभी तो कहावत चल पड़ी है,

'दस के छः करदे, पर नाम दरोगा धर दे।' कुछ इने-गिने राज्यों को छोड़ कर, अन्यत्र पुलिस का जनता पर भारी आतंक रहता है। पुलिस कर्मचारी निर्धन और अशिक्षित गाँववालों पर कहाँ तक अत्याचार करते हैं, इसकी कल्पना भी अनेक पाठकों को सहज ही नहीं हो सकती। जिन कर्मचारियों को जनता का रक्षक माना जाता है, और जो जान-माल की रक्षा के लिए ही रखे जाते हैं, उनका 'भक्षक' का सा व्यवहार होना बहुत चिन्तनीय है। फिर, यदि पुलिस के अनुचित व्यवहार के कारण कोई उसके विरुद्ध कानूनी कार्रवाई करना चाहे तो उसमें सफलता प्राप्त करना प्रायः आकाश-कुसुम की तरह असम्भव है। मजिस्ट्रेटों तक को पुलिस का भय रहता है। बहुधा बड़े-बड़े पदाधिकारियों को भी जितना ध्यान पुलिस आदि राजकर्मचारियों की प्रतिष्ठा का होता है, उतना जनता के सुख या स्वाधीनता का नहीं होता। उच्च अधिकारी नीचे के कर्मचारियों का समर्थन करते रहते हैं, प्रजा के कष्ट निवारण करने का अवसर नहीं आता। अ० भा० देशी राज्य लोक परिषद आदि संस्थाओं ने छानबीन करके इस सम्बन्ध की जो प्रामाणिक रिपोर्टें प्रकाशित की हैं, उनसे इस कथन की काफी पुष्टि हो जाती है।

देशी राज्यों के कर्मचारियों के सम्बन्ध में यह शिकायत व्यापक रूप से है, कि वहाँ कोई व्यक्ति, किसी पद पर कब तक रहेगा, इसका कुछ निश्चय नहीं रहता। आज एक आदमी साधारण कर्मचारी है, और बीस रुपये माहवार पाता है; किसी व्यक्तिगत कारण से वह राजा साहब की नजर में चढ़ गया तो कल ही किसी अन्य

विभाग में उसका सौ रुपये महीने पर नियुक्त होना असम्भव नहीं; चाहे इस नये विभाग के सम्बन्ध में उसे प्रारम्भिक ज्ञान भी न हो। फिर, वेतन-वृद्धि का कोई निर्धारित नियम नहीं, एक आदमी की साल भर के भीतर ही दो-दो बार तरक्की हो जाती है, दूसरे उसके अनेक साथी कई-कई वर्ष तक अपने पुराने अल्प वेतन पर पड़े रह जाते है।

इन बातों में सुधार होने की आवश्यकता है। यद्यपि कुछ राज्यों ने पिछले दिनों इस ओर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया है, उनमें भी अभी अभीष्ट-सिद्धि के लिए बहुत काम होने की गुंजायश है। फिर, जिन देशी राज्यों ने अब तक सुधार की दिशा में कदम ही नहीं उठाया है, उनका क्या कहना! इस विषय की कुछ बातों के सम्बन्ध में विशेष अन्यत्र लिखा गया है। यहाँ हम राजकर्मचारियों की एक बात के सम्बन्ध में और विचार करलें; वह है, उनकी दलबन्दी।

प्रायः राजकर्मचारियों की पार्टीबाजी या दलबन्दी किसी सिद्धान्त पर नहीं होती। इसका आधार बड़ा विचित्र और व्यक्तिगत स्वार्थ होता है। राजा साहब की दो रानियों के एक-एक लड़का है, प्रत्येक रानी अपने पुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी बनाना चाहती है; बस, दोनों की दो पार्टियाँ हो जाती हैं। अथवा, दीवान के व्यवहार ने महारानी को भड़का दिया, दोनों में विरोध खड़ा हो गया, कुछ अधिकारी महारानी के पक्ष के हो गये, दूसरों ने दीवान का समर्थन करने में अपनी स्वार्थ-सिद्धि समझी। कहीं-कहीं यह पार्टियाँ जातिगत या

साम्प्रदायिक आधार पर होती है। राजा साहब एक खास जाति या सम्प्रदाय के है, और वे अपने कर्मचारियों की नियुक्ति में यह बात भूल नहीं सकते। बस, राज्य के कुछ उच्च पदों पर एक जाति विशेष के आदमियों का एकाधिकार सा हो जाता है। उनका एक दल बन जाता है। इससे दूसरी जातिवालों के उचित अधिकारों पर आघात पहुँचता है। वे अपना सङ्गठन करते हैं, और एक ऐसा दल बनाते हैं, जिसमें दूसरे दल के विरोधी, कई जातियों और सम्प्रदायों के, कर्मचारियों एवं अन्य व्यक्तियों का समावेश होता है। इन दोनों दलों का विरोध क्रमशः बढ़ता रहता है, और अवसर पाकर विस्फोट का रूप ग्रहण करता है। ऐसी दशाओं में अनेक बार राजा या दीवान आदि को बड़ी मुसीबतों का सामना करना पड़ता है, गृह-युद्ध की शान्ति के लिए सर्वोच्च सत्ता को हस्तक्षेप करने के लिए आमंत्रित किया जाता है, जिसका परिणाम अन्ततः राजा या प्रजा के लिए, और कभी-कभी तो दोनों के लिए ही अनिष्टकारी होता है। इससे स्पष्ट है कि राजकर्मचारियों की दलबन्दी कितनी घातक होती है।

कभी-कभी देशी राज्यों में बड़े-बड़े पदों के लिए ब्रिटिश भारत के अवकाश-प्राप्त अफसर उपयुक्त समझे जाते हैं। कुछ राजाओं का यह विचार होता है कि उनको रखने से हमारा राजप्रबन्ध दूसरों की, विशेषतया सरकार की, निगाह में अच्छा जचने लगेगा। ऐसे व्यक्तियों के अनुभव से राज्य को यथेष्ट लाभ तभी हो सकता है, जब उनकी योजना पर अमल किया जाय, और राजा की इच्छा वास्तव में कुछ सुधार करने की हो। पुनः अधिकांश अवकाश-प्राप्त अफसर तो कठोर

परिश्रम और विशेष उत्तरदायी पद का कार्य करने के लिए यथेष्ट शक्तिमान ही नहीं रहते। वे जैसे-तैसे अपना समय व्यतीत करने, राजकोष से अपने वेतन आदि का द्रव्य प्राप्त करने, और अपने मित्रों या सगे सम्बन्धियों की राज्य में अच्छे पदों पर नियुक्ति करने की फिकर में रहते हैं। कुछ अपवादों को छोड़ कर साधारणतया ऐसे व्यक्तियों से राज्य को विशेष लाभ नहीं होता।

कभी-कभी राजा लोग अपने यहाँ के किसी उच्च पद के लिए सरकार से योग्य व्यक्ति की माँग करते हैं। इस दशा में सरकार का जो आदमी देशी राज्य में भेजा जाता है उसे वहाँ बड़े आदर-मान से रखा जाता है। उसका अपने विभाग में तो खूब रौब-दौब रहता ही है, राजा साहब पर भी उसका यथेष्ट प्रभाव रहता है। हाँ, उसका कार्यकाल सीमित रहने के कारण उसका विशेष दुरुपयोग नहीं होता।

अब उस स्थिति का विचार करें, जब सरकार किसी राज्य के कुप्रबन्ध के आधार पर हस्तक्षेप करके वहाँ अपना आदमी भेजती है। किसी-किसी राज्य में हिन्दुस्तानी अफसर भी भेजा जाता है, परन्तु प्रायः, और विशेषतया बड़े-बड़े राज्यों में, सरकार इसके लिए किसी अंगरेज को ही पसन्द करती है। अंगरेज दीवान बहुधा उन राज्यों में जाते हैं जहाँ राजा राजनैतिक विभाग की कुछ उपेक्षा करते हैं, और साथ ही उनमें कुछ व्यक्तिगत दोष अथवा घरेलू झगड़े भी होते हैं। अंगरेज दीवान की भारी-भारी वेतन के कारण तो राज्य का ख़र्च बढ़ता ही है, अन्य कारणों से भी ये बहुत मँहगे पड़ते हैं। जहाँ

ये पहुँचते हैं वहाँ स्वास्थ्य, पुलिस, ऐंजिनयरी आदि विभागों के उच्च पदों पर भी अंगरेज कर्मचारियों की वृद्धि होने लगती है। इनके विविध प्रकार के ख़र्च के वास्ते रुपया जुटाने के लिए जनता पर तरह-तरह के नये कर लगाये जाते हैं। राजा को चुपचाप सब सहना पड़ता है। वह इनके प्रस्तावों के विरुद्ध बोलने का साहस नहीं कर सकता, जनता की हालत अधिकाधिक बिगड़ती जाती है। अनेक दशाओं में तो दीवान साहब उन सुधारों को भी स्थगित कर देते हैं, जो राजा साहब करनेवाले होते हैं। जो सार्वजनिक कार्यकर्ता पहले राजा साहब के कुप्रबन्ध के विरुद्ध आन्दोलन करते थे, और सरकार से सुधार की माँग करते थे, वे अब स्वयं सरकार के आदमी के विरुद्ध क्या करें! अँगरेज दीवान का व्यवहार बहुधा नितान्त सहानुभूति-शून्य होता है, वह जनता की भावनाओं का आदर नहीं करता, वह आतंक में विश्वास करता है, और कभी-कभी तो ऐसा दमन करता है, जैसा राजा साहब या हिन्दुस्तानी अफसर भी न करते। उसके सामने राजा और प्रजा दोनों दब जाते हैं, और राज्य की बहुत दुर्गति हो जाती है।

उदाहरण के लिए भरतपुर की बात लीजिए। स्व० महाराज किशनसिंह जी ने किसी प्रकार अंगरेज दीवान रख लिया। दीवान ने राज्य के हाथी, घोड़े, मोटर तथा अन्य बहुमूल्य सामान बेच डाले, कितने ही छोटे-बड़े पुराने कर्मचारियों को नौकरी से पृथक् कर दिया, बाहर के नये आदमियों की भर्ती की, जिससे खर्च खूब बढ़ा; राजपरिवार को जो कष्ट दिया, सो अलग। महाराजा साहब ने प्रजा

को अधिकार देने के लिए जिस शासन-समिति की व्यवस्था की थी, उसकी तो दीवान साहब ने तुरन्त ही अंत्येष्टि कर डाली। नागरिकों के सामाजिक तथा धार्मिक विषयों में भी अनेक अड़ंगे लगा दिये। बिना आज्ञा भाषण दिये जाने की मनाही कर दी गयी। भरतपुर के अतिरिक्त, नाभा, झालावाड़, प्रतापगढ़, टोंक, सिरोही आदि के अंगरेजी शासन पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि देशी राज्यों में अंगरेज दीवान राजाओं से भी बुरे सिद्ध हुए। वहाँ पहुँचकर इन्होंने कोई भी सुधार नहीं किया। इनके पहुँचने से देशी नरेशों की स्वच्छन्दता और भी बढ़ जाती है। जहाँ ये राजा को निकाल कर जाते हैं, वहाँ तो इनका दमन और मनमानी खूब ही होती है।

इससे सहज ही यह निष्कर्ष निकलता है कि लोगों की यह धारणा ठीक नहीं है कि सरकारी हस्तक्षेप की नीति अच्छी है, इससे राज्य में अंगरेजी शासन स्थापित होगा, कायदे कानून बनेंगे, और अंगरेज अफसरों का प्रबन्ध जनता के लिए हितकर होगा। वास्तव में जनता का प्रयत्न यह नहीं होना चाहिए कि राज्य में सरकारी हस्तक्षेप हो। उसे तो रचनात्मक कार्य के अतिरिक्त नागरिक अधिकारों की प्राप्ति और प्रतिनिधिक संस्थाओं की स्थापना के लिए उद्योग करते रहना चाहिए, चाहे मुख्य कर्मचारी हिन्दुस्तानी हो, और चाहे अंगरेज।



# बारहवाँ अध्याय

## व्यवस्थापक सभाएँ

किसी शासन का केवल स्थापित हो जाना ही उसे 'कानून द्वारा स्थापित' सिद्ध नहीं करता। वास्तविक कानून तो वही माना जायगा, जिसे जनता का नैतिक समर्थन प्राप्त हो। हमारे भारतीय नरेशों के शासन इस कसौटी पर नितान्त खोटे साबित होते हैं।

—बी० एस० ठाकुर

पिछले दो अध्यायों में राजा और राजकर्मचारियों के विषय में लिखा गया है। पहले कहा जा चुका है कि देशी राज्यों में से कुछ थोड़े-सों को छोड़कर शेष समस्त राज्यों में प्रायः राजा (प्रधान शासक) का शब्द ही कानून है, और उसके मत के अनुसार ही शासन-नीति निर्धारित होती है; नहीं-नहीं, यह कहना ठीक होगा कि जैसे घड़ी-घड़ी में उसके विचार बदलते हैं, कभी उसके मन में एक प्रकार की लहर उठती है, कभी दूसरे प्रकार की, उसी तरह राज्य की शासन-नीति में भी कोई स्थिरता नहीं होती, वह सदैव डाँवाडोल रहती है, समय-समय पर बदलती रहती है। आवश्यकता है कि इस स्वेच्छाचारिता और अवैध शासन का अन्त हो, कानून बनानेवाली व्यवस्थापक सभाओं का निर्माण हो, उनका शासन-कार्य पर यथेष्ट

नियंत्रण हो; जो शासन-नीति वे निश्चित करें, उन्हीं के अनुसार राज-प्रबन्ध हो।

व्यवस्थापक सभाओं के सम्बन्ध में देशी राज्यों की स्थिति पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि इन सभाओं का संगठन किस प्रकार होता है, कानूनों का उद्देश्य क्या होता है तथा उन्हें बनाने में अधिक-से-अधिक नागरिकों के भाग लेने की क्या आवश्यकता है।

कानून इस लिए बनाये जाते हैं कि नागरिकों की उन्नति और सुख-शान्ति की वृद्धि होती रहे। उनसे पारस्परिक व्यवहार की सुविधा होती है। परन्तु क़ानूनों का उपयोग तभी है, जब सब नागरिक उन्हें मान्य करें तथा भली-भांति उनका पालन करें। नागरिक, राज्य के क़ानूनों का पालन इसलिए करते हैं कि (१) क़ानून पालन न करने की दशा में उन्हें राज्य की ओर से दण्ड मिलता है, (२) क़ानून नागरिकों के हितार्थ बनाये जाते हैं, और (३) क़ानून बनाने में नागरिकों का हाथ होता है। इनमें से प्रथम कारण का प्रभाव विशेष स्थायी नहीं होता, केवल भय से कोई क़ानून बहुत समय तक, बहुत से नागरिकों द्वारा पालन नहीं किया जाता। अच्छा, क्या नागरिक केवल इस लिए क़ानूनों को मान्य करते हैं कि वे उनके लिए हितकर हैं? नहीं, सदैव ऐसा नहीं होता। अनेक दशाओं में बहुत से नागरिकों को क़ानूनों की उपयोगिता स्पष्ट ज्ञात नहीं होती, अथवा हर समय स्मरण नहीं रहती। नागरिकों को क़ानून का पालन करने की प्रेरणा विशेषतया इसलिए होती है कि क़ानूनों के बनाने में उनका भी हाथ

होता है। अपनी बनायी हुई चीज का आदर मान करना और उसकी अवहेलना न करना, मनुष्य का स्वभाव है। किसी राज्य में क़ानून बनाने में नागरिकों का हाथ जितना अधिक होता है, उतनी ही वहाँ नागरिकों द्वारा क़ानून-पालन की आशा अधिक होती है। अतएव प्रत्येक सभ्य और शिक्षित राज्य में यह आवश्यक समझा जाता है कि वहाँ के क़ानून अधिक से अधिक नागरिकों द्वारा बनाये जायँ।

प्राचीन समय में बहुत से छोटे-छोटे राज्यों में शासन सम्बन्धी विषयों पर निर्धारित आयु के समस्त नागरिक एकत्र होकर अपना मत प्रकट करते थे, और उनकी सर्वसम्मति या बहुसम्मति से ही क़ानून बनते थे। इस प्रकार जनता को प्रत्यक्ष रूप से अपने यहाँ के व्यवस्था-कार्य में भाग लेने का अधिकार था। जब तक राज्य बहुत छोटे रहे, यह तरीका जैसे-तैसे चलता रहा। परन्तु क्रमशः राज्यों के बड़े और विस्तृत हो जाने पर, एवं उनकी जन-संख्या बहुत बढ़ जाने पर शान्ति तथा सुगमता से कार्य सम्पादन होना असम्भव हो गया। तब यह सोचा गया कि राज्य के प्रत्येक भाग ( ग्राम या नगर ) के समस्त नागरिक, व्यवस्था-कार्य में योग देने के बजाय अपना यह अधिकार कुछ चुने हुए सज्जनों को दे दें, जो उनकी ओर से आवश्यक क़ानून की रचना किया करें। ऐसे चुने हुए सज्जन 'प्रतिनिधि' कहलाने लगे। इस प्रकार यदि राज्य की जन-संख्या लाखों ही नहीं, करोड़ों भी हो तो उनकी ओर से केवल दो-तीन सौ या अधिक आदमी उक्त कार्य कर सकते हैं। प्रतिनिधि प्रणाली से क़ानून बनाने के कार्य में लोक सत्तात्मक भावों की रक्षा करना कितना

सुविधा-जनक है, यह स्पष्ट है। इससे, सर्वसाधारण को यह संतोष रहता है कि जो आदमी क़ानून बनाते हैं, वे हमारे चुने हुए हैं, हमने उनको भेजा है, वे हमारे लाभ-हानि का विचार करके ही क़ानून बनायेंगे, मनमाने क़ानून नहीं बनायेंगे; एक प्रकार से हम अपने ही बनाये हुए क़ानूनों से शासित होंगे हम अपने ही अधीन होंगे, अर्थात् हम स्वराज्य का उपभोग करेंगे।

प्रतिनिधि-प्रणाली में जनता अर्थात् सर्वसाधारण स्वयं कानून नहीं बनाते, वरन् उनके प्रतिनिधि यह कार्य करते हैं। इस प्रणाली को अवलम्बन करनेवाले राज्य में प्रत्यक्ष प्रजातंत्र नहीं होता (उसका होना व्यावहारिक या सुविधाजनक नहीं होता), इसे परोक्ष प्रजातंत्र कह सकते हैं। आजकल संसार के अधिकांश देशों में व्यवस्थापक सभाओं का संगठन प्रतिनिधि-प्रणाली के ही आधार पर होता है।

अब हम भारतवर्ष के देशी राज्यों की व्यवस्थापक सभाओं के सम्बन्ध में विचार करते हैं। बटलर कमेटी की रिपोर्ट से मालूम होता है कि उसकी जाँच के समय ५६२ देशी राज्यों में से केवल ३० राज्यों में व्यवस्थापक सभाएँ थीं। यद्यपि कमेटी ने इस बात का उल्लेख देशी राज्यों की प्रगति के प्रसंग में किया है, तथापि उसे यह स्वीकार करना पड़ा है कि इन सभाओं में से अधिकांश केवल परामर्श देनेवाली संस्थाओं के रूप में ही है। उस समय के बाद इन सभाओं की संख्या में कुछ वृद्धि हुई है, तथापि उसमें बहुत भारी अन्तर नहीं आया है। फिर, इन व्यवस्थापक सभाओं में से भी अधिकतर में सरकारी सदस्यों की संख्या काफी है, और गैर-सरकारी सदस्य भी जनता द्वारा

निर्वाचित न होकर अधिकारियों द्वारा नामज़द किये जाते हैं, अथवा म्युनिसपैलटियों आदि द्वारा चुने जाते हैं। इस प्रकार मैसूर, ट्रावंकोर, कोचीन आदि उन्नत माने जानेवाले राज्यों में भी व्यवस्थापक सभाओं द्वारा जनता का मत इतना व्यक्त नहीं होता, जितना होना चाहिए। कितने ही आदमियों को कानून बनाने के कार्य में अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं होता, वे निर्वाचन-प्रथा का उपयोग नहीं कर पाते।

निर्वाचन या चुनाव में किन-किन नियमों का ध्यान रखा जाना चाहिए और उसके क्या उपाय हैं, यह तो एक स्वतंत्र और महान विषय है।* हम यहाँ कुछ खास-खास बातों का ही उल्लेख कर सकते हैं। मताधिकार ( अर्थात् प्रतिनिधि चुनने में मत देने का अधिकार ) राज्य के अधिक से अधिक व्यक्तियों को मिलना चाहिए, और समान रूप से मिलना चाहिए। कोई श्रेणी उससे वंचित न रहनी चाहिए, और न किसी जाति, धर्म, या पेशेवालों से कुछ विशेष रियायत होनी चाहिए। इसमें अमीर-ग़रीब, स्त्री-पुरुष, किसान-जमींदार आदि का विचार न हो; किसी के सम्पत्ति रखने या कुछ टेक्स ( कर ) देने, अथवा शिक्षित होने की शर्त न हो। हाँ, राज्य के अपरिपक्व अंग ( नाबालिगों ) और विकृत अंग ( कोढ़ी या पागलों ) को यह अधिकार मिलना उचित नहीं। इन्हें छोड़ कर अन्य सब व्यक्तियों को यह अधिकार मिलना चहिए। इसे 'बालिग मताधिकार' कहा जाता है। यह ब्रिटिश भारत की जनता को भी प्राप्त नहीं है। देशी राज्य तो इस विषय में और भी अधिक अनुदार हैं।

* इसका विवेचन हमारी 'निर्वाचन पद्धति' पुस्तक में किया गया है।

देशी राज्यों की व्यवस्थापक सभाओं की शक्ति का विचार करने के लिए हम आगे यह बताते हैं कि उन्नत राज्यों में व्यवस्थापक सभाओं के अधिकार क्या होते हैं, उन अधिकारों से जनता को क्या लाभ पहुँचता है। उससे हमें देशी राज्यों के सम्बन्ध में तुलनात्मक विचार करने में सुविधा होगी।

१—प्रश्न पूछना। व्यवस्थापक सभा के अधिवेशन में कोई सदस्य सरकार से आवश्यक विषयों का प्रश्न करके सरकार का ध्यान उसकी त्रुटियों या दोषों की ओर दिला सकता है। इससे सरकार अपनी गलती का तुरन्त सुधार करती है, तथा आगे के लिए इस विषय में अधिक सावधान हो जाती है। देशी राज्यों की व्यवस्थापक सभाओं को यह अधिकार बहुत कम है।

२—काम-रोको प्रस्ताव। व्यवस्थापक सभा के सदस्यों को अधिकार होता है कि सभा के अधिवेशन में सार्वजनिक हित की किसी निश्चित और तात्कालिक घटना पर विचार कराने के लिए साधारण कार्यवाही रोकने का प्रस्ताव करें। यह इस लिए किया जाता है कि उस विशेष घटना पर जल्द विचार किया जाय, और सरकार का ध्यान उस ओर आकर्षित किया जाय। देशी राज्यों की व्यवस्थापक सभाओं में से किसी को ऐसा अधिकार होने की बात हमारी जानकारी में नहीं आयी।

३—अविश्वास का प्रस्ताव। व्यवस्थापक सभा को यह अधिकार होता है कि यदि सरकार उसके द्वारा निर्धारित रीति पर न चले, या उसके बनाये कानूनों का ठीक-ठीक पालन न करे तो वह सरकार के विरुद्ध

अविश्वास या निन्दा का प्रस्ताव कर सकती है। ऐसा प्रस्ताव पास हो जाने से सर्वसाधारण यह जान लेते हैं कि सरकार का काम लोक-प्रतिनिधियों के मत के विपरीत हो रहा है। इसका परिणाम तुरन्त ही यह होता है कि या तो सरकार (प्रबन्धकारिणी सभा) भङ्ग होकर दूसरी नयी सरकार का संगठन होता है, अथवा कुछ दशाओं में व्यवस्थापक सभा भङ्ग होकर नये चुनाव द्वारा नयी व्यवस्थापक सभा का निर्माण किया जाता है। देशी राज्यों की व्यवस्थापक सभाओं को इस प्रकार का अधिकार बिल्कुल नहीं है।

४—कानून बनाना। स्वतन्त्र व्यवस्थापक सभाएँ अपने-अपने राज्य की उन्नति के लिए विविध प्रकार के कानून बनाती है तथा संशोधन करती हैं, और उनके बनाये हुए या संशोधित किये हुए कानूनों के अनुसार ही सरकार को राजप्रबन्ध करना होता है। परन्तु भारतवर्ष के देशी राज्यों की अधिकतर व्यवस्थापक सभाओं को इस विषय में नाममात्र का ही अधिकार है। अधिकांश महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में उन्हें कानून बनाने या संशोधन करने का अधिकार नहीं होता। जिन विषयों का ये कानून बना सकती हैं, उनमें से बहुतों के लिए पहले राजा की स्वीकृति ली जानी आवश्यक है, उसकी अनुमति न मिलने की दशा में उन विषयों सम्बन्धी किसी कानून का प्रस्ताव या संशोधन सभा में उपस्थित नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त जो कानून इन सभाओं द्वारा बनाये जाते हैं, उनके मानने के लिए राजा बाध्य नहीं होता, चाहे उन कानूनों का मसविदा कितने ही भारी बहुमत से पास क्यों न हुआ हो। राजा को अधिकार है कि वह उन कानूनों में

से जिसको चाहे अमल में आने दे, और जिसको चाहे रद्द, संशोधित या स्थगित कर दे। इन सब बातों का विचार करके, इन व्यवस्थापक सभाओं को 'व्यवस्थापक सभा' का नाम देना भ्रममूलक और उपहास-जनक है। इन्हें केवल 'परामर्शदातृ सभा' कहा जाना चाहिए।*

इन नाम मात्र की व्यवस्थापक सभाओं का सरकारी कागज़ों और पुस्तकों में उल्लेख देखकर तथा इनकी बड़ी-बड़ी रिपोर्टों का विचार करके, पीछे जब हम इनकी वास्तविक दशा का ज्ञान प्राप्त करते हैं, तो मुँह से सहसा निकल पड़ता है कि यह तो सब 'ऊँची दुकान और फीका पकवान' का मामला है, ये कृत्रिम या बनावटी हैं, आडम्बर और ढोंग हैं। वस्तु-स्थिति यह है कि इन सभाओं में से अधिकांश के सदस्यों के रूप में, कुछ वफादार राजभक्त व्यक्ति साल में एक-दो बार धूम-धाम से इकट्ठे होते हैं, और अनुत्तरदायी शासन के आदेशों पर अपनी स्वीकृति की मोहर लगाकर अपने-अपने घर लौट आते हैं। इस प्रकार ये राजा साहब की कृपा-दृष्टि पाते हैं, तथा अन्य पदाधिकारियों की नज़र में बहुत ऊँचे ठहरने लगते हैं। और, इन सदस्यों की राजभक्ति तथा सेवा का पुरस्कार इन्हें अनेक प्रकार से मिल सकता है; हाँ, उस सब का भार साधारण जनता के सिर पर ही पड़ता है।

व्यवस्थापक सभाओं के कानून-निर्माण सम्बन्धी कार्य की बात यहीं समाप्त करके अब हमें उनके एक अन्य कार्य का विचार करना है। उन्नत राज्यों में व्यवस्थापक सभाएँ राज्य के सम्पूर्ण आय और व्यय पर यथेष्ट नियंत्रण रखती हैं। अर्थात् वे यह निश्चय करती है

* कुछ राज्यों में तो ऐसा कहा भी जाता है।

कि नागरिकों से किन-किन करों या शुल्कों द्वारा द्रव्य प्राप्त किया जाय, यदि विशेष आय की आवश्यकता हो तो कहाँ से एवं किन शर्तों पर ऋण लिया जाय। इसी प्रकार यह निश्चय किया जाता है कि राज्य सम्बन्धी किस-किस विभाग में कितना-कितना रुपया खर्च किया जाना उचित है। यदि सरकार व्यवस्थापक सभा के आदेशानुसार काम नहीं करती तो उसे अपनी सफ़ाई देनी होती है, जिसके असंतोषप्रद रहने की दशा में सरकार को निन्दा का प्रस्ताव सहना तथा अपना अन्त कर देना होता है। अच्छा, इस विषय में देशी राज्यों की व्यवस्थापक सभाओं को कहाँ तक अधिकार है? संक्षेप में, अधिकांश सभाओं को प्रायः कुछ भी नहीं। इन राज्यों में बजट, सभा के विचारार्थ तथा मत देने के लिए, प्रकाशित नहीं किया जाता। शासक अपनी इच्छानुसार कर आदि लगाते हैं, और जैसा चाहते हैं, खर्च करते हैं। व्यवस्थापक सभा का उन पर कुछ नियंत्रण नहीं।

अब पाठकों को ज्ञात हो गया होगा कि देशी राज्यों की व्यवस्थापक सभाएँ कितनी दिखावटी हैं, कितनी सत्ता-हीन हैं।

गत वर्षों में कुछ राज्यों में सलाहकार सभाओं (एडविजरी कौंसिलों) की स्थापना हुई है। इनके द्वारा राजाओं की शक्ति पर कितना नियंत्रण हुआ है, अथवा नागरिकों को कितने अधिकार मिले हैं, यह इसी से अनुमान किया जा सकता है कि अधिकांश राज्यों में 'व्यवस्थापक सभा' कही जानेवाली संस्थाओं में भी कुछ जीवन नहीं है। एडविजरी कौंसिल के सदस्य राजा के कृपा-पात्र ही होते हैं; उसकी मीटिंग कितने समय बाद होगी, इसका कोई नियम

नहीं होता; राजा साहब की इच्छा न हो तो कई-कई वर्ष तक भी यह मृतावस्था में पड़ी रह सकती है। फिर, यदि इसकी मीटिंग भी होगी तो यह उसी कार्य पर अपनी मोहर लगा देने का कार्य करेगी, जिसे राजा साहब चाहेंगे। उनके संकेत के विरुद्ध कुछ कहने-सुनने का यह स्वप्न में भी विचार नहीं कर सकती। इस प्रकार अधिकतर देशी राज्यों की व्यवस्थापक सभा एवं सलाहकार सभाएँ केवल शोभा के लिए हैं, जनहितकारी नहीं।

# तेरहवाँ अध्याय

## न्यायालय

अच्छे राज्य का एक बड़ा लक्षण यह है कि वहाँ सब के साथ समान न्याय होता है।

—सर टी० माधव राव

पिछले अध्याय में कानून-निर्माण के सम्बन्ध में लिखा गया है। सिद्धान्त की बात यह है कि कानून जिस प्रकार नागरिकों पर लागू होता है, उसी प्रकार शासकों या सरकारी कर्मचारियों पर। नागरिक अपनी रक्षा और उन्नति के लिए अपने कुछ अधिकार शासकों को सौंप देते हैं तथापि उन्हें भी यथेष्ट अधिकार रहते हैं। जब नागरिकों और शासकों में किसी विषय में मतभेद हो तो उसका निपटारा करने

के लिए न्यायालय होते हैं। न्यायालय इस बात का भी विचार करते हैं कि यदि दो या अधिक नागरिकों का पारस्परिक झगड़ा हो तो कानून की दृष्टि से किस का पक्ष उचित है और किस का अनुचित। ऐसे विचार या निर्णय को 'न्याय' कहते हैं; और इस कार्य को करनेवाले, न्यायाधीश, जज, या मुन्सिफ आदि कहलाते हैं। न्याय का उद्देश्य तभी सफल होता है, जब वह सस्ता और निष्पक्ष हो तथा जल्दी ही मिलनेवाला हो, अर्थात् प्रार्थी को उसके लिए बहुत समय तक प्रतीक्षा न करनी पड़े। न्यायाधीश को कानून का यथेष्ट ज्ञान होना चाहिए। उस में यह भी गुण होना चाहिए कि यह निर्णय कर सके कि अमुक कानून का प्रयोग किस स्थिति में, किस प्रकार करना ठीक होगा। इसके अतिरिक्त वह सर्वथा निर्भीक प्रकृति का होना चाहिए। जिससे उसका फैसला स्वतंत्र हो, वह किसी लोभ या अनुचित दबाव से प्रभावित न हो।

अब हम इस बात का विचार करते हैं कि देशी राज्यों में न्यायालयों तथा न्याय की क्या दशा है। पहले तो यही उल्लेखनीय है कि ये न्यायालय कानून द्वारा स्थापित नहीं हैं, वरन् शासकवर्ग के अधीन विभाग मात्र हैं। इन्हें अपने अधिकार, अपने-अपने क्षेत्र के प्रधान शासक अर्थात् राजा से, प्राप्त हैं। राजा स्वेच्छापूर्वक जो आज्ञा दे दे, वही कानून समझा जाता है। कभी-कभी ब्रिटिश भारत का कोई कानून जारी कर दिया जाता है तो वह वर्षों उसी रूप में पड़ा रहता है, जब कि ब्रिटिश भारत में उसमें व्यवस्थापक सभाओं द्वारा समय-समय पर आवश्यक संशोधन होता रहता है।

लगभग चालीस राज्यों में ही हाईकोर्ट, या हजूर न्यायालय अथवा चीफ कोर्ट हैं। ये अपील की सब से ऊंची अदालतें हैं। इनके नीचे जिले की अदालतें या सेशन कोर्ट हैं, इनमें किसी भी रकम के दीवानी दावों का तथा घोर अपराधों का विचार हो सकता है। इनमें इनसे नीचे की अदालतों के फैसले की अपील भी होती है। अधीन सिविल अदालतों में निर्धारित रकम तक के दावे सुने जाते हैं और छोटे जुर्मों का विचार होता है। मजिस्ट्रेटों की अदालतों के अधिकार भिन्न-भिन्न हैं, ये १५ दिन से लेकर सात वर्ष तक की सजा तथा विविध जुर्माना कर सकती हैं। कुछ अदालतें ऐसी हैं, जिनमें ज़मीन और मालगुजारी सम्बन्धी मामलों का विचार होता है, इनमें जमींदारों और काश्तकारों के उत्तराधिकार, अधिकार और उत्तरदायित्व सम्बन्धी मामले भी सुने जाते हैं। फौजदारी अदालतों के विषय में यह भी उल्लेखनीय है कि इने-गिने राज्यों को छोड़कर, कहीं भी जूरी की प्रथा नहीं है।*

साधारण प्रजाजनों के लिए राजा या प्रधान मंत्री के द्वारा अपने अधिकारों के अपहरण का प्रतिकार करना बहुत कठिन है। प्राय: अन्य उच्च अधिकारियों का भी लोगों पर ऐसा आतंक छाया रहता

* फौजदारी मामलों में बहुधा यह सम्भावना रहती है कि अकेले न्यायाधीश का निर्णय यथेष्ट विचारपूर्ण न हो, अतः उन्नत राज्यों में ऐसे निर्णय में अभियुक्त की जाति या देश के कुछ सुयोग्य सज्जन भाग लेते हैं, जिन्हें सामूहिक रूप से 'जूरी' कहते हैं। जूरी यह विचार करती है कि अभियोग सम्बन्धी वास्तविक घटनाएँ क्या हैं। जूरी के मत के आधार पर जज कानून की दृष्टि से फैसला सुनाता है।

है कि वे उनके विरुद्ध कोई मुकदमा या मामला चलाना व्यर्थ का झगड़ा मोल लेना समझते है। अनेक आदमी इतने निर्धन होते हैं कि वे ऐसी मुकदमेबाजी के लिए आवश्यक व्यय भी नहीं कर सकते। उनके लिए सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध ऐसा सबूत संग्रह करना भी कठिन ही होता है, जो न्यायालय में मान्य हो। फिर, जैसा पहले कहा जा चुका है, अनेक मजिस्ट्रेटों और न्यायाधीशों पर पुलिस आदि के पदाधिकारी काफी प्रभाव रखते हैं। इन सब बातों से बेचारी ग़रीब प्रजा को पदाधिकारियों के विरुद्ध न्याय पाना प्रायः असम्भव ही होता है।

अधिकतर देशी राज्यों में न्याय सम्बन्धी पदाधिकारियों की नियुक्ति के लिए कोई नियम या सिद्धान्त निर्धारित नहीं होता। शासक जिसे चाहते हैं, उसे न्यायधीश का पद प्रदान करते हैं, चाहे उसमें न्याय करने की योग्यता हो या न हो। अनेक दशाओं में प्रधान मन्त्री, या राजा के कृपापात्रों के मित्र अथवा सम्बन्धी आदि को ही इस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य का भार सौंप दिया जाता है। कभी-कभी नियुक्ति का आधार यह होता है कि पोलिटिकल अफसर या राजा साहब से सम्बन्धित व्यक्ति ने उम्मेदवार की शिफारिश कर दी है। निदान, न्याय-कार्य करनेवालों में ऐसे बहुत कम होते हैं, जिनमें इस कार्य को भली-भांति सम्पादन करने की यथेष्ट योग्यता हो। फिर, अधिकांश न्यायाधीश-पदों की वेतन बहुत कम होती है, छोटी-छोटी वेतन पर अच्छे आदमियों का मिलना दुर्लभ ही होता है। अगर कभी सुयोग से, जैसा चाहिए वैसा आदमी आ भी जाता है तो स्थानीय

वातावरण और परिस्थितियाँ ऐसी होती है कि उसका जम कर रहना नहीं हो सकता, वह थोड़े समय में ही काम छोड़ देने के लिए बाध्य हो जाता है। सारांश यह कि न्याय करनेवाले अधिकारियों में अधिकांश ऐसे होते हैं, जिन्होंने नियमित रूप से कुछ भी कानूनी शिक्षा नहीं पायी। ये लोग प्रजा पर जुरमाना करके राज्य की आमदनी बढ़ाना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

कुछ देशी राज्यों में हाईकोर्ट का प्रधान स्वयं राजा होता है, और कुछ में प्रधान मन्त्री या अन्य न्यायाधिकारी। इस न्यायालय का निर्णय राजा का निर्णय होता है। राजा की शिक्षा प्रायः ऐसी होती है कि उसमें कानून तथा घटनाओं की पेचीदगी भरी बातों के सम्बन्ध में ठीक निर्णय करने की योग्यता नहीं होती। फिर, जब कि राजा साहब को, जो प्रायः आरामतलब होते हैं, घुड़दौड़, नाच, विदेशयात्रा, शिकार, अतिथि-सत्कार आदि में लगे रहने के कारण शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी कामों के लिए कुल मिला कर समय बहुत ही कम मिलता है तो उन्हें मुक़दमों का फ़ैसला करने के लिए ही यथेष्ट अवकाश कैसे मिल सकता है! निदान, जब राजा साहब न्यायाधीश का कार्य करते हैं तो यह स्वाभाविक ही है कि अपीलें महीनों ही नहीं, वर्षों अटकी पड़ी रहें। प्रायः अपीलों का काम बार-बार स्थगित होता रहता है, यहाँ तक कि किसी अपील में दर्जनों बार नयी तारीख लगने और इस बीच में अपील सम्बन्धी कुछ काग़जात भी गुम हो जाने के उदाहरण मिलते हैं। अथवा, यह भी होता है कि जब राजा साहब को कुछ हुक्म सुनाना ही हुआ तो वे इस सरल सुविधाजनक सूत्र से काम लेते हैं कि 'राजा

साहब को नीचे की अदालत से मतभेद प्रकट करने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता।' यह सूत्र प्रधान मंत्री के भी बहुत काम आता है, कारण यद्यपि वे प्रायः राजा साहब की तरह आरामतलब या शौकीन नहीं होते, उन्हें राज्य सम्बन्धी अनेक कार्यों में लगे रहना होता है। अस्तु, फौजदारी मामलों में फैसला कभी-कभी इतने विलम्ब से होता है कि इस बीच में अभियुक्त हवालात में रहकर कैद के समान दंड काफी मात्रा में भुगत चुकते हैं, अथवा वादी प्रतिवादी पक्ष के कुछ व्यक्तियों का देहान्त हो चुकता है, और उनके उत्तराधिकारी जब पुराने मुकदमे का फैसला सुनते हैं तो आश्चर्य-चकित रह जाते हैं।

नीचे की अदालतों की कथा भी खेदजनक है, यद्यपि वह कुछ और ढंग की है। इन अदालतों के न्यायकर्त्ता अपने कार्य के लिए अपेक्षाकृत अच्छी योग्यता वाले होते हैं, परन्तु एक तो इन्हें वेतन कम मिलता है, दूसरे इन्हें कितने ही गैर-अदालती कामों की ओर ध्यान देना पड़ता है, उदाहरणवत राजा, उसके मित्रों या उनके सम्बन्धियों की विवाह-शादी, जन्म-मरण-संस्कार, उत्सव, त्यौहार, तीर्थ-यात्रा या दौरा आदि। फिर, ये लोग कभी-कभी अपना निजी व्यापार-धंधा भी करते रहते हैं; यदि प्रत्यक्ष में, अपने नाम से करने में कुछ आपत्ति आती है, तो अपने किसी मित्र या सम्बन्धी के नाम की आड़ में किया जाता है। नतीजा यह होता है कि मुकदमों का काम बढ़ता जाता है, फैसलों में ढील-ढाल होती है। और फैसला ठीक ही होगा, इसका भी भरोसा नहीं होता। बहुत से अभियुक्तों को दंड होने से

पहले ही महीनों और वर्षों में हवालात या जेल में रहना पड़ता है। ऐसी बातों से लोगों का अदालतों में विश्वास कैसे रहे, और उन्हें अपनी गवाही आदि के द्वारा न्याय-कार्य में सहयोग देने का प्रोत्साहन कैसे मिले!

अनेक बार नागरिकों का राज्य के प्रबन्ध-विभाग के आदमियों से ही विरोध होता है। ऐसी दशा में निष्पक्ष न्याय तभी हो सकता है, जब न्यायाधीश स्वतंत्र हों, वे शासन-विभाग से सम्बन्धित अथवा उसके प्रभाव में आनेवाले न हों। देशी राज्यों में ऐसी व्यवस्था बहुत कम है।* और जहाँ, शासन और न्याय विभाग पृथक् होने की बात कही जाती है, वहाँ भी वे पूर्णतया पृथक् नहीं हैं; प्रायः राजधानियों में ही न्याय-कार्य के लिए नियुक्त व्यक्ति शासकों से पृथक् हैं; यद्यपि वहाँ भी ऐसे न्यायाधीश विरले ही होते हैं जो, राजा साहब या दीवान के भावों के विरुद्ध, स्वतंत्र निर्णय दे सकें। इसके अतिरिक्त, राजधानी को छोड़कर राज्य के अन्य भागों की अदालतों में प्रायः प्रबन्ध या माल विभाग के कर्मचारियों को ही न्याय सम्बन्धी कार्य भी सौंपा हुआ रहता है। इस दशा में साधारण नागरिकों के लिए निष्पक्ष न्याय प्राप्त करने की आशा दुराशा ही है। यह कहा जा सकता है कि नीचे की अदालतों के विरुद्ध अपील की जा सकती है। परन्तु साधारण स्थिति के नागरिकों के लिए मुकद्मे ऊपर की अदालत तक लाने का खर्च और कष्ट उठाना कहाँ तक

---

* बटलर कमेटी की जाँच के समय ५६२ में से केवल ३४ राज्यों में ही शासन और न्याय विभाग पृथक् थे।

व्यावहारिक है, इसका कोई भी विचारशील पाठक सहज ही अनुमान कर सकता है। न्याय को राजनीतिज्ञों ने राज्य का बड़ा बल कहा है, और उसकी हमारे देशी राज्यों में यह दशा है! इस विषय में कितने सुधार की आवश्यकता है, यह स्पष्ट है।

# चौदहवाँ अध्याय

## जागीरदारी

जागीरों को 'राज्य के अन्दर राज्य' कहा जा सकता है। उनपर किसी कानून की सत्ता नहीं चलती। अंगरेजी हकूमत का भी उन पर सीधा अंकुश नहीं है। राजा लोग हमेशा उनसे डरते ही रहते हैं। अपनी जागीर में रहनेवाली प्रजा पर वे जिस तरह चाहें हकूमत कर सकते हैं; राजा-महाराजा उसमें हस्तपक्षेप करने की हिम्मत नहीं कर सकते। फलतः इन जागीरों में रहनेवाली प्रजा की स्थिति देशी रियासतों की दुनियां में बुरी-से-बुरी है।

—म० गाँधी

इस पुस्तक के आरम्भ में यह कहा गया है कि देशी राज्यों में जनता पर दोहरी हुकूमत है—राजा-महाराजाओं की, एवं ब्रिटिश सरकार की। परन्तु देशी राज्यों के कुछ भाग ऐसे भी हैं, जहाँ जनता की पराधीनता इससे भी बढ़कर है। ये भाग हैं, इन राज्यों के अन्तर्गत

जागीरें।* प्रत्येक जागीरी क्षेत्र में, वहाँ के जागीरदार की भी हुकूमत होती है, उसे वहाँ जनता पर कानूनी दृष्टि से नहीं तो कार्य-रूप में कई प्रकार के अधिकार होते हैं। इस प्रकार जागीरी प्रजा तेहरी पराधीनता में है। इससे स्पष्ट है कि जागीरदारी का प्रश्न कितना महत्वपूर्ण है।

जागीरों की सृष्टि कई प्रकार से हुई है—(१) कुछ जागीरें तो ऐसी हैं, जिन्हें जागीरदारों ने सीधे मुगल सम्राट् से, प्रति वर्ष निर्धारित रकम देना स्वीकार करके, पट्टे पर ले लिया। ये जागीरदार ज़मीन की मालगुजारी वसूल करने लगे, क्रमशः इनके जनता पर भी कुछ अधिकार हो गये। पीछे जब केन्द्रीय शक्ति कमजोर हुई तो ये जागीर-दार स्वतंत्र हो गये। (२) कुछ छोटे-छोटे राज्यों के शासकों ने, अशान्ति के समय, अपनी रक्षा के लिए किसी बड़े राजा की शरण ली, और अपने आप उसके जागीरदार की भाँति रहना स्वीकार कर लिया; इनके जनता पर कुछ अधिकार मान लिये गये। (३) बहुत सी जागीरें ऐसी हैं जो राजाओं ने सरदारों आदि को उनकी सैनिक सेवा से प्रसन्न होकर, या, भविष्य में सैनिक सेवा प्राप्त करने के लिए, दी। (४) कुछ जागीरें वे हैं जो राजाओं ने अपने छोटे भाइयों या रिश्तेदारों

---

*जो भूमि राज्य के खास अधिकार में होती है उसे 'खालसा' कहते हैं, और जो जागीरदारों के अधिकार में होती है, वह 'जागीर' कहलाती है; जागीर की मालगुजारी जागीरदार ही लेता है, वह राज्य को खिराज आदि देता है, जिसका परिमाण निर्धारित रहता है। बड़े-बड़े जागीरदारों को राजस्थान में 'ताज़ीमी सरदार' कहते हैं। इनके चार भेद हैं—इन्हें राजदरबार में नियत दर्जे के अनुसार सम्मान प्राप्त होता है।

आदि को उनका भली-भाँति निर्वाह होने के लिए दीं। (५) कभी-कभी जागीरें उन बलवान या प्रभावशाली व्यक्तियों को भी दी गयीं, जिनसे राजा को विरोध की आशंका थी। यह इसलिए किया गया कि वे संतुष्ट रहें और राजा का विरोध न करें। (६) कुछ जागीरें हाँ-हजूरों, खुशामदियों, कवियों, लेखकों, मंदिरों या पुरोहितों आदि को भी दी गयी हैं।

जागीर के उत्तराधिकार के विषय में कोई सर्वव्यापी नियम नहीं है प्रायः पुरानी परम्परा बर्ती जाती है। कहीं-कहीं जागीरदार के मरने पर उसकी जागीर उसके लड़कों में बराबर-बराबर बँटने का नियम है, और कहीं-कहीं वह केवल बड़े लड़के को ही मिलती है और उसके छोटे भाइयों को उनके निर्वाहार्थ कुछ वृत्ति दी जाती है। पहली दशा में जागीरदारों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, और जागीर के टुकड़े छोटे-छोटे होते जाते हैं, यहाँ तक कि एक गाँव के अनेक जागीरदार हो जाते हैं।

मुरेना जिला ( गवालियर राज्य ) के जागीरी प्रजा-सम्मेलन के अध्यक्ष पद से दिये हुए अपने भाषण में श्री० रामचन्द्रजी मोरेश्वर करकरे एल-एल० बी० ने बतलाया था कि कितने ही जागीरदारों ने अपनी जागीर का प्रबन्ध किसी 'कामदार' को सौंप कर स्वयं खालसा में उच्च पदों की नौकरियाँ प्राप्त कर ली हैं। यद्यपि कहने को उन पर राज्य का नियंत्रण है, और कानून का बन्धन है, वास्तव में राज्य और कानून उनका संरक्षक ही है। इन जागीरदारों के खिलाफ नालिशें आसानी से नहीं हो सकती, उनके विरुद्ध फौजदारी

चाराजोरी नहीं की जा सकती, डिगरी होने पर गिरफ़ार नहीं हो सकते, जायदाद की कुर्की नहीं हो सकती, रुपया सीधे तरीके से वसूल नहीं हो सकता। इसके विपरीत, अपने दीवानी, माली और फौजदारी अधिकारों के कारण जो इन्हें मिले होते हैं, या जिनका ये दुरुपयोग कर लेते हैं, ये लोग हर किसी को दंड दे सकते हैं, जुर्माना कर सकते हैं झूठे मुकदमे चला सकते हैं, जब्ती, और मार-पीट कर सकते हैं।

भूमि-कर के अतिरिक्त, प्रत्येक ठिकाने में जागीरदार किसानों से अनेक लाग-बाग वसूल करते हैं। राजपूताना-मध्यभारत देशी राज्य लोकपरिषद के सभापति श्री० कन्हैयालाल जी कलयन्त्री ने अपनी पुस्तक ('जागीरों की समस्या') में ७२ प्रकार के करों की सूची दी है, और लिखा है कि अनेक जगहों में ये सिर्फ ७२ ही नहीं १७२ हैं। अध-भूखी, और अर्द्धनग्न, घास की झोपड़ियों में रहने वाली, दुष्काल और सूदखोरी से सतायी हुई जनता से वसूल किये जानेवाले ये कर 'कर' नहीं वरन् जीवित रक्त की बूँन्दें हैं।*

---

* कुछ नमूने देखिए—होली दीवाली, दशहरे या जन्म-दिवास पर नज़राना, तथा घर में होनावाला सब दूध दही, मेहमानों की सेवा के लिए आदमी और उनके सोने के वास्ते चारपाई, ठाकुर के यहाँ लड़का लड़की पैदा होने या उनका विवाह होने के अवसर पर कर, ठाकुर के माता पिता के मरने पर कर, बकरी गाय या भैंस ऊँट आदि रखने या बेचने पर कर, नाई से हजामत, बर्तन मँजाना तथा चप्पी (हाथ पाँव दबवाना), दर्जी से कपड़े सिलाना, रंगरेज से कपड़े रंगाना और चमार से जूते सिलाना मुफ्त, ठाकुर के यहाँ कोई मर जाय तो रोने के लिए स्त्रियों का जाना, आदि।

वास्तव में इन भयङ्कर लाग-बागों का भार किसान किस प्रकार सहन करते हैं, तथा उसे सहन करते हुए किस प्रकार जीवित रहते हैं, यह आश्चर्य ही है। फिर, ठिकाने के कर्मचारियों के अत्याचारों का तो वर्णन ही क्या किया जाय ! लाग-बाग तथा बेगार के लिए अनेक स्थानों में किसानों को मारने-पीटने, नँगा करके धूप में खड़ा करने की ही नहीं, उन्हें 'काठ में देने' की बर्बरता-पूर्ण प्रथा प्रचलित है। स्त्रियों को अपमानित करना भी मामूली बात है। जागीरी क्षेत्रों में नागरिक-अधिकारों का प्रश्न तो स्वप्नवत ही है। जनता की शिक्षा तथा आजीविका के साधन कम हैं, और मानसिक तथा आर्थिक स्थिति बहुत खराब है। निदान, कुछ आदमी आजीविका के लिए, कुछ अपने बाल बच्चों को पढ़ाने-लिखाने के लिए, कुछ अपनी मान-रक्षा के लिए और कुछ धन की वृद्धि के लिए जागीरों को छोड़ते रहते हैं।

पहले कहा गया है कि राजा लोगों ने सरदारों को जागीरें इस लिए दीं कि सरदार उन्हें युद्ध आदि के समय सैनिकों से सहायता दें, और इस प्रकार कुछ अंश तक राजा चिन्ता से मुक्त रहें। जागीर देते समय यह स्पष्ट कर दिया जाता था कि जागीरदार को इतनी सेना रखनी होगी, राजा जब चाहे उनसे इतने पैदल सैनिक तथा घुड़सवार ले सकेगा। इस व्यवस्था से उस समय बहुत लाभ भी हुआ। कितने ही जागीरदारों ने अपनी जान संकट में डालकर युद्ध में राजा का पक्ष लिया, और समुचित त्याग करके यथेष्ट सेना जुटायी। अनेक जागीरदारों ने जनता का पुत्रवत पालन किया। परन्तु समय पाकर अच्छी रीति और पद्धति में भी दोष आ जाते हैं। धीरे-धीरे

जागीरदारों में आलस्य, विलासिता और लोभ बढ़ा। उन्होंने राजा के लिए सैनिक तैयारी समुचित रूप से न रखी, केवल दिखाने के लिए ही कुछ सिपाही आदि रख लिए। उन्होंने प्रजा से अधिक-से-अधिक धन लेने का प्रयत्न किया, जायज-नाजायज सभी तरीकों का उपयोग किया; नागरिकों के भी कुछ अधिकार हैं, या उनकी उन्नति, शिक्षा, स्वास्थ्य, और सुख-समृद्धि के लिए भी कुछ कार्य होना चाहिए, इस बात का ध्यान नहीं रखा।

जागीरदारी प्रथा से राजाओं की आय में काफी कमी हो ही जाती है, इस पर उपर्युक्त बातों ने उन्हें और भी चिन्तित किया। उन्होंने अनुभव किया कि राज्य की उन्नति के कार्यों के लिए धन की व्यवस्था करने में यह प्रथा बड़ी बाधक है; फिर इस समय देश की बदली हुई राजनैतिक परिस्थिति में उनके लिए जागीरदारों की सेना आदि भी उपयोगिता नहीं रही। इस लिए राजाओं के मन में इस प्रथा को हटाने की भावना उत्पन्न होना स्वाभाविक है। परन्तु प्रथम तो जो राजा स्वयं प्रतिक्रियावादी है, उनमें इसके लिए यथेष्ट साहस नहीं होता। दूसरे जो राजा कुछ हिम्मत करते हैं उनके लिए भी जागीरदारों की संगठित शक्ति का विरोध करना कठिन हो जाता है। ग्वालियर राज्य के स्वर्गीय महाराजा माधवराव जी ने इनके विषय में कहा था कि 'ये ऐसी जोंक हैं जो चिपककर अपनी प्रजा का रक्त चूस लेते हैं और तब तक नहीं छोड़ते जब तक कि प्रजा में एक भी बूँद खून की बाक़ी हो।' यही कारण है कि अपनी जागीरी पालिसियों में उन्होंने लिखा था कि 'जागीरदारों के साथ ऐसी ढीली

और धीमी नीति का पालन करना चाहिए कि उनके अत्याचारों से प्रजा में दीर्घ असंतोष फैल जाय और उस असंतोष से ही जागीरदार खुद शान्त हो जायँ।'

गवालियर महाराज जैसे शासक का जागीरदारों के बारे में ऐसे विचार रखना यह सूचित करता है कि प्रायः राजागण इनके सुधार के विषय में निराश हैं, और लाचार भी। इधर सरकार की, जागीरदारों के सम्बन्ध में, प्रायः कोई निश्चित नीति नहीं है। जब वह किसी राजा पर कुछ दबाव डालना चाहती है तो वह उसके जागीरदारों की शिकायतों पर ध्यान दे सकती है; जो राजा उसका कृपा-भाजन होता है उसके विरुद्ध वह बहुधा जागीरदारों की फरियाद नहीं सुनती।

समय-समय पर कुछ विचारकों ने जागीरी प्रथा की समस्या को हल करने के उपायों के सम्बन्ध में विचार किया है। श्री० कन्हैया-लाल जी कलयन्त्री ने इसके लिए निम्नलिखित योजना प्रस्तुत की है:—

१—जागीरदारों के न्याय और शासन सम्बन्धी अधिकार न रहें।

२—जागीरदारों को गोद लेने का अधिकार न हो।

३—उत्तराधिकार प्राप्ति के स्वरूप एक-तिहाई जागीर 'खालसा' की जाय।

४—किसी व्यक्ति को उसके गुण, स्वरूप या दान-पात्र समझ कर दी हुई जागीर उसकी मृत्यु के बाद 'खालसे' में ले ली जाय।

५—मठ या मन्दिरों की जागीरें सार्वजनिक ट्रस्ट के अधीन कर दी जायँ।

६—जागीरदारों से अवैतनिक और सम्माननीय सेवा ली जाय; और जो कोई वेतन लेना चाहे वह अपनी जागीर से त्याग-पत्र दे।

७—जागीरदार को स्वतंत्र चुंगी, जकात या स्टाम्प ड्यूटी का अधिकार न हो।

८—गाँव में एक से अधिक जागीरदार होने पर कर वसूल करने की व्यवस्था रियासत द्वारा नियुक्त मुंसरिम या मुकद्दम आदि करे।

९—किसी जागीरदार के अपराधी ठहरने की दशा में उस पर जुरमाना न कर उसकी जागीर ज़ब्त की जाय।

१०—जागीरों में पंचायत और म्यूनिसपैलटी हों।

११—जनता की शिक्षा, रक्षा, सफाई आदि के लिए, जागीरदारों से उनकी आय के अनुसार क्रमशः वर्द्धमान कर लिया जाय।

ऐसी योजनाएँ अच्छी हैं, पर वे शीघ्र अमल में लायी जानी चाहिए। प्रायः ऐसा लोकमत बढ़ता जा रहा है कि जागीरदारी प्रथा को समाप्त कर दिया जाना चाहिए।



# पंद्रहवाँ अध्याय

## नरेन्द्र मंडल

स्वयं नरेश गण भी इस ( नरेन्द्र मंडल ) के कार्य से सन्तुष्ट नहीं हैं, और इसी लिए बहुत से नरेश तो इससे बिलकुल उदासीन रहते हैं।

—पी० एस० शिवस्वामी अय्यर

देशी राज्यों के शासन सम्बन्धी साधारण बातों का विवेचन कर चुकने पर अब हम नरेशों की एक संस्था—नरेन्द्र मंडल—का विचार करते हैं। पहले कहा जा चुका है कि सन् १८५७ के बाद प्रायः अंगरेज अधिकारियों की विचार-धारा राजाओं को क्रमशः अपना मित्र और सहायक समझने की हो गयी। लार्ड लिटन ( १८७६-८० ) की इच्छा थी कि राजाओं की एक 'प्रिवी कौंसिल' बनायी जाय जो सम्मिलित हित के विषय पर गवर्नर-जनरल से सलाह-मशविरा किया करे। वह इच्छा पूरी न हुई। केवल कुछ राजाओं को साम्राज्य-सलाहकार का पद मिल गया। लार्ड कर्जन ( १८९९-१९०५ ) का कथन था कि साम्राज्य संगठन में राजा आवश्यक अंग हैं, देश के शासन में उनका सम्बन्ध वायसराय या लेफ्टिनेंट-गवर्नर से कम नहीं है। उसे

गद्दीधर राजाओं की परिषद ('कौंसिल-आफ रूलिंग प्रिंसेज') बनाने की बड़ी लग्न थी, पर वह पूरी न हो पायी। लार्ड मिंटो ने राजाओं के संगठन का बहुत प्रयत्न किया, उसने पहले साम्राज्य-सलाहकार सभा ('इम्पीरियल एडविजरी कौंसिल') स्थापित करनी चाही, पीछे गद्दीधर नरेशों की साम्राज्य-परिषद ('इम्पीरियल कौंसिल-आफ-रूलिंग प्रिंसेज') बनाने का विचार किया। परन्तु भारत-मंत्री का सहयोग न मिलने से वह सफल न हुआ। पश्चात् लार्ड हार्डिंग ने तो सन् १९१३ और १९१४ में राजाओं की सभाएँ कर ही डालीं जिनमें उनकी उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में विचार हुआ। इनका विशेष निष्कर्ष नहीं निकला और पीछे योरपीय महायुद्ध ही छिड़ गया। तथापि उपर्युक्त घटना-क्रम से यह स्पष्ट है कि देशी राजाओं के सम्बन्ध में सरकार का रुख किस ओर होता जा रहा था। ब्रिटिश साम्राज्यशाही को भारतवर्ष के राष्ट्रीय आन्दोलन को शिथिल करके अपनी सत्ता अधिक-से-अधिक समय तक बनाये रखने के लिए प्रतिक्रियावादी संगठन की आवश्यकता थी, और उसकी दृष्टि से यह काम राजाओं द्वारा अच्छी तरह लिया जा सकता था। पुनः विगत वर्षों में सरकार की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती रहने से उसे अब यह आशंका भी नहीं रही थी कि राजा संगठित होकर उसका विरोध कर सकेंगे।

राजा भी अपने संगठन के बड़े इच्छुक थे। पिछले दिनों भारत-सरकार के राजनैतिक विभाग ने उनके आन्तरिक राजप्रबन्ध में बहुत हस्तक्षेप किया था। राजा सोचने लगे कि यह हस्तक्षेप कहाँ जाकर रुकेगा। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर देशी राज्यों में

पहुँचते देख कर उनकी परेशानी बढ़ रही थी। वे ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में थे कि अपना संगठन करके उससे दोहरा लाभ उठावें; वे एक ओर राष्ट्रीयता-विरोधी मोर्चे में सरकार का सहयोग करके अपने स्वेच्छाचारी शासन की आयु बढ़ाना चाहते थे, दूसरी ओर उन्हें यह भी उम्मीद थी कि जब हम संगठित होकर अपनी सम्मिलित मांग सरकार के सामने रखेंगे तो उस पर यथेष्ट प्रभाव पड़े बिना न रहेगा, और वह अवश्य ही अपने राजनैतिक विभाग के आघातों से हमारे अधिकारों की रक्षा करेगी।

इस प्रकार राजा भी अपने संगठन के इच्छुक थे, और सरकार भी उनका संगठित होना पसन्द करती थी। अस्तु, राजाओं ने अपनी मांग भारत-मंत्री मांटेग्यू और वायसराय चेम्सफोर्ड के सामने रखी, जब कि वे दोनों अधिकारी भारतवर्ष की भावी शासनपद्धति के विषय में विचार कर रहे थे। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में राजाओं के सम्बन्ध में बहुत सहानुभूति दिखायी, और उनके सगठन के सम्बन्ध में एक व्यावहारिक योजना उपस्थित की। उन्होंने लिखाः—

'हमारा पहला प्रस्ताव यह है कि इन (राजाओं की सभाओं) के बजाय एक नरेश परिषद (कौंसिल-आफ-प्रिंसेज़) स्थापित कर दी जाय। हम चाहते हैं कि एक स्थायी परामर्शदातृ संस्था स्थापित की जाय। कुछ प्रश्न ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध साम्राज्य से, अथवा ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों से है। हम समझते हैं कि ऐसे मामलों में ऐसी संस्था की सम्मति बहुमूल्य होगी। वायसराय ऐसे प्रश्नों को परिषद में उपस्थित करेंगे, और हमें उसकी विचारपूर्ण सम्मति से बहुत लाभ होगा। हमारे विचार से यह बहुत आवश्यक है कि इस परिषद के

अधिवेशन नियमपूर्वक हुआ करें। साधारणतया अधिवेशन साल में एक बार हो, और उसमें वायसराय द्वारा स्वीकृत कार्यक्रम पर विचार हो। परिषद् का कोई सदस्य या सम्पूर्ण परिषद् वायसराय से निवेदन कर सकती है कि कार्यक्रम में ऐसा विषय सम्मिलित कर लिया जाय, जिस पर विचार होना आवश्यक हो। यदि वार्षिक अधिवेशन से पहले ही कोई महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित हो जायँ तो राजा वायसराय से विशेष अधिवेशन किये जाने का प्रस्ताव कर सकते हैं। हमारा विचार है कि सभापति वायसराय हो, और साधारणतया अधिवेशनों में वही अध्यक्ष का कार्य करे। परन्तु उसकी अनुपस्थिति में कोई राजा सभापति बने। कार्य-संचालन के नियम वायसराय राजाओं की सम्मति लेकर बनायेगा। राजा लोग समय-समय पर नियमों के संशोधन का प्रस्ताव कर सकेंगे।......इस परिषद् के बन जाने पर ऐसे काम-काज पर कोई प्रभाव न पड़ेगा जो सीधे किसी राज्य और भारत-सरकार के बीच होता रहता है।'

इस योजना के फल-स्वरूप सन् १९२१ ई० में नरेन्द्र मंडल (चेम्बर-आफ-प्रिन्सेज) नामक संस्था की स्थापना हुई। इसके कुल १२१ सदस्य हैं। इनमें से १०९ सदस्य तो उन ११८ राजाओं में से है, जिन्हें तोपों की सलामी का सम्मान प्राप्त है।

इन १०९ सदस्यों के राज्यों के नाम, तथा तोपों की स्थायी संख्या निम्नलिखित है:—

(१–५) बड़ौदा, ग्वालियर, हैदराबाद, जम्मू और कश्मीर, मैसूर, प्रत्येक ... २१

(६–११) भोपाल, इन्दौर, कलात, कोल्हापुर, ट्रावंकोर, उदयपुर, प्रत्येक ... १९

( १२-२४ ) बहावलपुर, भरतपुर, बीकानेर, बूँदी, कोचीन, कच्छ, जयपुर, जोधपुर, करौली, कोटा, पटियाला, रीवा, टोंक, प्रत्येक ... १७

( २५-४१ ) अलवर, बाँसवाड़ा, दतिया, देवास सीनियर, देवास, जूनियर, धार, धौलपुर, डूँगरपुर, ईदर, जैसलमेर, खैरपुर, किशनगढ़, ओरछा, प्रतापगढ़, रामपुर, सिक्कम, सिरोही, प्रत्येक ... १५

( ४२-५७ ) बनारस, भावनगर, कूचबिहार, ध्रांगधर, जावरा, झालावाड़, झीन्द, जूनागढ़, कपूरथला, नाभा, नवानगर, पालनपुर, पोरबन्दर, राजपीपला, रतलाम, त्रिपुरा, प्रत्येक ... १३

( ५८-८६ ) अजयगढ़, अलीराजपुर, बावनी, बरवानी, बीजावर, बिलासपुर ( कहलूर ), केम्बे, चम्बा, चरखारी, छतरपुर, फरीदकोट, गोंडल, जंजीरा, साबुआ, मलेरकोटला, मंडी, मनीपुर, मोरवी, नरसिंहगढ़, पन्ना, पदूदूकोटा, राधनपुर, राजगढ़, सैलाना, समथर, सिरमौर ( नाहन ), सीतामऊ, सुकेत, टेहरी ( गढ़वाल ), प्रत्येक ... ११

(८७-१०९) बालासिनोर, बंगनपल्ले, बांसड़ा, बरिया, मयूरभंज, छोटा उदयपुर, दाँता, धरमपुर, ध्रौल, जौहर, खिलचीपुर, लिम्बडी, लूनावाड़ा, मैहर, पलताना, राजकोट, सचिन, सांगली, सावंतवाड़ी, वांकानेर, वधवान, सन्त, लोहारू, प्रत्येक ... ९

इन १०६ सदस्यों के अतिरिक्त १२ सदस्य अन्य १२६ राजाओं के प्रतिनिधि हैं। शेष ३४६ राजाओं का इसमें कोई प्रतिनिधित्व नहीं। पहले उनका प्रतिनिधि लिये जाने के विषय में कुछ बात चली थी, पर कोई व्यावहारिक योजना नहीं बनी। अस्तु, यह स्पष्ट है कि नरेन्द्र मण्डल देशी राज्यों की ( जनता की ) प्रतिनिधि-संस्था तो है ही नहीं, यह सब देशी राजाओं का भी प्रतिनिधित्व नहीं करता।

मंडल की मीटिंग साधारणतया साल में एक बार होती है। उसमें सभापति का पद वायसराय ग्रहण करता है, वही इस बात का निश्चय करता है कि मीटिंग में किस-किस विषय पर वादविवाद हो। मंडल अपना चांसलर स्वयं चुनता है, जो वायसराय की अनुपस्थिति में उसका सभापति होता है। जनवरी १६२६ तक मंडल के अधिवेशनों की कार्यवाही गुप्त रखी जाती थी, उसके बाद इसकी सभाएँ सार्वजनिक रूप से, सर्वसाधारण के लिए खुली होने लगीं।

मंडल का कार्यक्षेत्र तथा अधिकार-सीमा शाही घोषणा के अनुसार निर्धारित हैं। नरेन्द्र मंडल के उद्घाटन के अवसर पर सम्राट् ने राजाओं को जो सन्देश भेजा था, उसमें कहा गया था—

'मेरा वायसराय इस ( नरेन्द्र मंडल ) की सलाह उन मामलों में लिया करेगा जो देशी राज्यों के क्षेत्र के हों, अथवा जिनका सम्बन्ध देशी राज्यों और ब्रिटिश भारत से, या मेरे शेष साम्राज्य से हो। मंडल का व्यक्तिगत राज्यों या उनके शासकों के आन्तरिक मामलों से, तथा व्यक्तिगत राज्यों के मेरी सरकार से सम्बन्धित विषयों से, कोई सम्बन्ध न होगा। देशी राज्यों के वर्त्तमान अधिकार और कार्य-स्वतन्त्रता में

कोई बाधा न आवेगी। मेरी हार्दिक इच्छा है कि राजा लोग मंडल के अधिवेशनों में नियमपूर्वक भाग लें, परन्तु उनका उपस्थित होना उनकी इच्छा पर निर्भर रहेगा, वे इसके लिए बाध्य नहीं किये जायँगे।'

इससे स्पष्ट है कि नरेन्द्र मंडल केवल एक परामर्शदातृ संस्था है। इसके निर्णय को भारत-सरकार मानने को बाध्य नहीं है। ( यही नहीं, इसके बहुमत से स्वीकृत निर्णय स्वयं इसके ही सब सदस्यों पर लागू नहीं होते।) फिर, इसमें मामले ऐसे ही पेश होते हैं, जिन्हें वायसराय चाहता है। किसी राजा के गद्दी से उतारे जाने, राजत्याग करने या अधिकार कम किये जाने जैसे विषय को इसमें उपस्थित करने की अनुमति नहीं होती; यह तो व्यक्तिगत राज्य का विषय ठहरा। साधारणतया प्रत्येक राज्य के लिए अपनी व्यक्तिगत समस्याएँ ही मुख्य हैं। यदि सब के लिए कोई सामान्य बातें हैं तो वे ऐसी ही हो सकती है कि ब्रिटिश सरकार की सत्ता बढ़ाना, महायुद्ध आदि में उसकी सहायता करना, तथा भारतीय स्वराज्य आन्दोलन का दमन करना, और देशी राज्यों में उसकी लहर को आने से रोकने के उपाय करना। बस ऐसे ही विषयों के, अथवा बेतार-का-तार या हवाई यातयात आदि विषयों सम्बन्धी, प्रस्ताव नरेन्द्र मंडल में उपस्थित किये जा सकते हैं।

नरेन्द्र मंडल में प्रायः उन्हीं राजाओं की आवाज़ सुनी जाती है, जो सरकार के विशेष कृपा-पात्र हों, जो उसके प्रतिनिधि होकर साम्राज्य-परिषद आदि अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में भाग लेते हों। पुनः निजाम

हैदराबाद, गायकवाड़ बड़ौदा, और मैसूर आदि के बड़े-बड़े राजा मंडल के अधिवेशनों में सम्मिलित नहीं होते, किसी न किसी निमित्त ये उससे दूर-दूर रहते हैं। बात कुछ ठीक भी है, कहाँ ये बड़े-बड़े राजा और कहाँ अन्य अपेक्षाकृत छोटे-छोटे राजा। देशी राजाओं को भारत-सरकार तथा उसके राजनैतिक विभाग के सामने कितना ही झुकना पड़ता हो, उन्हें अपने कृत्रिम गौरव और प्रतिष्ठा का बड़ा ध्यान रहता है; उनमें ऊँच-नीच की भावना बहुत होती है। अपने से कम मान-मर्यादा वाले व्यक्ति के साथ बराबरी के नाते बैठ कर किसी विषय का विचार करने में उनके अहंकार-भाव को धक्का लगता है। इसके अतिरिक्त उन्हें बहुत से विषयों की यथेष्ट जानकारी और पर्याप्त अनुभव नहीं होता और न वाद-विवाद में अपने विचार भली-भाँति व्यक्त करने की योग्यता या सामर्थ्य होती है, अतः वे अपने मंत्रियों के परामर्श बिना अपनी जिम्मेवरी पर कुछ कहना उचित नहीं समझते। वे इस सिद्धान्त को भी नहीं मानना चाहते कि आधुनिक सुसंगठित संस्थाओं की भाँति मंडल के बहुमत का निर्णय सब राजाओं को मान्य हो। इससे इस संस्था के संगठन की त्रुटि स्पष्ट है।

मंडल प्रति वर्ष एक छोटी सी स्थायी समिति का निर्वाचन करता है, इसका सभापति मंडल का चांसलर होता है। इसकी सभा भारत-सरकार के सदर मुकाम ( देहली या शिमला ) में साल में दो तीन बार होती है। इसका एक मुख्य कार्य सरकार के विविध विभागों से उन विषयों पर विचार-विनिमय करना होता है, जिनका सम्बन्ध ब्रिटिश भारत एवं देशी राज्यों, दोनों से हो। समिति प्रति वर्ष

अपनी रिपोर्ट मंडल में उपस्थित करती है। उस का प्रधान कार्यालय देहली में है, वहाँ राजाओं की अनियमित सभाएँ भी होती रहती है, जिनमें वे चाहे जिन विषयों पर तर्क-वितर्क कर सकते हैं। इन सभाओं में कभी-कभी उन राजाओं की ओर से अधिकार-प्राप्त व्यक्ति भी भाग लेते हैं, जो मंडल में सम्मिलित नहीं होते।

समय-समय पर एक या अधिक एजन्सियों के राज्यों के दीवानों की भी सभाएँ, प्रायः अनियमित रूप से, होती हैं। इन सभाओं में बहुधा बड़े महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में विचार-विनिमय हो जाता है।

नरेन्द्र मंडल ने विशेषतया राजाओं के अधिकारों और सुविधाओं का ही विचार किया। उसके जीवन का प्रथम उल्लेखनीय कार्य सरकार द्वारा 'बटलर कमेटी' की नियुक्ति कराना है। इस कमेटी का उल्लेख पहले हुआ है; यहाँ इसका कुछ विशेष विचार कर लेना उपयोगी होगा। पहले बतलाया जा चुका है कि देशी नरेश भारतवर्ष के राष्ट्रीय आन्दोलन से चिन्तित थे। सन् १९२० से ब्रिटिश भारत में मांट-फोर्ड रिपोर्ट के आधार पर बने हुए शासन-सुधार अमल में आने लगे थे। यद्यपि ये विशेष संतोषप्रद न थे, इनका उद्देश्य उत्तरदायी शासन का सूत्रपात करना तो था ही। राजाओं को अब यह आशंका होने लगी कि थोड़े-बहुत समय में भारत-सरकार भारतीय व्यवस्थापक मंडल के प्रति उत्तरदायी हो जायगी तो वह देशी राज्यों के सम्बन्ध में भारतीय जनता की इच्छानुसार ही कार्य करेगी, फिर हमारी स्वेच्छाचारिता न चल सकेगी। नरेशों को एक और भी चिन्ता थी। इधर हाल में

सर्वोच्च सत्ता ने भी अपना कठोर स्वरूप दिखाया था। बरार के प्रसंग में निज़ाम हैदराबाद और वायसराय में जो पत्र-व्यवहार हुआ, उसमें लार्ड रीडिंग ने स्पष्ट कर दिया था कि "ब्रिटिश सरकार का भारतवर्ष में पूर्ण प्रभुत्व है और देशी राज्य का कोई शासक उससे बराबरी के नाते बातचीत करने का दावा नहीं कर सकता। यह प्रभुत्व ब्रिटिश सरकार को संधि-पत्रों या सनदों से प्राप्त नहीं हुआ है, वरन् उससे पृथक है।" स्मरण रहे कि यह बात ऐसे राज्य के शासक को कही गयी थी जो भारतवर्ष के सब राज्यों में प्रमुख है। इससे राजाओं के कान खड़े हो गये। उन्होंने अपनी बची-खुची सत्ता पर भी संकट आने का अनुभव किया। वे इस बात का आन्दोलन करने लगे कि हमारी संधियाँ तो सीधे सम्राट् से हुई हैं, भारत-सरकार से नहीं। अतः यदि भारतवर्ष में कोई शासन सम्बन्धी परिवर्तन हो तो हमारा सम्बन्ध सीधा सम्राट् से बने रहना चाहिए; इसमें कोई अन्तर न आये। अंगरेज राजनीतिज्ञ भी तो यही चाहते थे, अतः उन्होंने राजाओं का समर्थन किया और पीछे जब राजाओं ने भारत-सरकार से एक कमेटी की माँग की, तो वह स्वीकार की गयी। फल-स्वरूप, सन् १९२७ में जब कि ब्रिटिश भारत के शासन-सुधारों के सम्बन्ध में जाँच करने के लिए साइमन कमीशन नियुक्त हुआ, तो देशी राज्यों का ब्रिटिश सरकार से विशेषतया आर्थिक सम्बन्ध कैसा हो, इस विषय का विचार करने के लिए एक कमेटी नियुक्त की गयी, जिसे उसके सभापति के नाम पर 'बटलर कमेटी' कहते हैं।

इस कमेटी की रिपोर्ट में तीन बातें मुख्य हैं:—(१) इस कमेटी ने सर्वोच्च सत्ता के विरुद्ध राजाओं का कोई दावा स्वीकार नहीं किया, उसने उसके अधिकारों को सर्वोपरि बतलाया और स्पष्ट कह दिया कि देशी राज्यों का कोई अन्तर्राष्ट्रीय या स्वाधीन पद नहीं है। उन्हें, विविध संधियों या प्रथा के अनुसार परिमित आन्तरिक शासन के अधिकार हैं। संधियों में विविध कारणों से परिवर्तन हुआ है, और भविष्य में परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन हो सकता है। (२) आर्थिक सम्बन्ध के, प्रसंग में, कमेटी ने रेल, खान, मुद्रा, नमक, डाक, तार, बेतार-का-तार, टेलीफोन, अफीम और आबकारी सम्बन्धी, देशी राज्यों की माँग अधिकतर अस्वीकार की। केवल आयात-निर्यात-कर से होनेवाली आय का एक भाग उन्हें दिया जाना स्वीकार किया, पर इसमें भी यह शर्त रखी कि देशी राज्य सरकार को उस कर सम्बन्धी कार्यों के लिए आवश्यक धन दें। कमेटी ने इस बात की पूरी जाँच किये जाने के लिए विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त की जाने की सिफारिश की। (३) कमेटी ने कहा कि देशी राज्यों की संधियाँ सीधे सम्राट् से हैं, अतः सर्वोच्च सत्ता को देशी राज्यों के शासकों की सम्मति के बिना अपना अधिकार ब्रिटिश भारत की उस नयी सरकार को न सौंपना चाहिए, जो भारतीय व्यवस्थापक सभा के प्रति उत्तरदायी हो। भविष्य में देशी राज्यों का सम्बन्ध भारत-सरकार से न होकर सम्राट् प्रतिनिधि ( वायसराय ) से रहा करे।

कमेटी की तीसरी बात भारतवर्ष में राजनैतिक फूट डालनेवाली, और यहाँ की शक्ति कम करनेवाली होने के अतिरिक्त, सर्वथा

भ्रममूलक है। खेद है कि कमेटी ने यह स्वीकार करते हुए भी कि 'लाल और पीले रंग का बना हुआ भारतवर्ष भौगोलिक दृष्टि से एक और अखंड है, और राजनीतिज्ञता इस बात में है कि दोनों भागों को इकट्ठा रखा जाय' अपनी उपर्युक्त सिफारिश से इन दोनों भागों के बीच में 'चीन की दीवार' खड़ी कर दी, जिसका दुष्परिणाम सन् १९३५ ई० के भारतीय शासन-विधान में बुरी तरह अंकित है।

नरेन्द्र मंडल की स्थापना से ब्रिटिश सरकार को अपने एक अति प्रिय सिद्धान्त को छोड़ना पड़ा। इससे पूर्व नरेशों को सामूहिक रूप से कोई कार्रवाई करने या एक दूसरे के मामले में विचार करने की अनुमति नहीं थी। अब यह बात नहीं रही। इसका कारण है। अब सरकार सबल है, उसे उनकी ऐसी संस्था से किसी हानि की आशंका नहीं है। इसके विपरीत, वह उसका उपयोग साम्राज्य-हित के लिए कर सकती है। साम्राज्य-परिषद में जो सज्जन भारतवर्ष के प्रतिनिधि* होते हैं, उनमें से एक 'स्वाधीन' राजाओं की ओर से भी लिया जाता है। राजा राष्ट्र-संघ में भेजे जाते हैं। इस प्रकार उन्हें नया अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्राप्त हो गया है परन्तु यह सब कृत्रिम है। इसका लाभ ब्रिटिश सरकार लेती है, वह राजाओं के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में अपनी आवाज अधिक ज़ोरदार कर सकती है। सरकार भली भाँति जानती है, और राजाओ को भी जान लेना चाहिए कि

* ये केवल भारत-मंत्री के सलाहकार के रूप में काम करते हैं, इन्हें किसी विषय पर स्वतंत्र मत देने का अधिकार नहीं होता। अतः ये वास्तव में 'प्रतिनिधि' कहलाने के अधिकारी नहीं होते।

नरेन्द्र मंडल के इतने समय के जीवन से राजाओं के पद में कुछ वास्तविक वृद्धि नहीं हुई। वायसराय सम्राट्-प्रतिनिधि होने के नाते, जब जैसा उचित समझे, किसी भी राज्य में हस्तक्षेप कर सकता है। बड़े-से-बड़ा नरेश भी उसका विरोध या बराबरी नहीं कर सकता, वह चाहे या न चाहे उसे वायसराय का निर्णय शिरोधार्य करना ही पड़ेगा। नरेश संधियों की दुहाई नहीं दे सकते। उनके पास संधियाँ मनवाने का कोई साधन नहीं है। संधियाँ कानूनी अधिकार की सूचक न होकर, राजनैतिक व्यवहार की निर्देशिका मात्र हैं।

अस्तु, नरेन्द्र मंडल के चांसलर के पद पर महाराजा बीकानेर, कश्मीर, जामनगर, पटियाला, धौलपुर और नवाब भोपाल आदि रहे हैं। चांसलर और वायसचांसलर के पदों के लिए निर्वाचित होने तथा स्थायी समिति के सदस्य बनने के लिए प्रायः दलबन्दी की भावना से काम लिया गया है। पहली गोलमेज सभा के समय महाराजा बीकानेर और नवाब भोपाल का नरेन्द्र मंडल में विशेष प्रभाव था। इन्होंने उस अवसर पर यह कहने का साहस कर दिखाया कि ब्रिटिश भारत को उत्तरदायित्व-पूर्ण शासनाधिकार दे दिया जाय तो हमें कोई आपत्ति नहीं, और हम ऐसे शासन-संघ में सम्मिलित होने को तत्पर हैं।* उनका यह कथन भारत-सरकार के राजनैतिक विभाग को अरुचिकर प्रतीत हुआ। यह देख कर जो नरेश अपने कुशासन के कारण उस विभाग से दबे हुए थे, उन्होंने उसे खुश करने के लिए अपना एक

* अपने राज्य के शासन में महाराजा बीकानेर की प्रतिगामिता सर्वविदित है। ऐसी दशा में उनका यह साहस अवश्य ही आश्चर्यजनक रहा।

दल बनाया और महाराजा बीकानेर और नवाब भोपाल का विरोध किया। इस दल के नेता महाराजा पटियाला थे। अगले चुनाव में इन्हें चांसलर बनाने का खूब प्रयत्न किया गया। पर इसमें सफलता न मिली, और समझौते के रूप में जाम साहब चांसलर चुने गये। पर इन्होंने भी नरेन्द्र मंडल में राष्ट्रीय भावनाओं के विरोधियों की खरी आलोचना की। लार्ड विलिंगडन को यह कैसे सहन होता! उन्होंने जाम साहब को ऐसा फटकारा कि बेचारों का दिल बैठ गया। कुछ समय बाद उनका देहान्त हो गया। अब प्रतिगामी दल की बन आयी; पटियाला नरेश चांसलर चुन लिये गये। राजनैतिक विभाग का इन्हें आशीर्वाद प्राप्त होने से इनकी स्थिति मजबूत हो गयी। इस प्रसंग को आगे बढ़ाने की आवश्यकता नहीं। उदाहरण के लिए इतना ही पर्याप्त है। निदान, नरेन्द्र मंडल ने न तो राजाओं का ही कुछ हित साधन किया, न देशी राज्यों की जनता का ही। यह संस्था एक बहु-व्यय-साध्य आडम्बर मात्र है।



# सोलहवाँ अध्याय



## कांग्रेस और देशी राज्य

कांग्रेस ज़रूरत के समय रियासती प्रजा के पथ-प्रदर्शन के कर्त्तव्य का परित्याग नहीं कर सकती। एक समय वह भी था जब कांग्रेस सार्वभौम सत्ता के खिलाफ रियासतों का पथ-प्रदर्शन करती थी, और

उनकी रक्षा भी किया करती थी। यदि आवश्यकता के समय रियासतों के लिए कांग्रेस की मैत्री अभीष्ट थी, तो प्रजा को कांग्रेस से सलाह, नेतृत्व और रक्षा की प्रार्थना करते देखकर बिदकने की दरकार नहीं है।

—म० गाँधी

कांग्रेस की देशी राज्यों के सम्बन्ध में क्या नीति रही है, इसका विचार करने के लिए इसके विस्तृत इतिहास पर एक उड़ती सी नजर डाल लेना उपयोगी होगा। भारतवर्ष के सन् १८५७ ई० के स्वातंत्र्य-युद्ध में विफल होने के बाद भी जहाँ-तहाँ कुछ लोगों के मन में अपने देश को विदेशी सत्ता के पाश से मुक्त करने की भावना उठती रही, और वे अपनी शक्ति भर, अनेक कष्ट सहकर और अपने प्राणों तक की जोखम उठाकर उसका प्रयत्न करते रहे। तथापि, अब भारतवर्ष में कोई संगठित दल ऐसा न रहा था जो इस महान कार्य का बीड़ा उठाए। दो विचार-धाराएँ प्रधान थीं; सशस्त्र युद्ध हो, अथवा पराधीनता स्वीकार की जाय। सशस्त्र युद्ध राजाओं और सरदारों के नेतृत्व में ही हो सकता था, उनके असफल रहने पर यहाँ लोगों ने, चाहे अपनी इच्छा के विरुद्ध ही सही, विदेशी राज्य स्वीकार सा कर लिया; हाँ, जब कभी कोई बात विशेष कष्टप्रद या बहुत अपमानजनक प्रतीत हुई तो उसके 'सुधार' करने का, सुविधाएँ प्राप्त करने का, प्रयत्न किया गया। इस प्रकार देश में विधानवाद और ब्रिटिश साम्राज्य की छत्रछाया के समर्थकों को नेतृत्व मिलने लगा। इसी के परिणाम-स्वरूप यहाँ कई छोटी-बड़ी संस्थाओं का उदय हुआ। उनका अनुभव करके अन्ततः सन् १८८५ ई० में कांग्रेस या भारतीय राष्ट्र-

सभा की स्थापना की गयी।

इस समय तक देश में अंगरेजी शिक्षा का कुछ प्रचार हो चला था, शिक्षितों की अपनी आकांक्षाएँ थीं, जो पूरी नहीं हो रही थीं, कुछ को देश की अधोगति की चिन्ता थी; बहुतों को उद्योग-धंधों के ह्रास और आर्थिक अवनति का ख्याल था। निदान, असंतोष के विविध कारण थे; यह असंतोष अब कांग्रेस द्वारा वैध रीति से व्यक्त किया जाने लगा। भारतीय परिस्थिति के अच्छे अनुभवी अंगरेज श्री० ह्यूम साहब ने जो कांग्रेस के संस्थापकों में गिने जाते हैं, इसी अभिप्राय से इसमें योग दिया था कि देश-प्रेमी और शिक्षित भारतवासियों का असंतोष उग्र रूप धारण न कर ले। तत्कालीन गवर्नर-जनरल और वायसराय लार्ड डफरिन तथा कुछ अन्य अधिकारियों ने भी इससे सहानुभूति दर्शायी थी। पीछे जाकर सरकार का रुख बदल गया। आरम्भ में कांग्रेस का उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रहते हुए ही स्वराज्य प्राप्त करना था। इसे यह आशा थी कि यहाँ तथा इङ्गलैंड में अधिकारियों की सेवा में प्रार्थना-पत्र और डेप्यूटेशन भेजने से काम चल जायगा। सन् १९०५ के बंग-भंग ने इसे सतर्क कर दिया, फिर क्रमशः कुछ तेजी आने लगी। पिछले योरपीय महायुद्ध के बाद सरकार के व्यवहार से अनेक आशावादी नेताओं को भी सरकारी प्रतिज्ञाओं और घोषणाओं में विश्वास न रहा। सन् १९२० ई० से कांग्रेस में महात्मा गांधी का नेतृत्व होने लगा और इस संस्था ने सत्याग्रह और असहयोग का मार्ग अपनाया। तब से इसका सर्वसाधारण जनता से सम्पर्क

बढ़ता गया। सन् १९२९ के अन्त में कांग्रेस के उद्देश्य से भारतवर्ष के ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत रहने की बात निकाल दी गयी। निश्चय किया गया कि भारतवर्ष की राष्ट्रीय माँग पूर्ण स्वाधीनता है; हाँ, यदि इङ्गलैंड अपने स्वार्थ को छोड़ कर समानता के भाव का परिचय दे तो संसार के अन्यान्य देशों की तरह ब्रिटिश साम्राज्य के देशों से भी मित्रता का व्यवहार रह सकता है। कांग्रेस की नीति निरन्तर अहिंसात्मक रही।

अस्तु, कांग्रेस राष्ट्रीय संस्था है, इसके सामने सम्पूर्ण भारतवर्ष की स्वाधीनता का प्रश्न है; हाँ, समय-समय पर विशेष परिस्थितियों या अपनी शक्ति के अनुसार इसने अपने कार्य की कुछ मर्यादा रखी। देशी राज्यों सम्बन्धी कांग्रेस की नीति के विषय में मुख्य बातें ये हैं—इस नीति में समय-समय पर परिवर्तन होता रहा है, आरम्भ में उसका कार्यक्षेत्र ब्रिटिश भारत तक ही सीमित था। पीछे वह देशी राज्यों की ओर भी ध्यान देने लगी। कार्यकर्त्ताओं में तरह-तरह के आदमी रहे हैं। उसके सूत्र-संचालक कभी ऐसे व्यक्ति रहे, जो उसकी गति बहुत तीव्र होने के पक्ष में थे, तो कभी वे लोग रहे जो उसे मन्द गति वाली ही रखना चाहते थे। इस लिए कभी कांग्रेस एक दम काफी आगे बढ़ी हुई मालूम होती है, तो कभी वह कुछ पीछे हटी हुई भी जान पड़ती है। तथापि कुल मिला कर वह आगे की ओर ही बढ़ी है।

देशी राज्यों की स्पष्ट चर्चा प्रथम बार कांग्रेस में सन् १८९४ ई० में हुई, जब इसका दसवाँ अधिवेशन था। उसमें एक प्रस्ताव में मैसूर के महाराज के देहान्त पर शोक, और उसके राजपरिवार से सहानुभूति

प्रकट की गयी, तथा उनके वैधानिक शासन की प्रशंसा की गयी। इसके दो वर्ष बाद अपने बारहवें अधिवेशन में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव में यह माँग की कि जब तक किसी ऐसे सार्वजनिक कमीशन द्वारा, जिस पर सरकार एवं राजाओं का विश्वास हो, जाँच न हो जाय, किसी राजा को कुशासन के आधार पर गद्दी से न उतारा जाय। यह स्पष्ट ही है कि उक्त दोनों प्रस्ताव राजाओं के सम्बन्ध में हैं, जनता के सम्बन्ध में तो कांग्रेस ने सन् १९२० ई० में जाकर विचार किया।

योरपीय महायुद्ध (१६१४-१६) के समय देश में चहुँ ओर जागृति के भावों का उदय हुआ। देशी राज्यों में भी कार्यकर्त्ता जनता के कष्टों को दूर करने का उपाय सोचने लगे। श्री० विजयसिंह जी 'पथिक' आदि ने मेवाड़ में क्रान्ति की ज्योति जगा दी। कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन (१९२०) में राजस्थानी बंधुओं की पुकार पहुँची। कांग्रेस इसकी उपेक्षा न कर सकी। उसने एक प्रस्ताव करके राजाओं से अपील की कि वे अपनी-अपनी प्रजा को तुरन्त प्रतिनिधि-शासन प्रदान करें। रियासती जनता कांग्रेस के कार्यों में भाग ले सके, इसके लिए यह निश्चय किया गया कि भारतीय कांग्रेस कमेटी को यह अधिकार हो कि समय-समय पर विशेष-विशेष देशी राज्यों को विशेष-विशेष प्रान्तों की सीमा में कर दे; और प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी को अधिकार हो कि भारतीय कांग्रेस कमेटी ने जिस राज्य को उसकी सीमा में कर दिया हो, उसे अपने प्रान्त के किसी जिले की सीमा में कर दे। कांग्रेस ने इस समय देशी राज्यों के भीतरी मामलों में अ-हस्तक्षेप नीति रखी।

सन् १६२४ में वायकोम ( त्रावंकोर राज्य ) में अछूतों को आम सड़क पर न चलने देने के दकियानूसी रिवाज के विरुद्ध वहाँ के सुधारकों ने सत्याग्रह किया, तो कांग्रेस ने इस सम्बन्ध के अपने प्रस्ताव में सत्याग्रहियों को बधाई दी और यह आशा की कि त्रावंकोर राज्य, जो शिक्षित समझा जाता है, सत्याग्रहियों के न्यायपूर्ण अधिकारों को स्वीकार करेगा और उसकी शिकायत भी दूर करेगा।

सन् १९२७ ई० में कांग्रेस का अधिवेशन मद्रास में हुआ। इस अवसर पर देशी राज्य लोक-परिषद का डेप्यूटेशन कांग्रेस अध्यक्ष से मिला। अब से कांग्रेस देशी राज्यों के सम्बन्ध में विशेष अनुराग रखने लगी। इस वर्ष उसने यह प्रस्ताव स्वीकार किया—'इस कांग्रेस की को यह जोरदार राय है कि देशी राज्यों की जनता तथा उनके शासक दोनों के हित की दृष्टि से राजाओं को अपने-अपने राज्य में शीघ्र ही प्रतिनिधि-संस्थाएँ तथा उत्तरदायी शासन स्थापित करना चाहिए।" इसके अगले वर्ष कलकत्ता अधिवेशन में यह प्रस्ताव स्वीकार हुआ—"कांग्रेस राजाओं से अनुरोध करती है कि वे अपने राज्यों में प्रतिनिधि-संस्थाओं के आधार पर उत्तरदायी शासन प्रचलित करें, और तुरन्त ऐसी घोषणाएँ करें या ऐसे कानून बनायें जिनमें सभा-समिति बनाने, भाषण करने और लिखने की स्वतंत्रता तथा जान-माल की रक्षा और इसी प्रकार के अन्य मूल अधिकारों की बात हो। यह कांग्रेस रियासती जनता को यह विश्वास दिलाती है कि देशी राज्यों में उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन स्थापित करने के लिए उनके उचित और शान्तिमय प्रयत्न में उसकी सहानुभूति तथा सहायता रहेगी।"

अब तक कांग्रेस के विधान में देशी रियासतों की आन्तरिक बातों में हस्तक्षेप न करने की नीति थी, पर अब कांग्रेस ने रियासती जनता की सहायता का आश्वासन दिया था, इस लिए उपर्युक्त नीति में परिवर्तन करना आवश्यक हुआ। निदान, पं० जवाहरलाल जी नेहरू के प्रयत्न और प्रस्ताव से कांग्रेस विधान में उक्त आशय का संशोधन किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि देशी राज्यों में कांग्रेस-संस्थाएँ कायम होने लगीं और जागृति के चिन्ह दिखायी देने लगे। मैसूर, हैदराबाद, भोपाल, ग्वालियर, इन्दौर, त्रावंकोर, रीवा और नागोद आदि देशी रियासतों में कांग्रेस की शाखाएँ स्थापित हो गयीं। मैसूर में कांग्रेस की शाखाओं का जाल सा बिछ गया। सन् १९३२ में कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार की लड़ाई हुई। सत्याग्रह आन्दोलन बड़े जोर से चला। रियासती जनता ने भी उसमें खूब भाग लिया। किसी-किसी राज्य से तो हजारों आदमी गिरफ़्तार होकर जेल गये। सत्याग्रह संग्राम के बाद यह प्रश्न बहुत जोर से उठा कि कांग्रेस की नीति देशी राज्यों के सम्बन्ध में क्या हो, और देशी राज्यों में कांग्रेस की शाखाएं रहें या न रहें। महात्मा गांधी के एक पत्र से जनता में भ्रम फैल गया था। श्री० सेठ गोविन्ददास जी के पत्र के उत्तर में ता० २-८-३४ को महात्मा जी ने लिखा कि 'मेरे लेख अथवा कथन का यह मतलब कभी नहीं था कि देशी रियासतों में कांग्रेस कमेटियाँ न होनी चाहिएँ, अथवा न हो सकती हैं। जो कमेटियाँ पहले ही कायम हो चुकी हैं, जैसे कि बघेलखण्ड ज़िला कांग्रेस कमेटी, जिसके सम्बन्ध में आपने मुझे लिखा है, वह तो अवश्य ही रहनी चाहिए। यदि किसी राज्य में ऐसी

कमेटी की रोक की जाय तो अवश्य बड़े खेद की बात है।' *

अप्रेल सन् १६३५ में कांग्रेस महासमिति ने जबलपुर की बैठक में रियासती जनता की आजादी की लड़ाई का समर्थन किया और यह कहा कि रियासती जनता के हितों के साथ उसका वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा ब्रिटिश भारत की जनता के हितों से। तथापि रियासती जनता की ओर से कांग्रेस-नीति के अधिक स्पष्टीकरण की माँग रही, अतः अक्तूबर में कार्यसमिति ने एक सविस्तर वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें कहा कि कांग्रेस अपनी उसी नीति पर दृढ़ है, और वह समझती है कि यह स्वयं राजाओं के ही भले के लिए है कि वे शीघ्रातिशीघ्र अपने राज्यों में पूर्ण उत्तरदायी शासनप्रणाली कायम कर दें। जिससे उनकी प्रजा को नागरिकता के पूर्ण अधिकार प्राप्त हों। पर यह बात समझ लेनी चाहिए कि इस प्रकार का संघर्ष जारी रखने का बोझ स्वयं देशी राज्यों की प्रजा पर है। कांग्रेस राज्यों पर नैतिक और मैत्रीपूर्ण प्रभाव डाल सकती है और जहाँ भी सम्भव हो, डालने पर बाध्य है। मौजूदा परिस्थिति में और किसी प्रकार का सामर्थ्य कांग्रेस को प्राप्त नहीं है, यद्यपि भौगोलिक और ऐतिहासिक दृष्टि से सारे भारतवासी, चाहे वे अंगरेजों के आधीन हों, चाहे देशी राजाओं के, और चाहे और किसी सत्ता के, एक हैं; और उन्हें अलग नहीं किया जा सकता।'

अधिक प्रगतिशील सज्जन कांग्रेस की इस नीति से संतुष्ट न थे, वे राज्यों में हस्तक्षेप को सामयिक और आवश्यक मानते थे, तथापि

* 'बुन्देलखण्ड जिला कांग्रेस कमेटी का संक्षिप्त इतिहास' के आधार पर।

कांग्रेस उस हद तक बढ़ने को तैयार न हुई। सन् १६३६ में यही बात रही, परन्तु पीछे अक्तूबर १६३७ में कांग्रेस महासमिति ने मैसूर राज्य के दमन के विरोध में प्रस्ताव पास किया, और देशी राज्यों और ब्रिटिश भारत के निवासियो को उनके संग्राम में पूर्ण सहयोग और प्रोत्साहन देने की अपील की। इस प्रस्ताव को म० गांधी ने कांग्रेस मनोवृत्ति और अ-हस्तक्षेप नीति के विरुद्ध बतलाया। अब फिर बहुत से आदमियों का असंतोष बढ़ा; और इस बात की आवश्यकता अनुभव होने लगी कि कांग्रेस देशी राज्यो के सम्बन्ध में अपनी नीति पूर्णतया स्पष्ट करे।

फल-स्वरूप हरिपुरा कांग्रेस (फरवरी १९३८) में इस विषय पर खूब वादविवाद हुआ। अन्त में एक विस्तृत प्रस्ताव इस आशय का स्वीकृत हुआ कि 'देशी राज्य भारत के ही अंग हैं, उनमें भी पूरी जिम्मेदार सरकार चाहिए। इस उद्देश्य को पुरा करना कांग्रेस का अधिकार है, यह मानते हुए भी मौजूदा हालत में कांग्रेस के राज्यों में काम करने में बहुतसी कठिनाइयाँ हैं। कांग्रेस वहाँ राष्ट्रीय झंडे का अपमान नहीं सह सकती। वह प्रजा द्वारा उठाये गये प्रत्येक अहिंसात्मक आन्दोलन का स्वागत करेगी। व्यक्तिगत रूप से कोई भी कांग्रेसी देशी राज्यों के आन्दोलन में भाग ले सकता है, लेकिन कांग्रेस के नाम से कोई आन्दोलन नहीं उठाया जा सकता। इसलिए देशी राज्यों में पृथक् संगठन कायम होने चाहिएँ।'

यह प्रस्ताव कुछ अंश में असंतोषजनक प्रतीत होता था, पर परोक्ष रूप से, इसका प्रभाव अच्छा ही रहा। इससे देशी राज्यों की

जनता में स्वावलम्बन का भाव आया। कितने ही राज्यों में स्टेट-कांग्रेस या प्रजामंडल की ओर से जागृति और जन-आन्दोलन आरम्भ हुआ। कितने ही प्रमुख कांग्रेसी कार्यकर्ताओं ने इसमें महत्व-पूर्ण भाग लिया। पर अधिकारियों ने दमन भी खूब किया। गिरफ़्तारियाँ, मारपीट, लूट, लाठी-प्रहार, फसलों का जलाया जाना, जनता को हाथियों से रोंदा जाना आदि रोजमर्रा की मामूली घटनायें हो गयीं। कहीं-कहीं दमन में ब्रिटिश सरकार की फौज और पुलिस की सहायता ली गयी। इस पर कांग्रेस कार्यसमिति ने वर्धा की दिसम्बर १९३८ की बैठक में अपने प्रस्ताव में कहा कि यह समिति उन शासकों की कार्रवाइयों की खास तौर से निन्दा करती है, जिन्होंने ब्रिटिश सरकार की सहायता से अपनी प्रजा को दबाने की कोशिश की है और इस बात का ऐलान करती है कि अगर उत्तरदायी शासन की माँग के लिए चलाये गये अपनी प्रजा के आन्दोलन को ब्रिटिश सरकार की पुलिस या फौज की सहायता से दबाने का यत्न किया जायगा तो उस हालत में कांग्रेस को पूरा अधिकार होगा कि वह पुलिस और फौज द्वारा किये जानेवाले अनियंत्रित दमन से जनता की रक्षा करे।'

राजकोट राज्य में जनता के आन्दोलन तथा उसके दमन के सम्बन्ध में अन्यत्र लिखा गया है। इस आन्दोलन में, कांग्रेस-नेताओं ने काफी दिलचस्पी ली। बात यह थी कि अंगरेज दीवान रियासतों में अंगरेजी हकूमत चला रहे थे और राजा और प्रजा में सीधा सम्बन्ध स्थापित होने में बाधक बन रहे थे। इधर कांग्रेस ब्रिटिश सरकार से भारत की सभी श्रेणियों को मुक्ति दिलाने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध थी।

गांधी जी ने एक महान वैधानिक संकट पैदा करने की संभावना बताते हुए ब्रिटिश सरकार को धमकी दी कि आज कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार एक-दूसरे के मित्र हैं, और रियासतें ब्रिटिश सरकार की आसामी। ऐसी स्थिति में यह असह्य है कि कांग्रेस से इन्हीं रियासतों में शत्रु और बेजाने आदमी की भाँति बर्ताव किया जाय। यद्यपि भारतीय शासन-विधान द्वारा कांग्रेसी मंत्रियों को रियासतों पर कुछ भी अधिकार प्राप्त नहीं हैं, तथापि मंत्रियों के कुछ ऐसे अधिकार तथा कर्त्तव्य उक्त विधान से बाहर भी हैं। "अगर यह कल्पना कर ली जाय कि राजकोट में देश के तमाम बड़े-बड़े गुंडे जमा हो जायँ तो बम्बई के मंत्रिमंडल को ब्रिटिश सरकार से इसके विरुद्ध शिकायत करने का पूरा हक है। यदि उसकी बात न सुनी जाय तो उसे इस्तीफा दे देना चाहिए। जिस प्रकार महामारी के फैलने के समय कांग्रेसी सरकारें अपनी भौगोलिक सीमा में स्थित रियासतों की सहायता दिये बिना नहीं रह सकतीं, उसी तरह इस मुसीबत के समय भी वे चुप नहीं रह सकतीं।" गांधी जी ने इसी लेख में लिखा था कि "वह ( रियासती जनता ) इस विजय से साबित कर दिखायेगी कि वह कांग्रेस की सर्वोच्च सत्ता के मातहत राजकोट की सच्ची शासक है।" रियासतों के मामले में कांग्रेस के लिए 'सर्वोच्च सत्ता' का प्रयोग यह शायद पहली ही बार किया गया था। कुछ साल पहले ब्रिटिश भारत जिस आन्दोलन का क्षेत्र बना हुआ था, उस युद्ध का क्षेत्र अब भारतीय भारत हो गया है। लड़ने वाले वही दोनों हैं—कांग्रेसी, और अंगरेज सरकार।*

* 'कांग्रेस का इतिहास; सन् १९३५ से १९३९ तक' के आधार पर

ज्यों-ज्यों देशी राज्यों में जन-आन्दोलन तीव्र होता गया, कई स्थानों पर दमन भी चरम सीमा तक पहुँचने लगा। परन्तु यह कब तक चलेगा! औंध और साँगली आदि कुछ राज्य तो समय की गति को पहचानने का परिचय देने लगे हैं औंध के विषय में विस्तार से अन्यत्र लिखा गया है। अस्तु, कांग्रेस की देशी राज्यों सम्बन्धी वर्त्तमान नीति त्रिपुरी कांग्रेस ( मार्च १९३९ ) के इस विषय के प्रस्ताव में भली प्रकार व्यक्त है, जिसमें देशी राज्यों की अद्भुत् जाग्रति का स्वागत, प्रजा की उत्तरदायी शासन तथा नागरिक अधिकारों की माँग के समर्थन, राजाओं की दमन-नीति के विरोध, आदि के बाद कहा गया कि 'हरिपुरा कांग्रेस की नीति देशी राज्यों की प्रजा के हित में नियत की गयी थी, ताकि उसमें स्वयं आत्म-विश्वास और शक्ति उत्पन्न हो सके। परिस्थितियों के कारण कांग्रेस ने अपने ऊपर कुछ पावन्दियाँ लगायी थीं, लेकिन इसे कभी अनिवार्य बन्धन नहीं माना गया। कांग्रेस का सदा यह अधिकार तथा कर्त्तव्य रहा है कि वह देशी राज्यों के प्रजाजनों का पथ-प्रदर्शन करे। उनमें होनेवाली महान जाग्रति के कारण, सम्भव है कि कांग्रेस ने अपने ऊपर जो पावन्दियाँ लगायी हैं, वे घट जाँय या बिलकुल खतम हो जायँ, और इस प्रकार कांग्रेस तथा देशी राज्यों की प्रजा का आन्दोलन एक होता जाय। कांग्रेस फिर यह दोहरा देना चाहती है कि उसका स्वाधीनता का लक्ष्य सारे भारत के लिए है, जिसमें देशी राज्य भी शामिल है। उन्हें भारत का अविभाज्य अंग होने के कारण अलग नहीं किया जा सकता। उन्हें भी उतनी राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता

का अधिकार है, जितना कि ब्रिटिश भारत को।'

यद्यपि कांग्रेस रियासतों के उत्तरदायी शासन या नागरिक अधिकार प्राप्ति सम्बन्धी आन्दोलन से पूर्ण सहानुभूति रखती रही और उसके कई प्रमुख कार्यकर्त्ताओं या सूत्रधारों ने व्यक्तिगत रूप से क्रियात्मक भाग भी लिया तथापि संस्था के रूप में कांग्रेस ने रियासतों के भीतरी मामलों में प्रायः हस्तक्षेप न करने की ही नीति रखी। देशी राज्यों के प्रजामंडलों के सम्बन्ध में महात्मा गांधी का मत है कि 'ये स्वतंत्र संस्थाएँ हैं। कांग्रेस के साथ उनका कोई जाब्ते का सम्बन्ध नहीं है। वे कांग्रेस की नीति से प्रेरित भी हो सकते हैं, और नहीं भी हो सकते। ऐसी हालत में मैं तो उन्हें यही सलाह दूँगा कि वे कांग्रेस के साथ एक होकर रियासती अधिकारियों को व्यर्थ ही नाराज़ न करें।'

देशी राज्यों के सम्बन्ध में, कांग्रेस में मुख्य दो विचार-धाराएँ हैं। उसके कई एक प्रमुख नेताओं का यह मत रहा है कि देशी राज्यों में जो कुशासन या अव्यवस्था है उसके लिए नरेश विशेष दोषी नहीं हैं। वे तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद की सृष्टि या ब्रिटिश अधिकारियों के अधीन हैं, स्वाधीन नहीं हैं। देशी राज्यों के सुधार का मूल उपाय भारतवर्ष से ब्रिटिश साम्राज्यवाद को हटाना है, और कांग्रेस इस कार्य को कर रही है। फिर, कांग्रेस की इतनी शक्ति भी नहीं है कि वह एक-साथ ब्रिटिश साम्राज्य एवं राजाओं दोनों से लड़ाई ले। अतः देशी राज्यों का विशेष आन्दोलन तो वहाँ की जनता द्वारा होना चाहिए। इसके विरुद्ध दूसरी विचार-धारा यह है कि राजा लोग भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रधान समर्थक हैं। जब तक इन से

टक्कर न ली जायगी। ये उसका बल बढ़ाते रहेंगे, और भारतीय राष्ट्र पराधीनता-पाश से मुक्त नहीं होगा। अस्तु, स्वराज्य-संग्राम में सफलता प्राप्त करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि कांग्रेस, की लड़ाई देशी विदेशी नहीं है यह तो समस्त अत्याचार या शोषण के विरुद्ध है, चाहे वह किसी देशी के द्वारा हो या विदेशी के।

निदान, यह स्पष्ट है कि कांग्रेस देशी राज्यों में उत्तरदायी शासनप्रणाली स्थापित करना अधिकार और कर्त्तव्य मानती है। वह चाहती है कि राजाओं का अपने-अपने राज्य में वही स्थान हो, जो इङ्गलैंड के बादशाह का उस देश में है, राजाओं के खर्च बाँध दिये जायँ, जनता के प्रतिनिधियों द्वारा निर्वाचित मंत्रिमंडल राज-प्रबन्ध की व्यवस्था करें, राजा वैधनिक शासक हों। ज्यों-ज्यों परिस्थिति अनुकूल होती जायगी, कांग्रेस इस दिशा में अधिकाधिक क्रियात्मक भाग लेगी; हाँ, देशी राज्यों की जनता के कष्ट विशेषतया स्वयं उसके त्याग और परिश्रम से ही दूर होंगे, अतः उसे स्वावलम्बी बनना चाहिए। इस विषय की अन्य आवश्यक बातें अगले अध्याय में कही जायँगी।

यहाँ इस बात का विचार और कर लें कि भारतीय संघ में कांग्रेस देशी राज्यों का क्या स्थान चाहती है। संघ-शासन के विषय में विशेष रूप से आगे लिखा जायगा। सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने जिस संघ की स्थापना का निश्चय किया था, उसके व्यवस्थापक मंडल में देशी राज्यों की जनता की सर्वथा उपेक्षा करके राजाओं के ही प्रतिनिधि रखने की योजना की थी। उस विधान को

कांग्रेस ने अस्वीकार किया, और वह अन्ततः स्थगित ही हो गया। सन् १९४२ ई० में ब्रिटिश युद्ध-मंत्रिमंडल की ओर से सर स्टेफर्ड क्रिप्स एक योजना लेकर यहाँ आये; इसे साधारण बोलचाल में 'क्रिप्स योजना' कहा जाता है। इस में अन्यान्य बातों के अतिरिक्त यह कहा गया था कि भारत का भावी विधान बनाने के लिए जो सभा बनायी जायगी, उसमें ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि तो जनता द्वारा चुने जायँगे, किन्तु देशी राज्यों के प्रतिनिधि राजाओं द्वारा नामजद किये जायँगे; इसके बाद जब विधान बन चुकेगा तो इस बात का निर्णय भी राजा लोग ही करेंगे कि उनके राज्य को भारतीय संघ में शामिल होना चाहिए या नहीं; जो राजा भारतीय संघ में शामिल न होंगे, वे ब्रिटिश सरकार के साथ सीधा सम्बन्ध रख सकेंगे। कांग्रेस ने क्रिप्स योजना को अस्वीकार किया; उसकी कार्य-समिति के वक्तव्य का देशी राज्यों सम्बन्धी अंश इस प्रकार है—

'इस योजना में देशी राज्यों के नौ करोड़ लोगों की सर्वथा उपेक्षा की गयी है और उन्हें जड़ पदार्थों के समान उनके शासकों की मर्जी पर छोड़ दिया गया है, जो प्रजातन्त्र और आत्मनिर्णय दोनों के ही विपरीत है। जब कि विधान निर्मातृ सभा में हरेक देशी राज्य का प्रतिनिधित्व आबादी के अनुपात से निश्चित किया गया है, उन राज्यों की प्रजा को अपने प्रतिनिधियों के चुनाव में कोई आवाज़ नहीं रखी गई है; न उन पर भारी असर डालने वाले निर्णयों के समय किसी भी अवस्था में उनसे कोई परामर्श ही किया जायगा। ऐसे राज्य विदेशी सत्ता के अड्डे बन कर, क्योंकि उनमें विदेशी सेना के रहने की सम्भावना

बतलायी जाती है, अनेक प्रकार से भारतीय स्वतन्त्रता की वृद्धि में बाधक बन सकते हैं, और राज्यों की प्रजा के साथ ही शेष भारत की भी प्रजा की स्वतन्त्रता के लिए स्थायी रूप से खतरा बने रहेंगे।'

देशी राज्यों की जनता की उपेक्षा करने वाला विधान भारतवर्ष की स्वतंत्रता का विधान कैसे हो सकता है, और स्वतंत्रता गुण से वंचित विधान राष्ट्रीय महासभा कहलाने वाली संस्था को कैसे मान्य हो सकता है!

# सतरहवाँ अध्याय

## देशी राज्य लोकपरिषद

दुर्भाग्य से यह बिल्कुल सच है कि कांग्रेस इन्हें ( देशी राज्य निवासियों को ) हर समय जोरदार मदद नहीं दे सकती। सब से बड़ी जरूरत यह है कि अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद को अधिक मजबूत बनाया जाय और वह अपने संयम से निष्पक्षता और शुद्ध न्याय की ख्याति प्राप्त करे। —म० गाँधी

रियासतों की प्रजा की दशा केवल तभी सुधर सकती है, जब रियासतों के निवासी निर्भयता और लगन के साथ अपनी दशा को सुधारने का यत्न करें और इनके लिए कष्ट उठाने को भी तैयार हों। केवल बाहर के आन्दोलन से उनकी दशा में कोई भेद नहीं आ सकता। —जमनालाल बजाज

पिछले अध्याय में यह बताया गया है कि कांग्रेस ने देशी राज्यों के सम्बन्ध में समय-समय पर क्या-क्या कार्य किया। अपने जीवन के प्रथम दस वर्ष तो उसने रियासती समस्याओं की ओर ध्यान ही नहीं

दिया था, पीछे भी वह प्रायः मन्द गति से ही इस ओर अग्रसर हुई। वह इस विषय में सन् १६२७ ई० से कुछ विशेष अनुराग लेने लगी, जब कि देशी राज्यों सम्बन्धी कार्य करने के लिए 'अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद' नामक एक पृथक् ही संस्था स्थापित हो गयी। इस अध्याय में इसी संस्था के सम्बन्ध में विचार करना है।

देशी राज्यों की प्रजा कष्ट पा रही थी, शिक्षा की व्यवस्था नाम-मात्र को थी, स्वास्थ्य और चिकित्सा की कौन कहे, अनेक दशाओं में रोटी-कपड़े को भी मोहताज थी। शासन में उसकी कोई आवाज़ न थी, उसकी गाढ़ी कमाई राजाओं का ऐश्वर्य बढ़ाने के काम में आती थी, अथवा समय-समय पर शाही मेहमानों का स्वागत सत्कार करने में। उसकी दशा ब्रिटिश भारत की जनता से भी अधिक गयी-बीती थी। उसने अपना उद्धार करने की सोची। ब्रिटिश भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन से उसे और भी प्रोत्साहन मिला। यद्यपि देशी राज्यों की वर्त्तमान अखिल भारतवर्षीय संस्था का संगठन सन् १६२७ ई० में हुआ, इससे पहले भी भिन्न-भिन्न राज्यों में तरह-तरह का कार्य होने लग गया था। जिन महानुभावों ने समय-समय पर अनेक प्रकार के कष्ट उठाकर देशी राज्यों में जीवन और जागृति का संचार किया है, उन सब का वर्णन तो सम्भव है इतिहास में कभी भी न हो सके, बहुत से माई-के-लाल शायद सदैव ही प्रकाश में आये बिना रहेंगे।* हम तो मुख्य-मुख्य कार्यकर्ताओं, तथा आन्दोलनों का भी कुछ परिचय देने

* आवश्यकता है कि देशी राज्यों की जन-जागृति का स्वतंत्र और विस्तृत इतिहास तैयार किया जाय।

में असमर्थ हैं। यहाँ केवल उदाहरण-स्वरूप कुछ घटनाओं का उल्लेख किया जाता है।

जहाँ तक हमें मालूम हो सका है, उत्तर भारतवर्ष के विविध देशी राज्यों में सब से पूर्व अपनी स्थिति से असंतोष प्रकट करने वाले राज्य राजपूताना के ही थे। यहाँ सन् १९०५ में कुछ संगठन हुआ। स्वामी गोविन्द के नेतृत्व में भील आन्दोलन हुआ, जो शासकों के नृशंस दमन के कारण बन्द हो गया। १९१८ में राजपूताना-मध्यभारत सभा की स्थापना श्री० विजयसिंह जी पथिक, गणेशशंकर जी विद्यार्थी और जमुनालाल जी बजाज आदि के उद्योग से हुई। श्री० पथिक जी ने सन् १९१९ में, वर्धा में राजस्थान सेवा संघ स्थापित किया; यह अगले वर्ष अजमेर आ गया और आठ वर्ष तक कार्य करता रहा। श्री० पथिक जी, माणिक्यलाल जी वर्मा और रामनारायण जी चौधरी द्वारा बिजौलिया और बेगूं (मेवाड़) आन्दोलन व्यापक रूप से चलाया गया। इससे दूर-दूर तक जागृति हुई। राजपूताने में अन्य कई सज्जनों ने भी महत्वपूर्ण सेवा की है। अन्यत्र कई संस्थाएँ तो भिन्न-भिन्न राज्य-समूहों में कार्य करने के लिए स्थापित हुईं— यथा सन् १९१९ में काठियावाड़ राजनैतिक परिषद, १९२२ में बड़ौदा स्टेट प्रजामंडल और १९२३ के लगभग दक्षिणी संस्थान हित-वर्द्धक सभा पूना, कार्य करने लगीं। इस प्रकार की अन्य संस्थाएँ पंजाब स्टेट्स पीपल्स कान्फ्रेन्स, और सौराष्ट्र सेवा-संघ है। कुछ संस्थाओं ने राज्य विशेष को अपना कार्यक्षेत्र रखा, यथा सांगली स्टेट पीपल्स कान्फ्रेन्स, और पोलिटिकल कान्फ्रेन्स, भावनगर प्रजापरिषद, कच्छी प्रजापरिषद,

हैदराबाद स्टेट पीपल्स कान्फ्रेन्स, जंजीरा स्टेट सबजेक्ट्स कान्फ्रेन्स, मिराज स्टेट पीपल्स कान्फ्रेन्स, मैसूर कांग्रेस, और ईदर प्रजा परिषद आदि।

इन संस्थाओं के अधिवेशन यथासम्भव प्रति वर्ष प्रायः कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर और ब्रिटिश भारत में होते रहे। सन् १९२२ ई० से यह आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि देशी राज्यों सम्बन्धी जनता की कोई केन्द्रीय संस्था स्थापित हो। इस दिशा में कई प्रयत्न किये गये। अन्ततः सन् १९२७ ई० में जब कि भारतीय शासन सुधार सम्बन्धी जाँच करने के लिए ब्रिटिश सरकार से नियुक्त साइमन कमीशन यहाँ आने वाला था, श्री० अमृतलाल सेठ तथा उनके सहयोगियों के उद्योग से अखिल भारतवर्षीय देशी राज्य लोक-परिषद की स्थापना की गयी। यद्यपि कुछ अन्य संस्थाओं ने भी अखिल भारतवर्षीय स्वरूप धारण करने का प्रयत्न किया था, अन्ततः उनका इससे समझौता हो गया, और उनका कार्यक्षेत्र सीमित रहा।

इस परिषद का प्रथम अधिवेशन १९२७ ई० में बम्बई में हुआ। इसमें सत्तर से अधिक देशी राज्यों के आठ सौ से अधिक प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। परिषद ने अपने प्रस्तावों में बतलाया कि देशी राज्यों के शासन-प्रबन्ध में क्या-क्या दोष है, उनके सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार की नीति कहाँ तक त्रुटि-युक्त है, तथा देशी राज्यों में क्या-क्या सुधार होने चाहिएँ।

यह बहुत चिन्तनीय है कि परिषद को अपने अधिवेशनों के लिए हर बार ब्रिटिश भारत का ही कोई स्थान निश्चित करना पड़ा है।

कोई भी देशी राज्य अभी तक ऐसा 'उदार' नहीं हुआ कि परिषद के भाषणों में की जाने वाली देशी राज्यों की आलोचना को सहन कर सके। जिन राज्यों में थोड़ी-बहुत भाषण-स्वतंत्रता है, वे भी वक्ताओं को दूसरे राज्यों की खरी आलोचना का अवसर देकर उन राज्यों से अपने 'मधुर' सम्बन्ध बिगाड़ने का साहस नहीं करते। परिषद का पहला अधिवेशन बम्बई में होने की बात ऊपर कही जा चुकी है; दूसरा अधिवेशन ( सन् १६२६ ) भी बम्बई में ही हुआ। इसमें तथा इसके बाद के अधिवेशनों में परिषद ने भारतीय संघ शासन योजना के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये और बतलाया कि अखिल भारतीय संघ बनाना बहुत उत्तम है, पर उसके लिए यह आवश्यक है कि उसमें रियासती प्रजा को भी उतने ही अधिकार प्राप्त हों, जितने कि ब्रिटिश भारतीय प्रजा को; संघीय व्यवस्थापक मंडल के रियासती प्रतिनिधियों का चुनाव जनता के द्वारा ही हो, राजाओं के द्वारा नहीं।

परिषद के अन्य साधारण एवं विशेष अधिवेशनों के सम्बन्ध में यहाँ विशेष लिखने की आश्यकता नहीं। वे समय-समय पर होते रहे हैं, और उनमें देशी राज्यों सम्बन्धी विविध नागरिक और राजनैतिक विषयों पर विचार हुआ है। रियासती प्रजा के कष्ट-निवारण का आन्दोलन करने के अतिरिक्त इसका उद्देश्य उनमें संगठन और स्वाभिमान की भावना बढ़ाना तथा विविध राज्यों के आन्दोलनों का पथ-प्रदर्शन करना और जनता की आवश्यकताओं तथा दृष्टिकोण को कांग्रेस एवं ब्रिटिश अधिकारियों के सामने रखते रहना है। इसका लक्ष्य सन् १६२७ में यह निश्चित किया गया

था—'देशी राज्यों की जनता के लिए, प्रतिनिधि-संस्थाओं द्वारा, राजाओं की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन प्राप्त करना।' सन् १९३१ में उद्देश्य 'देशी राज्यों की जनता के लिए समस्त वैध और शान्त उपायों द्वारा पूर्णतया उत्तरदायी और प्रजातंत्रात्मक शासन प्राप्त करना' रखा गया। उद्देश्य की शब्दावली का परिवर्तन और विशेषतया 'राजाओं की छत्रछाया में' इन शब्दों का निकाला जाना जनता के के भावों और विचारों की दिशा सूचित करता है। सन् १९३९ में तो और भी प्रगति की सूचना दी गयी। यह निश्चय किया गया कि परिषद का लक्ष्य राज्यों की जनता द्वारा समस्त वैध और शान्त उपायों से, स्वतंत्र भारतीय संघ के अंग होकर, पूर्ण उत्तरदायी शासन प्राप्त करना है।

परिषद की एक स्थायी समिति है, उसका कार्यालय पहले बम्बई में था, अब वर्धा आ गया है। समिति समय-समय पर देशी राज्यों सम्बन्धी आवश्यक कार्य करती है। देशी राज्यों में नागरिक अधिकारों की कितनी कमी है, वहाँ जाकर सार्वजनिक सभा करने, व्याख्यान देने, या अधिकारियों के विरुद्ध जाँच करने वालों को प्रायः कैसे अमानुषिक कष्ट दिये जाते हैं, इसे भुक्तभोगी ही जानते हैं। परिषद के कार्यकर्त्ता अनेक आर्थिक, शारीरिक तथा अन्य कठिनाइयों को सहन करते हुए अपनी धुन में लगे हैं। परिषद ने अब तक जो विविध कार्य किये हैं, उनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं:—

१—सन् १९२७ ई० में बटलर कमेटी देशी राज्यों की जाँच करने के लिए बनायी गयी थी, इसका उल्लेख पहले किया जा चुका

है। इसके तीनों सदस्य अंगरेज थे। परिषद ने इस कमेटी के निर्माण, विचारणीय विषयों तथा कार्यपद्धति के विरुद्ध प्रचार किया। इसने कमेटी को एक याददाश्त (मेमोरेंडम) दी, तथा अपना एक डेप्यु-टेशन इंगलैंड भेजकर ब्रिटिश जनता में आन्दोलन किया।

२—परिषद ने देशी राजाओं के इस सिद्धान्त के विरुद्ध प्रचार किया कि राजाओं का सम्बन्ध भारत-सरकार से न होकर सीधे सम्राट् से है।

३—परिषद ने भारतीय शासन-विधान की नयी रूप-रेखा का विचार करनेवाली गोलमेज़ सभाओं में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने की चेष्टा की।

४—पटियाला नरेश के विरुद्ध प्राप्त शिकायतों की जाँच कराने के लिए एक कमेटी नियुक्त की। इस कमेटी की रिपोर्ट* प्रकाशित करायी और इसकी स्वतंत्र जाँच के लिए आन्दोलन किया। इसी प्रकार उड़ीसा के राज्यों की जाँच करके उनके सम्बन्ध में सविस्तर रिपोर्ट छपायी। इसके अतिरिक्त परिषद ने नवानगर, बीकानेर, झाबुआ, रतलाम, और लिम्बडी आदि राज्यों की दुरवस्था के सम्बन्ध में आंकड़े और सामग्री, तथा हैदराबाद, मैसूर और कश्मीर के विषय में पुस्तिकाएँ प्रकाशित करायीं। सन् १९३८ ई० से 'दि स्टेट्स पीपल' नामक एक सामयिक पत्र भी परिषद की ओर से प्रकाशित होता है।†

* Indictment of Patiala.

† खेद है, परिषद का सब प्रकाशन अंगरेजी में होता रहा है। जनता में प्रचार करने के लिए भारतीय भाषाओं में, विशेषतया राष्ट्र-भाषा में काम करने की अत्यन्त आवश्यकता है। आशा है, परिषद भविष्य में इसे ध्यान में रखेगी।

५—परिषद के पदाधिकारियों ने भिन्न-भिन्न राज्यों में दौरा करके जनता में जागृति उत्पन्न की, तथा राजाओं से शासन-सुधार कराने के लिए भेंट की और जगह-जगह अपनी शाखा-परिषदें स्थापित कीं। ये परिषदें अपनी स्थानीय आवश्यकताओं की ओर यथाशक्ति ध्यान दे रही हैं।

११ अक्टूबर १९३९ को परिषद की स्थायी समिति (स्टैंडिंग कमेटी) ने महायुद्ध और उसके देशी राज्यों पर पड़े प्रभाव के विषय में विचार किया। उसके वक्तव्य का मुख्य अंश इस प्रकार है—

"योरप में युद्ध छिड़ जाने का तात्कालिक कारण था—नाजी आक्रमण, और पच्छिमी मित्र-राष्ट्रों ने घोषणा कर दी कि हम लोग लोकतंत्र, स्वतंत्रता और स्वभाग्य-निर्णय के लिए लड़ रहे हैं। स्टैंडिंग कमेटी इन उद्देश्यों को सर्वांश में स्वीकार करती है पर वह इस बात पर जोर देती है कि ये उद्देश्य स्पष्ट कर दिये जायँ और योरप के बाहर अन्य देशों और विशेषकर भारत के लिए कार्यान्वित किये जायँ। इसलिए कमेटी कांग्रेस के इस अनुरोध में शामिल है कि ब्रिटिश सरकार अपने युद्ध और शान्ति के उद्देश्य बिलकुल स्पष्ट कर दे। ये उद्देश्य राज्यों की प्रजा के ऊपर भी लागू होने चाहिएँ क्योंकि वह ऐसे स्वेच्छाचारी शासन में रहती है जो प्रगति पर उस नाजीवाद से भी अधिक कुठाराघात करने वाला है, जिसके विरुद्ध ब्रिटिश सरकार लोहा ले रही है।

"बहुत से देशी नरेशों ने युद्ध चलाने के लिए ब्रिटिश सरकार को धन जन की सहायता देने का वचन दिया है और योरप में लोकतन्त्र की स्थापना के लिए सहानुभूति प्रदर्शित की है। यह बड़ी बेमेल बात है कि एक ओर तो देशी राज्यों में भीषण स्वेच्छाचार होता रहे और दूसरी ओर ऐसी बातें कही जायँ। राजाओं ने ब्रिटिश सरकार

की धन जन की सहायता का वचन देने के पहले अपनी प्रजा से किसी प्रकार से कुछ भी नहीं पूछा। देशी राज्यों की प्रजा का प्रतिनिधित्व करती हुई यह कमेटी न तो ऐसे बन्धन में पड़ना स्वीकार कर सकती है और न यह समझकर कि योरप में युद्ध छिड़ गया है, स्वेच्छाचार जारी रहने देना मंजूर कर सकती है।

"कमेटी यह भी देख रही है कि इस युद्ध के बहाने अनेक राज्यों में दमन के कितने ही नये उपाय काम में लाये जा रहे हैं जिससे कि नागरिक स्वतन्त्रता एकबारगी ही समाप्त हो जाय। कितने ही राज्यों में युद्ध छिड़ जाने के बहाने शासन के वे सुधार भी स्थगित कर दिये गये हैं, जिनके लिए पहले वचन दिया जा चुका है। इस प्रकार लोकतन्त्र के के नाम पर किये जानेवाला युद्ध देशी राज्यों में और भी दमन, तथा उन्नति का प्रतिरोधक बन रहा है। देशी राज्यों की प्रजा इसका तीव्र विरोध करती है और वह ऐसी परिस्थिति में युद्ध का समर्थन करने में एकबारगी ही असमर्थ है। सम्भव है कि इस प्रकार जबरदस्ती लादे गये आदेशों का उसे विरोध भी करना पड़े।"

कमेटी विभिन्न शासकों को यह घोषित करने के लिए आमंत्रित करती है कि उन्हें अपने राज्यों में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्वीकार है और वे उसे निकट भविष्य में अधिक-से-अधिक सम्भव रूप में कार्यरूप में परिणत करने को तैयार हैं। नयी दमनकारी व्यवस्था स्थगित कर दी जाय और व्यापक स्वतन्त्रा चलने दी जाय।

"कमेटी यह बात स्पष्ट कह देना चाहती है कि राजाओं को प्रजा के सहयोग की उस समय तक लेश मात्र भी आशा न करनी चाहिए जब तक ये सैद्धान्तिक परिवर्तन न कर दिये जायँ और देशी राज्यों का शासन प्रजा की अनुमति और प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा न होने लगे।"

क्रिप्स योजना ( जिसका उल्लेख पिछले अध्याय में हो चुका है ) के सम्बन्ध में परिषद की स्थायी समिति ने एक सविस्तर प्रस्ताव में कहा कि योजना में ब्रिटिश सरकार और देशी राजा केवल इन दो का अस्तित्व स्वीकार किया गया है, और रियासती प्रजा की, जिसकी संख्या नौ करोड़ है, उपेक्षा की गयी है। यह योजना देशी राज्य तथा समस्त भारतवर्ष दोनों की स्वाधीनता में चोट पहुँचाने वाली है। समिति देशी राजाओं के अथवा किसी भी बाहरी सत्ता के ऐसे अधिकारों को मंजूर नहीं कर सकती, जो भारतवर्ष की आजादी के मार्ग में बाधक होंगे। ब्रिटिश सरकार की संधियों की दलील का खंडन करके यह स्पष्ट घोषित किया गया कि रियासतों के प्रजाजनों की यह माँग है कि स्वयम् निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार उन्हें विधान-निर्माण तथा उसके प्रयोग के प्रत्येक कदम पर अपने चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा अपने भाग्य के निर्णय करने का अधिकार हो। इसके बिना, उनके सम्बन्ध में बनायी गयी किसी व्यवस्था को वे मानने को बाध्य न होंगे। समिति को विश्वास है कि कांग्रेस ऐसे विधान को मंजूरी नहीं देगी, जिसमें ब्रिटिश भारत के समान ही रियासती जनता को स्वयं निर्णय का अधिकार न हो, और जिसके अनुसार रियासती जनता को भी वही राजनैतिक, जनतंत्रात्मक और आर्थिक अधिकार न हों, जो भारतीय प्रान्तों की जनता को हों।*

* परिषद के अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल जी नेहरू के आदेशानुसार १९ अप्रेल को देशी राज्यों में रियासती दिवस मनाया गया, और यह प्रस्ताव पढ़कर सुनाया गया।

परिषद देश के राष्ट्रीय आन्दोलन में ब्रिटिश भारतीय कार्यकर्त्ताओं के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर भाग लेती रही है। सन् १९३० तथा उसके बाद के सत्याग्रह में परिषद के सभी प्रमुख कार्यकर्त्ताओं ने भाग लिया। बीच में, गांधी-इर्विन समझौते के अनुसार जब म० गांधी कांग्रेस की ओर से भारतवर्ष के प्रतिनिधि के रूप में, गोलमेज कान्फ्रेन्स में सम्मिलित होने के लिए लन्दन गये तो परिषद ने उन्हें ही अपना प्रतिनिधि मान्य किया।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि परिषद ने समय-समय पर कई राज्यों के अधिकारियों के विरुद्ध आयी हुई शिकायतों की जाँच करने में बड़ा परिश्रम तथा कष्ट उठाया। परन्तु आवश्यकता इस बात की भी है कि राज्यों के भीतर विशेष काम किया जाय, और स्थायी संगठन किये जायँ। अवश्य ही इसके लिए अधिक कार्यकर्त्ताओं की तथा अधिक समय की ज़रूरत होती है, पर उसकी व्यवस्था होनी ही चाहिए। सन् १९३५ ई० से इस ओर क्रमशः ध्यान दिया जाने लगा। परिषद के अध्यक्ष तथा अन्य कार्यकर्त्ता देशी राज्यों में दौरा करते हैं। स्थान-स्थान पर अब स्थानीय प्रजापरिषद, लोकपरिषद या प्रजामंडल आदि संस्थाएँ स्थापित होती जा रही हैं।

विशेषतया सन् १९३७ ई० से देशी राज्यों में राजनैतिक जागृति बहुत बढ़ती जा रही है। हैदराबाद, मैसूर, ट्रावंकोर, राजपूताना, काठियावाड़ तथा उड़ीसा आदि के राज्यों में असंतोष की लहर एक-साथ बहुत जोर से आगयी। उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम सर्वत्र उत्तरदायी शासन की माँग है। तथापि अभी जैसा चाहिए,

कार्य नहीं हो रहा है। कितने ही स्थानों में अभी प्रजामंडलों की स्थापना होने की, तथा जहाँ प्रजामण्डल हैं, वहाँ उनका संगठन दृढ़ होने की बड़ी आवश्यकता है। प्रजामण्डलों को अपनी स्थानीय समस्याओं पर तो ध्यान देना ही होगा, परन्तु इनका सूत्र-संचालन अखिल भारतवर्षीय लोकपरिषद जैसी केन्द्रीय संस्था द्वारा होते रहना चाहिए, जिससे स्थानीय आन्दोलनों के समय भी देश की मुख्य समस्या का सब को ध्यान रहे।

अपने अध्यक्षों के रूप में, परिषद को सर्वश्री दीवान बहादुर सर रामचन्द्र राव, सी० वाई० चिन्तामणि, रामानन्द चेटर्जी, एन० सी० केलकर, डा० पट्टाभि सीतारामैया, और जवाहरलाल जी नेहरू आदि विद्वानों और नेताओं की सेवाएँ प्राप्त हुई हैं। महात्मा गांधी का, जो गत बीस वर्ष से अधिक से कांग्रेस के प्रमुख सूत्रधार रहे हैं, देशी राज्यों से और उनकी जनता के आन्दोलन से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। श्री० जवाहरलाल जी नेहरू, डा० पट्टाभि सीतारामैया, आचार्य नरेन्द्रदेव, और सरदार पटेल आदि प्रमुख कांग्रेस-नेता देशी राज्यों के विषय में यथेष्ट मार्ग-प्रदर्शन करते रहे हैं। इन सब के उद्योग, जनता के आन्दोलन, अथवा समय के प्रवाह को देखकर कुछ राज्यों ने किसी-किसी विषय में उत्तरदायी शासन की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति दिखायी है, परन्तु वह पर्याप्त नहीं है। हाँ, औंध आदि राज्यों ने इस दिशा में अच्छा कदम उठाकर दूसरों के लिए अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित किया है। इस विषय में विशेष अन्यत्र लिखा गया है। अस्तु, आशा है, कांग्रेस के साथ मिलकर परिषद देशी राज्यों के

उत्थान सम्बन्धी महान कार्य में उत्तरोत्तर सफल होती जायगी। विगत वर्षों में कांग्रेस-सूत्रधारों ने विविध देशी राज्यों में प्रजा के आन्दोलन का नेतृत्व किया; नवीन परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयीं। इससे लोक-परिषद कांग्रेस के बहुत निकट आयी, और उसने कांग्रेस के सहयोग और नेतृत्व में काम करने का निश्चय कर लिया है। यह शुभ लक्षण है।

# अठारहवाँ अध्याय

## देशी राज्यों का सुधार

छोटे राजाओं के लिए तो यही अच्छा है कि जो अधिकार उन्हें कभी मिलने ही न चाहिएँ थे, उन्हें वे खुद-बखुद छोड़ दें, और बड़े राजाओं के अधिकार लाकते तले आ जाने चाहिएँ।

—म० गाँधी

हम तो सिर्फ इतनी सी बात चाहते हैं कि देशी रजवाड़ों के मालिकान अपनी इच्छा से अपने सम्पूर्ण शासनाधिकार अपनी प्रजा के हाथों में सौंप दें, और आगे से शासन का भार देशी राज्यों की प्रजा के वयस-प्राप्त जन-समूह के द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों के द्वारा होने लगे। यदि देशी नरेश इस बात के लिए तत्पर न हुए तो संघर्ष अवश्यम्भावी है।

—बालकृष्ण शर्मा

यों तो देशी राज्यों के सम्बन्ध में एक मत यह भी है, और पिछले दिनों यह मत बढ़ता रहा है कि भावी व्यवस्था में इनका कोई स्थान न रहे, इनका सर्वथा अन्त कर दिया जाय, देश भर में एक स्वतंत्र

प्रजासत्तात्मक केन्द्रीय सरकार हो, और उसके अधीन विविध भागों अर्थात् प्रान्तों का प्रबन्ध उत्तरदायी शासनपद्धति के आधार पर हो। तथापि हम यही मानकर चलते हैं कि अभी देशी राज्यों का सर्वथा लोप नहीं होना है, केवल उनमें आवश्यक सुधार होना चाहिए।

इस विषय में विचार करते हुए पहले यही बात सामने आती है कि अधिकांश राज्य तो कहने को ही राज्य हैं; वे इतने छोटे हैं, उनकी जन-संख्या तथा आय इतनी कम है कि वहाँ का पृथक् रूप से शासन अच्छी तरह हो ही नहीं सकता; यही नहीं, उनमें तो जनता की शिक्षा, स्वास्थ्य और न्याय आदि के लिए भी उच्च संस्थाएँ स्थापित नहीं की जा सकतीं।* ऐसे सब राज्यों का तो अन्त ही कर देना पड़ेगा, और आज नहीं तो कल वह होकर रहेगा। उन्हें आपस में मिलाया जायगा या पास के प्रान्त में सम्मिलित किया जायगा। पर अन्ततः कितने राज्य रहें, या विषय विवादग्रस्त है। देशी राज्य लोकपरिषद का मत है कि भविष्य में केवल वे ही राज्य रहने चाहिएँ जिनकी जन-संख्या बीस लाख से अधिक अथवा वार्षिक आय पचास लाख रुपये से अधिक हो।

इस प्रकार निम्नलिखित राज्य बने रहने योग्य प्रतीत होते हैं:— (१) हैदराबाद, (२) मैसूर, (३) त्रावंकोर, (४) जम्मू और कशमीर, (५) गवालियर, (६) जयपुर, (७) बड़ौदा, (८) जोधपुर, (९) भावनगर, (१०) पटियाला, (११) बीकानेर, (१२) इन्दौर, (१३) नवानगर,

* कुछ समय से सरकार कम आय वाली छोटी रियासतों के संगठन तथा सुधार के सम्बन्ध में अपने ढङ्ग से सोच रही है। उदाहरणार्थ उसने छोटे राज्यों के लिए संयुक्त हाईकोर्ट और पुलिस निर्माण की योजना प्रस्तुत की है।

(१४) जूनागढ़, (१५) भोपाल, (१६) कोचीन, (१७) उदयपुर, (१८) कोल्हापुर, (१९) मोर्वी, (२०) रीवा, (२१) गोंडल।*

अन्य लेखकों का अपना-अपना अलग-अलग मत है। श्री० गुरुमुख निहालसिंह जी के विचार से राज्यों के दो भेद किये जायँ, बड़े राज्य और छोटे राज्य। ऐसा करने में आय, क्षेत्रफल और जनता के अतिरिक्त उनके सम्मान तथा प्राचीन गौरव का भी ध्यान रखा जाय। उनके हिसाब से ४१ राज्य ऐसे हैं, जो आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी इकाई होकर शासन-कार्य को आधुनिक पद्धति से चला सकते हैं; ये ही राज्य ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के संघ में पृथक्-पृथक् रूप से सम्मिलित हो सकते हैं ( अन्य राज्य ऐसे समूहों में इकट्ठे होकर ही संघ में शामिल हो सकते हैं, जो आथिक दृष्टि से स्वावलम्बी हों )। बड़े राज्यों में उन्होंने उन राज्यों को सम्मिलित किया है:— (क) जिनकी वार्षिक आय पचास लाख रुपया या अधिक हो, (ख) जिनकी वार्षिक आय दस लाख रुपये से कम न हो, और जिनके नरेशों को १५ तोपों से कम की सलामी न हो, (ग) जिनके नरेशों को १५ तोपों से अधिक की सलामी प्राप्त हो, चाहे उनकी वार्षिक आय दस लाख रुपये से कम ही क्यों न हो। इस प्रकार श्री० गुरुमुख निहालसिंह जी ने, सन् १९२० के सरकारी प्रकाशन के आधार पर निम्नलिखित ४१ राज्यों को बना रह सकने वाला बतलाया है:—

हैदराबाद, मैसूर, बड़ौदा, जम्मू और कशमीर, ट्रावंकोर, ग्वालियर, पटियाला, इन्दौर, जोधपुर, जयपुर, भावनगर, कोल्हापुर, बीकानेर,

*इन में से पहिले नौ राज्यों में जनसंख्या तथा आय दोनों शर्तें पूरी होती हैं, और शेष राज्य केवल आय की दृष्टि से रखे जाने योग्य हैं।

जूनागढ़, कोचीन, नवानगर, भोपाल, रीवा, अलवर, रामपुर, उदयपुर, बहावलपुर, कोटा, कपूरथला, कच्छ, भरतपुर, झींद, टोंक, नाभा, खैरपुर, बनारस, दतिया, धौलपुर, धार, कलात, ईडर, बूँदी, सिरोही, ओरछा, देवास, और करौली।

इस सम्बन्ध में हमारा वक्तव्य यह है कि यद्यपि जन-संख्या और आय समय-समय पर बदलती रहती है—और इनका बढ़ना सदैव राज्य की समृद्धि का ही सूचक नहीं होता, तथापि सलामी की अपेक्षा इन्हें आधार मान कर विचार करना अच्छा ही है। प्राचीन गौरव का ठीक-ठीक हिसाब लगाना बहुत कठिन एवं वादग्रस्त होता है। हम समझते हैं कि आय और जन-संख्या के अतिरिक्त मुख्य विचारणीय बात यह होनी चाहिए कि राज्य की शासनपद्धति कैसी है। जिन राज्यों का शासन लोकतंत्र के अत्यन्त निकट हो, जिनके राजा अधिकांश सत्ता जनता को स्थायी रूप से सौंप दें, उन्हें पृथक् रूप से बने रहने का अवसर अधिक दिया जाना चाहिए। हाँ, यह तो आवश्यक है ही कि शासन सम्बन्धी जिन कार्यों को ये स्वतंत्र रूप से संचालित न कर सकें, उनके सम्बन्ध में ये दूसरों से मिल कर काम चलावें। साथ ही यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि देशी राज्यों की कुल संख्या बहुत अधिक न हो। स्मरण रहे कि ब्रिटिश भारत के प्रान्तों का भाषा आदि की दृष्टि से पुनर्गठन होने पर उनकी संख्या लगभग डेढ़ दर्जन होगी, जब कि उनका क्षेत्रफल एवं जन-संख्या देशी राज्यों से अधिक है।

देशी राज्यों की शासनपद्धति के सम्बन्ध में मुख्य विचारणीय विषय ये होते हैं—(१) राजा, (२) राजकर्मचारी, (३) व्यवस्थापक

सभाएँ, और (४) न्याय पद्धति। इनका साधारण परिचय पहले दिया जा चुका है। अब क्रमशः इनके सुधार का विचार किया जाता है। स्मरण रहे कि ये सुधार वर्तमान स्थिति को ध्यान में रख कर ही सुझाये जाते हैं।

पहले राजा को लीजिए। राजतंत्र पद्धति में उसके व्यक्तित्व और योग्यता का बड़ा महत्त्व होता है। उसे प्रारम्भ से ही ऐसे वातावरण में रखा जाना आवश्यक है जिससे उसमें प्रजा के प्रति प्रीति और सेवा-भाव का उदय हो, वह अपने आपको राज्य का स्वामी न समझ कर उसका वैधानिक शासक माने, जैसा इङ्गलैंड नरेश आदि हैं। इसी दृष्टि से उसकी शिक्षा की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

राजा और राजपरिवार का निजी खर्च परिमित रहना चाहिए। इस खर्च की रकम भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए एकसी नहीं ठहरायी जा सकती, राज्य की आय तथा राजपरिवार की मुख्य-मुख्य आवश्यकताओं का विचार रखते हुए ही उसका निश्चय किया जा सकता है। भारतीय परिस्थिति का विचार करते हुए म० गांधी का मत यह है कि 'दस से पन्द्रह लाख तक की आमदनी वाले राज्य के राजा और राजपरिवार का निजी खर्च राज्य की आमदनी के दसवें हिस्से से ज्यादा न हो। तीन लाख से अधिक निजी खर्च तो होना ही नहीं चाहिए। और, इस खर्च में महल, मोटर, अस्तबल, मेहमान आदि से सम्बन्धित खर्च भी शामिल होने चाहिएँ।' जब राजा को मिलने वाली रक़म निर्धारित न होकर उसे सरकारी कोष पर अपरिमित अधिकार होता है, तो स्वभावतः वह सोच-समझ कर खर्च नहीं करता;

व्यक्तिगत ऐश्वर्य या भोग-विलास तथा वाह्य आडम्बरों में प्रजा की गाढ़ी कमाई का पैसा पानी की तरह बहा दिया जाता है। फिर, राज्य की उन्नति, शिक्षा, स्वास्थ्य, आदि के लिए रुपये का अभाव बना रहना स्वाभाविक ही है। राजा का निजी व्यय निर्धारित होने से यह दोष दूर हो जाता है। उसके जीवन में सादगी आती है, और इसका प्रभाव राज्य के अमीर-उमरावों पर भी बहुत अच्छा पड़ता है, वे अपनी फजूलखर्ची में एक-दूसरे की होड़ करने से रुकते हैं, और अपना द्रव्य अच्छे उपयोगी कार्यों में लगाने लगते हैं।

अब राजकर्मचारियों की बात लें। उनका चुनाव तथा नियुक्ति बहुत विचारपूर्वक होनी चाहिए। उन्हें सन्मार्ग में लगाये रखने तथा कर्त्तव्य-भ्रष्ट न होने देने के लिए यह आवश्यक है कि राज्य में ऐसी प्रबन्धकारिणी हो, जो जनता के प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी हो। जब कोई पदाधिकारी अपने आपको केवल राजा के प्रति जवाबदेह समझता है, तो वह उसे जैसे-तैसे प्रसन्न करने के प्रयत्न में लगा रहता है, और अपने निर्धारित कार्यों की ओर समुचित ध्यान नहीं देता। वह समझता है कि वह अपने अन्य कार्यों की अवहेलना करने पर भी केवल राजा की कृपा-दृष्टि से अपने पद पर बना रह कर सरकारी कोष से वेतन पाता रह सकता है। यह सर्वथा अनुचित है, और इसका उपाय यही है कि वह कानून के अनुसार जनता का सेवक समझा जाय।

जिस प्रकार पदाधिकारियों की नियुक्ति उनकी योग्यता और अनुभव के आधार पर होनी चाहिए, उसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि जब तक कोई पदाधिकारी अपना कार्य अच्छी तरह सम्पादन करता

रहे, वह अपने पद पर निरंतर बना रहे, और यथा-सम्भव उसे वेतन-वृद्धि, प्रोविडेन्ट फन्ड या वृद्धावस्था की पेन्शन पाने का विश्वास रहे। जब किसी पदाधिकारी को अपनी नौकरी की स्थिरता का भरोसा नहीं होता, तो वह अच्छी तरह काम नहीं करता, वरन् अनेक दशाओं में तो बुरे-भले उपायों से जनता से अधिक-से-अधिक रुपया ऐंठ कर माला-माल होने का इच्छुक रहता है। यह सब दूर होने की आवश्यकता है। प्रत्येक पदाधिकारी को यह विश्वास होना चाहिए कि मैं अपना काम ठीक तरह से करता रहूँगा तो मेरी नौकरी को कोई भय नहीं है, किसी की झूठी शिकायत या व्यर्थ की नाराजगी से मैं एकदम बर्खास्त नहीं कर दिया जाऊँगा। वरन् यदि कोई अभियोग मुझ पर लगाया भी गया तो मुझे अपनी सफाई देने का यथेष्ट अवसर मिलेगा, और प्रत्येक दशा में मेरे लिए न्याय होगा। ऐसे आश्वासन होने पर सरकारी पदाधिकारी मन लगा कर, ईमानदारी से काम करते हैं, और जनता के प्रति सहानुभूति रखते हुए अपने कर्त्तव्य का सम्यक् पालन करते हैं।

शासन-कार्य राजा अथवा अन्य प्रधान पदाधिकारियों की व्यक्तिगत इच्छा पर निर्भर न रह कर कानून के अनुसार होना चाहिए। शासन-नीति में स्थिरता तथा दृढ़ता होनी चाहिए। शासन सम्बन्धी कानून नियमानुसार बनने चाहिएँ। इसके लिए राज्य में प्रजा-प्रतिनिधियों की व्यवस्थापक सभा का होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रति-निधियों के निर्वाचन के लिए अधिक-से-अधिक जनता को मताधिकार दिये जाने की ज़रूरत है। आदर्श तो बालिग मताधिकार ही रहना ठीक है। अस्तु, प्रत्येक कानून व्यवस्थापक सभा द्वारा पास होने पर

अमल में आना चाहिए। इस व्यवस्थापक सभा का प्रबन्धकारिणी के सदस्यों तथा राजकीय आय-व्यय पर पूरा नियंत्रण होना चाहिए, राजा का निजी खर्च निर्धारित होते हुए भी, आय-व्यय के अनुमान-पत्र में दिखाया जाना चाहिए। इस प्रकार व्यवस्थापक सभा को राजकार्य संचालन की विधि निश्चित करने का अधिकार होने से, शासन-कार्य जनता के द्वारा और उसके हितार्थ होगा।

वर्त्तमान व्यवस्था में अधिकांश राज्यों में नागरिक अधिकार प्रायः कुछ भी नहीं है, कितने ही स्थानों में कानून से बेगार बन्द हो जाने पर भी व्यवहार में प्रचलित ही है। पुनः अनेक दशाओं में नागरिकों को बिना मुकदमा चलाये, चाहे-जितने समय तक कारावास में रखा जाता है, या राज्य से बाहर निकाल दिया जाता है। यह सब अनुचित है, ऐसे सब गैर-कानूनी व्यवहार बन्द किये जाने की आवश्यकता है। राज्य में नागरिक स्वतंत्रता की व्यवस्था होनी चाहिए। नागरिकों को सभा सम्मेलन करने, भाषण देने, समाचारपत्र या पुस्तकें प्रकाशित करने अथवा अन्य प्रकार से सार्वजनिक विषयों पर मत प्रकट करने तथा आलोचना या वादविवाद में भाग लेने की स्वतंत्रता रहनी चाहिए। यह स्वतंत्रता उस सीमा तक रहनी चहिए, जहाँ तक कि वे इसका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हिंसा, दुर्भावना या अनैतिकता को उत्तेजन देने में प्रयोग न करें। जब कभी कोई नागरिक अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करे तो स्वतंत्र न्यायालय द्वारा जाँच होने पर उचित कार्यवाही की जाय।

नागरिकों की शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक उन्नति करना

राज्य का कर्तव्य ही है, यदि कुछ समर्थ सज्जन स्कूल, अस्पताल आदि सार्वजनिक संस्थाएँ स्थापित करना चाहें, तो राज्य की ओर से उन्हें यथेष्ट प्रोत्साहन मिलना चाहिए। इसी प्रकार राज्य के आदमियों को बाहर जाने तथा बाहर वालों को राज्य में आने देने में कोई बाधा उपस्थित न की जानी चाहिए। लोगों के परस्पर मिलने-जुलने तथा यात्रादि से ज्ञान-वृद्धि होती है, व्यापार बढ़ता है, जिससे जनता को एवं राज्य को आर्थिक लाभ भी होता है। साधारणतया इसकी अनुमति ही नहीं होनी चाहिए, वरन् इसके लिए सुविधाएँ प्रदान कर प्रोत्साहन किया जाना चाहिए। हाँ, विशेष दशाओं में, जब ऐसा कार्य राज्य को क्षति पहुँचाने वाला हो तो उस पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है; परन्तु प्रतिबन्ध कानून द्वारा, नियमित रूप से ही लगना चाहिए, अधिकारियों को मनमानी कार्यवाही करने का अवसर नहीं दिया जाना चाहिए। यही नहीं, यदि कोई अधिकारी नागरिकों की स्वतंत्रता अपहरण करने का दोषी पाया जाय तो उसे सन्मार्ग पर लाकर, दूसरों के लिए अच्छा उदाहरण उपस्थित किया जाने की आवश्यकता है।

नागरिकों के पारस्परिक झगड़ों को निपटाने, तथा जब नागरिकों का शासकों से मतभेद हो तो किसका पक्ष ठीक है, इसका निर्णय करने के लिए प्रत्येक राज्य में न्यायालय होने की आवश्यकता है; यह नहीं, कि राजा या अन्य पदाधिकारी चाहे-जैसा फैसला कर दिया करें। फिर जो न्यायालय हों, उन पर शासकों का प्रभाव न पड़ना चाहिए। वे स्वतंत्र रहने चाहिएँ। प्रधान न्यायालय के न्यायाधीशों

की नियुक्ति, उनके पद या वेतन की वृद्धि राजाओं की स्वेच्छापूर्ण नीति से न होकर, निर्धारित नियमों के अनुसार होनी चाहिए, जिसमें शासकों का अनुचित हस्तक्षेप न हो। पुनः जब तक वे अपने पद पर रहें उनके वेतन या छुट्टी आदि के अधिकार में कमी न की जाय, और उन्हें केवल दुराचार या मानसिक अथवा शारीरिक निर्बलता के सिवाय किसी अन्य आधार पर हटाया न जाना चाहिए। न्याय-पद्धति यथा-सम्भव उसी प्रकार की होनी चाहिए, जैसी देश के अन्य भागों में है। न्याय-प्राप्ति की क्रिया सरल और सस्ती होनी चाहिए। म० गांधी का मत है कि 'न्याय-कार्य की समानता तथा एकता एवं सच्ची निस्पक्षता के लिए प्रत्येक राज्य के मुकदमों की, उस प्रान्त के हाईकोर्ट में अपील हो सके जिसमें कि वह राज्य है। जो राज्य ब्रिटिश भारत के प्रान्तों से बाहर हैं उनका सम्बन्ध ब्रिटिश भारत के किसी प्रान्त के हाईकोर्ट से कर दिया जाना चाहिए।' हाईकोर्ट का कानून बदले बिना यह सम्भव नहीं है, परन्तु महात्मा जी का कथन है कि अगर रियासतें सहमत हो जायँ तो वह आसानी से बदला जा सकता है।

संक्षेप में, देशी राज्यों की शासनपद्धति वैध राजतंत्र हो। प्रत्येक उच्च पदाधिकारी अपने सार्वजनिक कार्य के लिए लोक-प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी हो। शासन-कार्य राजा के नाम से होता हुआ भी, राज्य में उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित हो। समय-समय पर विविध वायसरायों, रेजिडेंटों आदि ने देशी राज्यों में शासन-सुधार किये जाने का सुन्दर उपदेश दिया है, यद्यपि उन्होंने गम्भीरता और दृढ़तापूर्वक उस उपदेश के अनुसार कार्य कराने का आग्रह नहीं किया। नरेन्द्र-

मंडल ने अपने एक प्रस्ताव द्वारा राजाओं से प्रार्थना की थी कि—

(क) वे अपने यहाँ क़ानून की ऐसी पद्धति बनायें, जिसमें व्यक्तियों की स्वतंत्रता और सम्पत्ति की रक्षा की गारंटी दी जाय, और उस क़ानून का पालन ऐसे न्याय-विभाग द्वारा कराया जाय, जो प्रबन्ध-विभाग के नियंत्रण से मुक्त हो।

(ख) राजा के विशुद्ध निजी खर्च को उचित आधार पर सीमित कर दिया जाय, जो राज्य के सार्वजनिक खर्च से सर्वथा पृथक् रहे।

खेद है कि अधिकांश राजाओं ने स्वयं अपनी संस्था के प्रस्ताव पर भी अमल नहीं किया। क्या वे नहीं जानते कि सुधारों के प्रति उनकी उपेक्षा उनके विरोधियों का बल बढ़ा रही है? निहित स्वार्थ वाले व्यक्तियों, दलों या संस्थाओं का प्रायः यह स्वभाव हो जाता है कि वे समय पर किसी संशोधन का स्वागत नहीं करते। वे उस समय तक उसके लिए तैयार नहीं होते, जब तक सुधारक एक मंजिल और आगे बढ़कर कुछ विशेष माँग नहीं करने लग जाते। इसका परिणाम यह होता है कि समझौते की बात सदैव दूर रहती है। क्या देशी राज्यों में राजा लोग उत्तरदायी शासनपद्धति की माँग उस समय स्वीकार करेंगे, जब इसकी माँग करनेवाला पक्ष अल्प-संख्यक रह जायगा, और अधिकांश जनमत यह चाहने लगेगा कि राजतंत्र का अन्त होकर देश भर में लोकतंत्र की स्थापना होनी चाहिए! राजाओं को अपनी प्रजा तथा मानवता के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिए—अपने-अपने राज्य में उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित करने के लिए—कटिबद्ध हो जाना चाहिए।

देशी राज्यों में शासन सुधार करने तथा उत्तरदायी शासन-पद्धति की स्थापना करने के लिए बहुत से राज्यों में प्रजामंडल, लोकपरिषद या सार्वजनिक सभाएँ आन्दोलन कर रही हैं। सामूहिक रूप से समस्त राज्यों के सम्बन्ध में विचार करनेवाली संस्था अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद है। जनता के आन्दोलन के फल-स्वरूप, अथवा समय के प्रवाह से कुछ राज्यों में थोड़ा-बहुत सुधार हो रहा है। इन सुधारों के प्रति नेताओं का क्या रुख होना चाहिए इस विषय में दो मत मुख्य हैं। एक तो यह है कि यदि राजा की सद्भावना प्रतीत हो तो सुधारों में कुछ कमी होने पर भी, जो-कुछ मिले उसे स्वीकार कर लिया जाय तथा उसे क्रमशः बढ़ाने का उद्योग किया जाय। इसके विपरीत, दूसरा मत यह है कि जनता में क्रान्तिकारी आदर्श की भूख जाग्रत रखी जाय, साधारण सुधार की व्यवस्था होने से समझौता न किया जाय, यदि कुछ विशेष स्थानीय कारणों से पद ग्रहण करना ही हो तो मुख्य कार्यकर्त्ता उसमें न पड़ें और पद ग्रहण करनेवालों पर पूरा नियंत्रण रखा जाय। इन बातों का ध्यान न रखने से आन्दोलन की गति को धक्का पहुँचता है, और इसका प्रभाव अन्य राज्यों में होनेवाली प्रगति पर अच्छा नहीं पड़ता। इसमें सन्देह नहीं कि देशी राज्यों की जनता के आन्दोलन अखिल भारतीय राजनैतिक आन्दोलन के पूरक के रूप में हैं। इसलिए उनके किसी कार्य और निर्णय में केवल सामयिक सुविधा या स्थानीय परिस्थिति का विचार न रह कर, उनका दृष्टिकोण विशाल और व्यापक होना चाहिए।



# उन्नीसवाँ अध्याय



## ब्रिटिश सरकार का उत्तरदायित्व

संधियों के आधार पर, सर्वभौम सत्ता कुशासन से प्रजा को बचाने की अपनी जिम्मेदारी से किनाराकशी नहीं कर सकती, और न वह इस पर मजबूर है कि वह राजाओं को अपने बराबर का, या अपनी निगरानी से मुक्त समझे। —म० गाँधी

देशी राज्यों की जनता ब्रिटिश भारत इतनी भी प्रजासत्तात्मक शासन-व्यवस्था से वंचित रही है। इसका नैतिक पाप ब्रिटिश सरकार पर है। —वी० सी० सरवटे

हमने कहा है कि नरेशों को अपने-अपने राज्य में शासन सुधार और उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित करना चाहिए। अब यह विचार करें कि ब्रिटिश सरकार का इस दशा में क्या कर्त्तव्य या उत्तरदायित्व है। इस विषय में ली वार्नर की पुस्तक* में अच्छा प्रकाश डाला गया है। उसमें बताया गया है कि जिन श्रोतों से अंगरेज़ों का देशी राज्यों से सम्बन्ध बनाये रखने वाले नियम या सिद्धान्त निश्चित किये जा सकते हैं, वे तीन प्रकार के हैं—(१) वे संधियाँ, समझौते या सनदें

---

* The Protected Princes of India का दूसरा संस्करण, The Native States of India.

जो उनसे हुई हैं। (२) वे फैसले जो सर्वोच्च सत्ता ने समय-समय पर देशी राज्यों के उत्तराधिकार, हस्तक्षेप या उनके शासकों के विवाद के मामलों में किये हैं। (३) रिवाज या व्यवहार जो समाज के विकास के साथ-साथ बदलता रहता है, और जो उनके सम्पर्क के समय अमल में आता है। रिवाज का महत्व बहुत अधिक होता है। ली वार्नर का मत है कि देशी राज्यों से जो संधियाँ हुई है, उनका सामूहिक अर्थ लिया जाना चाहिए। सर्वोच्च सत्ता ने एक राज्य के साथ व्यवहार करते हुए अपनी सैनिक नीति घोषित की है, दूसरे में मानवता के नियम के सम्बन्ध में अपना उत्तरदायित्व बतलाया है, अन्य राज्यों में अपने सहयोग या हस्तक्षेप-अधिकार सम्बन्धी स्वत्व की सूचना दी है। ( केवल एक उदाहरण में, अर्थात् मैसूर को १८८१ में लार्ड रिपन द्वारा वापिस दिये जाने के सरकारी कागज़ात में सब प्रकार के दायित्व इकट्ठे संग्रह करने का प्रयत्न किया गया है)। अधिकांश राज्य तो ऐसे ही हैं, जिनके साथ कोई संधियाँ ही नहीं हुई हैं।

पहले बताया जा चुका है कि सन् १८५८ ई० से, भारतवर्ष का शासन सम्राट् के हाथ में आजाने पर देशी राज्यों सम्बन्धी नीति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। इससे पहले सरकार देशी राज्यों में होनेवाले कुशासन को देखती रहती, और उसे बढ़ने देती, वह उसे चरम सीमा तक बढ़ने देती, और अन्त में उसको रोकने के लिए एक ही उपाय काम में लाती—वह उस राज्य को अंगरेजी राज्य में मिला लेती। विशेषतया लार्ड डलहौजी के समय में वर्ती जानेवाली हड़प-नीति से राजाओं के मन में बड़ा भय पैदा हो गया था, उन्हें

यह आशंका रहने लगी कि न-मालूम कब कौन से राजा का राज्य नक्शे से मिट जाय। लार्ड केनिंग ने खास-खास राजाओं को गोद लेने की सनदें देकर उनका उपर्युक्त भय दूर कर दिया। परन्तु इसका आशय यह नहीं था कि नरेशों की कुशासन और गैर-जिम्मेवरी की प्रवृत्ति बढ़ जाय। लार्ड केनिंग ने यह बात काफी स्पष्ट कर दी थी। ३० अप्रेल १८६० को उसने लिखा था कि 'जो तजवीज की गयी है, वह सरकार को न तो किसी भी राज्य के ऐसे गम्भीर दुर्व्यवहार को ठीक करने के लिए कदम उठाने से रोकेगी, जिससे देश के किसी हिस्से में अराजकता और गड़बड़ फैलने की आशंका हो, और न किसी राज्य को अस्थायी रूप से संभालने से ही रोकेगी, जब वैसा करने के लिए पर्याप्त कारण मौजूद हों।...हमने समय-समय पर इस अधिकार का उपयोग किया है...और यह ऐसा है, जिसे कायम रखना बहुत ज़रूरी है। सच तो यह है कि ऐसा आश्वासन दिया जा चुकने पर ही उस अधिकार को अमल में लाना अधिक आसान होगा, उससे पहले नहीं।'

सन् १८६० ई० से इसी भावना के अनुसार सरकार और देशी राज्यों का पारस्परिक सम्बन्ध रहा है। पटियाला (१८६०), गायकवाड़ (१८७५) और मैसूर (१८८१) आदि इसके अनेक उदाहरण हैं। ली० वार्नर के कथनानुसार संक्षेप में अंगरेज आगाह हो गये कि देशी राज्यों को मिला लेने के दंड से बचाया जाकर उनकी हिफाजत करनी चाहिए, और रक्षा करनेवाली शक्ति को समय पर हस्तक्षेप करके दमन का समर्थन करने की बदनामी से बचना चाहिए। जहाँ

कुशासन है वहाँ हस्तक्षेप का अधिकार या धर्म पैदा हो जाता है, भले ही संधि-पत्रों में कोई वास्ता न रखने या स्वच्छन्द शासन की प्रतिज्ञा की गयी हो। और उन राजाओं का जो सम्राज्ञी के साथ सम्बन्धित हो चुके हैं, सर्वोच्च सत्ता के प्रति यह उत्तरदायित्व है कि वे अपने अन्दरूनी मामलों में व्यवस्था और प्रबन्ध रखें, जिससे ऐसे हस्तक्षेप की आवश्यकता न पड़े।

ब्रिटिश सरकार देशी राज्यों के भीतरी शासन में हस्तक्षेप करने के अधिकार को दो प्रकार की जिम्मेवरी के कारण, अमल में लाने के लिए बाध्य हुई है—देशी राज्यों के हित के लिए और ब्रिटिश राज्य के हित के लिए। देशी राज्यों के हितार्थ हस्तक्षेप के अन्तर्गत ली० वार्नर ने निम्नलिखित बातों का समावेश किया है;—

१—राजा का उत्तराधिकार मान्य करने, और विवादग्रस्त उत्तराधिकार का निर्णय करने का अधिकार।

२—किसी राज्य को अंग-भंग होने से रोकने का अधिकार।

३—राजा के विरुद्ध होनेवाले बलवे को रोकने का अधिकार।

४—भयंकर कुशासन को रोकने का अधिकार।

५—अमानुषिक प्रथाओं, तथा प्राकृतिक नियमों या सार्वजनिक सदाचार के विरुद्ध होनेवाले अपराधों को रोकने का अधिकार।

६—धार्मिक सहिष्णुता की रक्षा करने का अधिकार।

७—प्लेग, अकाल आदि समान शत्रु को दबाने का अधिकार।

इससे स्पष्ट है कि कुशासन को रोकना भी सर्वोच्च सत्ता की जिम्मेदारियों में रहा है। सन् १८७५ ई० में गायकवाड का राजद्रोह

के अपराध में नहीं, कुशासन के फल-स्वरूप गद्दी से उतारा जाना इस विषय का ज्वलंत उदाहरण है। इसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है। गायकवाड़ ( मल्हारराव ) को यह परामर्श दिया गया था कि वह अपने स्वर्गीय भाई खांडेराव के आश्रितों तथा सम्बन्धियों से अच्छा व्यवहार करे, और स्त्रियों से दुर्व्यवहार करने और उन्हें सतानेवालों तथा महाजनों और व्यापारिक संस्थाओं से लूट-खसोट करने वालों को दंड दे। पहले कमीशन की रिपोर्ट के बाद गायकवाड को ३ दिसम्बर १८७५ तक की मोहलत दी गयी। गायकवाड ने आपत्ति की कि बड़ौदा राज्य और ब्रिटिश सरकार के तत्कालीन सम्बन्ध के अनुसार कमीशन की नियुक्ति अनियमित है। इस पर लार्ड नार्थब्रुक ने यह जवाब देते हुए कि बड़ौदा राज्य में हस्तक्षेप किया जाना संधियों के अनुसार है, कहा कि 'मेरे मित्र ! मैं अंगरेजी सेना के, किसी दुष्कार्य करनेवाले व्यक्ति की रक्षा करने में सहमत नहीं हो सकता। ऐसी सरकार का कुशासन जो ब्रिटिश सत्ता के संरक्षण में हो, ऐसा कुशासन है, जिसके लिए एक सीमा तक ब्रिटिश सरकार पर भी जिम्मेवरी आती है। इसलिए ब्रिटिश सरकार का इस ओर ध्यान देना अधिकार ही नहीं, निश्चित कर्तव्य हो जाता है कि ऐसे राज्य का शासन सुधरे और उसके घोर दोष दूर किये जायँ।'

९ नवम्बर १८७४ को बड़ौदा के सरकारी रेजीडेंट को किसी ने विष देने का प्रयत्न किया। सरकार को यह सन्देह हुआ कि यह कार्य गायकवाड़ की प्रेरणा से हुआ। इस लिए १३ जनवरी १८७५ को घोषणा करके गायकवाड को, उनके दोषादोष का निर्णय होने तक राजकार्य से अलग कर दिया गया और निर्णय के लिए दूसरा कमीशन

नियत किया गया। कमीशन के सदस्यों में मत-भेद रहा। अन्ततः रेजीडेन्ट को विष देने और सरकार से विरोध के प्रयत्न का अभियोग प्रमाणित न हुआ और सरकार ने १९ अप्रेल १८७५ को यह अभियोग उठा लिया। तथापि मल्हारराव का गद्दी पर रहना उचित नहीं समझा गया और उनकी सन्तान भी अयोग्य समझी गयी। इस लिए मल्हार-राव को गद्दी से उतारा गया और स्वर्गीय महाराज खांडेराव की विधवा महारानी जमुनाबाई को गायकवाड वंश का ऐसा लड़का गोद लेने की अनुमति दी गयी, जिसे सरकार पसन्द कर ले। महारानी ने गोपाल-राव को गोद लिया, जो पीछे महाराज सयाजीराव तृतीय के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस प्रसंग में भारत-मन्त्री ने कौंसिलयुक्त गवर्नर-जनरल को लिखा था कि 'जो कुशासन सुधारा न जा सके, वह स्वयं शासक के लिए पर्याप्त अयोग्यता है। ब्रिटिश सरकार ने एक प्रत्यक्ष मामले में सहर्ष यह मान्य करने का अवसर स्वीकार किया है कि सर्वोच्च सत्ता पर, भारतवर्ष की जनता की अत्याचार से रक्षा करने की जिम्मेदारी है।' उपर्युक्त महाराज सयाजीराव की नाबालगी में बड़ौदा का राज-प्रबन्ध रेजीडेंट के निरीक्षण में होता रहा। इनको शिक्षा भी बहुत अच्छी दी गयी, इसी का यह फल है कि इनका शासन बड़ा प्रशंसनीय रहा। बड़ौदा अब अग्रगण्य राज्यों में है।

मैसूर का उदाहरण भी बहुत विचारणीय है। टीपू सुलतान के मरने पर सरकार ने यह राज्य पुराने हिन्दू राजवंश को दिया था। परन्तु नये महाराजा का शासन अच्छा न रहा और और सन् १८३० में प्रजा ने विद्रोह कर दिया। सरकार ने विद्रोह का दमन करने के

लिए सेना भेजी, और राजप्रबन्ध अंगरेजी अफसरों को सौंप दिया। सन् १८६८ में इनका देहान्त हुआ। इनका गोद लिया हुआ एक छोटा लड़का था, इसकी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया गया। सन् १८८१ में इसे गद्दी मिली। इस प्रकार ५० वर्ष तक राजप्रबन्ध अंगरेजों के हाथ में रहा। ध्यान देने की बात यह है कि सन् १८८१ में महाराज को शासनाधिकार देते समय सरकार ने राज्य के शासन में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्रत्यक्ष रूप से ले लिया। यह स्पष्ट लिखा गया कि "यदि महाराजा किसी निर्धारित नियम का पालन न करें तो कौंसिलयुक्त गवर्नरजनरल उसके राज्य पर अधिकार करके उसका शासन स्वयं कर सकेगा, तथा मैसूर की जनता के सुशासन की पूर्ण व्यवस्था के लिए जो उपाय उचित समझेगा, करेगा।" मैसूर इस समय एक उन्नत राज्यों में से है, और इसके शासन में सर्वोच्च सत्ता के हस्तक्षेप-अधिकार की बात असंदिग्ध है।

इस तरह के और भी कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं। परन्तु स्थानाभाव से ऐसा नहीं किया जा रहा है। फिर ये तो उदाहरण ही हैं, हमें घटनाओं की बात छोड़कर उनके निष्कर्ष को ग्रहण करना चाहिए—वह निष्कर्ष यही है कि जब सर्वोच्च सत्ता ने उचित समझा उसने किसी राज्य के कुशासन को दूर करने के लिए उसके आन्तरिक प्रबन्ध में निस्संकोच हस्तक्षेप किया।*

---

* हाँ, सरकार कुशासन किसे समझती है, यह बहुत कम स्पष्ट हुआ है। अनेक बार जब जनता ने कुशासन की शिकायत भी की तो सरकार ने ध्यान नहीं दिया, सम्भवतः उसने उसे कुशासन नहीं माना।

कुछ लोग यह कहा करते है कि ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य भारतवर्ष में लोकतंत्र स्थापित करना है परन्तु देशी राज्यों के सम्बन्ध में ऐसा करने के लिए उसके मार्ग में बड़ी कठिनाई है, कारण कि उनके साथ उसकी जो संधियाँ हैं, उनका पालन करना उसके लिए आवश्यक है, उनकी अवहेलना नहीं की जा सकती। उन्हें उपर्युक्त प्रकार के उदाहरणों पर—जिनसे भारतीय इतिहास भरा पड़ा है—भली भांति विचार करना चाहिए। पुनः इस प्रसंग में पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि बटलर कमेटी ने राजाओं की यह दलील रद्द कर दी कि 'सम्राट् की सर्वोच्च सत्ता केवल उतनी ही है जितनी कि संधियों की शर्तों में लिखी हुई है, और इसलिए सम्राट् को संधियों के अतिरिक्त रिवाज, प्रबलता या अन्य कारणों के आधार पर राज्यों के बारे में और कोई अधिकार या सत्ता नहीं है।' इसके बजाय कमेटी ने प्रो० वेस्टलेक की निश्चित की हुई स्थिति स्वीकार की, जिसका आधार ली वार्नर का यह कथन था कि 'ब्रिटिश सम्राट् की सर्वोच्च सत्ता कितनी है, इसकी व्याख्या नहीं की गयी है, और ऐसा करना बुद्धिमानी ही है। इसी प्रकार देशी राज्यों की अधीनता भी ऐसी है, जो समझ ली जाती है, परन्तु जिसका स्पष्टीकरण नहीं किया गया है। सर्वोच्च सत्ता व्यापक नीति के आधार पर हस्तक्षेप करती है, जहाँ कि भारतीय जनता के हित या ब्रिटिश सत्ता की सुरक्षा खतरे में हो। देशी राज्यों ने अपने जो अधिकार संधियों से दे दिये हैं या सीमित कर लिये हैं, उनके अतिरिक्त कुछ अन्य अधिकार भी ऐसे हैं, जिनसे वे चुपचाप परन्तु पूर्ण रीति से वंचित कर दिये गये हैं।'

बटलर कमेटी ने सरकार के बहुत से अधिकार बताये हैं, जो उसे रिवाज और बरदाश्त से तथा सर्वोच्चता के कारण मिले हैं, यद्यपि संधियों, समझौतों और सनदों के सूक्ष्म विचार से वे अधिकार उसे प्राप्त नहीं हैं। उसने बताया है कि सर्वोच्च सत्ता ने देशी राज्यों को नष्ट होने या जब्त किये जाने से बचाया है, परन्तु राज्यों के कुशासन की हालत में हस्तक्षेप करने या जनता की माँगों पर अमल कराने के लिए भी सर्वोच्च सत्ता के निश्चित कर्तव्य है।

गत वर्षों की, भारत-मंत्री और वायसराय की घोषणाओं से यह स्पष्ट है कि देशी नरेश यदि वैधानिक सुधार या उत्तरदायी शासन-पद्धति प्रचलित करेंगे तो सरकार ( सर्वोच्च सत्ता ) को उसमें किसी तरह की आपत्ति न होगी। परन्तु सरकार इस विषय में उन पर किसी तरह का दबाव डालना नहीं चाहती। विचारणीय बात यह है कि जबकि सर्वोच्च सत्ता देश में सुख शान्ति और उन्नति की ठेकेदार है, तो क्या उसे ऐसी तटस्थता शोभा देती है !

कुछ अधिकारियों का कथन है कि संधियों के कारण, सरकार देशी राज्यों के आन्तरिक प्रबन्ध में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। इसके जवाब में पहले बहुत-कुछ कहा जा चुका है। उसके अतिरिक्त यह भी विचारणीय है कि कानून का एक सर्वमान्य सिद्धान्त यह है कि दो व्यक्तियों या समूहों में जो सौदा या समझौता हो, उससे किसी तीसरे की हानि न होनी चाहिए। जब कि संधियाँ सरकार और राजाओं में हुई है, तो जनता को इनका कुफल क्यों भोगना चाहिए! दूसरी बात यह है कि अब परिस्थिति बहुत ही बदल गयी है, ब्रिटिश

सरकार का स्थान अब भारत-सरकार ले रही है; प्रान्तों के लिए उत्तरदायी शासनपद्धति वाला विधान बन चुका है ( यद्यपि उसमें कुछ दोष है, और वह इस समय कई प्रान्तों में स्थगित है ) वह अब हटने वाला नहीं है, अधिकाधिक उत्तरदायित्व की ओर ही बढ़ेगा, केन्द्र में भी शीघ्र ही उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित होकर रहेगी। तीसरी बात एक और भी ध्यान में रखने की है। क्या ब्रिटिश सरकार ने समय-समय पर संधियों में परिवर्तन नहीं किया; जब कभी उसके स्वार्थ का प्रश्न आया, क्या उसने संधियों का नया अर्थ नहीं लगाया? कितने ही उदाहरण इतिहास में इस बात के भरे पड़े हैं कि अपने मतलब को सिद्ध करने के लिए सरकार ने संधियों को रद्दी की टोकरी में फेंकने में संकोच नहीं किया। इस लिए उसका संधियों की बात उठाना निरर्थक और उपहासास्पद है। जब कि ब्रिटिश सरकार संसार में लोकतंत्रवाद की रक्षा के लिए युद्ध करने का दावा करती है तो भारत के देशी राज्यों में निरंकुश शासनपद्धति बनायी रखने में सहायक होना उसे कैसे शोभा देता है! उसके ऊपर इस बात का दायित्व है कि अपनी पूर्ण सत्ता का उपयोग इस बात के लिए करे कि इन राज्यों का कुशासन दूर हो, और इनमें उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित हो। क्या वह अपने दायित्व का विचार कर तदनुसार व्यवहार करेगी?



# बीसवाँ अध्याय

## देशी राज्य और संघ शासन

विशुद्ध जन सत्ता और विशुद्ध एकछत्र सत्ता, ये दोनों अनमिल रसायन द्रव्य हैं; जब कभी भी ये मिलेंगे तो अवश्यमेव एक भयंकर विस्फोट होगा।

—म० गाँधी

भारत जैसे विशाल देश में जहाँ अनेक प्रान्त तथा रियासतें हैं, यदि अन्य देशों के समान वास्तव में जैसी होनी चाहिए, वैसी संघ शासन प्रणाली प्रचलित की जाय तो किसी के कोई आपत्ति न होगी।

— रघुनाथ परसाई

पहले कहा जा चुका है कि सन् १९३५ के भारतीय शासन-विधान का उद्देश्य भारतवर्ष में संघ की स्थापना करना था। वह विधान अपने विविध दोषों के कारण, और पीछे योरपीय महायुद्ध छिड़ जाने के कारण, स्थगित हो गया। तथापि यह निश्चित है कि थोड़े-बहुत समय बाद भारत के भावी शासन विधान पर विचार होगा, और वह विधान संघ-शासन के रूप में ही होगा। इसलिए यह जान लेना आवश्यक है कि यहाँ संघ-शासन की आवश्यकता क्यों है, पिछले विधान में क्या दोष थे, और भावी संघ विधान में देशी राज्यों का क्या स्थान होना चाहिए।

यद्यपि भारतवर्ष के विविध स्थानों के निवासियों में कुछ भेद हैं, तथापि वे भेद मौलिक नहीं हैं। भारत जैसे विशाल भू-खंड के भागों में, ब्यौरेवार बातों में कुछ अन्तर होना स्वाभाविक ही है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि मुख्य-मुख्य और महत्वपूर्ण बातों के विचार से—संस्कृति, इतिहास; अर्थनीति, राजनीति और रक्त-सम्बन्ध आदि की दृष्टि से, भारतवर्ष एक और अखंड है। इसके नक्शे में लाल और पीले दिखाये जानेवाले भेद कृत्रिम हैं। इन दोनों भागों का चोली-दामन का साथ है। ये अलग-अलग न अपनी आर्थिक उन्नति कर सकते हैं, न विदेशियों से अपनी रक्षा कर सकते हैं। इन्हें राजनैतिक मामलों में भी एक दूसरे से घनिष्ट सम्बन्ध रखना आवश्यक है।

उदाहरणार्थ, व्यापार की ही बात ली जाय। आजकल व्यापार-नीति ऐसी चल रही है कि कोई देश संसार से अलग रहने का दावा नहीं कर सकता; फिर, देशी राज्य और ब्रिटिश भारत तो अलग-अलग देश भी नहीं हैं, ये तो एक ही देश के भिन्न-भिन्न बिखरे हुए भाग हैं, आपस में मिले हुए पड़ोसी हैं। ये दोनों भाग परस्पर में सहयोग करके अपने व्यापार की रक्षा कर सकते हैं, अपने आप को संसार की व्यापारिक शक्तियों की लूट से बचा सकते हैं। अगर ये अलग-अलग रहें तो एक-दूसरे को हानि पहुँचावेंगे और साथ ही दोनों बाहरी शक्तियों की लूट के शिकार होंगे। यही बात बाह्य रक्षा के सम्बन्ध में है। ब्रिटिश भारत और देशी राज्य अपनी रक्षा का प्रबन्ध अलग-अलग रहकर नहीं कर सकते। न यही आशा हो सकती है कि इनमें से कोई एक भाग किसी अन्य राज्य की सहायता से सफल हो

सके। पहले इन दोनों का परस्पर में सहयोग होना चाहिए, फिर आवश्यकता हो, तो दूसरों की भी सहायता ली जाय। यदि इनका परस्पर सहयोग न हो, और इनमें से प्रत्येक भाग दूसरे राष्ट्रों की सहायता का आसरा लेना चाहे तो वह बहुत खतरनाक होगा, खर्चीला होने के साथ इन्हें पराधीन बनानेवाला भी हो सकता है।

राष्ट्रीय नीति सम्बन्धी प्रमुख विषयों में देशी राज्य और ब्रिटिश भारत का पहले से सहयोग रहा है। इन दोनों भागों के अधिकारी मालगुजारी, आर्थिक शासन, यातायात, पुलिस और न्याय आदि के मामलों में एक-दूसरे की सहायता लेने के लिए बाध्य होते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में दोनों भागों के निवासियों की कठिनाइयाँ तथा असुविधाएँ समान हैं, और उन्हें दूर करने में किसी अकेले के प्रयत्न को सफलता मिलने की सम्भावना बहुत कम होती है। इस लिए देशी राज्यों को ब्रिटिश भारत की राजनीति और शासनपद्धति में संगठित होना आवश्यक है। बहुत समय से इनके भावी शासन का स्वरूप संघ-शासन होना अनिवार्य समझा जाता रहा है। अन्ततः सन् १९३५ ई० के विधान में संघ-शासन की योजना बनायी गयी।

परन्तु यह योजना बहुत दूषित रही। हम यहाँ केवल देशी राज्यों की दृष्टि से विचार करते हैं। उक्त संघ विधान में यह व्यवस्था की गयी कि जहाँ ब्रिटिश भारत के शासनप्रबन्ध सम्बन्धी विषयों में सम्राट् का प्रतिनिधि गवर्नरजनरल हो, देशी राज्यों के शासनप्रबन्ध में सम्राट् का प्रतिनिधि वायसराय हो। यद्यपि ऐसी गुंजायश रखी गयी कि दोनों पदों के लिए एक व्यक्ति भी रह सकता है, विधान ने दो पृथक्-पृथक्

पदों की व्यवस्था तो कर ही दी। यह भारतवर्ष के एकीकरण में नयी बाधा उपस्थित की गयी।

पुनः ब्रिटिश अधिकारियों ने, संघ-विधान से, राजाओं की प्रतिक्रियावादी शक्ति को अपनी ओर मिला कर भारतवर्ष की राष्ट्रीय प्रगति को रोकने का प्रयत्न किया। प्रथम तो यह निश्चय किया गया कि संघ निर्माण की घोषणा सम्राट् द्वारा, उस समय की जायगी जब इतने देशी राज्य संघ-शासन को स्वीकार कर लेंगे जितने राजपरिषद (कौंसिल-आफ-स्टेट) के कम-से-कम आधे सदस्य चुनने के अधिकारी हों, और जिनकी जन-संख्या देशी राज्यों की कुल जन-संख्या की आधे से कम न हो। साथ ही यह बात राजाओं की इच्छा पर छोड़ दी गयी कि वे चाहें तो संघ में सम्मिलित हों, अथवा न हों। इस प्रकार संघ शासन विधान का क्रियान्वित होना न होना देशी राज्यों पर निर्भर कर दिया गया। और, देशी राज्यों का सम्बन्ध केन्द्रीय सरकार से न रखकर वायसराय (सम्राट्-प्रतिनिधि) से रखा गया। संघ में सम्मिलित होने के लिए राज्यों में उत्तरदायी शासनपद्धति स्थापित करने की कोई शर्त नहीं रखी गयी। संघीय व्यवस्थापक मंडल में देशी राज्यों की जनता के बजाय राजाओं के प्रतिनिधि रखने की व्यवस्था की गयी, और वे भी उससे अधिक अनुपात में जो ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों का वहाँ की जन-संख्या से रखा गया। इसके अतिरिक्त राजाओं को यह अधिकार दिया गया कि वे स्वयं यह निश्चय करें कि संघीय विषयों में से किन-किन में वे संघीय व्यवस्थापक मंडल का कानून बनाने का अधिकार स्वीकार करते हैं। ऐसी बातों से यह स्पष्ट

है कि राजाओं की निरंकुशता कम करने की कुछ चेष्टा की नहीं गयी; इसके विपरीत, ऐसी परिस्थिति बना दी गयी कि यदि वह संघ-शासन विधान कार्यान्वित होने लगे तो ब्रिटिश भारत के नेताओं के लिए देशी राजाओं को प्रसन्न रखने और उनका सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता निरंतर बनी रहे; और इसके लिए नरेशों को मुँह-माँगी कीमत दी जाने की तैयारी करनी पड़े। इस प्रकार राजाओं का महत्व अधिक-से-अधिक करने में कोई कसर न रखी गयी। परन्तु, अपने मन कुछ और है, विधाता के कुछ और। अनेक कारणों से, जैसा कि पहले कहा गया है, संघ विधान अमल में नहीं आया।*

परन्तु अभी संघ-विधान कार्यान्वित न हुआ तो यह विषय समाप्त हुआ नहीं समझना चाहिए। भविष्य में, संघ तो बनाना ही पड़ेगा। इस लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि भावी संघ-योजना के सम्बन्ध में गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय। प्रथम तो राजाओं को देश-काल की गति भली-भाँति ध्यान में ले आनी चाहिए। कुछ राजाओं को भय है कि संघ में सम्मिलित होने से समस्त भारत की राजनीति पर ब्रिटिश भारत की राष्ट्रीय भावना का प्रभाव पड़ेगा, और राजाओं की वर्त्तमान स्वतंत्रता या स्वेच्छाचारिता जाती रहेगी। उनकी स्वतंत्रता इस समय भी कितने अल्प परिमाण में है, अथवा यों कहें कि उनकी परवशता कितनी अधिक है, यह पहले बताया जा चुका है। यह बात भी नहीं है कि राजा अपनी इस परिस्थिति को जानते

* क्रिप्स योजना के अमल में न आने की बात पहले (सोलहवें और सत्तरहवें अध्याय में) कही जा चुकी है।

न हो। तथापि वे तथा उनके समर्थक समय-समय पर यही कहते रहते हैं कि राजाओं की वफ़ादारी सम्राट् के व्यक्तित्व के प्रति है और राजाओं की रज़ामन्दी के बिना हिन्दुस्तान का भविष्य संघ-सरकार को नहीं सौंपा जा सकता। इसका श्री० प्यारेलाल जी नायक ने खूब युक्ति-पूर्ण उत्तर दिया है। आप लिखते हैं कि—

"हालां कि हिन्दुस्थानी रियासतों का सम्बन्ध सम्राट् से है, फिर भी ब्रिटिश विधान और उसकी भारतीय शाखा की रचना इस ढंग से हुई है कि सम्राट् के साथ सम्बन्ध होने का सिद्धान्त व्यवहार में भारत-सरकार के साथ सम्बन्ध के रूप में ही प्रकट होता है। कम्पनी के शुरू समय से ही हिन्दुस्तानी राजाओं और रजवाड़ों के साथ भारत-सरकार का, और सिर्फ़ भारत-सरकार का ही वास्ता रहा है। ब्रिटिश सरकार का दावा रहा है कि उसकी सार्वभौम सत्ता के गुणों में से एक यह भी है कि अपनी इस सत्ता का अर्थ लगाने और उस पर अमल करने में वह कहाँ तक जा सकती है, इस का निश्चय करने में उसका हाथ कोई नहीं पकड़ सकता। रियासतों के भविष्य की उसे कोई भी व्यवस्था करनी हो तो उसके बारे में उसने कभी यह नहीं माना कि उनसे सलाह लेने का उसका फ़र्ज़ है। १८६० में जब उसने भारत के शासन की बागडोर कम्पनी के हाथ से अपने हाथ में लेकर सार्वभौमिकता ग्रहण की तो राजाओं से पूछकर नहीं की। जब १८७६ में ब्रिटेन के बादशाह ने 'रायल टाइटल्स एक्ट' ( शाही पदवी कानून ) के अनुसार अपने को भारत का सम्राट् घोषित किया, उस समय भी राजाओं की सलाह नहीं ली गयी, और न उस वक्त ली गयी जब १८८६ का 'इन्टरप्रीटेशन एक्ट' ( व्याख्या कानून ) पास करके सार्वभौम सत्ता को कानून का रूप दिया गया।··· घटना-चक्र का साधारण क्रम तो यही हो सकता है कि जैसे १८५८ में कम्पनी के बजाय भारत-सरकार कायम हुई तो वह कम्पनी के सब

अधिकार काम में लाने लगी, वैसे ही भारत में भावी उपनिवेश-सरकार बनेगी तब वह भी उन सारे अधिकारों को हासिल कर लेगी और उनका उपयोग करेगी, जो आज भारत-सरकार को अपने हक से या सम्राट् से दिये हुए हासिल हैं।" [ 'देशी राजाओं का दर्जा' पुस्तक से ]

अस्तु, देशी नरेशों को ऐसे भारतीय संघ में सम्मिलित होने में कोई हिचकिचाहट या संकोच न होना चाहिए, जिसकी सरकार भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी हो। उन्हें भली भाँति यह ध्यान में ले आना चाहिए कि वे ब्रिटिश सरकार के अधीन हैं, और ब्रिटिश सरकार के, सर्वोच्चता के अधिकारों की कोई सीमा या मर्यादा नहीं है। संधियों से जितनी सत्ता उसे प्राप्त है, उसके अतिरिक्त भी रिवाज, परम्परा आदि के कारण उसे बहुत प्रभुत्व प्राप्त है। उसका क्षेत्र अनन्त है। जैसा कि श्री० प्यारेलाल जी नायर ने आगे लिखा है, 'उनके (देशी राज्यों के) लिए सर्वोच्चता के अथक चक्कर में से बचने का और कोई रास्ता नहीं। वे जितने ही संघ में अधिक शरीक होंगे और रियासतों में प्रतिनिधि-शासन जितना अधिक होगा, सर्वोच्चता का दबाव उन पर उतना ही कम पड़ेगा। यह कहना तो राजाओं के लिए न शान की बात होगी और न देशभक्ति की, कि भूत और वर्तमान काल की भारत-सरकार तो हमें इसलिए मंजूर थी कि उसकी रचना विदेशी थी और वह हिन्दुस्तानी निर्वाचकों के प्रति उत्तरदायी न थी, लेकिन भावी भारत-सरकार हमें इस कारण स्वीकार न होगी कि वह हमारे ही देशवासियों के प्रति जिम्मेवार होगी। इसमें मिथ्याभिमान की गंध आती है और आशा करनी चाहिए कि राजा लोग अपनी नेकनामी की खातिर जल्दी ही इसका खंडन कर देंगे।'

अस्तु, अब हम यह विचार करें कि भावी संघ-शासन में देशी राज्यों का क्या स्थान हो। स्मरण रहे कि उन छोटे-छोटे राज्यों का रहना व्यावहारिक नहीं है, जिनकी जनसंख्या और आय बहुत ही कम है और जो शासन सम्बन्धी कार्यों का सम्यक् संचालन नहीं कर सकते। ऐसे राज्य कौन-कौन से तथा कितने हैं, इसकी अच्छी तरह जाँच हो जानी आवश्यक है। साथ ही बड़े-बड़े राज्यों के राजाओं को भी अपने-अपने क्षेत्र में उत्तरदायी शासन स्थापित करके ही रहना होगा। इस विषय में विशेष पहले कहा जा चुका है। संघ-शासन में देशी राज्यों के एकतंत्र और ब्रिटिश भारत के प्रजातंत्र में मेल तभी हो सकता है, जब कि देशी राज्यों के एकतंत्र वैध राजतंत्र अथवा उत्तरदायी शासन का स्वरूप ग्रहण कर लें। अतः देशी राज्यों में उत्तरदायी शासनपद्धति शीघ्र ही प्रचलित होनी चाहिए।

भावी संघ-शासन में, व्यवस्थापक मंडल में जो सदस्य देशी राज्यों की ओर से भाग लें, वे राजाओं के बजाय जनता के प्रतिनिधि तथा उसी के प्रति उत्तरदायी होने चाहिएँ। साधारणतया यह नियम होता है कि संघीय व्यवस्थापक मंडल की ऊपरली सभा में सब राज्यों को बराबर स्थान दिया जाता है, कोई राज्य छोटा हो या बड़ा, उसकी ओर से संघ की ऊपरली सभा में समान सदस्य ही प्रतिनिधित्व करते हैं। निचली सभा में सदस्य राज्यों की आबादी के अनुसार लिये जाते हैं। भारतवर्ष के भावी संघ-शासन में भी, व्यवस्थापक मंडल में, इसी हिसाब से ब्रिटिश भारत के प्रान्तों के तथा देशी राज्यों के प्रतिनिधियों को स्थान मिलना चाहिए।

भावी संघ शासन में सम्मिलित होना न होना राजाओं की इच्छा पर अवलम्बित न रहे, सब ही देशी राज्य उसमें सम्मिलित हों, और ब्रिटिश भारत के प्रान्तों से बराबरी का नाता रखें, उनके साथ कोई पक्षपात या रियायत न हो। संघ में सम्मिलित होने के लिए भिन्न-भिन्न देशी राज्यों के अलग-अलग शर्तनामे न हों। सब के साथ निर्धारित सिद्धान्तों के अनुसार समानता का व्यवहार हो। संघ-सरकार को प्रान्तों एवं राज्यों में समान अधिकार हो, और उसके कानून सर्वत्र समान रूप से अमल में लाये जायँ।

भावी संघ-शासन में किसी राजा का सम्बन्ध सम्राट् से न रहकर सब का सम्बन्ध भारतवर्ष की केन्द्रीय सरकार से रहना चाहिए। संधियों के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है। वास्तविक संधियाँ ईस्ट-इंडिया-कम्पनी से हुई थी, जिसे उस समय भारतवर्ष में शासन-अधिकार था। (इनमें समय-समय पर परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन होता रहा है) सम्राट् के दिये हुए जिन अधिकारों को पहले कम्पनी काम में लाती थी, उन्हें सन् १८५८ ई० से भारत-मंत्री के निरीक्षण में भारत-सरकार काम में लाती है। यह कल्पनातीत है कि कोई राजा भारत-सरकार की उपेक्षा करके सीधा सम्राट् या पार्लिमेंट से पत्र-व्यवहार करे। पुनः प्रचलित राज्य-व्यवस्था के अनुसार सम्राट् व्यक्तिगत रूप में कुछ नहीं है, वह नाममात्र का बादशाह है। शासन-कार्यों के प्रसंग में उसका अर्थ है पार्लिमेंट-युक्त बादशाह। वह व्यवहार में पार्लिमेंट के अधीन है। अतः राजाओं के उसके अधीन होने का अर्थ है पार्लिमेंट के अधीन होना। और, क्योंकि भारतवर्ष के शासन के

लिए, पार्लिमेंट की नियुक्त सत्ता का प्रधान अंग भारत-सरकार है, इसलिए पार्लिमेंट के अधीन होना, परोक्ष रूप से भारत-सरकार की ही अधीनता में रहना है।

इसके अतिरिक्त यह भी विचारणीय है कि यदि किसी विशेष कारण से पुरानी संधियों में राजाओं को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया गया है, और जनता के स्वार्थों की अवहेलना की गयी है, तो कोई कारण नहीं है कि अब भी जनता उन संधियों की वजह से अपने न्यायोचित अधिकारों और स्वत्वों से वंचित रहे। अस्तु, भावी संघ-विधान के सम्यक् रूप से कार्यान्वित होने में ये संधियाँ बाधक न होनी चाहिएँ।

इन सब बातों का भली भांति विचार करके हम अपना भावी संघ विधान बनावेंगे, उसमें ब्रिटिश भारत और देशी राज्य दोनों सम्मिलित होंगे। प्रत्येक प्रान्त और प्रत्येक राज्य भारतीय राष्ट्र की उन्नति और सुख शान्ति की वृद्धि में भरसक भाग लेना अपना कर्त्तव्य समझेगा। जो देशी राज्य जन-संख्या और आय आदि के विचार से रहने योग्य है, और संघ में सम्मिलित होंगे, उनके राजाओं को देश-काल की गति को देखकर, अभी से अपने-अपने राज्य में प्रजा-तंत्र की स्थापना करने का यश लेना चाहिए। और, जिसे आज दिन ब्रिटिश भारत कहा जाता है वह भी अपने 'ब्रिटिश' विशेषण का परित्याग करने की स्थिति प्राप्त करले। इस प्रकार स्वाधीन भारत का ऐसा संयुक्त और सबल संघ निर्माण हो, जो प्रत्यक्ष रूप से चालीस करोड़ जनता का तो उद्धार करे ही, साथ अन्य राष्ट्रों के भी उत्थान में

प्रशंसनीय भाग लेता हुआ अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक संसार में अपना विशेष स्थान प्राप्त करे।



यदि भारतवर्ष के भावी शासन का स्वरूप प्रान्तों और रियासतों का संघ हो—ऐसा कृत्रिम संघ नहीं, जैसा १९३५ के विधान में सोचा गया था, वरन् भारतवर्ष के ऐसे समस्त जन-समूहों का वास्तविक सम्मेलन जो भाषा और साहित्य, हितों और दृष्टिकोण के बन्धनों से समान रूप से बंधे हों—तो उस संघ के निर्माण में देशी राज्यों को उचित भाग लेना चाहिए। मैं समझता हूं कि देशी राज्यों की जनता ने अपना संगठन इसी दृष्टि से किया है कि निकट भविष्य की मुकम्मल आजादी में अपने दायित्व और अधिकारों का पूर्ण भाग लें।

—डा० पट्टाभि सीतारामैय्या



# द्वितीय भाग

जनता की वेगवान और प्रगतिशील जागृति तथा उसकी नागरिक चेतनता के विकास ने सर्वसाधारण के सामने राजाओं के शासन का पूर्णतया नग्नस्वरूप रख दिया है, क्योंकि जितना अधिक जनता अपने अधिकारों तथा उत्तरदायित्व का ज्ञान प्राप्त करती है, उतना ही अधिक दमन का गम्भीरता पूर्वक व्यवहार होता है—चाहे देशी राज्यों की बात हो, या प्रान्तों को। बहुत से देशी राज्यों में रियासती जनता की संस्थाओं को काम नहीं करने दिया जाता। और, जहाँ-कहीं उन्हें काम करने भी दिया जाता है, उनका गाँवों में प्रचार समय-समय पर निरुत्साहित किया जाता है। उनके विधान में 'उत्तरदायी शासन' से सम्बन्ध रखने की बात पर रोक लगायी जाती है। किसी बाहरी संगठन या अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद् से सम्पर्क रखने का निषेध किया जाता है। बहुत-से देशी राज्यों में सामयिक सभा सम्मेलन करने की अनुमति नहीं मिलती, और जनता को अपने आत्म-सम्मान की रक्षार्थ सविनय अवज्ञा करने के लिए मानों बाध्य किया जाता है। राजनैतिक कार्यकर्त्ता गिरफ़्तार किये जाते है और सुदीर्घकाल तक कैद में रखे जाते हैं, उनके साथ जेलों में जो व्यवहार होता है, वह किसी सभ्य सरकार के योग्य नहीं होता। गोली चलाना अब अधिकाधिक मामूली बात हो गयी है; अधिकांश दशाओं में ऐसे विषय में कोई जाँच नहीं की जाती, चाहे उससे अनेक आदमी मर जायँ। बाध्यतामूलक श्रम ( बेगार ) और गैरकानूनी कर अब मामूली बात है। कभी-कभी तो अकाल-पीड़ित क्षेत्र में भी बाहरवालों का सामाजिक सेवा-कार्य करना या रुपया भेजना बन्द कर दिया जाता है। जान माल की अ-रक्षा असाधारण बात नहीं है। यह कहने में कोई अत्युक्ति न होगी कि कुल मिला कर अधिकांश रियासतों में आदमी अर्द्ध-दासता की दशा में हैं।

—डा० पट्टाभि सीतारामैय्या

# इक्कीसवाँ अध्याय

## विषय प्रवेश

दुनिया बदल गयी है। योरप का नक्शा बदल गया है। वहाँ की रियासतें मिट चुकी हैं। दुनिया में कोई हिस्सा ऐसा नहीं है, जहाँ हिन्दुस्तान जैसी रियासतें हों, वे तो अजायबघर के नमूने हैं। इन रियासतों का हिन्दुस्तान में रह सकना नामुमकिन है। आजकल की दुनिया में इस तरह की चीज नहीं चल सकती, वह खत्म होगी। यह गवारा नहीं हो सकता कि आधा हिन्दुस्तान आजाद हो, और आधा गुलाम।

—जवाहरलाल नेहरू

इस पुस्तक के प्रथम भाग में ऐसे मुख्य-मुख्य सामूहिक और व्यापक प्रश्नों पर विचार किया गया है, जिनका सभी देशी राज्यों से सम्बन्ध है। अब इस दूसरे भाग में अलग-अलग कुछ राज्यों की शासनपद्धति, राजनैतिक जागृति तथा जनता के नागरिक अधिकार आदि का विचार करना है। भारतवर्ष में देशी राज्यों की संख्या इतनी अधिक है कि उन सब के सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् लिखना साधारणतया कठिन ही नहीं, असम्भव है। इसलिए हम कुछ थोड़े-से ही राज्यों के विषयों में विचार करेंगे। इन राज्यों का चुनाव करने के लिए, हमारे सामने मुख्य बातें ये हैं:—

१—भारतवर्ष के उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम और मध्य सभी भागों के कुछ-कुछ राज्यों का समावेश हो।

२—बड़े-बड़े प्रमुख राज्य प्रायः सब ले लिये जायँ; कुछ राज्य मध्य आकार के, और कुछ बहुत छोटे भी हों।

३—कुछ राज्य ऐसे हों जिनकी शासनपद्धति अपेक्षाकृत अच्छी मानी जाती है, तो कुछ राज्य ऐसे भी हों जिनकी शासनपद्धति बहुत ख़राब है, यहाँ तक कि उसे 'शासनपद्धति' का नाम देना भी अनुचित है।

४—कुछ राज्य ऐसे भी लिये जायँ, जिन में गत वर्षों में जनता ने नागरिक स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन किया, और फल-स्वरूप कुछ सफलता प्राप्त की है, अथवा, और कुछ नहीं तो राज्य के दमन ने अन्य स्थानों के बंधुओं का भी इस ओर ध्यान आकर्षित कर लिया है।

५—राज्य इस प्रकार लिये जायँ कि उनमें प्रायः सभी धर्मों तथा जातियों के शासकों का समावेश हो जाय, यद्यपि यह कोई महत्व की बात नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी में होने से स्वभावतः हमने राजपूताना और मध्य भारत आदि उन भागों के राज्यों का अधिक विचार किया है, जो हिन्दी भाषा-भाषी हैं, और जहाँ इस पुस्तक के अधिक उपयोग की सम्भावना है। यद्यपि पुस्तक के आकार को परिमित रखने के लिए हम इसमें अन्य बहुत अधिक राज्यों का तो विचार नहीं कर सकते थे, तथापि हम कुछ राज्यों का और भी समावेश कर देते, यदि उनके सम्बन्धित व्यक्तियों या संस्थाओं ने आवश्यक सामग्री प्रदान

करने की कृपा की होती। इस प्रकार आवश्यक सामग्री मिलना भी कुछ अंश तक इस पुस्तक के दूसरे भाग के क्षेत्र को निर्णय करनेवाला हुआ। यथा-सम्भव अधिक-से-अधिक राज्यों का समावेश करने के लिए कुछ राज्यों का पृथक्-पृथक् अध्याय में सविस्तर विचार न करके, इकट्ठा एक-एक समूह में संक्षिप्त रूप से विचार किया गया है। इसका मुख्य कारण स्थानाभाव है, और कुछ दशाओं में विशेष उल्लेखनीय सामग्री न होना भी है।

अस्तु, जिन राज्यों को अपेक्षाकृत विस्तार से, या संक्षेप से यहाँ लिया गया है, ये आखिर कुछ नमूने ही तो हैं। अन्य राज्यों के विषय में विचार करने का कार्य पाठकों पर छोड़ दिया गया है; हाँ, उनकी सहायता के लिए कहीं-कहीं कुछ संकेत इस पुस्तक में दे दिया गया है। उससे उन्हें यह अनुमान करने में सुविधा होगी कि अमुक राज्य की शासनिक या राजनैतिक अवस्था अमुक राज्य सरीखी होगी। प्रत्येक देशी राज्य के विचारशील नागरिक विचार करें कि उनके राज्य की शासन तथा नागरिकता सम्बन्धी स्थिति क्या है, अन्य राज्यों में उसका स्थान क्या है, और ब्रिटिश भारत के प्रान्तों की तुलना में वह कैसा है। फिर, ब्रिटिश भारत की शासन पद्धति भी तो संतोषजनक नहीं है। वह भी तो पराधीनता का भार ढो रहा है। इसलिए यह आन्दोलन हो रहा है कि ब्रिटिश भारत, ब्रिटिश भारत न रहे, वह स्वतंत्र हो। और, यह हो नहीं सकता कि भारतवर्ष का एक भाग स्वतंत्र हो, और दूसरा भाग ( देशी राज्य ) पराधीन बना रहे। यह तो पहले कहा ही जा चुका है कि देशी राज्यों में दोहरी हकूमत है,

एक राजा-महाराजाओं की, दूसरे ब्रिटिश सरकार की। और, देशी राज्यों के जागीरी क्षेत्र में तो जागीरदारों की भी हकूमत होने से तेहरी पराधीनता है। निदान, देशी राज्यों के नागरिकों को विचार करना है कि एक शासन सम्बन्धी इकाई की दृष्टि से उनके राज्य में, संसार के स्वतंत्र और समुन्नत भाग का स्थान प्राप्त करने के लिए अभी क्या-क्या न्यूनताएँ हैं, हमारा राज्य-शासन सम्बन्धी लक्ष्य क्या है, और अभीष्ट मंजिल तक पहुँचने के लिए हमें क्या करना चाहिए।

नोट :— आगामी अध्यायों का क्रम निश्चित करने में हमने प्रायः देशी राज्यों की भौगोलिक स्थिति सामने रखी है।



# बाईसवाँ अध्याय



## कश्मीर

हिन्दू राज्य और मुसलिम राज्य की बात करना असामयिक है। क्या कश्मीर इसलिए हिन्दू राज्य है कि हिन्दू राजा उस प्रदेश पर शासन करता है, जिसकी जनता अधिकांश में मुसलमान है? अथवा, क्या हैदराबाद, वहाँ हिन्दू जनता की प्रधानता होते हुए, इसलिए मुसलिम राज्य है कि एक मुसलमान उन लोगों के भाग्य पर शासन करता है? मैं ऐसी बात को राष्ट्रवाद के लिए अपमानजनक समझता हूँ। क्या भारतवर्ष

इसलिए ईसाई राज्य है कि यहाँ ईसाई बादशाह भाग्य-विधाता है? यदि भारतवर्ष, किसी भी शासक के होते हुए भारतीय है, तो देशी राज्य भी भारतीय हैं, चाहे शासक होने का संयोग किसी को हो।

—म० गाँधी

वास्तव में इस राज्य का पूरा नाम 'जम्मू और कश्मीर' है। साधारण बोलचाल में कश्मीर कहने से दोनों भागों का आशय ले लिया जाता है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भारतवर्ष की सब से बड़ी रियासत है।* इसका क्षेत्रफल ८५ हजार वर्गमील, और जन-संख्या सैंतीस लाख तथा यहाँ की वार्षिक आय ढाई करोड़ रुपये से अधिक है।

कश्मीर की स्थिति राजनैतिक दृष्टि से बहुत ही महत्व पूर्ण है। यह राज्य भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर सिरे पर है। इसकी कई सौ मील की सीमा तिब्बत, चीनी तुर्किस्तान और रूसी तुर्कीस्तान की सीमाओं से मिली हुई है। यह राज्य अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण प्रसिद्ध है।

चौदहवीं शताब्दी तक यह बौद्ध और हिन्दू राजवंशों के अधीन रहा, पीछे यहाँ स्थानीय मुसलमानों की सत्ता स्थापित हुई। सन् १५८१ में इसे अकबर ने मुगल राज्य में मिला लिया। दो सौ वर्ष तक यह मुगल बादशाहों का गर्मी का निवास-स्थल रहा। पश्चात् यह देहली के बादशाह से प्रायः स्वतंत्र हो गया। फिर यहाँ अफगानों का दौर-दौरा रहा। १८१६ में महाराजा रणजीतसिंह जी ने इसे उनके अधिकार से मुक्त किया। रणजीतसिंह जी के सरदार गुलाबसिंह जी ने

* हैदराबाद का नम्बर दूसरा है।

इसमें जम्मू और मिला लिया और वे जम्मू के राजा बना दिये गये। पीछे सिक्खों और अंगरेजों की लड़ाई होने पर उन्हें अन्ततः कशमीर का भी राज्य मिल गया।

सन् १९२५ ई० से महाराजा हरीसिंह जी गद्दी पर बैठे। राज्य की एक प्रबन्धकारिणी सभा (ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल) है, इसमें निम्न लिखित मंत्री (मिनिस्टर) हैं:—

१—प्रधान मंत्री (प्राइम मिनिस्टर); ये इस समय न्याय मंत्री का भी कार्य करते हैं।

२—गृह मन्त्री (होम मिनिस्टर)।

३—डिवेलपमेंट मिनिस्टर।

४—मिनिस्टर-इन-वेटिंग; इनके अधीन सेना विभाग भी है।

इन सब मंत्रियों को महाराजा साहब स्वयं नियुक्त करते हैं; इनकी नियुक्ति में जनता के प्रतिनिधियों का कोई भाग नहीं है।

सन् १९३४ ई० में ग्लेन्सी कमीशन की सिफारिशों के अनुसार यहाँ 'प्रजासभा' नामक एक व्यवस्थापक सभा की योजना की गयी। इसमें कुल मिलाकर ७५ सदस्य रखे गये, जिनमें से ३३ निर्वाचित हों। यह सुधार जनता में अपर्याप्त समझा गया, और राज्य में उत्तरदायी शासन की माँग की गयी। ज्यों-ज्यों नागरिकों को अपने अधिकारों का ज्ञान होता गया, इस विषय का आन्दोलन बढ़ता गया। पीछे सन् १९३९ की राजकीय घोषणा द्वारा इस सभा के ७५ सदस्यों का बँटवारा इस तरह किया गया कि ४० निर्वाचित हों, और ३५ नामजद।

इनका व्यौरा निम्नलिखित है:—

निर्वाचित—

| | | |
|---|---|---|
| पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचक संघों द्वारा | | ३३ |
| मुसलमान | २१ | |
| हिन्दू | १० | |
| सिक्ख | २ | |
| विशेष निर्वाचक संघो द्वारा | | ७ |
| नामज़द— | | |
| सरकारी | | ११ |
| गैर-सरकारी | | २४ |
| योग | | ७५ |

निर्वाचित होनेवाले सदस्यों के चुनाव के नियम उसी प्रकार के हैं, जैसे ब्रिटिश भारत के प्रान्तों में हैं। मताधिकार के लिए आर्थिक योग्यता का परिमाण सर्वसाधारण की आर्थिक अवस्था की दृष्टि से बहुत अधिक है। विशेष निर्वाचक संघों में से एक, जम्मू राज्य के अन्तर्गत पूँछ और चिनानी जागीरों के ताजीमी सरदारों का है। दूसरा, कश्मीर और सीमा-भाग के ताजीमी सरदारों का है। तीसरा और चौथा निर्वाचक संघ जागीरदार, माफीदार और मुकर्ररदारों का है। पाँचवाँ और छठा निर्वाचक संघ जमीदारों का और सातवाँ पेन्शन पानेवालों का है। इन निर्वाचक संघों से निर्वाचित सदस्य बहुत थोड़े व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं और प्रायः सरकार के समर्थक होते

है। अतः व्यवस्थापक सभा में नामजद की अपेक्षा निर्वाचित सदस्यों की अधिकता कुछ प्रभावशाली नहीं है। इसके अतिरिक्त साम्प्रदायिकता के आधार पर निर्वाचन किया जाना भी निन्दनीय ही है।*

नामजद किये जानेवाले गैर-सरकारी सदस्यों में से दो हरिजन और दो बौद्ध भी होते हैं जिन्हें नामजद इसलिए किया जाता है कि इनके निर्वाचक बहुत विखरे हुए हैं।

व्यवस्थापक सभा के सभापति (प्रेसीडेन्ट) को स्वयं महाराजा चुनते नियुक्त करते हैं; उपसभापति (वाइस-प्रेसीडेन्ट) सभा के सदस्यों द्वारा निर्वाचित होता है। सभा के सहायक सेक्रेटरियों (अंडर-सेक्रेटरी) की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी है, ये मंत्रियों के साथ काम करेंगे। इस समय जो चार वैतनिक पार्लिमैंटरी सहायक सेक्रेटरी नियुक्त किये गये हैं, उनमें से तीन निर्वाचित सदस्यों में से हैं।

निम्नलिखित विषय व्यवस्थापक सभा के अधिकार-क्षेत्र से बाहर हैं, इन पर सभा में कोई विचार नहीं हो सकता :—

(क) महाराजा और उनका परिवार।

(ख) राज्य का सर्वोच्च सत्ता, विदेशी राज्यों, अथवा अन्य देशी राज्यों से सम्बन्ध।

---

* यह कहा जा सकता है कि यहाँ अल्प संख्यक सम्प्रदाय (हिन्दुओं) के प्रतिनिधियों की संख्या बहुसख्यक सम्प्रदाय (मुसलमानों) के प्रतिनिधियों के बराबर नहीं रखी गयी है, जैसा कि हैदराबाद की शासन-सुधार योजना में किया गया है; यहाँ निर्वाचित सदस्यों में मुसलमानों की अधिकता है ही, नामजद सदस्यों को मिला कर भी मुसलमान अधिक हैं। परन्तु ऐसी तुलना से सन्तोष न कर, हमें आदर्श का ध्यान रखना चाहिए।

(ग) गिलगिट और लदाख की सीमा का विषय।

(घ) जागीरदारों को सनदों द्वारा दिये हुए निर्दिष्ट अधिकार।

(च) राज्य की सेना का नियंत्रण, अनुशासन, और संगठन।

(छ) राजकीय उत्सव, मोटरखाना, महलों के रक्षक (गार्ड), अस्तबल, महल, अतिथि-सत्कार, और शिकारखाने सम्बन्धी राजकीय विभाग।

(ज) धर्मार्थ विभाग।

उपर्युक्त विषयों को छोड़ कर अन्य विषयों के सम्बन्ध में व्यवस्थापक सभा को कानून बनाने, प्रस्ताव करने और प्रश्न पूछने का अधिकार है। परन्तु महाराज सभा के किसी भी निर्णय को रद्द कर सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि शासन के किसी भी अंश पर व्यवस्थापक सभा का यथेष्ट नियंत्रण नहीं है।

शुल्क (फीस) या आर्थिक दंड से होने वाली आय को छोड़ कर, कर सम्बन्धी कानूनी मसविदे व्यवस्थापक सभा द्वारा स्वीकृत किये जाते हैं; परन्तु इसमें बहुत से संरक्षण हैं, और कई करों के विषय में प्रस्ताव करने से पूर्व व्यवस्थापक सभा को पहले से उसकी स्वीकृति लेनी आवश्यक होती है।

महाराज तथा उनके परिवार सम्बन्धी खर्च मर्यादित नहीं हैं, इस मद में तथा सेना में राज्य की परिस्थिति के विचार से खर्च बहुत अधिक होता है; और साथ ही व्यवस्थापक सभा का इस पर कोई नियंत्रण नहीं है। बजट की शेष मदों पर व्यवस्थापक सभा को मत देने का अधिकार है; उन पर खर्च करने के प्रस्ताव मंत्रियों की

कौंसिल द्वारा व्यवस्थापक सभा के सामने माँग के रूप में रखे जाते हैं। व्यवस्थापक सभा उन पर मत देती है। परन्तु मंत्रियों की कौंसिल को यह अधिकार है कि यदि किसी मद के सम्बन्ध में यह समझें कि जितना रुपया हमने खर्च के लिए माँगा था, वह तत्सम्बन्धी विभाग का काम चलाने के लिए अथवा शासन सम्बन्धी उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए आवश्यक है तो उस मद के लिए उतना रुपया स्वीकृत मान लें, चाहे व्यवस्थापक सभा ने उस को स्वीकृति न दी हो, अथवा उसमें से कुछ घटा कर स्वीकार किया हो।

राज्य में न्यायपद्धति ब्रिटिश भारत के ढंग पर है। सर्वोच्च न्यायालय हाईकोर्ट है। उससे नीचे जम्मू और कश्मीर की जिला और सेशन अदालतें हैं जिनमें न्यायाधीश चीफजज हैं। उनके अधीन सबार्डिनेट जजों और मुनसिफों आदि की अदालतें हैं। अनेक बार न्याय करनेवालों के हाथ सरकारी कायदे कानून से कैसे बँधे होते हैं, यह जम्मू के सेशनजज लाला हवेलीराय के निम्नलिखित वक्तव्य से भली भांति विदित हो जाता है, जो उनके सन् १६३८ के एक फैसले से लिया गया है।

न्यायालय का कार्य करते हुए मैं यह अस्वीकार नहीं कर सकता कि 'राजद्रोहात्मक सभा नियम' अब भी कानून की किताब में मौजूद है, और उस हैसियत से मैं उसको अमल में लाने से इनकार नहीं कर सकता। अगर यह कानून सख्ती से अमल में लाया जाय तो इससे सार्वजनिक वादविवाद पूर्णतया रुक जायगा। ऐसी कार्यवाही परिमित क्षेत्र में थोड़े समय तक करना उचित हो सकती है, जबकि सर्वोच्च प्रबन्धक अधिकारी को यह संतोष हो कि ऐसा करना सार्वजनिक शान्ति

के लिए आवश्यक है। परन्तु इसे सदैव के लिए शासन-कार्य का स्वाभाविक लक्षण बना देने से नीचे के अधिकारियों और मजिस्ट्रेटों के हाथ में बड़ी स्वेच्छाचारी शक्ति आ जाती है, और नागरिकों को उनकी रक्षा के भरोसे छोड़ दिया जाता है।

राज्य में म्युनिसपैलटियाँ दो हैं—श्रीनगर और जम्मू में। कुछ बड़े-बड़े कस्बों में टाउन-एरिया कमेटी हैं। दोनों प्रकार की संस्थाओं में निर्वाचित और नामजद सदस्यों की संख्या बराबर-बराबर हैं, सभापति सरकारी हैं, और उन्हें प्रबन्ध तथा कर लगाने के सम्बन्ध में बहुत अधिकार हैं। इसमें शीघ्र सुधार होना चाहिए।

श्रीनगर और जम्मू में लड़कों एवं लड़कियों के लिए कालिज हैं। इन्हीं स्थानों में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य है। राज्य में कुछ संस्थाओं को सरकारी सहायता भी दी जाती है। तथापि साधारण शिक्षा का प्रचार बहुत कम है, केवल छः फीसदी व्यक्तियों का शिक्षित होना खेदजनक है। प्रश्न तो यह भी विचारणीय है कि भारतवर्ष भर का यह सब से बड़ा राज्य कब तक विश्वविद्यालय के लिए पंजाब के आश्रित रहेगा। यह अपनी स्वतंत्र व्यवस्था कब करेगा? राज्य में शिक्षा का माध्यम 'सरल उर्दू' भाषा रखी गयी है; देवनागरी और फारसी दोनों लिपियों को समान स्थान दिया जाता है। यहाँ अदालती नोटिस दोनों लिपियों में निकलते हैं, और प्रजा-सभा ( व्यवस्थापक सभा ) में भी प्रस्ताव दोनों लिपियों में से किसी लिपि में दिये जा सकते हैं। सन् १९४१ ई० से राज्य के धर्मार्थ विभाग की ओर से हिन्दू मन्दिरों में हिन्दी और संस्कृत की पाठशालाएँ स्थापित करने की

व्यवस्था हुई है।

गत वर्षों में, इस राज्य में बाल विवाह, स्त्री-विक्रय, और बेगार आदि बन्द करने का प्रयत्न किया गया है। शराब बन्दी की तरफ कदम बढ़ाया जा रहा है।

अब इस राज्य के निवासियों के नागरिक अधिकार और राजनैतिक जागृति का कुछ परिचय दिया जाता है। इस सम्बन्ध में अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद के मुखपत्र 'स्टेट्स पीपल' और उसी के द्वारा प्रकाशित अंगरेजी पुस्तक 'कश्मीर' में अच्छा प्रकाश डाला गया है। उसके आधार पर यहाँ कुछ मुख्य-मुख्य बातों की चर्चा की जाती है।

शिक्षा-प्राप्त बहुत से व्यक्तियों की यह माँग थी कि सरकारी नौकरियाँ बाहरवालों को न मिलकर हमें मिला करें। राज्य ने १६२७ में कश्मीरी प्रजा की परिभाषा की, परन्तु उससे उन्हें संतोष न हुआ। उन पर कांग्रेस का भी प्रभाव पड़ा। बहुत से युवकों ने उसके सन् १६२६ के लाहौर के अधिवेशन में भाग लिया। सन् १९३० में ब्रिटिश भारत में सविनय अवज्ञा आन्दोलन हुआ, उसके अगले वर्ष कश्मीर ने जन-आन्दोलन का अनुभव किया जो संगठित न होते हुए भी व्यापक था। राज्य ने दमन पर कमर कसी, कुप्रसिद्ध '१६एल' नोटिफिकेशन जारी किया गया, कई जगह गोलियाँ चलायी गयीं। सहस्रों व्यक्ति हताहत हुए। पर आन्दोलन दबने में नहीं आया। अन्ततः महाराज ने आन्दोलन में भाग लेनेवालों का क्षमा करते हुए सूचित किया कि जनता की उचित शिकायतों पर विचार किया जायगा। सन् १९३१ में नियुक्त ग्लेन्सी कमीशन ने निर्वाचित बहुमत वाली व्यवस्थापक सभा

स्थापित करने, जनता को भाषण लेखनादि के नागरिक अधिकार देने तथा राजकीय नौकरियों में सब जातियों को समान अधिकार देने की सिफारिश की।

कमीशन की रिपोर्ट छपने के बाद शीघ्र ही अक्तूबर १६३२ में जम्मू और कश्मीर मुसलिम कान्फ्रेंस की स्थापना हुई। इसका प्रथम अधिवेशन शेख मोहम्मदअब्दुल्ला की अध्यक्षता में, श्रीनगर में हुआ। यद्यपि इस संस्था का नाम साम्प्रदायिकता का सूचक था, इसके द्वारा जो आन्दोलन चलाया गया, उसमें विशेषतया राष्ट्रीय दृष्टिकोण ही रखा जाता रहा। पीछे सन् १६३८ से तो नाम में भी परिवर्तन कर दिया गया; इसे नेशनल कान्फ्रेंस (राष्ट्रीय सभा) कहा जाने लगा। तब से प्रगतिशील कश्मीरी पंडित और सिक्ख आदि भी इसमें समुचित भाग ले रहे हैं।

ग्लेन्सी कमीशन के बाद मताधिकार कमेटी नियुक्त की गयी। इसके कार्य में दो वर्ष लगे, फिर भी इसकी सिफारिशें बहुत अपर्याप्त और असन्तोषजनक रहीं। इसके विरोध में सार्वजनिक आन्दोलन जोर से हुआ, उसे दबाने के लिए राज्य ने विविध उपायों से काम लिया। सन् १६३४ में शासन-सुधार की योजना हुई, उसमें सन् १६३६ में संशोधन हुआ। नेशनल कान्फ्रेंस ने उसे भी असंतोषजनक और प्रतिगामी बतलाया, तथापि उसने विधान को अमल में लाने में सहयोग प्रदान किया। परन्तु उसे अधिकारियों का व्यवहार निराशा-जनक ही प्रतीत हुआ, और उसने विरोध-स्वरूप व्यवस्थापक सभा से अपने दल के सदस्यों के त्यागपत्र दिला दिये। गतवर्षों में जनता के

नागरिक अधिकार कुछ बढ़ाये गये हैं। तब से भाषण और लेखन की प्रवृत्ति बढ़ी है। परन्तु अभी तक जनता में राजनैतिक जागृति विशेष नहीं हुई। आधुनिक शिक्षा के प्रचार से नगरों में कुछ जागृति होने लगी है, पर वह भी बहुत सीमित है। नेशनल कान्फ्रेंस महाराज के अधीन उत्तरदायी शासन के लिए आन्दोलन कर रही है। दुर्भाग्य की बात है कि उसे इस कार्य में कुछ हिन्दुओं का यथेष्ट सहयोग नहीं मिल रहा है। वे सोचते हैं कि हम अल्पसंख्यक हैं, उत्तरदायी शासन की स्थापना होने पर हमारे अधिकारों के ह्रास की सम्भावना है। दूसरी ओर, कुछ मुसलमान भी ऐसे हैं, जो समझते हैं कि इस संस्था ने मुसलिम कान्फ्रेंस की जगह नेशनल कान्फ्रेंस का स्वरूप धारण करके अच्छा नहीं किया। कहना नहीं होगा कि दोनों ही दलों की उपर्युक्त धारणा अनुचित है। आशा है क्रमशः अधिकाधिक सज्जन राष्ट्रीय दृष्टि से विचार करेंगे, और नेशनल कान्फ्रेंस को अपने उद्देश्य में सफलता होगी।

# तेइसवाँ अध्याय

## पंजाब के देशी राज्य

रियासतों में कुशासन हो रहा है और निर्दोष तथा निस्सहाय प्रजा को प्रताडित व अपमानित किया जा रहा है। इस पर भी पोलिटिकल विभाग की उदासीनता और तटस्थता देखते, वहाँ से न्याय की आशा

करना दुराशा मात्र है। इस विभाग के कोष में 'प्रजाधिकार' नामक कोई शब्द नहीं है।

—लेखवती जैन

पंजाब के देशी राज्यों के, राजनैतिक दृष्टि से दो भाग हैं:—(१) पंजाब स्टेट्स एजन्सी के अन्तर्गत १४ राज्य, और (२) पंजाब हिल स्टेटस एजेन्सी के अन्तर्गत २२ राज्य, जो शिमला के पहाड़ी राज्य भी कहे जाते हैं।* इस अध्याय में पहले प्रकार के ही राज्यों के सम्बन्ध में कुछ साधारण बातों का उल्लेख किया जायगा। इन राज्यों में मुख्य ये हैं—पटियाला, झींद, नाभा, कपूरथला, मलेरकोटला, बहावलपुर, खैरपुर, चम्बा और सुकेत। इन में से प्रथम तीन अर्थात् पटियाला, झींद और नाभा फुलकियाँ रियासतें कहलाती हैं। इन तीनों के शासकों का पूर्वज फूल नामक सिद्धू-जाट था। इनके वर्त्तमान शासक सिक्ख धर्मानुयायी हैं। इनकी शासन-नीति कुछ वर्ष पहले तक बहुत-कुछ एकसी रही है। सन् १९३१-३२ के सत्याग्रह आन्दोलन के समय इन राज्यों में नागरिक स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगानेवाला 'फुलकियाँ कानून' बनाया, उसका कुछ अनुकरण पंजाब के अन्य राज्यों में भी हुआ।

बहुत से राज्यों को दलबन्दी का रोग बुरी तरह लगा हुआ है। प्रायः बड़े-बड़े ओहदेदार और अहलकार दो पार्टियों में से किसी एक में अवश्य होते हैं, वे प्रत्येक बात को दलबन्दी की दृष्टि से देखते हैं।

* कुछ लोग कश्मीर को भी पंजाब के राज्यों में गिन लेते हैं, परन्तु वह एक विशाल राज्य है, राजनैतिक दृष्टि से भी उसका पृथक् और स्वतंत्र स्थान है। इसलिए उसके सम्बन्ध में हमने अलग ही लिखा है।

जनता पर लगान और करों का भार बहुत अधिक है। इससे किसानों तथा ज़मीदारों की हालत बहुत खराब है। कोई उद्योग-धंधा पनपने नहीं पाता, पुराने धंधे भी नष्ट होते जा रहे हैं। बहुत से पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि जबकि ब्रिटिश भारत में दो हजार रुपये की वार्षिक आय पर इनकमटैक्स लगता था, पटियाला में ५००) रु० पर और पंजाब की पहाड़ी रियासतों में २००) पर ही यह कर लगाया जाता था। और, इस प्रकार संग्रह किया हुआ द्रव्य खर्च किस तरह किया जाता है? राज्य की आमदनी का एक बड़ा भाग तो राजा की व्यक्तिगत तथा पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति में ही लग जाता है। शेष में से बड़े-बड़े ओहदेदारों या अहलकारों का वेतन और भत्ता आदि दिया जाता है, जिससे दूसरों की दृष्टि में राज्य उच्च कोटि का जचे। फिर राज्य के अनेक छोटे-छोटे कर्मचारी भी हैं। इसके के अतिरिक्त, सरकार के राजनैतिक विभाग के अफसरों तथा अधिकारियों की आवभगत में कोई कमी न रहे, यह ध्यान रखना होता है। एजन्ट या वायसराय का दौरा तो राज्यों की थैलियाँ खाली करनेवाला ही होता है। इन सब बातों के उपरान्त जनता की शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, कृषि-सुधार, औद्योगिक उन्नति आदि के लिए शेष ही क्या रहता है!

जनता की नागरिक स्वाधीनता की तो बात लीजिए। तरह-तरह के आर्डिनेंस या फरमान नागरिक अधिकारों का अपहरण करने के लिए बने रहते हैं, जिनके अनुसार सार्वजनिक सभाएँ स्वतंत्रतापूर्वक नहीं हो सकती, भाषण नहीं दिये जा सकते, पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित

नहीं की जा सकतीं। जिन नागरिकों में स्वाभिमान होता है, जो बेगार आदि अनुचित माँगों को स्वीकार नहीं करते, उनको किसी न किसी बहाने, बिना वारंट गिरफ़्तार और नजरबन्द किया जा सकता है। उनका माल जब्त किया जा सकता है। राजनैतिक कैदियों के साथ साधारण अपराधियों की तरह अमानुषिक व्यवहार होता है। यदि कुछ आदमी सामूहिक रूप से राजा साहब के पास आवेदनपत्र भेजते हैं, या उनके पास डेप्यूटेशन ले जाना चाहते हैं तो उन्हें अधिकारियों का कोप-भाजन होना पड़ता है।

पिछले योरपीय महायुद्ध के बाद भारतवर्ष में राष्ट्रीय-जाग्रति का नया अध्याय आरम्भ हुआ। सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलन में वीरभूमि पंजाब ने प्रमुख भाग लिया। पंजाब की रियासती जनता पर भी इसका प्रभाव पड़ा। भिन्न-भिन्न राज्यों में विविध महानुभावों ने जनता के कष्टों को दूर करने के प्रयत्न में तरह-तरह के कष्ट उठाये, कितने ही सज्जनों ने तो इसमें अपने प्राणों तक की आहुति चढ़ा दी, और कितने ही जीते-जी शहीद हुए। धीरे-धीरे रियासतों में पृथक्-पृथक् शासन-सुधारक संस्थाएँ स्थापित हुईं। पंजाब रियासती प्रजामंडल का प्रथम अधिवेशन सन् १९२९ में, लाहौर में हुआ, जिसका उद्देश्य इस प्रान्त के सब राज्यों में उत्तरदायी शासनपद्धति स्थापित करना है। पंजाब की रियासती जनता के उपर्युक्त स्थानीय तथा केन्द्रीय संस्थाओं के अधिवेशन समय-समय पर होते रहे। प्रायः ये अधिवेशन किसी देशी राज्य की सीमा में न होकर ब्रिटिश भारत के किसी नगर में किये गये हैं।

कोई देशी राज्य इन 'विद्रोही' संस्थाओं के अधिवेशन अपने यहाँ नहीं होने देता। यहाँ तक कि इनके कार्यालय भी देशी राज्यों से बाहर ही रखने पड़े हैं। ऐसा करते हुए भी इन संस्थाओं के मुख्य कार्यकर्त्ता तथा पदाधिकारी अपने-अपने राज्य के अधिकारियों के कोपभाजन हुए बिना न रहे। और कोपभाजन बन कर उन्होंने क्या-क्या मुसीबतें सहीं, इसकी बड़ी लम्बी और, करुणाजनक कहानी है, जिसका इस पुस्तक में केवल संकेत भर किया गया है।

पंजाब रियासती प्रजामंडल के निमंत्रण पर, सन् १६३६ में अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद् का अधिवेशन लुधियाना में हुआ। इससे पंजाब भर में, रियासतों के सुधार के सम्बन्ध में खूब आन्दोलन तथा प्रचार हुआ। पंजाब के कई राज्यों में नागरिक अधिकारों को कुचलने वाली 'हिदायत १९८८' घातक रूप से अमल में आ रही है। जनता के त्याग और बलिदान से इस हिदायत का अन्त किये जाने के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे थे कि वर्त्तमान विश्वव्यापी युद्ध आ पहुँचा, और अधिकारियों को अपने दमन-अस्त्र सुरक्षित रखने का बहाना मिल गया। अस्तु, पंजाब का केन्द्रीय रियासती प्रजामंडल तथा विविध स्थानीय प्रजामंडल अनेक कठिनाइयाँ सहते हुए उत्तरदायी शासन प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने कार्य में लगे हुए हैं।



# चौबीसवाँ अध्याय



## पटियाला

पटियाले का रकवा ब्रिटिश भारत के दो जिलों से अधिक नहीं है, परन्तु इन दो जिलों के इन्तजाम के लिए महाराजा साहब ने वह तमाम मशीनरी जुटायी है, जो भारत-सरकार ने तमाम भारत के लिए।

—लेखवती जैन

पटियाला राज्य पंजाब के राज्यों में प्रमुख है। इसका क्षेत्रफल ५,९४२ वर्गमील, जन-संख्या १७ लाख, और वार्षिक आय डेढ़ करोड़ रुपये है।

महाराजा पटियाला सिक्ख हैं। इस राज्य की स्थापना सन् १७५२ ई० में राजा अलासिंह ने पटियाला नगर ( राजधानी ) की नींव डालकर की। सन् १८०९ में, जब महाराणा रणजीतसिंह का बल बहुत बढ़ रहा था, ब्रिटिश सरकार ने इस राज्य को अपने संरक्षण में ले लिया। यहाँ के महाराजा करणसिंह ने अंगरेजों की, सन् १८१४ के गोरखा-युद्ध में बहुत सहायता की; इसके उपलक्ष्य में इनके राज्य का विस्तार और बढ़ा दिया गया। पीछे इनके पुत्र श्री नरेन्द्रसिंह ने प्रथम सिक्ख-युद्ध में, तथा पीछे सन् १८५७ में, अंगरेजों का पूरा साथ दिया। तब से पटियाला नरेश ब्रिटिश साम्राज्य के बड़े सहायक और समर्थक

रहे हैं। भूतपूर्व महाराज भूपेन्द्रसिंह ने पिछले योरपीय महायुद्ध में ब्रिटिश सरकार की खूब सहायता की। सन् १९१८ में ये इङ्गलैंड गये और इन्होंने साम्राज्य-युद्ध-परिषद में भाग लिया। ये कई वर्ष नरेन्द्र मंडल के सभापति रहे तथा इन्होंने लन्दन की गोलमेज सभा के सन् १९३० के अधिवेशन में राजाओं की ओर से भाग लिया। १९३८ में इनका देहान्त हो जाने पर इनके पुत्र महाराजा यादवेन्द्र सिंह जी गद्दी पर बैठे।

शासन के विचार से राज्य पाँच निजामतों (जिलों) में विभक्त है। प्रत्येक निजामत एक नाजिम के अधीन है। नाजिम के नीचे दो तीन नायब नाजिम होते हैं। शासन सम्बन्धी सर्वाधिकार महाराज को है, उनके कार्य में सहायता देने के लिए एक कमेटी है, जिसमें मंत्री तथा अन्य अफसर होते हैं। राज्य के मंत्री प्रायः निम्नलिखित होते हैं:—

१—प्रधान मंत्री और उन्नति (डिवेलपमेंट) मंत्री।

२—गृह मंत्री। जेल, शान्ति और व्यवस्था तथा अस्पतालों का काम इनके ही सुपुर्द है।

३—माल मंत्री।

४—कृषि मंत्री।

५—कानून मंत्री।

६—राजस्व मंत्री।

७—विदेश और शिक्षा मंत्री।

ये मंत्री महाराज के ही प्रति जिम्मेवर होते हैं, जो मंत्रि-सभा ( कौंसिल ) के सभापति होते हैं। महाराज की अनुपस्थिति में प्रधान मंत्री मंत्रिसभा के अधिवेशन में सभापति का आसन ग्रहण करता है, वैसे वह उपसभापति होता है। अप्रेल १९४२ से पहले लगभग दो साल कोई प्रधान मंत्री नहीं था, महाराज स्वयं ही उस पद का कार्य देखते थे। इजलास खास में अकेले महाराज ही हैं, उन्हें मंत्रियों के निर्णय रद्द करने का अधिकार है। इस वर्ष खुफिया विभाग का कार्य पुलिस के इन्स्पेक्टर-जनरल से लिया जाकर महाराज के प्रत्यक्ष नियंत्रण में कर दिया गया है।

राज्य में कोई व्यवस्थापक सभा नहीं है। कानून बनाने का काम कानून-मंत्री के सुपुर्द है। सन् १९३८ में स्व० महाराज ने व्यवस्थापक सभा सम्बन्धी विधान बनाने के लिए एक कमेटी नियुक्त की थी, परन्तु वह केवल राजनैतिक विभाग तथा जनता को भ्रम में डालने की कागजी कार्यवाही थी। महाराज का देहान्त हो जाने पर उसकी समाप्ति हो गयी।

न्याय विभाग कानून-मंत्री के नियंत्रण में है, जो हाईकोर्ट के निर्णय के विरुद्ध अपील सुनता है। उसे निगरानी का भी अधिकार है। इस सम्बन्ध में उसे विशेषाधिकार महाराज के फरमान द्वारा प्राप्त हैं। हाईकोर्ट में तीन जज हैं, परन्तु कोई चीफ-जस्टिस नहीं है। इस विभाग का मंत्री इसका प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य करता है। गत एक वर्ष से हाईकोर्ट में दो ही जज हैं। न्यायकर्ता वर्ग स्वतंत्र नहीं है, उनपर शासकों तथा पुलिस का बड़ा प्रभाव है। अनेक दशाओं में

शासन और प्रबन्ध एक ही व्यक्ति के हाथ में है, जिससे उचित न्याय होने में बहुत बाधा होती है।

राज्य में कोई म्युनिसिपल कानून नहीं है। केवल पटियाला शहर में एक सरकारी म्युनिसपैलटी है। इसमें जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि नहीं है, कुछ गैर-सरकारी व्यक्ति नामज़द हैं। सन् १९३९ में राज्य में पंजाब का १९१२ का छोटा-कस्बा-कमेटी-कानून कुछ काट-छाँट करके जारी किया गया। यह ऐसे कस्बों में लगा, जिनकी आबादी ५,००० या इससे अधिक थी, यही कानून भटिंडा और नारनौल शहरों में लगा यद्यपि इनमें से प्रत्येक की आबादी २५,००० के लगभग है। इन कमेटियों में सरकारी आदमियों का बोल-बाला रहता है। इनकी कोई स्वतंत्र आय नहीं है। चुंगी की आमदनी भी सरकारी खजाने में चली जाती है। सन् १९४० में चुनाव होने के बाद से इनकी कोई मीटिंग नहीं हुई। सन् १९४१ में नया चुनाव होने की व्यवस्था थी, पर वह युद्ध की आड़ में रोक दिया गया। राज्य में जिला-बोर्ड नहीं है। छोटी-कस्बा-कमेटियों के लिए मताधिकार की योग्यता का परिमाण बहुत अधिक रखा गया है। पंचायतों की व्यवस्था, लगभग चालीस वर्ष हुए, की गयी थी, तब से उस में कोई सुधार नहीं हुआ। इनका कार्य छोटी-छोटी वेतन पानेवाले सरकारी कर्मचारियों के सुपुर्द है, और इनके द्वारा जनहितकारी कार्य नहीं हो रहा है।

राज्य में दो कालिज तथा कुछ हाई स्कूल और मिडल स्कूल आदि हैं। कन्याओं की शिक्षा के लिए अलग संस्थाएँ हैं। कुछ

प्राइवेट स्कूलों को राज्य की ओर से सहायता भी मिलती है। राज्य ने खालसा कालिज अमृतसर, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी, सिक्ख कन्या महाविद्यालय फ़िरोजपुर, लिंग्विया कालिज देहली आदि को समय-समय पर अच्छी सहायता दी है। परन्तु स्वयं पटियाला राज्य में शिक्षा-प्रचार की बहुत उपेक्षा है। देहातों में लड़कों के स्कूल बहुत कम हैं, और लड़कियों के लिए तो प्रायः हैं ही नहीं।

सार्वजनिक स्वास्थ्य की अलग व्यवस्था नहीं है, यह चिकित्सा-विभाग के साथ मिला हुआ है। पटियाला शहर तथा ज़िलों के केन्द्रीय स्थानों में अस्पताल और शफ़ाखाने हैं, पर उनकी व्यवस्था अच्छी नहीं। देहातों में तो शफ़ाखाने हैं ही नहीं।

विविध कारणों से राज्य की आय अच्छी होती है। आय की अधिकता का एक कारण जनता पर लगाये हुए करों का अधिक होना भी है। यह तो आमदनी की बात हुई। अब खर्च की बात लीजिए। पहले कहा जा चुका है कि शासन किसी प्रकार जनता के प्रति उत्तर-दायी नहीं है, महाराजा साहब जैसी उनकी इच्छा या रुचि हो खर्च करते रहते हैं। कभी मन में लहर आ जाय तो किसी संस्था को कुछ दान या सहायता दे दें और इस प्रकार ऐसी प्रशंसा या ख्याति प्राप्त करलें कि उनके स्वेच्छाचार पर पर्दा पड़ जाय। अन्यथा प्रायः द्रव्य का सदुपयोग नहीं होता। स्व० महाराज भूपेन्द्रसिंह जी को शिकार खेलने, और एक-से-एक बढ़िया कुत्ते रखने का बहुत शौक था। कुत्तों के सुख और सुविधा की आधुनिक नूतन पद्धति से व्यवस्था करने में, विदेश-यात्रा में, तथा शान-शौकत आदि में अपरिमित द्रव्य

व्यय किया गया। इससे राज्य पर भारी कर्ज हो गया जिसके सूद के कारण लोकहितकारी कार्यों में और भी कमी हो गयी।

अब जनता के नागरिक अधिकारों और राजनैतिक आन्दोलन की बात लेते हैं। यद्यपि यहाँ आदमी कुशासन और दमन नीति से कष्ट पा रहे थे, सन् १९२८ ई० से पूर्व विशेषतया सिक्खों ने ही गुरुद्वारा आन्दोलन में यथेष्ट वीरता और सहिष्णुता का परिचय दिया था। सन् १९२८ में सर्वश्री सरदार सेवासिंह, भगवानसिंह, जंगीरसिंह जोग, तथा हरनामसिंह जी आदि ने रियासती प्रजा मंडल पटियाला की नींव डाली। इस संस्था का उद्देश्य राज्य में उत्तरदायी शासन प्राप्त करना ठहराया गया। पीछे राज्य भर में संगठन करने का प्रयत्न किया गया, सभाएँ की गयीं और जलूस निकाले गये। अधिकारियों के लिए ये बातें नयी थीं। उन्होंने खूब लाठीचार्ज किया, प्रमुख कार्यकर्त्ताओं को गिरफतार किया और उन्हें लम्बी कैद की सजाएँ दीं; उदाहरणवत् सरदार भगवानसिंह को ४४ वर्ष, जंगीरसिंह को १८॥ वर्ष और हरनाम-सिंह को ६ वर्ष, इत्यादि। बहुत से व्यक्तियों के विरुद्ध कृत्रिम फौजदारी मामले चलाये गये, कुछ को राज्य से निकाल दिया गया और कुछ का माल जब्त कर लिया गया। ये बातें महाराजा भूपेन्द्रसिंह के समय की हैं। सन् १९२९ में महाराज के विरुद्ध खुले-आम गम्भीर अभियोग लगाये गये। अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद की ओर से एक कमेटी ने इस विषय की भली भाँति जाँच की। उसने अपनी सविस्तर रिपोर्ट प्रकाशित की * और सरकार से निष्पक्ष जाँच करने का अनुरोध

* देखिए, Indictment of Patiala.

किया। सरकार ने महाराज के मित्र मि० फिट्ज़पैट्रिक को जाँच के लिए नियत किया। इन पर जनता को कुछ विश्वास न था, उसने जाँच का बहिष्कार किया। सरकार ने कोई रिपोर्ट प्रकाशित न करके महाराज को निर्दोष ठहरा दिया।

पटियाला रियासती प्रजामंडल अपना कार्य दृढ़ता पूर्वक कर रहा है। सन् १९३९ में लुधियाना में अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद का अधिवेशन हुआ, उसे सफल बनाने के लिए मंडल ने खूब उद्योग किया। अधिकारियों ने फिर प्रमुख कार्यकर्ताओं को गिरफ़्तार कर लिया; इनमें अन्य सज्जनों के अतिरिक्त सुनाम के लीडर कामरेड वृषभान भी थे। ये गिरफ्तारियाँ हिदायत १९८८ के अनुसार की गयी थीं। इस हिदायत को रद्द कराने के लिए सत्याग्रह हुआ। जत्था निकाला गया। उसे जिला अधिकारियों ने यह आश्वासन दे दिया कि महाराज इसे रद्द या संशोधन करने का विचार कर रहे हैं, परन्तु यह कुछ न हुआ। महायुद्ध आरम्भ हो जाने से तो अधिकारियों को यह दमन अस्त्र सुरक्षित रखने का और भी अधिक बहाना मिल गया। प्रजामंडल पर प्रतिबन्ध लगाया हुआ है, उसका रोजमर्रा का साधारण कार्य भी होना सम्भव नहीं है। इन कठिनाइयों तथा ऐसी परिस्थिति के होते हुए भी वह जनता में जीवन-ज्योति बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील है, वह चुपचाप रचनात्मक कार्य में लगा है और इस आशा में जीवित है कि यथा-सम्भव शीघ्र ही अपने त्याग और बलिदान से अपने उद्देश्य-सिद्धि में—जनता को उत्तरदायी शासन और नागरिक अधिकार दिलाने में—सफल होगा।



# पच्चीसवाँ अध्याय



## नाभा

पंजाब के राज्यों के वर्त्तमान शासन में जरा सा और बहुत ही निर्दोष सुधार करने की दिशा में कदम उठाना भी अत्यन्त भयानक क्रान्ति से कम नहीं समझा जाता। इस विषय की आवाज का दमन किया जाना निश्चित है। —सरदार भगवानसिंह

यह पंजाब की तीन फुलकियाँ रियासतों में से है। इसका क्षेत्रफल ६४७ वर्ग मील, जन-संख्या लगभग तीन लाख और वार्षिक आय २९ लाख रुपया है।

महाराजा हीरासिंह का देहान्त १९११ में हुआ। उस समय उनके पुत्र टिक्का रिपुदमनसिंह फ्रांस में थे। अगले वर्ष ये राज्य में आये, पश्चात् इन्हें नियमानुसार गद्दी दी गयी। सन् १९२३ ई० में किन्हीं कारणों से राज्य से इनका सम्बन्ध विच्छेद करके इनके लिए जेब-खर्च नियत किया गया। शासन-कार्य के लिए भारत-सरकार द्वारा एक प्रबन्धक नियत किया गया। महाराज देहरादून में रह कर वकीलों आदि की मार्फत अपने मामले की पैरवी करते रहे। अन्ततः १९२८ ई० में इन्हें गद्दी से उतार दिया गया और सन् १९१८ के रेग्यूलेशन के

अनुसार कोडाइकनल ( मदरास ) में नजरबन्द करके रखा गया। अब से इन्होंने अपना नाम गुरुवचनसिंह रख लिया।

सन् १९२८ में इनके पुत्र प्रतापसिंह गद्दी पर बैठे, ये उस समय नौ वर्ष के थे। इस लिए इनकी नाबालगी में शासन-कार्य के लिए रीजेन्सी-कौंसिल नियत की गयी थी। श्री० प्रतापसिंह जी को शासनाधिकार सन् १९४१ ई० मिले।

राज्य में महाराज को पूर्ण शासनाधिकार है। जनता का, इन पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं। प्रधान मंत्री तथा अन्य मंत्री इनके ही प्रति उत्तरदायी होते हैं। यहाँ कोई व्यवस्थापक सभा नहीं है। उसकी बात जाने दें, यहाँ जनता की म्युनिसिपैलटी तक नहीं है। जो म्युनिसिपैलटी है, वह सरकारी ही है। उसके सदस्य सरकार नियुक्त करती है, और वे प्रायः सरकारी कर्मचारी ही होते हैं।

यहाँ शिक्षा की भी दशा चिन्तनीय है; राज्य भर में एक भी कालिज नहीं है। हाईस्कूल भी केवल एक है, वह है नाभा शहर में। ज़िलों में एक-एक मिडिल स्कूल तथा कुछ प्राइमरी पाठशालाएँ हैं। स्वास्थ्य या चिकित्सा की, नाभा शहर को छोड़कर, कहीं सुव्यवस्था नहीं है।

न्याय के लिए, जहाँ तक संस्थाएँ स्थापित करने और अधिकारी नियुक्त करने का प्रश्न है, यहाँ किसी प्रकार की कमी नहीं। नीचे की अदालतें—निजामतें और तहसीलें—ही नहीं, हाईकोर्ट तक है। परन्तु यहाँ हाईकोर्ट का जज ही जेलों का इन्सपेक्टर भी हो सकता है और हुआ है, और साथ ही पुलिस का 'इन्चार्ज' ( उच्च अधिकारी )

भी। ऐसी दशा में विशेषतया राजनैतिक मामलों में न्याय की आशा ही क्या हो सकती है! पुलिस सुपरिटेंडेंट सर्वसाधारण नागरिकों से चाहे-जैसा व्यवहार करे, उनके विरुद्ध कोई सफल कार्यवाही करना असम्भव है। यही नहीं कि अधिकारियों की टीका-टिप्पणी करनेवाले को संकट का सामना करना पड़ता है, उसके परिवारवालों को, स्त्री-बच्चों तक को, भी भाँति-भाँति के कष्ट दिये जाते हैं। मजिस्ट्रेटों पर पुलिस का प्रभाव है। प्रायः उनमें स्वतंत्र फैसला करने का साहस नहीं होता। राजनैतिक अभियुक्तों के विषय में वे अधिकारियों का रुख देखकर फैसला सुनाते हैं।

नागरिक स्वतंत्रता यहाँ प्रायः बिल्कुल नहीं रही है। लोगों को हर समय डर लगा रहता है, न मालूम कब किसी की तलाशी ले ली जाय या किसी पर झूठा मुकदमा चला दिया जाय। पुलिस द्वारा मार-पीट होना और लोगों को बेइज्जत किया जाना साधारण बात है। राष्ट्रीय साहित्य की तो बात दूर रही, सार्वजनिक सभाओं की रिपोर्टें आदि रखना भी खतरे से खाली नहीं है। कुछ वर्ष हुए यहाँ राष्ट्रीय झंडा लगाया गया था, पुलिस ने उसे उतार दिया। सत्याग्रह शुरू हुआ। उस समय प्रतिष्ठित नागरिकों तक से पुलिस ने दुर्व्यवहार किया। प्रजामंडल, नाभा के अध्यक्ष श्री सन्तराम जी वकील, स्वयं भुक्त-भोगी सज्जन हैं। इन्होंने अपने जीवन में सार्वजनिक सेवा के उपलक्ष्य में कैसी-कैसी यातनाएँ उठायी हैं, उनका वृतान्त पढ़कर रोमांच हो जाता है। इनके द्वारा प्रकाशित एक विज्ञप्ति का कुछ अंश इस प्रकार है—

'जथे को खास मारपीट की जगह ले जाया गया। वालंटियरों (स्वयं सेवकों) को दिन भर कड़कती धूप में बैठाये रखा। रात के वक्त उनको अलग-अलग कोठरियों में बन्द करके उनके चूतड़ों पर जूतों से मारपीट की गयी। वालंटियरों के पाखाने के रास्ते खून जारी हो गया। बाद में उनके जख्मों पर बारीक नमक पीस कर डाला गया। वालंटियरों के चिल्लाने पर फिर जख्मों की जगह पर सख्त मारपीट की गयी। दो दिन और दो रात इसी तरह तंग किया गया। इस बीच में किसी वालंटियर को खुराक या पानी नहीं दिया गया। अन्त में नीम-बेहोशी (अर्द्ध मूर्च्छा) की हालत में उन्हें रियासती हद से बाहर लेजाकर छोड़ दिया गया। रिहाई के बाद भी उनके पाखाने के खून जारी था। डाक्टरी मुआयना कराया गया।'

निरंकुश शासन में ऐसी घटनाओं का होना कुछ आश्चर्यजनक नहीं। अस्तु, ऐसी दारुण परिस्थितियों में श्री० संतराम जी वकील जैसे जिन त्यागवीरों ने तरह-तरह की मुसीबतें उठाकर कांग्रेस और प्रजा-मंडल का स्वाभिमान और स्वतंत्रता सूचक झंडा ऊंचा रखने का प्रयत्न किया, और नागरिक स्वाधीनता का मार्ग प्रशस्त किया, उन्हें भावी नागरिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करेंगे, और इतिहासकार उनकी स्मृति बनाये रखेंगे। निदान, प्रजामंडल अनेक बाधाएँ होते हुए भी उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित कराने का प्रयत्न कर रहा है।

इस राज्य के नागरिकों ने मन्डीफूल में एक विराट् सभा करके अपनी माँगें निश्चित की थीं, उनका विस्तृत ब्यौरा एक पुस्तिका ('मतालबात रियासत नाभा') में दिया गया है, जो प्रजामंडल के अध्यक्ष श्री० सन्तराम जी वकील ने उर्दू में प्रकाशित की है। इन

माँगों से पंजाब की अन्य रियासतों की शासन सम्बन्धी स्थिति पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है, अतः ये संक्षेप में नीचे दी जाती हैं:—

१—नागरिक स्वतंत्रा को कुचलने वाली हिदायत १९८८ रद्द की जाय। २—राष्ट्रीय झंडा फहराने की स्वतंत्रता हो। ३—शिक्षा प्रचार हो, एक कालिज स्थापित किया जाय, प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य हो, गाँवों में, तथा लड़कियों के लिए यथेष्ट व्यवस्था रहे। ४—संघ शासन में सम्मिलित होने के लिए जरूरी शर्त यह है कि केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल में नाभा राज्य की जनता के चुने हुए प्रतिनिधि लिये जायँ। ५—राज्य में उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाय, व्यवस्थापक सभा और म्युनिसपैलटियाँ, निर्वाचित प्रतिनिधियों की स्थापित की जायँ। ६—जत्थाबन्दी, सभा, सम्मेलन, भाषण, लेखन और प्रकाशन की स्वतंत्रता हो। ७—लगान में कमी की जाय, वह आय-कर के सिद्धान्त पर निर्धारित हो। ८—अनुचित कर हटाये जायँ; आबयाना (सिंचाई या आबपाशी का महसूल) कम किया जाय। ९—पुराने ऋण रद्द किये जायँ। १०—आलीशान इमारतें बनवाने के बजाय दस्तकारी के स्कूल और कालिज खोले जायँ, जिससे बेकारी की समस्या हल हो। ११—बिस्वेदारी प्रथा उठा दी जाय। १२—किसानों को विरासत का अधिकार हो। १३—'सीगा लावारसी' की व्यवस्था न्यायानुकूल होनी चाहिए। १४—कानून का शासन होना चाहिए, कानून मनमाना न हो, शासन और न्याय पृथक्-पृथक् हों। १५—पुलीस के व्यवहार में सुधार हो, वह वास्तव में नागरिकों की जान-माल की रक्षा हो। १६—निम्न श्रेणी के व्यक्तियों, मेहनत-मजदूरी करने वाले मज़दूरों और किसानों से तथा भेड़ बकरियों पर एवं विधवा स्त्रियों से 'चपकी चूल्हे' के नाम से लिया जानेवाला कर बन्द किया जाय। १७—राजकीय आय व्यय की

रिपोर्ट सर्वसाधारण की जानकारी के लिए प्रकाशित की जाय। १८—पुलिस और फौज के खर्च में कमी की जाय। १९—न्याय बहुत मँहगा है, स्टाम्प तथा नकल फीस अधिक है, इसमें सुधार किया जाय, जिससे ग़रीबों को भी न्याय मिल सके। २०—राज्य से निकाले हुए व्यक्तियों को वापिस आने दिया जाय, और उनकी जब्त की हुई जायदाद उन्हें दे दी जायँ। २१ चुंगी, हाउस-टेक्स, तथा रुई की गाँठों का कर कम किया जाय, जिससे आदमी मण्डियों की दुकानें छोड़ कर चले जाने को वाध्य न हों। २२—स्थान-स्थान पर सार्वजनिक पुस्तकालयों की स्थापना की जाय। २३—रियासत में सत्तर-सत्तर वर्ष के बूढ़े पदाधिकारी बने हुए हैं, उन्हें पेन्शन देकर अन्य व्यक्तियों को अवसर दिया जाय; ५५ साल वालों को पेन्शन देने का नियम रहे। २४—रिश्वत का बाजार गर्म है, उसे बन्द किया जाय। २५—नागरिकों के स्वास्थ्य और चिकित्सा की समुचित व्यवस्था की जाय। २६—प्रेसीडेन्ट को १५००) रु० के बजाय १००) रु० माहवार दिये जायँ; उच्च अफसरों का वेतन कम करके, नीचे के कर्मचारियों का वेतन बढ़ाया जाय। राजकीय नौकरियाँ स्थानीय व्यक्तियों को दी जायँ। २७—अनावश्यक पद हटा दिये जायँ। २८—प्रेसीडेन्ट आठ-दस साल से है, उसका चुनाव प्रति पाँचवें वर्ष होना चाहिये। २९—सड़कों का निर्माण और सफाई का प्रबन्ध होना चाहिए। ३० मवेशियों के लिए चरागाह की व्यवस्था होनी चाहिए। ३१—पिछले सरकारी हिसाब की जाँच होकर जनता का समाधान किया जाना चाहिए। ३२—किसानों को नहरी पानी मिलने का उचित प्रबन्ध होना चाहिए, इस समय रिश्वत बहुत चलती है। ३३ बेगार-प्रथा बन्द कर दी जानी चाहिए।



# छब्बीसवाँ अध्याय

## झींद

झींद राज्य के आकस्मिक दर्शक को भी जल्दी ही यह स्पष्ट हो जाता है कि वहाँ की जनता बहुत ही बुरी दशा में है।

—सरदार भगवानसिंह

इस राज्य का क्षेत्रफल १२६६ वर्ग मील, जनसंख्या सवा तीन लाख, तथा वार्षिक आय २७ लाख रुपये है। राज्य में चार शहर हैं। राजधानी संगरूर है।

महाराजा रणजीतसिंह सन् १८७९ में गद्दी पर बैठे, जबकि वे केवल आठ वर्ष के थे। इन्हें शासनाधिकार सन् १८९९ में मिले। महाराज की सहायता के लिए एक प्रधान मंत्री तथा तीन-चार अन्य मंत्रियों की कौंसिल है, जो सब विभागों का प्रबन्ध करती है। मुख्य शासन-विभाग प्रायः ये होते हैं—(१) विदेश और शिक्षा, (२) बख्शी-खाना और सैनिक, (३) न्याय (४) राजस्व, आबकारी और माल।

राज्य में एक व्यवस्थापक सभा है, उसमें ६५ सदस्य हैं। पहला चुनाव १९३९ में हुआ था। सभा के सदस्यों के स्थानों का बटवारा विचित्र ढंग से किया गया है, ३ स्थान पढ़े हुओं के लिए, २ हरिजनों के लिए, और शेष स्थान टेक्स और मालगुजारी देनेवालों के लिए हैं। इस

सभा का अधिवेशन साल में दो बार तीन-तीन चार-चार दिन के लिए होता है। अध्यक्ष चीफ-मिनिस्टर होता है। अधिवेशन से महीना दो महीने पहले सदस्य कुछ प्रश्न लिख कर भेज देते हैं। राज्य की ओर से उनका जवाब दे दिया जाता है, जवाब पर बहस नहीं होती। बजट पर तथा महाराज के अधिकारों पर भी बहस नहीं होती।

राज्य में एक हाईकोर्ट है तथा इस के तीनों जिलों में से हर एक में एक-एक मजिस्ट्रेट अथवा नाजिम है और एक-एक सब-मजिस्ट्रेट अथवा नायब नाजिम है। राज्य में एक सेशन जज है, वह प्रति मास दस-दस दिन प्रत्येक जिले में जाता है। यदि कोई व्यक्ति किसी अफसर के विरुद्ध रिश्वत की शिकायत करना चाहे, तो उसे जमानत देनी पड़ती है, इससे किसी को शिकायत की हिम्मत नहीं होती।

राजा साहब का तथा शासन-विभाग का खर्च बहुत अधिक है, उसकी पूर्ति के लिए जनता पर नाना प्रकार के कर लगाये जाते हैं। बहुत सी साधारण दरखास्तों पर भी टिकट लगाना पड़ता है। कैदी से मुलाकात करने के लिए दरखास्त दी जाय तो उस पर एक रुपये का टिकट लगाना आवश्यक होता है। अगर किसी मंत्री को प्रार्थना-पत्र देना हो तो २) रु० का टिकट, और यदि महाराज की सेवा में भेजना हो ५) रु० का टिकट लगाना चाहिए; अन्यथा उस पर ध्यान नहीं दिया जायगा। मालगुजारी और इनकमटेक्स भी यहाँ ब्रिटिश भारत की अपेक्षा बहुत अधिक है। वर्तमान युद्ध से पहले भी यहाँ छः सौ रुपये ( या अधिक ) की आमदनी पर कर लगता था।

चार शहरों में म्युनिसपैलटियाँ हैं, वे जनता के हित और स्वास्थ्य की ओर यथेष्ट ध्यान नहीं देती। इनके चार-चार सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित और चार-चार सदस्य सरकारी हैं। इसके अतिरिक्त सभापति भी सरकार द्वारा नियुक्त रहता है, उसे 'वीटो' अर्थात् निषेधाधिकार प्राप्त है, अर्थात् वह म्युनिसिपल बोर्ड द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों को रद्द कर सकता है। स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं में भी जनता के अधिकारों की यह उपेक्षा कैसी चिन्तनीय है!

राज्य में केवल एक इन्टर कालिज, तीन हाई स्कूल तथा कुछ अन्य स्कूल हैं। ज़िला दादरी में कुछ मिडल और प्राइमरी स्कूल श्री० डालमिया जी की ओर से चल रहे हैं, इनसे सर्वसाधारण को बड़ा लाभ पहुँच रहा है। राज्य में सार्वजनिक जीवन उन्नत होने की सुविधाएँ नहीं हैं। जो युवक कुछ पढ़-लिख जाते हैं, वे प्रायः सरकारी नौकरियों की फिक्र में रहते हैं; जो ऐसा नहीं करते उनकी शक्तियाँ भी, भय के कारण, अविकसित रह जाती हैं। देहातों की तो दशा और भी खराब है। चोर डाकू आदि यहाँ अपेक्षाकृत अधिक हैं। व्यापार और उद्योग धन्धों को, राज्य की ओर से कोई प्रोत्साहन नहीं दिया जाता। पिछले दिनों अकाल पड़ा तो राज्य की सहायता मिलना तो दूर, मालगुजारी में भी कमी न की गयी। बहुत से आदमी मजदूरी करने राज्य से बाहर चले गये अथवा फौज में भर्ती हो गये। जनता के सार्वजनिक कार्यों पर यहाँ बड़ा प्रतिबन्ध रहा है; हाँ, पटियाला और नाभा की अपेक्षा कुछ कम। सन् १९३१-३२ के राष्ट्रीय आन्दोलन के समय यहाँ 'फुलकियाँ

एक्ट' नामक दमनकारी कानून बनाया गया। कोई भी संस्था सरकारी मजूरी के बिना नहीं बन सकती, यहाँ तक कि धार्मिक संस्थाएँ भी रजिस्टर करानी पड़ती हैं। राजनैतिक संस्थाओं के लिए तो इजाजत ही नहीं दी जाती। राजनैतिक प्रचार अथवा भाषण करनेवालों को बड़ी-बड़ी सजाएँ दी जाती हैं। पंजाब रियासती प्रजा-मंडल के सेक्रेटरी सरदार भगवानसिंहजी की अंग्रेजी में प्रकाशित पुस्तक* में यहाँ के, डाक्टर बिहारीलाल डोग्रा के मंत्रित्व-काल के कुशासन का ब्यौरेवार परिचय दिया गया है। उस समय लगभग दो हजार सत्याग्रही कैद किये गये थे।

सन् १९३८ में श्री० हंसराज जी बी० ए० 'रहबर' आदि महानुभावों ने बड़ी मुश्किल से 'पबलिक यूनियन' नामक संस्था इस राज्य की राजधानी संगरूर में स्थापित की। इसके नियम बहुत सीधे-सादे और नर्म थे। इसे 'फुलकियाँ कानून' के अनुसार मंजूर कराया गया। इससे पहले देहातों में कुछ कार्यकर्त्ता लुक-छिपकर रहते थे; न तो उनकी कोई संगठित संस्था ही थी, और न वे कुछ नियमित कार्य ही कर सकते थे। अब पबलिक यूनियन द्वारा वे एक-दूसरे के सम्पर्क में आने लगे। सन् १९३९ में आ० भा० देशी राज्य लोक-परिषद का अधिवेशन हुआ, उससे पंजाब के अन्यान्य स्थानों में, इस राज्य पर भी अच्छा प्रभाव पड़ा। 'पबलिक यूनियन' का नाम बदल 'प्रजामंडल' कर दिया गया; अनुदार सदस्यों को इससे अलग होना पड़ा। राज्य भर में प्रजामंडलों की स्थापना की गयी। राजनैतिक

* Mal-Administration in the Jind State.

व्याख्यानों के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया। पटियाला के प्रजा-मंडल की मीटिङ्ग भी प्रायः संगरूर (झींद) में होने लगीं। झींद का प्रजा-मंडल दिनों दिन उन्नति करने लगा। परन्तु सन् १९४० में राज्य ने कुछ कार्यकर्त्ताओं को भारत-रक्षा-कानून के अनुसार नजरबन्द कर दिया। इससे जनता का रोष बढ़ा, सत्याग्रह आरम्भ होने की सम्भावना हो गयी। इस पर अधिकारियों ने कुछ कार्यकर्त्ताओं को प्रलोभन में फँसा लिया और कुछ को जेल में डाल दिया। राज्य में राजनैतिक बन्दियों से अच्छा व्यवहार करने का जो कानून बना था, वह रद्द कर दिया गया। कई कार्यकर्त्ता जेलों की सख्तियों को सहन न कर सके। निदान, आन्दोलन बाहरी रूप से दब गया। तथापि जनता के मन से राजनैतिक सुधार की भावना नष्ट नहीं हुई है। कार्यकर्त्ता परिस्थिति के अनुसार कार्य कर रहे हैं। अनुकूलता मिलने पर, वे उत्तरदायी शासन और नागरिक अधिकारों की बड़े जोर से मांग करेंगे, और उसे लेकर रहेंगे।

---

# सत्ताइसवाँ अध्याय

## पंजाब के कुछ अन्य राज्य

### [ बहावलपुर, कपूरथला, मलेरकोटला, लोहारू ]

इन (पंजाब की) रियासतों में से कुछ, क्षेत्रफल में बहुत छोटी और मध्य स्थिति की हैं, परन्तु कुशासन और कुप्रबन्ध में प्रत्येक रियासत दूसरों से बाजी मार ले जाती है।

—सरदार सेवासिंह

## बहावलपुर

इस राज्य का क्षेत्रफल १६,१३४ वर्गमील, जनसंख्या दस लाख और साधारण वार्षिक आय चालीस लाख रुपये है। राज्य का बहुत सा भाग रेगिस्तान है। महाराजा रणजीतसिंह से अपनी रक्षा करने के लिए यहाँ के शासक ने १८३३ में अंगरेजों से संधि की थी। शासक का पद 'नवाब' है।

नवाब सदीक़ मोहम्मद खाँ सन् १९०७ में गद्दी पर बैठे, जबकि वे केवल तीन वर्ष के थे। सन् १९२२ में इन्हें परिमित शासनाधिकार मिले, पूरे अधिकार १९२४ में प्राप्त हुए।

नवाब साहब नरेन्द्र मंडल के सदस्य हैं। आप कुछ मिनिस्टरों की सहायता से शासन करते हैं। राजप्रबन्ध किसी अंश में जनता के प्रति उत्तरदायी या प्रतिनिधिमूलक नहीं है। यहाँ तक कि म्युनिस-पैलटियों के सदस्य भी सब सरकारी कर्मचारी या नामज़द होते हैं, निर्वाचित सदस्यों का सर्वथा अभाव है। राज्य भर में एक कालिज और कुछ स्कूल हैं जो राज्य के विस्तार की दृष्टि से अत्यन्त कम हैं। पक्की सड़कों की तरफ भी ध्यान नहीं दिया जाता। तथापि जनता पर करों का भार बढ़ता ही जाता है। 'यहाँ की चिन्तनीय दशा से बाध्य होकर जमैयतुल-मुसलमीन ने, जो एक राष्ट्रीय संस्था है, उत्तर-दायी शासन की माँग की। बार-बार माँग होने के बावजूद भी राज्य ने रत्ती भर सुधार नहीं किया। इस पर अप्रेल १९३९ में सत्याग्रह किया गया। जून में प्रधान मंत्री समझौता करने पर सहमत हो गये। सब राजनैतिक कैदी छोड़ दिये गये और सत्याग्रह स्थगित कर दिया

गया। परन्तु प्रधान मंत्री ने अपनी ढील-ढाल और देर करने की चाल इख्तयार की, और कुछ निर्णय न हो पाया; इस बीच में महायुद्ध छिड़ गया। जमैयतुल-मुसलमीन ने राज्य को ऐसे समय परेशान न करने की नीति रखी। परन्तु प्रधान मंत्री ने प्रमुख सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं के विरुद्ध गैर-राजनैतिक मुकदमे चलाये और कुछ सज्जनों को बिना मुकदमा चलाये ही जेल में बन्द कर दिया। भाषण और लेखन पर कड़ा प्रतिबंध लगाकर राजनैतिक तथा धार्मिक आदि सब सार्वजनिक संस्थाओं का दमन कर दिया गया है।'* पंजाब के अन्य राज्यों की तरह, इस राज्य में भी राजनैतिक विभाग की ओर से जनता की उपेक्षा का कटु परिचय मिला है।

## कपूरथला

पंजाब के राज्यों में कपूरथला अपने ढंग का निराला ही है। इसका क्षेत्रफल ५९९ वर्गमील, जनसंख्या सवा तीन लाख, और वार्षिक आय चौतीस लाख रुपये है। महाराजा सर जगतजीत सिंह सन् १८७७ में गद्दी पर बैठे, उस समय वे पाँच वर्ष के थे। १८९० में आपको शासनाधिकार दिये गये। सन् १९०१ में शासन-कार्य में सहायता देने के लिए एक कौंसिल नियुक्त की गयी। सन् १९२७ में महाराज ने अपने शासन की स्वर्ण जयन्ती खूब धूमधाम से मनायी। तीन बार—सन् १९२६, १९२७ और १९२९ में—नरेशों के 'प्रतिनिधि' बनाये जाकर राष्ट्र-संघ में भेजे गये सन् १९३१ में आपने

---

* मोहम्मद हसन बी० ए० के, 'स्टेट्स पीपल्स' में प्रकाशित, लेख के आधार पर।

गोलमेज सभा में भी भाग लिया। आप नरेन्द्र मंडल के सदस्य रहे हैं, सन् १६३३ में आपने उससे त्यागपत्र दिया। आप अंगरेजी ढंग से रहते हैं, योरप को अपना घर समझते हैं, वहीं आपकी अधिकांश आयु बीती है, वहीं आपने शादी की, वहीं आपके लड़के का शिक्षण हुआ। आपने ब्रिटिश साम्राज्य का खूब गुणगान किया है, और सरकार से अनेक उपाधियाँ प्राप्त की हैं। [यह भी राजाओं के एक वर्ग का नमूना है।] आपने उस जनता के लिए कुछ नहीं किया, जिसके कारण आप महाराज बने हैं, और जिसकी गाढ़ी कमाई से आपने अपनी फजूलखर्चियाँ की हैं। सर्वसाधारण में आप अकाली आन्दोलन के दमन करनेवाले के रूप में प्रसिद्ध हैं।

## मलेरकोटला

इस राज्य का क्षेत्रफल १६५ वर्गमील, जन-संख्या लगभग एक लाख और वार्षिक आय नौ लाख रुपये हैं। प्रधान शासक नवाब है, जो कुछ मिनिस्टरों की सहायता से राजप्रबन्ध करता है। शासन किसी भी अंश में जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं है। लोकहित के कार्यों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। उदाहरणार्थ यहाँ शिक्षा की दशा यह है कि राज्य भर में केवल एक इंटर कालिज है, दूसरा कोई हाई-स्कूल भी नहीं। अन्य पाठशालाएँ भी बहुत कम हैं। जो एकमात्र इंटर कालिज है, वह भी अच्छी तरह नहीं चलाया जाता। तथापि दमन में यह राज्य पटियाला और नाभा आदि से पीछे रहना पसन्द नहीं करता। कुछ समय हुआ यहाँ हिन्दुओं को बहुत शिकायतें थीं। दो महिने

हड़ताल रही। लाखों रुपये की हानि हुई। ए० जी० जी० के पास आवेदनपत्र ही नहीं, डेप्यूटेशन भी गया, पर फल कुछ भी न हुआ।

## लोहारू

इस राज्य का क्षेत्रफल २२६ वर्गमील, जन-संख्या केवल चौबीस हजार और वार्षिक आय सवा लाख रुपये है। नवाब अमीनुद्दीन अहमद सन् १९२६ में गद्दी पर बैठे। उस समय आपकी उम्र १५ वर्ष की थी। अतः नाबालगी के समय रिजेन्सी-कौंसिल का शासन रहा। सन् १९३१ में आपको शासनाधिकार मिले। राजप्रबन्ध एकतंत्री है। किसानों ने जब अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों से तंग होकर आन्दोलन किया तो उन्हें गोलियों का शिकार होना पड़ा। असेम्बली के सदस्य इस प्रसङ्ग में पोलिटिकल सेक्रेटरी से मिले तो उसने इस सम्बन्ध में कुछ कार्यवाही करने में अपनी असमर्थता दिखायी, परन्तु नवाब साहब की सहायता के लिए सरकारी सेना भेज दी गयी।

# अट्ठाइसवाँ अध्याय

## शिमला पहाड़ी राज्य

अब तो मंडी, सुकेत से लेकर जुब्बल, धामी, भज्जी, कुनिहार जैसी छोटी-मोटी रियासतों तक में इन जीवन-नाशक कानूनों की, नये

आर्डिनेन्सों के साथ नकल करायी गयी हैं, जिसके पीछे, साफ जाहिर है कि किसी अन्य ऊँची शक्ति का ही हाथ है; अन्यथा बेचारे ये ज़मीन के छोटे-छोटे रकबों के मालिक ( शिमला के पहाड़ी ठाकुर व राना राजा ) भला इन बातों के चक्कर में क्यों पड़ने लगे थे। —श्रीदेव सुमन

इस अध्याय में पंजाब के शिमला पहाड़ी राज्यों के विषय में विचार किया जाता है। ये राज्य अधिकांश में बहुत छोटे-छोटे हैं। इनमें से मुख्य ये हैं—बशहर, भज्जी, बिलासपुर ( कहलूर ) सिरमौर ( नाहन ) आदि। प्रबन्ध की दृष्टि से भारत-सरकार टेहरी को भी इन्हीं राज्यों में गणना करती है, परन्तु वह वास्तव में संयुक्तप्रान्त में है।*

पंजाब के इन राज्यों में, कई बातों में न्यूनाधिक समानता है। बहुत से राज्यों में अंगरेजी शासनपद्धति की भद्दी और घातक नकल की जाती है। कई राज्यों में केवल दिखावे के लिए भिन्न-भिन्न विभागों के मंत्री तथा अन्य पदाधिकारी नियुक्त हैं। छोटे राज्यों के लिए यह निरा मजाक है। इसमें बहुत द्रव्य बरबाद होता है, पर उन्हें तो बड़े-बड़े पदों और संस्थाओं द्वारा राज्य का बड़प्पन दिखाने से मतलब है। पदों की संख्या या कार्य निर्धारित नहीं है। शासक जब चाहें, नया पद निर्माण कर देते हैं, और उस पर अपने किसी कृपापात्र को बैठा देते हैं, चाहे उसमें यथेष्ट योग्यता हो या न हो।

कलसिया एक छोटी सी रियासत है, इसका क्षेत्रफल १६२ वर्ग-मील, जनसंख्या ६० हजार और वार्षिक आय साढ़े तीन लाख रुपये है। इस प्रकार यह ब्रिटिश भारत की 'एक तहसील से भी कम है,

* टेहरी के विषय में, 'संयुक्तप्रान्त के राज्य' अध्याय में, लिखा जायगा।

तथापि यहाँ हाईकोर्ट, डिस्ट्रिक्ट जजी व सबजजी इत्यादि सारे ही ओहदे मौजूद हैं। इसका परिणाम यह होता है कि यह रियासत हमेशा ही कर्ज में डूबी रहती है। गरीब रियाया के लाभ का कोई काम नहीं हो पाता और टेक्स दिन-रात बढ़ते रहते हैं।' बहुत से राज्यों में आमदनी का बड़ा हिस्सा तो राजा के ऊपर ही खर्च हो जाता है। यह हुजूरी खर्च कहीं-कहीं, ठीक हिसाब लगाने से पचास फी सदी तक बैठता है, और अधिकतर राजा के शौक और व्यसनों में खर्च होता है।

शिमला पहाड़ी राज्य छोटे-छोटे होते हुए भी दमन में कम नहीं हैं। अन्यान्य राज्यों में धामी राज्य ने इसका निन्दनीय उदाहरण उपस्थित किया। घटना सन् १९३९ ई० की है। जैसा कि पंडित जवाहर लाल जी नेहरू ने ८ मार्च १९४० के वक्तव्य में कहा था, इस छोटी सी पहाड़ी रियासत के प्रजा जनों का प्रतिनिधि-मंडल वहाँ के शासकों को अपनी कष्ट-कथा सुनाने तथा वहाँ के शासन-सुधार के निमित्त प्रार्थना करने गया था, जिस पर रियासत के अधिकारियों ने निर्ममता से गोली चलायी, कई व्यक्ति मरे और कई घायल हुए। इसकी जाँच करने की प्रार्थना हुई, जो अस्वीकार करदी गयी। इसकी गैर-सरकारी जाँच होने हर पता चला कि उसका उत्तरदायित्व वहाँ के पोलिटिकल एजन्ट पर भी है। बाद में अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद की ओर से शिमला की पहाड़ी रियासतों की प्रजा के कष्टों की जाँच करायी गयी। इन रियासतों की दशा असाधारण रूप से गिरी हुई है और पोलिटिकल एजंट और शासक दोनों के कारण अनेक दुखद

घटनाएँ घटी हैं, जिनका कुफल प्रजा को भोगना पड़ रहा है। वहाँ दमन पर दमन हो रहा है।

सिरमौर की दशा पहले कुछ ठीक थी। राजा राजकीय मामलों में स्वयं दिलचस्पी लेता था, और प्रत्येक बात का निरीक्षण करता था। अब वहाँ की भी दशा बिगड़ गयी है। न्याय-विभाग शासन-विभाग के अधीन होने से मजिस्ट्रेटों के लिए स्वतंत्रता-पूर्वक कार्य करना कठिन है, और जनता के लिए न्याय प्राप्त करना प्रायः असम्भव है। कितने ही राज्यों ने संस्थाओं की रजिस्टरी का नियम बना रखा है, इससे रचनात्मक कार्य या सेवा करने वाली सामाजिक या धार्मिक संस्थाओं का सङ्गठन भी सहज ही नहीं हो पाता।

स्थानाभाव से हम शेष शिमला पहाड़ी राज्यों की चर्चा करने में असमर्थ है। उपर्युक्त विवेचन से अन्य राज्यों की दशा का भी अनुमान हो सकता है। प्रायः सभी के विषय में यह कहा जा सकता है कि यहाँ न्याय और कानून दकियानूसी ढङ्ग का है। जनता के जान-माल की रक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं है। बेगार की प्रथा जोर से प्रचलित है; किसी के इनकार करने पर जेल की सजा दी जाती है। इन रियासतों में नागरिक स्वतन्त्रता नहीं है। कोई व्यवस्थापिका सभा नहीं है। बजट प्रकाशित नहीं किये जाते। जनता पर मनमाने कर का भार लाद दिया गया है। भूमि पर अत्यधिक लगान लगा दिया गया है। शासकों के परिवार में कोई उत्सव होता है तो उस अवसर पर प्रजा को अतिरिक्त कर देने के लिए बाध्य किया जाता है। राजनैतिक कार्यों को बुरी तरह दबाया जाता है।

पहाड़ी रियासती प्रजा के अधिकारों तथा उन पर होनेवाले अत्याचारों के प्रति सब से पहले आवाज बुलन्द करनेवाली संस्था 'गढ़ देश ( हिमालय ) सेवा संघ' देहली है। इसने विगत सात-आठ वर्ष से यहाँ की जनता की विविध समस्याओं के साथ-साथ राजनीति को भी हाथ लगा कर उसे आगे बढ़ाया है। उसने न केवल भारतवर्ष की राजधानी देहली को ही अपनी प्रवृत्तियों का केन्द्र रखा, बल्कि ग्रीष्मकालीन राजधानी शिमला में भी पहाड़ी राज्यों की जनता के सम्मेलन का महत्वपूर्ण अधिवेशन किया, जिसकी प्रेरणा व प्रस्ताव के फल-स्वरूप शिमला की पहाड़ी रियासती प्रजा का संगठन 'हिमालय रियासत प्रजामंडल' के नाम से कायम हुआ।

अप्रेल १९३९ में, श्री भूलाभाई देसाई के सभापतित्व में, हिमालय प्रान्तीय देशी राज्य प्रजा-सम्मेलन हुआ, जिसमें पंडित बद्रीदत्त पांडे एम० एल० ए० की अध्यक्षता में एक केन्द्रीय संगठन समिति बनायी गयी। श्री० श्रीदेव जी सुमन उक्त कमेटी के संयोजक चुने गये। इसने निश्चय किया कि एक केन्द्रीय संगठन के अन्तर्गत तीन समूह हों:—(१) पंजाब की पहाड़ी रियासतों का समूह, सिरमौर, कलसिया, मंडी, सुकेत, बिलासपुर, चम्बा आदि। (२) शिमला की पहाड़ी रियासतों, का समूह—जुब्बल, बुशहर, बाघल, बघाट, नालागढ़, धामी, मज्जी कुनिहार, कोटी आदि। (३) संयुक्तप्रान्त की प्रमुख पहाड़ी रियासत टेहरी गढ़वाल।

सर्वश्री पांडे और सुमन जी के वक्तव्य से ज्ञात होता है कि उन्होंने पहाड़ी राजाओं को अपने राज्यों में समयानुकूल शासन-

सुधार, प्रजा के नागरिक अधिकार, तथा उत्तरदायी शासन की घोषणा करने को निमंत्रित किया था, और प्रचलित अमानुषिक प्रथाओं— जैसे बेगार, प्रभु-सेवा, भेंट, बर्दाश्त, पोनटोटी टेक्स, स्त्रियों व घरू नौकरों तक पर लगाये करों, और साथ ही खुले आम जगह-जगह पर शराब, सुल्फा, चरस, सिगरेट दियासलाई, यहाँ तक कि दूध और मिठाई आदि तक के ठेकों के चलन तथा राजपरिवार के किसी व्यक्ति के मरने पर प्रजा के सिर और मूछें मुँडवाने एवं जन्म-मरण तथा विवाह पर भी टेक्स लेने आदि के अनुचित रिवाजों को पूरे तौर से उठा देने का अनुरोध किया था। इन सज्जनों ने यथासम्भव समझौते की नीति रखी, पर राजाओं ने इसका उत्तर सभाबन्दी आदि के कठोर कानून तथा आर्डिनेन्स बना कर तथा दमन करके दिया। प्रजा-सम्मेलन प्रत्येक रियासत में, तथा रियासत के बाहर भी प्रजा का संगठन करने में और शिक्षा-प्रचार, ग्राम-सुधार, आदि रचनात्मक कार्य करने में लगा है।

सरकार कुछ ऐसी योजना कर रही है कि शिमला पहाड़ी राज्यों को पाँच समूहों में विभक्त कर दिया जाय। प्रत्येक समूह में एक बड़ा राज्य और दूसरे उसके पास के राज्य हों। प्रत्येक समूह में एक स्थायी सलाहकार हो, जो उस समूह के समस्त शासकों को सब विषयों में परामर्श दे, और प्रत्येक समूह में एक जूडीशल अफसर रहे, जो उस समूह के राज्यों के लिए हाईकोर्ट का काम दे; न्याय-प्रबन्ध उसके अधीन रहे, उसके फैसलों की अन्तिम अपील उस राजा के यहाँ हो, जिसके राज्य से उस मामले का सम्बन्ध हो। इसके अतिरिक्त पुलिस के संगठन का भी विचार है, जिसका सदर-मुकाम शिमला हो।



# उनतीसवाँ अध्याय



## पश्चिमोत्तर भारत के देशी राज्य

### [ चित्राल और कलात ]

भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर भाग में देशी राज्यों की दो एजंसियाँ हैं—पश्चिमोत्तर सीमा एजन्सी और बलोचिस्तान एजन्सी। पहली एजन्सी में पाँच राज्य हैं, और दूसरी में तीन; यह पहले बताया जा चुका है।

### चित्राल

पश्चिमोत्तर सीमा एजन्सी के राज्यों में, यद्यपि दीर की जन-संख्या और आय अधिक है, क्षेत्रफल तथा महत्व की दृष्टि से चित्राल मुख्य है। चित्राल का क्षेत्रफल ४००० वर्गमील, जनसंख्या एक लाख से अधिक, और वार्षिक आय दो लाख रुपये से अधिक है। इसकी बहुत सी सीमा अफ़गानिस्तान और रूस से मिली हुई है; इसलिए इसका बड़ा महत्व है। पहाड़ी प्रदेश होने पर भी यहाँ की घाटियाँ बहुत उपजाऊ हैं।

चित्राल का वर्त्तमान शासक तैमुरलंग का वंशज कहा जाता है। इसकी स्थापना अठारहवीं शताब्दी में हुई। शासक का पद 'मेहतर' है। सन् १८७६ में अमानुलमुल्क ने कश्मीर का संरक्षण प्राप्त किया,

और ( भारत-सरकार की स्वीकृति से ) दोनों राज्यों में एक इकरारनामा हो गया, जिससे चित्राल की अफगानों के आक्रमण से रक्षा हुई। सन् १८८६ में गिलगिट एजन्सी स्थापित हुई। चित्राल ने इस समय से अपनी विदेशनीति और अपनी सीमा की रक्षा के विषय में भारत-सरकार की सलाह मानना स्वीकार किया।

सन् १९३६ में नसीरुल-मुल्क 'मेहतर' ( बादशाह ) गद्दी पर बैठे। राजधानी चित्राल है। मसतुज और शोबीर में गवर्नर (स्थानीय शासक) नियुक्त हैं। द्रोश और चित्राल में अस्पताल हैं, और चित्राल में एक स्कूल है। द्रोश, चित्राल और मसतुज में डाकखाने और तार घर हैं।

## कलात

बलोचिस्तान एजन्सी में कलात राज्य प्रमुख है। यह भारतवर्ष के उन तीन राज्यों में से है, जिनका क्षेत्रफल ५०,००० वर्गमील से अधिक है।* ( खराँ सहित ) इसका क्षेत्रफल ५४,७०० वर्गमील, जनसंख्या सवा तीन लाख और वार्षिक आय सवा पन्द्रह लाख रुपये है।

राजवंश सुन्नी मुसलमान है, और शासक का पद 'खान' है। कलात कई कबीलों ( उपजातियों ) का समूह है, उनके सरदार कलात के खान को प्रधान मानते हैं। इस राज्य का सूत्रपात पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग हुआ। अंगरेजों से सम्बन्ध स्थापित होने के समय यह राज्य काबुल की अधीनता में अर्द्ध-स्वाधीन था। सन् १८५४ में

* क्षेत्रफल की दृष्टि से भारतवर्ष में सबसे बड़ा राज्य कश्मीर, और उससे छोटा हैदराबाद है। तीसरा नम्बर कलात का ही है।

कलात की, ब्रिटिश सरकार से संधि हुई, जिससे कलात ने अंगरेजों की अधीनता स्वीकार कर ली। पीछे खान का सरदारों से झगड़ा हुआ, अंगरेजों ने उनका आपस में समझौता करा दिया; दोनों पक्ष ने यह स्वीकार किया कि आपस के झगड़े को, लड़कर तय करने से पूर्व, ब्रिटिश सरकार के फैसले के लिए उपस्थित किया जायगा। कलातमें सेना रखने और रेल और तार की व्यवस्था कराने का निश्चय किया गया। खान ने क्वेटा, नुश्की और नसीराबाद अंगरेजों को पट्टे पर दे दिया। बोलन दर्रे का शासन-प्रबन्ध कलात का पोलिटिकल एजन्ट करता है।

खान अहमदयार खाँ सन् १६३३ में गद्दी पर बैठे। उनकी अधीनता में राजप्रबन्ध वजीर-आजम (प्रधान मंत्री) द्वारा होता है, जिन्हें वजीरों (मंत्रियों) से सहायता मिलती है। मंत्रियों को माल, सार्वजनिक निर्माणकार्य, शिक्षा, स्वास्थ्य और चिकित्सा, तथा न्याय विभाग सुपुर्द हैं। इन पदाधिकारियों के अतिरिक्त, खान की एक स्टेट-कौंसिल है, इस में मुख्य-मुख्य सरदार होते हैं। सब महत्व के विषयों पर इस कौंसिल की सलाह ली जाती है। दीवानी और फौजदारी मामलों का फैसला 'जिर्गा' प्रथा के अनुसार होता है, जिसका आधार रिवाजी कानून है। अपील वजीर-आजम के यहाँ या स्टेट-कौंसिल में होते हैं, और दया के लिए प्रार्थनापत्र खान की सेवा में भेजा जाता है। राज्य चार मुख्य भागों में विभक्त है—सरवान (उच्च प्रदेश), झालावान (निचला प्रदेश), कच्छी और मकरान। प्रत्येक भाग एक वजीर या नायब वजीर के अधीन है। जहाँ जमीन सैनिक सेवा की

शर्त पर, बिना मालगुजारी, दी हुई है, वहाँ सरदार अपने-अपने कबीले के उचित प्रबन्ध के लिए खान के प्रति उत्तरदायी होते हैं। मालगुजारी देनेवाले क्षेत्र 'नियाबत' कहलाते हैं, इनमें प्रबन्ध के लिए जो अधिकारी रहते हैं, उन्हें मस्तौफी कहा जाता है।

मकरान में बहुत सा समुद्र-तट है, और राज्य पसनी और जीवानी के बन्दरगाहों पर अपना आयात-निर्यात-कर वसूल करता है। राजधानी कलात है, परन्तु साल में लगभग चार महीना खान धादर (कच्छी प्रान्त) में रहता है।

# तीसवाँ अध्याय

## काठियावाड़ और गुजरात के देशी राज्य

"आर्थिक दृष्टि को रहने भी दें, तो भी काठियावाड़ के राज्यों की भौगोलिक निकटता और सांस्कृतिक तथा भाषा सम्बन्धी एकता के कारण निश्चित रूप से यही वांछनीय मालूम पड़ता है कि शासन के लिहाज से उन सब का समूह बना दिया जाय।"

काठियावाड़ प्रदेश में छोटे-बड़े कुल मिला कर २८५ राज्य हैं। ये पश्चिम भारत राज्य एजन्सी में हैं। राज्यों की संख्या की दृष्टि से यह भारतवर्ष भर में सब से बड़ी एजन्सी है। यह संख्या कुल देशी राज्यों की आधी के लगभग है। इनके आकार तथा शासन में बहुत विभिन्नता है। कुछ बहुत बड़े हैं, तो अधिकांश राज्य अत्यन्त छोटे

हैं। एक ओर कच्छ का राज्य है, जिसका क्षेत्रफल ८२५० वर्ग-मील, और जनसंख्या सवा पाँच लाख है, दूसरी ओर विजानोनेस राज्य का क्षेत्रफल एक-तिहाई वर्गमील से भी कम है, जिसमें सन् १९२१ की मनुष्यगणना के अनुसार केवल २०६ व्यक्ति रहते थे। इसी प्रकार जहाँ भावनगर की वार्षिक आय सवा करोड़ रुपये है, विजानोनेस की केवल पांच सौ रुपये ही है। यही नहीं, कुछ रियासतें एक-एक वर्गमील क्षेत्रफल की होते हुए भी दो-दो तीन-तीन हिस्सेदारों में विभक्त हैं। अस्तु, इने-गिने राज्यों को छोड़कर शेष सब बहुत छोटे-छोटे ही हैं।

छोटे-छोटे राज्यों के संगठित करने का विचार काफी पुराना है। बटलर कमेटी ने इस का उल्लेख किया था और लार्ड लिनलिथगो ने भी ऐसा ही विचार सूचित किया था। महात्मा गाँधी ने भी इस सिद्धान्त को मान्य किया था, जबकि इन राज्यों के सम्बन्ध में, एक सज्जन ने उनको लिखा था—

काठियावाड़ की असली समस्या अलग-अलग राज्यों में उत्तरदायी शासन की स्थापना नहीं है। यह माँग तो वस्तुतः ऐसी है, जिसकी आर्थिक दृष्टि से कोई सम्भावना नहीं है; क्योंकि पांच या छः को अपवाद-रूप छोड़ कर, इन राज्यों में से कोई भी ऐसे नहीं है जो शुद्ध रूप में पृथक् और स्वशासित हो सकें। आर्थिक दृष्टि को रहने भी दें, तो भी उनकी भौगोलिक निकटता और सांस्कृतिक तथा भाषा सम्बन्धी एकता के कारण निश्चित रूप से यही वांछनीय मालूम पड़ता है कि शासन के लिहाज से उन सब का समूह बना दिया जाय। इन राज्यों का एक संघ

बना देने पर ही इनके प्रजाजन बम्बई प्रान्त या ब्रिटिश भारत के किसी भी अन्य प्रान्त के समकक्ष हो सकते हैं।..............काठियावाड़ के मामले में—इसी तरह भारत के कोई तीन-चौथाई राज्यों के सम्बन्ध में—सब राजनैतिक सुधारों का अन्तिम उद्देश्य ऐसे संघ का निर्माण ही होना चाहिए।

यदि ये राज्य आपस में मिल जायँ तो इनके जंगल, पानी, और सड़कों आदि की बहुत सी समस्याएँ आसानी से हल हो जायँ। वर्त्तमान अवस्था में बहुत से राज्यों में जल की कमी के कारण जनता अत्यन्त कष्ट में है। वह पारस्परिक सहयोग द्वारा सहज ही दूर हो सकता है। कुछ राजाओं ने पुलिस, आबकारी, चिकित्सा और न्यायालय के लिए सम्मिलित प्रबन्ध करने का विचार किया है। परन्तु जब तक इन राज्यों का सम्मिलित शासन न हो, उपर्युक्त प्रबन्ध का सम्मिलित रूप से होना व्यावहारिक नहीं है; कारण कई-कई राज्यों के एक विभाग का प्रबन्ध करनेवाला अधिकारी उनके पृथक्-पृथक् बहुत से राजाओं के प्रति उत्तरदायी नहीं हो सकता, वह तो किसी एक व्यवस्थापक संस्था के प्रति ही जिम्मेवर हो सकता है।

काठियावाड़ राजनैतिक कान्फ्रेंस सन् १६१६ ई० से काम कर रही है। इसके सभापतियों में स्व० विट्ठलभाई पटेल, स्व० अब्बास तैयब जी, म० गांधी, ए० वी० ठक्कर, और वल्लभभाई पटेल जैसे महानुभाव रहे हैं। इस कान्फ्रेंस के कार्यकर्त्ताओं को समय-समय पर राजाओं का कोपभाजन, दमन और लाठी-चार्ज का शिकार होना पड़ा है; तथापि यह संस्था गम्भीरता और धैर्यपूर्वक अपना जन-जागृति और

उत्तरदायी शासन-प्राप्ति सम्बन्धी कर्त्तव्य पालन कर रही है।

× × ×

गुजरात में ८२ राज्य हैं; क्षेत्रफल जनसंख्या और आय की दृष्टि से इनमें से बारह ही कुछ महत्त्व के हैं—बड़ोदा, बालसिनोर, बाँसड़ा, बरिया, केम्बे, छोटा उदयपुर, धरमपुर, जौहर, लूनावाड़ा, राजपीपला, सचिन और सन्त; इनमें बड़ोदा प्रमुख है। शेष सत्तर राज्य बहुत छोटे-छोटे हैं, यहाँ तक कि कितने ही राज्य ऐसे हैं, जिनमें से एक-एक का क्षेत्रफल एक वर्गमील और जनसंख्या सौ से भी कम है। इन राज्यों की स्थिति और समस्याएँ काठियावाड़ के राज्यों की ही तरह है।

---

# इकत्तीसवाँ अध्याय

---

## भावनगर

आज चारों ओर ग्राम-सुधार की ध्वनि सुनायी पड़ रही है। राजपूताने के राज्यों ने भी कहने के लिए इस ओर प्रयत्न किया है, किन्तु जहाँ तक लेखक को ज्ञात है किसी भी राज्य ने ग्रामीण ऋण की समस्या को हल नहीं किया। इसके विरुद्ध, ब्रिटिश प्रान्तों में इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कार्य हुआ है। किन्तु सबसे अधिक क्रान्तिकारी कर्ज सम्बन्धी प्रयत्न भावनगर राज्य ने किया है।

—शंकरसहाय सकसेना

यह राज्य काठियावाड़ प्रायद्वीप में खम्भात की खाड़ी पर है। इसका

क्षेत्रफल २९६१ वर्गमील, जनसंख्या ५ लाख से अधिक और वार्षिक आय लगभग दो करोड़ रुपये हैं। इस राज्य की प्रधानता इसके बन्दरगाहों के कारण है। इसकी राजधानी भावनगर नाम का ही नगर है। यहाँ के शासक गोहल राजपूत हैं। इस राज्य की स्थापना सन् १७२३ ई० में श्री० भवसिंह जी ने की थी।

यहाँ के शासकों ने समुद्री डाकुओं का दमन करने में अंगरेज सरकार की सहायता की। इसलिए उसकी इनसे सन् १८६० और १८६६ में संधि हुई। भारतवर्ष में भावनगर आदि काठियावाड़ के राज्य ही ऐसे राज्य हैं, जिनके अधीन समुद्र-तट है! इन राज्यों के बन्दरगाह बन्द करने या उन्हें सरकार को सौंप दिये जाने का काफी प्रयत्न हुआ। काठी राज्यों के आन्दोलन के फल-स्वरूप सन् १९१७ में समझौता हुआ, जिसकी निम्नलिखित बातें विशेष उल्लेखनीय हैं:—

१—भावनगर के बन्दरगाह की ज़कात (आयात-निर्यात कर) वसूली के सम्बन्ध में महाराजा, अब तक प्रचलित नियमों के स्थान पर, निम्न बातों पर सहमत होते हैं।

(क) महाराज उस दर से कम जकात वसूल न करेंगे जो सरकार अंगरेजी बन्दरगाहों में लेती है।

(ख) महाराज, भारत के अंगरेजी बन्दरगाहों के अतिरिक्त अन्य बन्दरगाहों से होनेवाले व्यापार पर उस दर से कम जकात वसूल नहीं करेंगे, जो सरकार समय-समय पर अपने बन्दरगाहों में जारी करेगी।

(ग) जकात-वसूली के जो नियम अंगरेजी बन्दरगाहों में प्रचलित है, वे ही यहाँ जारी किये जायँगे।

(घ) इस समझौते की किसी बात का, अब तक प्रचलित अफीम, मद्यादि और नमक सम्बन्धी धाराओं पर प्रभाव नहीं पड़ेगा।

२—(क) सरकार भावनगर को एक अंगरेजी बन्दरगाह की सारी लाभजनक सुविधाएँ, महाराज की इच्छानुसार देने को सहमत होती है।

(ख) भारतीय समुद्र-तटों के अंगरेजी बन्दगाहों से आने-जानेवाले माल पर महाराज चाहे जो ज़कात वसूल करें, सरकार उसमें हस्तक्षेप न करेगी।

इस प्रकार सरकार सब प्रकार की हानि से बच गयी और काठी राज्य उससे प्रतिस्पर्द्धा करने के अयोग्य हो गये। काठी राज्यों ने अपने बन्दरगाहों को उन्नत करने और समुद्री व्यापार बढ़ाने का यत्न किया तो सरकार ने उन्हें समझौते को रद्द करनेवाला ठहराया, और इसके लिए उसने दो कारण उपस्थित किये—वे भारतीय व्यापार को हानि पहुँचाते हैं, और वे इन बन्दरगाहों द्वारा शस्त्रास्त्र, कोकीन और विद्रोही साहित्य गुप्त रूप से आने देते हैं। निदान, काठी राज्यों को अपने बन्दरगाहों की यथेष्ट उन्नति करने में बहुत बाधाएँ रहीं। तथापि धीरे-धीरे उनकी उन्नति हुई है। भावनगर राज्य के बन्दरगाहों द्वारा अब प्रति वर्ष लगभग तीन करोड़ रुपये का माल देश में आता है। मुख्य बन्दरगाह भावनगर है, जो इस राज्य की राजधानी भी है।

श्री० महाराजा श्रीकृष्णकुमार सिंह जी सन् १९१९ ई० में गद्दी पर बैठे। उनकी नाबालिगी में राजप्रबन्ध एक कौंसिल के अधीन रहा। महाराजा साहब को शासन अधिकार सन् १९३१ ई० में मिले। आप दीवान की सहायता से शासन करते हैं। आप के पिता

महाराजा भवसिंह जी ने सन् १९१८ में एक 'प्रजा-प्रतिनिधि' नामक सलाहकार संस्था स्थापित की थी, जिसके सब सदस्य नामजद होते थे। इस संस्था को साल भर में केवल पाँच प्रश्न पूछने का अधिकार था। यह किसी प्रकार लगभग दस वर्ष का जीवन व्यतीत करके अपने आप समाप्त हो गयी। इस बीच में, राज्य में भावनगर प्रजा परिषद् सन् १९२३ में संगठित होकर उत्तरदायी शासन का जोरदार आन्दोलन करती रही। मई सन् १९३९ में नाममात्र के सुधारों की घोषणा हुई। जनता की माँग बनी रही। आखिर, जून १९४० में राज्य ने सुधार-योजना की रूप-रेखा प्रकाशित की, जिसमें बताया गया कि व्यवस्थापक सभा में बहुमत निर्वाचित सदस्यों का होगा; ५५ सदस्यों में ३३ निर्वाचित रहेंगे, और कुछ विभाग एक मंत्री को सौंपे जायँगे। इसके बाद सवा साल गुजर जाने पर अक्तूबर १९४१ में दूसरी सूचना प्रकाशित की गयी कि "राज्य में धारा सभा स्थापित की जाती है। इसमें कुल ३३ नामजद और ६ पदेन (अपने पद के कारण) सदस्य हैं। राज्य के दीवान साहब इसके अध्यक्ष होंगे। महायुद्ध से उत्पन्न वर्त्तमान परिस्थिति को दृष्टिगत कर के धारा सभा के सदस्य नामजद ही कर दिये गये हैं, परन्तु शासन विधान में चुनाव की व्यवस्था है। सभा की पहली बैठक प्रथम दिसम्बर १९४१ को होगी।"

उत्तरदायी शासन की माँग करने वाली जनता के लिए ये सुधार नितान्त अपर्याप्त थे। फिर, युद्ध के कारण चुनाव स्थगित करने और नामज़दगी से काम चलाने की बात और भी असंतोषजनक रही।

सरदार वल्लभ भाई पटेल, अध्यक्ष भावनगर राजपरिषद, ने प्रजा के मताधिकार का उपयोग न होने देने के विरोध में बड़ा जोरदार वक्तव्य प्रकाशित कराया। प्रायः राजाओं को शासन-सुधार स्थगित करने के लिए, यही बहाना रहता है कि इस समय हम युद्ध प्रयत्नों में फंसे हुए हैं अतः किसी सुधार-योजना को अमल में लाने के लिए यह अवसर अनुकूल नहीं है। परन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। जब कि खतरा सिर पर हो तो इस बात की और भी अधिक आवश्यकता होती है कि जनता को साथ लिया जाय, उसका पूर्ण सहयोग प्राप्त किया जाय।

फौजदारी के मामलों का फैसला करने के लिए मजिस्ट्रेटों की अदालतें, सेशन कोर्ट; और अपील सुननेवाली अदालतें हैं। इसी प्रकार दीवानी की प्रारम्भिक (आरिजिनल) अधिकार वाली तथा अपील सुननेवाली संस्थाएँ हैं।

म्युनिसिपैलटियों में केवल भावनगर शहर की म्युनिसिपैलटी का प्रबन्ध अधिकांश में जनता को सौंपा गया है। अन्य म्युनिसपैलटियाँ प्रायः सरकारी संस्थाएँ हैं, और राज्य के खर्च से चलती हैं।

शिक्षा प्रचार की ओर गत वर्षों में अच्छा ध्यान दिया गया है। राज्य में एक कालिज तथा चार हाई स्कूलों के अतिरिक्त कितनी ही सरकारी अथवा सरकार द्वारा सहायता-प्राप्त शिक्षा संस्थाएँ हैं। राज्य के जो विद्यार्थी राज्य से बाहर शिक्षा पाते हैं, उन्हें सहायता दी जाती है। लड़कियों की शिक्षा के लिए अलग स्कूल हैं। उन्हें सिलाई बेल-बूटे तथा आलेख्य की विशेष शिक्षा दी जाती है। हरिजन विद्यार्थियों

को शिक्षा-प्राप्ति की बहुत सी सुविधाएँ हैं।

इस राज्य के 'स्टेट बेंक' में दो करोड़ से ऊपर रुपया जमा है। भावनगर तथा अन्य देशी राज्यों की जनता के अतिरिक्त, ब्रिटिश भारत एवं भारतवर्ष से बाहर (जंजीबार, ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका, और स्ट्रेट सेटलमेंट) की भी जमा इसमें रहती है।

इस राज्य के दीवान सर प्रभाशंकर पट्टनी ने जनता की दशा सुधारने का बड़ा प्रयत्न किया, यह प्रयत्न विशेषतया उसे ऋण-मुक्त करने के सम्बन्ध में था। दीवान साहब ने मालूम किया कि राज्य भर के किसानों पर ८६ लाख रुपया ऋण है। पश्चात् उन्हों ने महाजनों को एकमुश्त तीस लाख रुपये राज्य से देकर किसानों को ऋण-मुक्त करा दिया और यह रुपया किसानों से किश्तों में वसूल कर लिया। स्मरण रहे कि किसान अपने ऋण पर पहले लाखों रुपये केवल सूद में ही दिया करते थे, अब उन्हें इससे छुट्टी मिल गयी। इसके अतिरिक्त, राज्य की ओर से कृषि-बैंकों और सहकारी साख-समितियों की भी यथेष्ट व्यवस्था की गयी। इससे उनकी आर्थिक दशा में बहुत सुधार हुआ और खेती अच्छी तरह होने लगी। राज्य ने यह भी व्यवस्था कर दी कि मालगुजारी वसूल करने की निर्धारित तारीख के सम्बन्ध में जो नियम है, उसका कठोरता से पालन न किया जाय; वरन् उसमें ऐसी ढील रहे, जिससे किसानों को सुविधा रहे।

राज्य की इस उदारता के साथ, यह बात चिन्तनीय है कि यहाँ किसानों पर कर-भार बहुत है। इस ओर यथेष्ट ध्यान दिया जाना चाहिए। पुनः यह भी विचारणीय है कि जिस राज्य ने जनता की

उन्नति के लिए ऐसा कार्य किया, और जिसे सर पट्टनी जैसे सुयोग्य दीवान रखने का सौभाग्य मिला, वह भी शासन-सुधारों में समुचित प्रगति का परिचय नहीं दे रहा है। आशा है शासन-सूत्रधार इस विषय में गंभीरतापूर्वक विचार करेंगे।

# बत्तीसवाँ अध्याय

## गोंडल

"इस राज्य की विशेषता यह है कि यह प्रायः कर-विहीन है; गत वर्षों में यहाँ जनता बहुत से करों से मुक्त कर दी गयी है।"

यह राज्य काठियावाड़ के मध्य में है। इसका क्षेत्रफल १०२४ वर्गमील, जनसंख्या दो लाख से कुछ अधिक, और वार्षिक आय पचास लाख रुपये है। इस राज्य की स्थापना सतरहवीं शताब्दी में हुई। यहाँ के शासक जदेजा राजपूत हैं। श्री० भगवतसिंह जी सन् १८६६ में गद्दी पर बैठे, जब कि ये चार वर्ष के थे। इन्हें शासनाधिकार १८८४ में मिले।

महाराजा साहब दीवान की सहायता से शासन करते हैं। राज्य में कोई व्यवस्थापक सभा या सलाहकार सभा होना नहीं पाया जाता।

दीवानी और फौजदारी की सात अदालतें हैं—एक हजूर अदालत, एक सर-न्यायाधीश अदालत, चार मुन्सिफों की अदालतें

और एक तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट की अदालत। इनमें से प्रथम दो में अपील सुनी जाती है। हजूर अदालत को नजरसानी ('रिव्यू') का भी अधिकार है। कानून प्रायः ब्रिटिश भारत के ढंग का वर्ता जाता है, उसमें आवश्यकतानुसार राज्य के विशेष कानून से पूर्ति की जाती है। अदालतों के प्रधान न्यायाधीश कानून के ग्रेजुएट होते हैं, और मुकदमों के फैसलों के लिए अवधि निर्धारित है।

राज्य में चार म्युनिसिपैलटियाँ हैं। म्युनिसिपल क्षेत्रों तथा मुख्य ग्रामों में नयी बस्तियाँ बसाने (नगर-निर्माण) का कार्य हो रहा है, जिससे सड़कें चौड़ी हों, और वातावरण अधिक स्वास्थ्य-प्रद हो।

ठाकुर साहब शिक्षा-प्रेमी और साहित्यिक हैं। आपने राज्य में शिक्षा-प्रचार की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया। यहाँ के गिरासिया कालिज में असमर्थ विद्यार्थियों के पढ़ने, रहने और खाने-पीने का प्रबन्ध निश्शुल्क है। राज्य में सर्वसाधारण के लिए केवल प्रारम्भिक ही नहीं, माध्यमिक शिक्षा भी निश्शुल्क है। कन्याओं के लिए यहाँ शिक्षा अनिवार्य है। यहाँ का कन्या हाई स्कूल काठियावाड़ में अपने ढंग की सर्व-प्रथम संस्था है। राज्य में अनाथालय, औषधालय, दाइयों के ट्रेनिंग आदि की अच्छी व्यवस्था है।

यह सब होते हुए भी राज्य में चुंगी, आय-कर आयात-निर्यात कर आदि नहीं लगता। राज्य की अधिकांश आय उस रुपये का व्याज है जो महाराज के पूर्वजों ने संचित किया था, और वर्त्तमान महाराज ने लाभदायक कार्यों में लगा रखा है। इस प्रकार आधुनिक

काल में भी, जब कि अन्य राज्य नित्य नये टेक्स लगा रहे हैं, गोंडल प्रायः कर-मुक्त राज्य है। पहले लगनेवाले अनेक कर उठा दिये गये हैं। यहाँ मालगुजारी भी वही है, जो पचास वर्ष पहले थी; बढ़ी नहीं। फल-स्वरूप किसान खुशहाल हैं, उनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी है।

राज्य में कर नाममात्र का होने के अतिरिक्त, अन्य विशेषताएँ आने-जाने की सुविधाएँ अर्थात् अच्छी सड़कों का निर्माण, और शिक्षा का अधिकाधिक प्रचार है। राज्य इन कार्यों को कराने की ओर इतना ध्यान देने में इसलिए समर्थ हो रहा है कि ठाकुर साहब का जीवन या रहन-सहन बहुत सादा है, वे अपने व्यक्तिगत वैभव या ऐश्वर्य के लिए बहुत कम खर्च करते हैं। सन् १९०९ में आपकी रजत जयन्ती और १९३४ में स्वर्ण जयन्ती मनायी गयी थी। स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर जनता ने अपनी प्रसन्नता और कृतज्ञता सूचित करते हुए आपको सोने से तोला था। आप के ये शब्द प्रत्येक राजा के लिए विचारणीय और मननीय हैं:—'जीवन चाहे छोटा हो या बड़ा, मेरे लिए तो वह कुछ महत्व नहीं रखता, जब तक कि मैं जनता के कुछ काम में न आऊँ।'

इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि यह राज्य अच्छी तरह शासित है, यहाँ सुराज्य है। परन्तु यही पर्याप्त नहीं है। आवश्यकता इस बात की है, शासन-कार्य राजा के व्यक्तित्व पर ही निर्भर न रहे, शासनपद्धति ऐसी हो जाय और जनता का उस में ऐसा भाग हो कि नये राजा या दीवान आदि के द्वारा वह सहसा बिगड़ न सके।

गोंडल राज्य के विषय में ऐसी दृढ़ व्यवस्था होने का हमारे सामने कोई प्रमाण नहीं है।

हम ने यह जानना चाहा था कि राज्य में शासन-कार्य कितने भागों में विभक्त है, कितने मंत्री हैं, वे कहाँ तक व्यवस्थापक सभा के प्रति उत्तरदायी हैं, व्यवस्थापक सभा का संगठन कैसा है; जनता को नागरिक अधिकार कहाँ तक प्राप्त हैं, तथा म्युनिसिपैलटियों और पंचायतों की क्या व्यवस्था है। खेद है कि इन बातों का हमें राज्य के अधिकारियों द्वारा स्पष्ट और ब्यौरेवार उत्तर नहीं मिला। इसके विपरीत, प्राप्त साहित्य से यही विदित होता है कि राज्य में उत्तरदायी शासनपद्धति तथा प्रतिनिधिमूलक संस्थाओं का चिन्तनीय अभाव है, और शासन की आलोचना करनेवाले पत्र-पत्रिकाओं का राज्य में आना रोक दिया जाता है; यह इस कर-हीन होने का अभिमान करने वाले राज्य को किसी प्रकार शोभा नहीं देता।



# तेतीसवाँ अध्याय



## नवानगर

नवानगर के जाम साहब जैसे राजाओं के मुँह से भारत की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में राजाओं की हार्दिक उत्सुकता की बातें दिलचस्प मालूम होती हैं। लेकिन सवाल यह है कि राजा लोग इसकी प्राप्ति के लिए अपना हिस्सा किस रूप में अदा करेंगे। वे जो स्वतंत्रता चाहते हैं, वह सिर्फ अपने ही लिए है अथवा अपनी प्रजा के लिए भी है?

—डा० कैलाशनाथ काटजू

यह राज्य काठियावाड़ में कच्छ की खाड़ी के दक्षिणी किनारे पर है। इस का क्षेत्रफल ३,८०० वर्गमील, जनसंख्या चार लाख से अधिक और वार्षिक आय ९७ लाख से ऊपर है।

यह उन थोड़े से राज्यों में से है, जिन्हें व्यापार अथवा मछलियों आदि के लिए समुद्र-तट प्राप्त है। इस राज्य का समुद्र-तट लगभग सौ मील है। इसके तीन बन्दरगाह हैं—जोदिया, बेदी और सलाया। यहाँ के शासक जडेजा राजपूत हैं। यह कहा जाता है कि इस राज्य की नींव जाम रावल ने सन् १५४० ई० में डाली। शासक का पद 'जाम' है। वह ब्रिटिश सरकार के अतिरिक्त महाराजा बड़ौदा तथा नवाब जूनागढ़ को खिराज देता है।

महाराजा सर रणजीतसिंह ने, सन् १९०७ ई० से १९३३ तक शासन किया। आप 'रनजी' के नाम से प्रसिद्ध थे। आपने क्रिकेट के खिलाड़ी के रूप में इंगलैंड आदि देशों में भी बहुत ख्याति प्राप्त की थी। आप के पश्चात् सन् १९३३ ई० में श्री० दिग्विजयसिंह जी गद्दी पर बैठे। यहाँ का शासन एकतंत्री है।

महाराजा साहब के निर्देशानुसार, शासन-कार्य तीन सेक्रेटरियों द्वारा संचालित होता है:—(१) माल सेक्रेटरी (२) राजनैतिक सेक्रेटरी और (३) जनरल सेक्रेटरी। प्रत्येक सेक्रेटरी को कुछ शासन-विभाग सौंपे हुए रहते हैं। उसे अपने विभाग के सम्बन्ध में दीवान की तरह स्वतंत्र अधिकार होते हैं; विशेष महत्व के मामलों में वह महाराज का आदेश ग्रहण करता है। कुछ विभाग स्वयं महाराज के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में रहते हैं, इनका प्रबन्ध महाराज के आदेशानुसार उनका व्यक्तिगत सहायक 'हजूर पर्सनल एसिस्टेंट' करता है। इस प्रकार यहाँ दीवान नहीं है, और प्रत्येक सेक्रेटरी सीधा महाराज के अधीन है। इस राज्य में कानूनों का निर्माण नहीं होता; महाराजा तथा उसके

सेक्रेटरी अपनी इच्छानुसार आज्ञाएँ, या सरक्यूलर (गश्ती पत्र) निकालते हैं, अथवा नियम प्रचलित कर देते हैं। यहाँ की जनता का शासन में कोई प्रतिनिधित्व या प्रभाव नहीं है।

राज्य का सर्वोच्च न्यायालय 'हजूर कोर्ट' है, इसे हाईकोर्ट के अधिकार है। दीवानी तथा फौजदारी के सब मामलों की अपील तथा निगरानी की दरखास्तों पर विचार (प्राण-दंड को छोड़कर) माल सेक्रेटरी के यहाँ होती है। प्राण-दंड के लिए महाराज की स्वीकृति आवश्यक है, और उसकी अपील उनके ही यहाँ होती है। सर-न्यायाधीश को फौजदारी मामलों में सेशन जज, जिला-मजिस्ट्रेट और अपील कोर्ट के अधिकार हैं। और वह 'न्यायाधीश' और मुन्सिफों के दीवानी फैसलों की अपील सुनता है। राजनैतिक सेक्रेटरी को दीवानी मामलों के सम्बन्ध में निर्धारित अधिकार होते हैं। माल सेक्रेटरी और राजनैतिक सेक्रेटरी के न्याय सम्बन्धी अधिकारों से यह स्पष्ट है कि प्रबन्ध-विभाग से न्याय-कार्य पृथक् नहीं है, और इसलिए अनेक दशाओं में न्याय न होने की सम्भावना रहती है।

राज्य की म्युनिसपैलटियों में जामनगर की म्युनिसपैलटी प्रधान है। महालों के मुख्य नगरों में भी म्युनिसपैलटियाँ हैं। इनकी देखभाल मामलतदार करते हैं, जिन्हें इस कार्य में स्थानीय कमेटियों और स्वास्थ्य सम्बन्धी अफसरों से सहायता मिलती है। ये सफाई और रोशनी का प्रबन्ध करती हैं। इन्हें अपने काम के लिए रुपया सरकार से मिलता है। इस प्रकार ये संस्थाएँ सरकारी ही हैं।

उच्च शिक्षा के लिए राज्य में एक भी कालिज नहीं है। केवल

तीन हाई स्कूल तथा कुछ अन्य संस्थाएँ हैं। इस राज्य की जनता की नागरिक स्थिति बहुत अवनत दशा में है। अ० भा० देशी राज्य लोक परिषद द्वारा सन् १९२८ ई० में प्रकाशित पुस्तक* में जनता की तत्कालीन शिकायतों का ब्यौरेवार परिचय दिया गया है। उससे यह भी ज्ञात होता है कि सन् १९१९ में महाराजा अलवर के पधारने के अवसर पर महाराजा जाम साहब ने एक सलाहकार सभा ('एडविजरी कौंसिल') की स्थापना की थी। इसके बाद (सन् १९२८ तक) न महाराजा साहब ने ही सभा की मीटिंग करायी और न सभा ने स्वयं ही मीटिंग की। न उसके विचार या परामर्श के लिए कभी कोई विषय रखा गया, न कभी कोई कार्यक्रम तैयार हुआ या सदस्यों के पास भेजा गया। तथापि जाम साहब ने वायसराय तथा बटलर कमेटीके सामने ऐसी बात रखी, जिससे यह समझा जाय कि सभा बराबर काम करती है।

इस राज्य के कितने ही व्यक्ति बम्बई में बड़े पैमाने पर व्यापार कर रहे हैं। बम्बई प्रान्त के कितने ही सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ इसी राज्य के निवासी रहे हैं। अनुभव तथा अन्य योग्यता में भी यहाँ के आदमी ब्रिटिश भारत के निवासियों की तुलना में अच्छे ठहरते हैं। ऐसी दशा में राज्य की उपर्युक्त स्थिति विशेष चिन्तनीय है।

* Indian Princes as their People see them.



# चौतीसवाँ अध्याय



## राजकोट

राजकोट काठियावाड़ का केन्द्र है। यदि यहाँ उत्तरदायी शासन दे दिया गया तो कठियावाड़ की अन्य रियासतें भी स्वयं राजकोट की पंक्ति में आजावेंगी। —म० गाँधी

इस राज्य का क्षेत्रफल २८३ वर्गमील, जन-संख्या पौन लाख, और वर्षिक आय १४ लाख रुपये हैं। राजवंश जदेजा राजपूत है; और नवानगर की एक शाखा है। शासक का पद 'ठाकुर' है।

यहाँ के भूतपूर्व ठाकुर धर्मेन्द्रसिंह जी सन् १९३१ से १९४० तक गद्दी पर रहे। आपके शासन पर नरकेशरी स्व० मणिभाई कोठारी के, ता० १५–२–३४ के पत्र से अच्छा प्रकाश पड़ता है, जो उन्होंने यहाँ के तत्कालीन दीवान वीरवाला को लिखा था। उस पत्र से यह स्पष्ट है कि ठाकुर साहब शासन-कार्य की ओर ध्यान नहीं देते थे, दीवान साहब के हाथ में सब छोड़ा हुआ था, और दीवान वीरवाला आदि को प्रसन्न करने के लिए राज्य से बड़ी-बड़ी रकमें, वेतन के अतिरिक्त, इनाम के रूप में दी जाती थीं।

सन् १९४० से ठाकुर प्रद्युमनसिंह जी राज करने लगे। शासन-कार्य उनकी निगरानी में दीवान करता है। हजूर आफिस चार भागों में विभक्त है—राजनैतिक, माल सम्बन्धी, न्याय सम्बन्धी, और

साधारण। इसमें विविध विभागों से आने वाले शासन सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार होता है, और उन्हें राजकीय आदेश दिया जाता है।

पहले यहाँ सन् १६२३ ई० के विधान के अनुसार एक प्रजा प्रतिनिधि-सभा और एक व्यवस्थापक परिषद् संगठित की गयी थी। प्रतिनिधि-सभा के उम्मेदवारों के निर्वाचन के लिए २१ वर्ष या अधिक आयु वाला प्रत्येक व्यक्ति (पुरुष एवं स्त्री) मत दे सकता था, जो राजकोट का निवासी हो, या जिसकी राज्य में अचल सम्पत्ति हो, या जो राज्य में व्यापार धंधा करता हो। सब मतदाता छः श्रेणियों में से किसी न किसी में विभक्त किये जाते थेः—(१) व्यापारी, (२) कृषक, (३) मजदूर, (४) पुरोहित आदि (५) अन्य नागरिक; नौकर या बेकार आदि जो पूर्वोक्त चार श्रेणियों में से किसी में न हों, और (६) दस्तकार और पेशे वाले; अध्यापक, कर्लक, चपरासी आदि। इन छः श्रेणियों में से प्रत्येक श्रेणी के कम से कम तीन सौ मतदाताओं को एक प्रतिनिधि चुनने का अधिकार होता था। प्रतिनिधि बनने के लिए उम्मेदवार ऐसा कोई भी व्यक्ति हो सकता था जिसमें मतदाता होने की योग्यता हो और जो पढ़ा-लिखा भी हो। प्रतिनिधि-सभा का कार्य (१) निर्धारित विषयों के प्रश्न पूछना, (२) निर्धारित विषयों के सम्बन्ध में, राज्य के लिए आवश्यक कानूनों का मसविदा बनाना या बनवाना और (३) व्यापार, कृषि आदि की उन्नति के उपाय सुझाना था। इनमें से पहले और दूसरे कार्य के लिए प्रतिनिधि-सभा का प्रत्येक सदस्य भाग ले सकता था, परन्तु तीसरे कार्य में उसी श्रेणी के सदस्य भाग लेने के अधिकारी होते थे, जिसका उस विषय से सम्बन्ध होता था। सभा का नया निर्वाचन तीन साल के बाद होता था। कोरम २० सदस्यों का होता था।

व्यवस्थापक परिषद में १८ सदस्य होते थे, ये प्रतिनिधि सभा के

सदस्यों में से निर्वाचित किये जाते थे, और व्यापारी कृषक आदि श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करते थे। जब प्रतिनिधि-सभा को किसी कानून का मसविदा बनवाना होता तो वह व्यवस्थापक परिषद् में इस विषय की लिखित सूचना भेजती। परिषद् स्वयं अपनी इच्छा से भी किसी कानून का मसविदा बना सकती थी। परिषद का बनाया मसविदा सभा में पास होने पर ठाकुर साहब की सेवा में उपस्थित किया जाता। ठाकुर साहब चाहते तो उसे स्वीकार कर लेते; और वह कानून बन जाता।

शासन-सुधार का आन्दोलन होता रहा। अन्ततः मई सन् १६३६ में तत्कालीन ठाकुर साहब ने दस आदमियों की एक कमेटी शासन-सुधार सम्बन्धी प्रस्ताव करने के लिए नियुक्त की; इस कमेटी के सभापति राज्य के दीवान श्री० वीरवाला बनाये गये। इस कमेटी के संगठन के सम्बन्ध में ठाकुर साहब का सार्वजनिक नेताओं से काफी मतभेद तथा संघर्ष रहा। अस्तु, कमेटी की रिपोर्ट आने पर ठाकुर साहब ने व्यवस्थापक सभा का नया संगठन किया। नये सुधारों के अनुसार राजकोट में एक प्रजाकीय सभा (असेम्बली) होगी, जिसमें अध्यक्ष (दीवान) के अतिरिक्त निम्नलिखित ६० सदस्य होंगे:—

| | | |
|---|---|---|
| निर्वाचित | ... | ४० |
| नामजद | | |
| गैर-सरकारी १५, सरकारी ५ | ... | २० |
| योग | ... | ६० |

सदस्यों का चुनाव पृथक् निर्वाचन पद्धति से होगा, जो निन्दनीय है। सभा का कार्यकाल प्रथम बार तीन साल होगा, उसके बाद जितना

ठाकुर साहब निश्चय करें। सभा को सार्वजनिक हित के विषयों के कानून बनाने का अधिकार होगा, परन्तु वह ठाकुर साहब सम्बन्धी, राजनैतिक विभागों या धार्मिक विषयों सम्बन्धी कानून न बना सकेगी। सभा से स्वीकृत कानूनी मसविदों पर ठाकुर साहब का नियंत्रण होगा, वे उसके स्वीकृत किसी कानून को रद्द कर सकते हैं, तथा विशेष अवस्थाओं में नया कानून बना सकते हैं। सभा को अधिकार होगा कि वह विविध विभागों के अध्यक्षों को छोड़ कर, किसी भी राजकर्मचारी पर निन्दा का प्रस्ताव पास करे।

ठाकुर साहब तथा उनके परिवार सम्बन्धी खर्च को छोड़कर, बजट की अन्य मदों पर सभा को मत देने का अधिकार होगा, परन्तु ठाकुर साहब अपने विशेषाधिकार से सभा के मत की अवहेलना कर सकते हैं।

प्रयोग के रूप में शिक्षा, स्वास्थ्य और म्युनिसिपल विभाग सभा को सौंपे जायँगे, पर उन पर अन्तिम नियंत्रण ठाकुर साहब का रहेगा। दो मंत्री सभा के निर्वाचित सदस्यों में नियुक्त किये जायँगे, वे सभा के कार्यकाल तक अपने पद पर रहेंगे और उसके प्रति उत्तर-दायी होंगे। उनका अन्तिम उत्तरदायित्व ठाकुर साहब के प्रति रहेगा। उनके अधिकार वे ही होंगे, जो विविध विभागों के अध्यक्षों के हैं। किसी मंत्री पर अविश्वास का प्रस्ताव सभा के तीन-चौथाई सदस्यों के बहुमत से पास होने पर, वह अपने पद से हटाया जायगा।

दो सरकारी और तीन गैर-सरकारी सदस्यों की एक सलाहकार

कमेटी होगी, जो व्यापार-धंधा सम्बन्धी विषयों पर आवश्यकतानुसार सलाह देगी। जनता को जो अधिकार या शक्ति दी गयी हैं, वह ठाकुर साहब की अधीनता में है, वे चाहें तो उसे रद्द कर सकते हैं। इससे सुधारों की न्यूनता स्पष्ट है।

राज्य का सब से बड़ा न्यायालय हजूर कोर्ट है, परन्तु ठाकुर साहब के पास दया के लिए दरखास्तें दी जा सकती हैं। हजूर कोर्ट से नीचे जिला-कोर्ट है, तथा राजकोट खास में एवं प्रत्येक महाल के सदर मुकाम में एक-एक सवार्डिनेट (अधीन) न्यायालय है।

राज्य में राजकोट नगर की म्युनिसिपैलटी के अतिरिक्त तीन अन्य म्युनिसिपैलटियाँ हैं। शिक्षा का अच्छा प्रचार है, इस दृष्टि से काठियावाड़ में इसका विशेष स्थान है। यहाँ धर्मेन्द्रसिंह जी आर्ट और सायन्स कालिज, तथा राजकुमार कालिज के अतिरिक्त १ हाई स्कूल, छः मिडल स्कूल भी हैं। अधिकांश प्राइमरी शिक्षा तथा कुछ माध्यमिक शिक्षा निश्शुल्क है। जिन संस्थाओं में फीस ली जाती है, उनमें फीस का परिमाण कम है तथा छात्रवृत्ति आदि भी काफी दी जाती है। राज्य अपनी आय का १२ प्रतिशत से अधिक शिक्षा में व्यय करता है। उद्योग धन्धों की उन्नति तथा कृषकों की दशा सुधारने की ओर भी राज्य अच्छा ध्यान दे रहा है। वार्षिक रिपोर्ट में अनेक ज्ञातव्य बातें है। शिक्षा, स्वास्थ्य, न्याय, कानून सम्बन्धी विविध प्रकार के अंक दिये गये हैं। गाय, भैंस, घोड़े, ऊँट, हल तथा गाड़ियों की भी संख्या दी हुई है।

बजट हर साल नवम्बर मास में बनाया जाता है। प्रत्येक विभाग

के लिए निर्धारित रकम उसे सूचित कर दी जाती है; हजूर आफिस की पूर्व स्वीकृत बिना उससे अधिक खर्च नहीं किया जा सकता। मालगुजारी के प्रबन्ध के लिए यह राज्य चार जिलों (महाल) में बँटा हुआ है। प्रत्येक महाल का प्रबन्ध मामलतदार करता है, उसका सहायक वहीवतदार होता है।

राजकोट राज्य सन् १९३८-३९ में विशेष चर्चा का विषय हुआ। यहाँ का आन्दोलन सरदार पटेल का चलाया हुआ था। इसमें इस राज्य के अतिरिक्त ब्रिटिश भारत के भी कितने ही कार्यकर्त्ता गिरफ़ार हुए। पीछे सरदार पटेल से समझौता हो गया, और ठाकुर साहब ने एक उपसमिति द्वारा सिफारिश की गयी सुधार-योजना स्वीकार कर ली। इस आन्दोलन को कुचलने वाले अंगरेज दीवान सर पैट्रिक कैडल बरखास्त किये गये। यह रियासती जनता की बड़ी भारी विजय थी। परन्तु ठाकुर साहब ने सुधारों को कार्य-रूप में परिणत करने में उपेक्षा की, इसलिए कुछ ही समय बाद यहाँ फिर रणभेरी बज उठी।

म० गांधी ने राजकोट के दरबार के अतिरिक्त, रेजीडेन्ट पर भी सत्याग्रहियों के साथ भयंकर ज्यादती करने के आरोप लगाये थे। रेजीडेन्ट ने पुलिस तथा अपने ऊपर लगाये गये आरोपों को असत्य बताया। महात्मा जी इन आरोपों की जाँच करने के लिए फरवरी १९३९ में स्वयं राजकोट गये। आपने सत्याग्रह स्थगित करा के पुलिस के अत्याचारों की जाँच की। राजकोट के ठाकुर साहब ने २६ दिसम्बर की सुधार-समिति बैठाने की घोषणा की थी, उसकी दृष्टि से महात्मा जी ने उनके व्यवहार की जाँच की और ठाकुर साहब

को पत्र लिखकर सात माँगें पेश कीं।

३ मार्च को ठाकुर साहब का उत्तर मिला जिसमें गाँधी जी के समिति सम्बन्धी परामर्श को, २६ दिसम्बर की घोषणा के अनुकूल न समझते हुए, मानने से इनकार किया, और रियासत के शासन की सारी जिम्मेदारी अपनी मानते हुए किसी दूसरे के हस्तक्षेप की इजाजत देने में भी असमर्थता प्रकट की। महात्मा जी द्वारा उत्तर के लिए निर्धारित समय पहले ही पूरा हो चुका था। उस समय तक प्रतीक्षा करने के बाद उन्होंने आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया था। और, यह उत्तर तो आग में घी डालने के समान था। अस्तु, महात्मा जी के अनशन से देश भर में चिन्ता और व्याकुलता छा गयी। सरकार से हस्तक्षेप करने का अनुरोध किया गया। अन्ततः वायसराय ने संघ-न्यायालय के चीफ-जस्टिस के पास इस मामले को भेजने का सुझाव पेश किया, जिसे सब ने मान लिया। महात्मा जी ने अनशन समाप्त कर दिया।

३ अप्रेल को चीफ-जस्टिस ने अपना फैसला दिया, उसका सारांश यह था—कमेटी के सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार सिर्फ ठाकुर साहब को है। सभापति के लिए ठाकुर साहब दस सदस्यों में से ही किसी को चुन सकेंगे, न कि इनके अलावा किसी ग्यारहवें व्यक्ति को, जैसा कि वे पीछे से कहने लगे थे। इस फैसले के अनुसार राजकोट में जो सुधार-कमेटी बनेगी, उसके सात सदस्य तो सरदार पटेल के सिफारिशी नामों में से रखे जायँगे (बशर्ते कि वे नाम रियासत से बाहर के लोगों के न हों) और तीन सदस्य ठाकुर साहब खुद नियुक्त कर सकेंगे।

सुधार-समिति के निर्माण में साम्प्रदायिकता ने भयंकर बाधा उपस्थित की। मुसलमान, भय्यात और गिरासिये न प्रजापरिषद् का साथ देते थे, और न मार्ग से अलग ही होते थे। राजकोट के अधिकारी भी साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहित ही कर रहे थे। दरबार वीरवाला ने गाँधी जी के प्रत्येक समझौते की शर्त को ठुकरा दिया, अन्त में महात्मा जी ने सभी उसके हाथ में छोड़ दिया और चीफ़-जस्टिस के निर्णय का भी उपयोग नहीं किया।

जहाँ तक राजकोट का तात्कालिक प्रश्न था, महात्मा जी का प्रयत्न असफल कहा जा सकता है, परन्तु इस में सन्देह नहीं कि राजकोट ने सारे देश का ध्यान देशी राज्यों की ओर आकर्षित करने में विलक्षण सहायता की।

---

# पैंतीसवाँ अध्याय

## लिम्बडी

अधिकारियों ने जन-आन्दोलन को दमन करने के लिए प्रत्येक प्रकार की हिन्सा और अत्याचार का उपयोग किया और राज्य के लिए 'लॉलेस लिम्बडी' ( कानून-रहित लिम्बडी ) का नाम प्राप्त किया। आन्दोलन आरम्भ से ही नागरिक स्वतंत्रता के लिए था।

—दि स्टेट्स पीपल

लिम्बडी काठियावाड़ की एक साधारण रियासत है। इसका क्षेत्रफल ३४४ वर्गमील, जन-संख्या ४१ लाख और वार्षिक आय

नौ लाख रु० है। राजवंश झाला राजपूत है। शासक का पद ठाकुर है।

ठाकुर दौलतसिंह जी जसवन्तसिंह जी १९०८ में गद्दी पर बैठे थे, जब कि आप ४० वर्ष के थे। आप नरेन्द्र मंडल के सदस्य थे। सन् १९४१ में आपका देहान्त हो जाने पर युवराज दिग्विजयसिंह जी गद्दी पर बैठे, परन्तु तीन माह के भीतर उनका भी देहान्त हो गया। उनके तीन छोटे भाई और एक नाबालिग लड़का है। लड़का केवल एक वर्ष का है। यह ही राज्य का उत्तराधिकारी है।

विगत वर्षों में लिम्बडी में अकेले ठाकुर साहब का शासन न होकर उनके परिवार का शासन रहा है। ठाकुर दौलतसिंह जी वृद्ध थे, और राजकाज से प्रायः अवकाशप्राप्त थे। उन्होंने अपने पुत्रों को ही प्रधान अधिकारी बना रखा था। उनका ज्येष्ठ पुत्र दिग्विजयसिंह उनकी तरफ से अटार्नी ( मुख्त्यार ) था, दूसरा पुत्र हाईकोर्ट का जज था, और तीसरा ( फतेहसिंह ) राज्य का दीवान था। इन तीनों को राजकुमार की हैसियत से एक-एक महल, बहुत सी भूमि और नकद द्रव्य दिया गया। इसके अतिरिक्त मासिक भत्ता आदि भी खूब मिलता था। इस पर भी उनके लिए जज या दीवान आदि का भारी वेतन अलग नियत था। इस प्रकार ठाकुर साहब के शासन में उनके पुत्रों को द्रव्य एवं सत्ता दोनों अत्यधिक परिमाण में प्राप्त थे। ऐसा शासन कितना निरंकुश, खर्चीला और अनुत्तरदायी होगा, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

'सैयां भये कोतवाल, अब डर काहे का', यह कहावत लिम्बडी

में पूर्ण रूप से चरितार्थ हुई। दीवान फतेहसिंह जी का शासन जनता के लिए सब प्रकार से संकटमय रहा। लोगों पर करों का भार प्रति व्यक्ति २२॥) रु० तक हो गया; साथ ही, राज्य की आय का बड़ा भाग राजपरिवार के लिए खर्च किया गया। शासन-व्यय खूब अधिक रहा, फिर जनहितकारी कार्यों के लिए यथेष्ट द्रव्य बच ही कैसे सकता! कर-वृद्धि करने पर भी राज्य ऋण-ग्रस्त हो गया। अतन्तः उसने 'मोरेटोरियम' ( ऋण चुकाई को स्थगित करने ) के कानूनी अधिकार का आश्रय लिया। इससे साहूकार राज्य से अपना ऋण वसूल करने से रोके गये; हाँ, राज्य तो लोगों से अपना रुपया लेता ही रहा। इस प्रकार के राजप्रबन्ध से जनता में असंतोष होना स्वाभाविक था। उसे प्रकट न होने देने के लिए अधिकारियों ने दमन का आश्रय लिया।

लिम्बडी के इतिहास में प्रथम बार मई १६३० में एक एक्ट जारी करके सार्वजनिक सभाओं और जलूसों पर प्रतिबन्ध लगाया गया, और इस कानून के भंग करनेवालों को दण्ड देने के लिए दीवान को व्यापक और स्वेच्छाचारयुक्त अधिकार दे दिये गये। वह अपराधी को चाहे-जितने समय तक कैद या देश-निर्वासित कर सकता था। जब जनता ने सम्मिलित होकर इस कानून का विरोध किया तो राज्य को इसे अमल में न लाने और कुछ समय बाद हटा लेने का वायदा करना पड़ा, परन्तु उसने यह वायदा पूरा नहीं किया। एक रात को अचानक चार नागरिकों को कैद कर दिया गया और सवेरे उनके घरों की तलाशी ली गयी। पुलिस उनका बहुत सा सामान जुरमाने के रूप में उठा ले गयी। पीछे पता लगा कि यह सब कार्यवाही मई

१६३० के विशेष एक्ट के अनुसार की गयी। अधिकारियों ने तरह-तरह के उपायों का अवलम्बन करके जनता के संगठन और एकता को भङ्ग करने का भरसक प्रयत्न किया, और इसमें सफल न होने पर वे अधिकाधिक उग्र होते गये। इस बीच में लिम्बडी में प्रजामंडल की स्थापना हो गयी। जब तक प्रजामंडल शहर वालों में काम करता रहा, अधिकारी किसी प्रकार सहन करते गये, पर जब इसके कार्यकर्त्ता गाँवों में जाकर प्रचार करने लगे तो युवराज ( जो वास्तव में शासक ही था ) के क्रोध का ठिकाना न रहा। इस समय राज्य में ऐसी चिन्तनीय घटनाएँ हुईं, मानों कानून का राज्य ही उठ गया है। डाकुओं और लुटेरों के दल-के-दल गाँवों पर धावा करने लगे, लोगों के ( विशेषतया प्रजामंडल के कार्यकर्त्ताओं तथा उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों के ) घर लूटे गये, उन्हें बुरी तरह मारा पीटा गया, उन पर तलवारों और कुल्हाड़ियों से हमला किया गया, स्त्रियों पर भी हाथ डाला गया। ठाकुर साहब से शिकायत की जाने पर, उन्होंने कोई विशेष कार्यवाही न की।

१२ जनवरी और १६ फरवरी १६३६ के बीच, पाँच हफ़्तों में ४ बड़े-बड़े डाके पड़े, १५ बड़ी-बड़ी चोरी हुईं, छोटी चोरियों का अन्त ही नहीं था। आठ सौ से अधिक व्यक्ति १६ फरवरी को एक घंटे के अन्दर ज़ख्मी हो गये। प्रजामंडल की दो मोटरकार तोड़ दी गयीं। १६ फरवरी के बाद लगभग ६००० आदमी अपना घरबार छोड़कर राज्य से बाहर चले गये, उनके जाने के बाद ३७१ मकान और १२,२४८ बीघा जमीन जब्त की गयी, पचास हजार रुपये जुरमाने के तौर पर वसूल किये गये, पचास हजार रु० की फसल चुरायी या जब्त की गयी, कितनी

ही दुकानों के दरवाजे तोड़े गये, और व्यापारियों के १,४६,०००) को बकाया वसूल नहीं होने दी गयी। [ 'दि स्टेट्स पीपल'—लिम्बडी अंक ]

लिम्बडी की इन घटनाओं ने देश भर का ध्यान आकर्षित किया। परन्तु राजनैतिक विभाग या सर्वोच्चसत्ता ने इस ओर ध्यान नहीं दिया, यद्यपि ब्रिटिश रेजीडेन्ट को समय-समय पर परिस्थिति से परिचित कराया जाता रहा। लिम्बडी के अधिकारियों पर यदि कुछ प्रभाव पड़ा तो इस बात का कि यहाँ की रुई का दो वर्ष तक देशव्यापी बहिष्कार किया गया; केवल जापान में उसकी कुछ खरीद रही। बहुत संघर्ष के बाद इस राज्य से हिजरत करनेवाले वापिस आये, तथा उनकी शिकायतों का समाधान हुआ। इस समय नाबालगी शासन है।

# छत्तीसवाँ अध्याय

## बड़ौदा

*अगर बड़ौदा में जनता का राज्य हो जाय तो इससे मराठों की क्या हानि हो सकती है! वे अपना प्रभाव बनाये रखने के लिए पर्याप्त शक्तिवान हैं। यह बात नहीं है कि वे कथित बहुसंख्यक गुजरातियों से दब जायँगे। और, अगर बहुसंख्यक जनता को सरकारी नौकरियों में अपना हिस्सा मिलता है तो यह मराठों के वास्ते स्वाधीनता-संग्राम में भाग न लेने का कोई कारण नहीं हो सकता।* —म० गाँधी

इस राज्य का क्षेत्रफल आठ हजार वर्गमील, और जन-संख्या २५ लाख से अधिक है। इस राज्य के पाँच भाग हैं, उनके बीच में

ब्रिटिश भारत तथा अन्य देशी राज्यों के कुछ भाग आ गये हैं। बड़ौदा उन बहुत थोड़े से राज्यों में है, जहाँ औद्योगिक और व्यावहारिक उन्नति का यथेष्ट क्षेत्र हो। अतः यहाँ वार्षिक आय अपेक्षाकृत अधिक—लगभग तीन करोड़ रुपये हैं।

मुगल साम्राज्य के क्षय के समय, अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में मरहठों ने इस प्रदेश पर आक्रमण किया। पिलाजी राव ने गुजरात में गायकवाड़ राजवंश की स्थापना की, और बड़ौदा राजधानी बनायी। अंगरेजों का इस राज्य से सम्बन्ध १७७१ से आरम्भ हुआ; सहायक संधि सन् १८०५ ई० में हुई। पहले बताया जा चुका है सन् १८७५ ई० में श्री० मलहारराव जी को गद्दी से उतार कर श्री० सयाजीराव तृतीय गद्दी पर बैठाये गये, उस समय इनकी आयु तेरह वर्ष की थी। इन्हें शासनाधिकार सन् १८८१ ई० में मिले। इनके शासन-काल में राज्य ने सामाजिक, आर्थिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अच्छी उन्नति की। सन् १९३९ में इनका देहान्त होने पर, महाराजा प्रतापसिंह जी गद्दी पर बैठे।

सन् १९४० की घोषणा के अनुसार राज्य की प्रबन्धकारिणी सभा में दीवान के अतिरिक्त तीन अन्य सदस्य होंगे; जिनमें से एक धारा सभा (व्यवस्थापक सभा) के निर्वाचित सदस्यों में चुना हुआ होगा। गैर-सरकारी सदस्य अपने पद पर धारा सभा के जीवन-काल अर्थात् तीन साल तक रहेगा। शासन-कार्य भिन्न-भिन्न भागों में विभक्त है, और उन पर ब्रिटिश भारत के ढङ्ग पर विविध अधिकारी नियत हैं।

बड़ौदा राज्य में धारा सभा (लेजिस्लेटिव कौंसिल) की स्थापना सन् १९०८ ई० में की गयी थी। इस में २७ सदस्य थे, जो सब के

सब नामजद होते थे—दस सदस्य लोकल बोर्डों के निर्वाचित सदस्यों में से नामजद किये जाते थे, आठ सदस्य राजकीय परिवार और राजकर्मचारियों में से, और पाँच अपने पद के कारण नामजद होते थे; शेष चार सदस्य राज्य चाहे-जिन व्यक्तियों में नामजद कर सकता था। सब सदस्यों का नामजद किया जाना बहुत चिन्तनीय रहा। अन्ततः महाराजा प्रतापसिंह जी ने धारा सभा के सुधार पर विचार करने के लिए एक कमेटी नियुक्त की। पश्चात् सन् १९४० में नया विधान बनाया गया, उसके अनुसार धारा सभा में सभापति ( दीवान ) सहित ६० सदस्य होंगे :—

| | | |
|---|---|---|
| निर्वाचित | ... | ३७ |
| नामजद | ... | २३ |
| गैर-सरकारी १४ | | |
| सरकारी ९ | | |
| योग | | ६० |

निर्वाचक संघ संयुक्त होंगे, पृथक् निर्वाचन की घातक प्रथा को स्थान नहीं दिया गया है। सभापति दीवान होगा। उपसभापति ( डिप्टी प्रेसीडेन्ट ) तीन साल बाद धारा सभा द्वारा निर्वाचित हुआ करेगा। सभा के गैर-सरकारी सदस्यों में से दो व्यक्ति महाराजा साहब द्वारा पार्लिमेन्टरी सेक्रेटरी नियुक्त किये जाया करेंगे।

महाराजा साहब का राजपरिवार, सेना, रियासती ऋण, तथा अन्य राज्यों से की हुई संधियों का विषय व्यवस्थापक सभा के क्षेत्र से बाहर है। इसके अतिरिक्त यह भी व्यवस्था की गयी है कि धारा सभा में

उन अन्य विषयों पर भी विचार न होगा, जो समय-समय पर महाराजा साहब निश्चय करें। यह नियम बहुत व्यापक है, और इससे धारा सभा के अधिकारों पर भारी आघात होता है। बड़ौदा जैसे उन्नत राज्य में इसका होना बहुत खटकता है।

राज्य की न्याय सम्बन्धी सर्वोच्च संस्था हाईकोर्ट ('वरिष्ट न्यायालय') है। इसके फैसलों की अपील कभी-कभी महाराज साहब के पास की जाती है, जो 'हजूर न्याय-सभा' के परामर्श से फैसला करते हैं। हाईकोर्ट में तीन जज हैं। राज्य में जिलों की, तथा अधीन अदालतें हैं। न्याय-कार्य शासन से पृथक् है।

शासन-प्रबन्ध के लिए राज्य पांच 'प्रान्तों' में विभक्त है। ब्रिटिश भारत की दृष्टि से इन 'प्रान्तों' को 'जिला' कहना ठीक होगा। अस्तु, प्रत्येक 'प्रान्त' के अन्तर्गत कुछ महाल और पेट-महाल हैं। ग्रामों में पंचायतों का यथेष्ट सङ्गठन है।

शिक्षा और समाज-सुधार में यह राज्य ब्रिटिश भारत से भी आगे रहता आया है। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य और निश्शुल्क करने का श्रीगणेश सर्वप्रथम यहाँ सन् १८९३ ई० में परीक्षार्थ एक जिले में किया गया था। पीछे सन १९०६ ई० में इसे व्यापक किया गया। अन्त्यजों (दलितों) और जंगली ज़ातियों के लिए शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित करने और देहातों में साधारण एवं गश्ती या भ्रमणकारी (ट्रेवलिंग) पुस्तकालयों की व्यवस्था करने और सहकारी समितियों तथा कृषि-बैंकों की स्थापना करने आदि में इस राज्य का कार्य प्रशंनीय रहा है। यहाँ एक क़ालिज है, जो बम्बई विश्वविद्यालय से सम्बन्धित

है। बड़ौदा अपने पुस्तकालय एवं व्यायामशाला के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध है। इस राज्य में २३ प्रतिशत व्यक्ति साक्षर हैं। बालिग व्यक्तियों की निरक्षरता निवारण करने का भी प्रयत्न किया जा रहा है। समाज-सुधार के कई कानून—बाल-विवाह निषेध कानून, जातीय अत्याचार निवारण कानून आदि, बनाये गये हैं। खेती की उन्नति के लिए गाँवों में खूब प्रचार किया जाता है। किसान नवयुवकों को सरकारी फार्मों पर व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है और उन्हें शिक्षणकाल में छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं।

पूर्वोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि बड़ौदा एक उन्नत और प्रगतिशील राज्य है। परन्तु खेद है कि इस राज्य में भी प्रजा की आर्थिक अथवा नागरिक स्थिति असन्तोषप्रद ही है। सरदार वल्लभभाई पटेल के मतानुसार यहाँ के किसानों को ब्रिटिश भारत के किसानों की अपेक्षा अधिक टेक्स देना पड़ता है, और यदि यहाँ के गाँवों की वास्तविक दशा की जाँच करायी जाय तो निस्सन्देह पचीस सैकड़े लोग इस प्रकार के मिलेंगे, जो भूख की पीड़ा से तड़फड़ा रहे हैं।

अब जनता के नागरिक अधिकारों की बात लीजिए। बड़ौदा राज्य प्रजामंडल गत बीस वर्ष से कार्य कर रहा है। इसका उद्देश्य उत्तरदायी शासन प्राप्त करना है, परन्तु यह संस्था प्रायः अधिकारियों की दृष्टि में खटकती ही रही है। समय-समय पर इसके कार्यकर्त्ताओं पर भाषण, लेखन और सम्मेलन सम्बन्धी विविध प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। प्रजामंडल के पंदरहवें अधिवेशन (१९३८) के अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई पटेल का निम्नलिखित वक्तव्य विचारणीय है—

'बड़ौदा राज्य प्रजामंडल ने किसानों पर जबर्दस्ती से लादे गये कर का विरोध करना चाहा था, पर वहाँ के अधिकारियों ने इस प्रयत्न को सफल नहीं होने दिया। जनता ने जब रियासत के अधिकारियों के इस प्रकार के व्यवहार का विरोध करना चाहा तो अधिकारियों ने सभा करने की मनाही कर दी। प्रजामंडल के प्रधान को सरकारी नोटिस मिली कि वह उक्त सभा में भाषण न दें। मंडल के एक कार्यकर्ता को भिन्न-भिन्न उपायों से मंडल छोड़ देने के लिए विवश किया गया। यहाँ तक की रियासत के एक अफसर ने मंडल के एक कार्यकर्त्ता को पीटा भी। मंडल तथा उसके कार्यकर्त्ताओं ने रियासत के अधिकारियों के इन सभी अत्याचारों को सहन किया और आज उनका परिणाम यह हुआ है कि बड़ौदा रियासत में प्रजामंडल पूर्णतः निर्जीव कर दिया गया है।'

जनता की जागृति और आन्दोलन का दमन करने की यह बात किसी ऐसे-वैसे राज्य में नहीं, बहुत उन्नत माने जानेवाले बड़ौदा राज्य में है, तो फिर अन्य राज्यों के विषय में क्या कहा जाय!

# सैंतीसवाँ अध्याय

## राजपूताने के देशी राज्य

राजपूताने की रियासतों ने वहाँ के निवासियों की नागरिक स्वतंत्रता को दबाने की नीति अख्तयार कर रखी है। यह गलत नीति है; और राजा लोग खुद अपने ही हितों का ख्याल करें तो उनकी दृष्टि से भी यह हानिकर है, क्योंकि जब मनुष्य आजादी से वाकिफ हो जाता है, तो वह बहुत दिन दबाकर नहीं रखा जा सकता। सच बात तो यह है

कि स्वतंत्रता का आभास दमन का मुकाबला करने की अधिकाधिक शक्ति और कोशिश पैदा करता है। —भूलाभाई देसाई

राजपूताने में इस समय छोटे-बड़े तेईस राज्य हैं—उदयपुर, जोधपुर, जयपुर, बीकानेर, बूँदी, कोटा, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, डूंगरपुर, झालावाड़, करौली, बाँसवाड़ा, किशनगढ़, पालनपुर, परतापगढ़, शाहपुरा, सिरोही, टोंक, बांसवाड़ा, जैसलमेर,, कुशलगढ़ और लावा। पहले यहाँ केवल तीन ही राज्य थे—(१) मेवाड़, (२) मारवाड़, और (३) आमेर ( जयपुर )। समस्त राजपूताना इनके ही अधीन था। इस समय जो २३ राज्य हैं, वे या तो इन्हीं राज्यों के तत्कालीन राजाओं के वंशजों के स्थापित किये हुए हैं, या वे उनकी जागीरें थीं, जो पीछे स्वतंत्र हो गयीं। उदाहरण के लिए डूंगरपुर, बांसवाड़ा तथा प्रतापगढ़ राज्यों के संस्थापक, आधुनिक उदयपुर राज्य के सिसोदिया राजवंश के ही वंशज थे। बीकानेर की स्थापना जोध-पुर शासक के पुत्र राव बीका जी ने की थी, और किशनगढ़ की स्थापना जोधपुर शासक के पुत्र राजा किशनसिंह जी ने की थी।

राजपूताने के वर्त्तमान राज्यों में से दो ( भरतपुर और धौलपुर ) में राजवंश जाट हैं, दो ( टोंक और पालनपुर ) में मुसलमान हैं, और शेष १९ में राजपूत हैं। लम्बाई चौड़ाई की दृष्टि से सब से बड़ा राज्य मारवाड़ है, और जनसंख्या की दृष्टि से जयपुर। लावा दोनों दृष्टियों से सब से छोटा है। शिक्षा के विचार से राजपूताना बहुत पिछड़ा हुआ है। जिस झालावाड़ राज्य में सबसे अधिक शिक्षित व्यक्ति हैं, वहाँ भी उनकी औसत केवल आठ प्रति शत है। और, यहाँ बांसवाड़ा और

कुशलगढ़ जैसे भी राज्य हैं, जिन में फी सैकड़ा तीन से भी कम व्यक्ति शिक्षित हैं। जयपुर, जोधपुर और बीकानेर चाहें तो अलग-अलग अपनी यूनिवर्सिटी स्थापित कर सकते है, पर यहाँ तो सब राज्य मिलकर भी विश्वविद्यालय बनाने की नहीं सोचते, यद्यपि उन्हें प्रवासी राजस्थानियों की भी इस कार्य में यथेष्ट सहायता मिल सकती है।*

राजपूताने में जागीरी प्रथा बहुत है, इसके सम्बन्ध में अन्यत्र लिखा गया है। यहाँ स्थानीय परिस्थिति पर प्रकाश डालने के लिए कुछ ब्यौरेवार बातें दी जाती हैं।† राजपूत राजाओं को जब मुसलमानों से पराजित होकर वर्त्तमान पश्चिमोत्तर संयुक्तप्रान्त, पूर्वीय पंजाब और दिल्ली के आस-पास का उपजाऊ भाग छोड़कर राजस्थान की मरुभूमि में शरण लेने को बाध्य होना पड़ा तो उनके कई कुटुम्बी, दरबारी और सेनानी भी उनके साथ थे। इन लोगों ने राजाओं के राज्य स्थापित करने में सहायता दी। अतः राजाओं ने इन्हें जागीरें और विशेषाधिकार देकर अपना सामन्त बनाया। धीरे-धीरे जैसे राज्यों का विस्तार होता गया, वैसे ही पुराने सामन्तों की जागीरों और अधिकारों में वृद्धि तथा नये सामन्तों की सृष्टि होती

---

* राजपूताने के राज्यों में भाषा, रहन-सहन, संस्कृति, इतिहास आदि की दृष्टि से बहुत-कुछ एकता है। यदि राजा लोग संगठित होकर जनता की उन्नति में लगें तो शिक्षा, स्वास्थ्य, आजीविका, न्याय-प्राप्ति आदि की विविध सुविधाएँ सहज ही की जा सकती हैं।

† 'अर्जुन'—रियासत अंक, में प्रकाशित, श्री० जी. सी. वी० मुग्ध के लेख के आधार पर।

गयी। राजस्थान में कुछ ठिकाने पहले के भी हैं, पर बहुत कम।

प्रत्येक जागीरदार की प्रतिष्ठा उसके 'चाकरी के घोड़ों' के अनुसार मानी जाती है। 'चाकरी' मुगल बादशाहों के समय प्रचलित 'मनसब' का दूसरा नाम है। उस समय प्रत्येक सेनानायक का मनसब या फौजबल नियत था। जिस नायक को एक हजारी मनसब होता था, उसके लिए यह लाज़मी था कि आवश्यकता पड़ने पर बादशाह की फौज में एक हज़ार घुड़सवारों के साथ उपस्थित रहे। मनसब के अनुसार ही उसे जागीर मिल जाती थी। ऐसी ही पद्धति राजपूताने में जारी हुई। यहाँ किसी जागीरदार पर दो घोड़ों की चाकरी है, तो किसी पर २०-३० घोड़ों की। पहले राज्यों की तहसीलों और निजामतों में चाकरी के घोड़े रहते थे। पुलिस के महकमे कायम हो जाने से उनकी ज़रूरत न रही। फलतः ठिकानों से चाकरी-कर अथवा 'फौज बल' वसूल किया जाता है। एक घोड़े का खर्च उतना ही लिया जाता है जितना रियासती रिसाले के एक घुड़सवार पर व्यय होता है। जागीरदार से उसकी आमदनी का एक निश्चित भाग खिराज के तौर पर भी वसूल किया जाता है। इसका परिमाण भिन्न-भिन्न राज्यों में अलग-अलग है; जोधपुर और मेवाड़ में इसे 'रेख' कहते हैं, और यह आमदनी का आठ प्रतिशत लिया जाता है। इसके अतिरिक्त नये जागीरदारों को अधिकारारूढ़ होने पर निर्धारित 'हुक्मनामा' या नज़राना भी देना होता है।

जागीरदारों के अधिकार भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न हैं। जोधपुर राज्य में ठिकानों के दो भेद हैं—अख्तयारी और बेअख्तयारी।

बेअख्तयारी ठिकानों को न्याय और शासन सम्बन्धी कुछ भी अधिकार नहीं है। इनकी अदालतें और पुलिस आदि राज्य की ही होती है। अख्तयारी ठिकानों की अपनी पुलिस तथा अदालत होती हैं। अदालतें तीन श्रेणियों की रहती हैं। प्रथम श्रेणी की जागीरी अदालत ६ मास तक की सजा दिये जाने योग्य फौजदारी मामले सुन सकती है, ५०० रु० तक जुर्माना कर सकती है तथा एक हजार रु० तक की दीवानी डिगरी जारी कर सकती है। उत्तराधिकारी आदि के अन्य दीवानी मामलों में इन्हें सबजजी के अधिकार होते हैं। दूसरी और तीसरी श्रेणियों की अदालतों के अधिकार क्रमशः कम हैं।

जागीरदारों के इन अधिकारों के कारण, जनता पर बहुत कुशासन होता है, तथा उससे बहुत से गैर-कानूनी कर, लाग, तथा बेगार आदि ली जाती है। राजपूताने में शिक्षा का प्रचार कम होने, तथा उद्योग-धंधों आदि की उन्नति न होने का एक प्रधान कारण जागीरदारी प्रथा भी है। इस प्रथा के कारण राजाओं की जागीरी इलाकों से आमदनी कम होती है, और जागीरदार स्वयं अपने क्षेत्र में कोई उन्नति का कार्य करना नहीं चाहते। यही नहीं, वे नागरिकों के साधारण अधिकारों का अपहरण करते हैं, और उन्हें तरह-तरह के कष्ट देते हैं। राजा लोग कुछ तो वैसे ही सुधारक मनोवृत्ति के नहीं हैं, और प्राय: जागीरदारों का पक्ष लेते हैं; फिर, उनमें इतना साहस नहीं है कि वे जागीरदारों की शक्ति का विरोध करके इन क्षेत्रों में कुछ उन्नतिमूलक कार्य करें। परिस्थिति यहाँ तक चिन्तनीय है कि गुलामी की प्रथा, कानून द्वारा बन्द की जाने पर भी व्यवहार में प्रचलित है।

१८८६

जागीरी इलाकों में कई जातियों की लड़कियाँ दहेज में द्रव्य की भांति दे दी जाती हैं, और उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जाती !

समय-समय पर राजपूताने के भिन्न-भिन्न भागों में जन-जागृति के लिए अनेक महानुभावों ने बहुत कष्ट उठाया है। उसका उल्लेख आगे-यथा स्थान किया जायगा। यहाँ की पुरानी संस्थाओं में विशेष उल्लेखनीय राजपूताना-मध्यभारत ( देशी राज्य ) सभा और राजस्थान सेवा-संघ है। राजपूताना-मध्यभारत सभा की स्थापना मई सन् १९१८ में स्व० गणेशशंकर जी विद्यार्थी, स्व० मणिलाल जी कोठारी, स्व० जमनालाल जी बजाज, स्व० ठाकुर केसरीसिंह जी बारहठ, और श्री० चान्दकरण जी शारदा, आदि के सद्प्रयत्न से हुई। इसका प्रथम अधिवेशन महामहोपाध्याय पं० गिरधर शर्मा जी नवरत्न की अध्यक्षता में, देहली में हुआ। इसने स्व० अर्जुनलाल जी सेठी और श्री० विजयसिंह जी पथिक के सहयोग से घोर आन्दोलन करके, और कोटा, बूँदी, झालावाड़, भरतपुर (तथा देवास और धार) आदि के तत्कालीन शासकों से मिलकर गुलामी और बेगार प्रथा बन्द करवाने का अच्छा प्रयत्न किया। इसके अतिरिक्त अलवर, सिरोही, बिजोलिया आदि में होनेवाले गोलीकांड से जो सैकड़ों नर नारी हताहत हुए, उनकी जाँच करने के लिए सभा के तत्कालीन संयुक्त मंत्री श्री० कन्हैयालाल जी कलयंत्री ने वीरोचित साहस किया। इस सभा के अध्यक्ष स्व० जमुनालाल जी बजाज, स्व० मणिलाल जी कोठारी, स्व० गणेशशंकरजी विद्यार्थी, स्व० राव गोपालसिंह जी ( खरवा ), सर्वश्री स्वामी सत्यदेव जी, गणेशनारायण जी सोमाणी, गोविन्दलाल जी पीती,

कलयंत्री जी तथा शारदा जी आदि सज्जन रहे हैं। इस समय सभा का मुख्य कार्य जागीरदारों द्वारा सतायी हुई विशेषतया कृषक जनता का उद्धार है। सभा ने इसके लिए एक बहुत उपयोगी प्रश्नावली छपाकर वितरण की है; वह आवश्यक जानकारी संग्रह कर रही है। सभा इस बात की भी कोशिश में है कि राजपूताना और मध्यभारत में एक विश्वविद्यालय स्थापित हो, जिसमें हिन्दी माध्यम, सैनिक ट्रेनिंग और व्यापार और उद्योग-धंधों की शिक्षा की विशेषता हो।

राजपूताने की दूसरी पुरानी संस्था है राजस्थान सेवा-संघ। इसकी स्थापना सन् १९१९ में वर्धा में हुई। इसके अध्यक्ष श्री० विजयसिंह जी 'पथिक' और मंत्री रामनारायण जी चौधरी थे। यह सेवा-संघ अगले वर्ष अजमेर आगया और इसने आठ वर्ष डट कर कार्य किया। इसके नागरिक आन्दोलन ने सर्वसाधारण जनता में स्वाभिमान का भाव बढ़ाया और उनमें यह साहस पैदा किया कि वे प्राचीन कुप्रथाओं और दुर्व्यसनों को छोड़ दें। उदाहरणवत् सहस्रों आदमियों ने शराब पीना बन्द कर दिया, ओसर-मौसर तथा अन्य सामाजिक अपव्यय का कार्य नहीं किया, अधिकारियों द्वारा हजार सताये जाने पर भी बेगार नहीं दी, रसद नहीं पहुँचायी। राजपूताने जैसे पिछड़े हुए प्रदेश में, और अब से बीस वर्ष पहले, ऐसी बातें होना अपना निराला महत्त्व रखती हैं। एक समय था, दूर-दूर तक इस संस्था की बड़ी धाक थी; कई बड़े-बड़े शासक इसका लोहा मानते थे। पीछे इस की शक्ति बिखर गयी, इससे राजपूताने की भारी क्षति हुई। तथापि इस संस्था के प्रायः सभी कार्यकर्त्ता किसी-न-किसी रूप में

राजपूताने की सेवा में लगे हुए हैं।

सन् १९३५ ई० से अन्यान्य देशी राज्यों में राजपूताना में भी जागृति बढ़ी है। पहले सब कार्यों का केन्द्र प्रायः अजमेर या ब्यावर ही रहता था।* अब प्रायः प्रत्येक राज्य में प्रजामंडल है, जिसका उद्देश्य उस राज्य में महाराज की छत्रछाया में उत्तरदायी शासनपद्धति स्थापित करना है। राजपूताना कार्यकर्त्ता सम्मेलन तथा राजपूताना देशी राज्य लोकपरिषद और राजपूताना-मध्यभारत (देशी राज्य) सभा आदि संस्थाओं ने प्रान्त भर में संगठित कार्य करने का प्रयत्न किया है।

गत वर्षों में जयपुर, जोधपुर, भरतपुर, उदयपुर, अलवर आदि में जनता ने आन्दोलन करके कुछ प्राप्त कर लिया है; यद्यपि दमन द्वारा जागृति को रोकने के लिए भी कुछ कम प्रयत्न नहीं किया गया, जुर्माना, जेल, लाठी-चार्ज ही नहीं, कहीं-कहीं तो गोलीकांड भी हुआ। डूंगरपुर, और झालावाड़ में सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं को रचनात्मक कार्य में शासकों की सद्भावना और सहयोग प्राप्त हुआ है। प्रत्येक राज्य में अलग-अलग तो अधिक कार्य होना ही चाहिए, इसके अतिरिक्त, इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि राजपूताना भर के सब राज्यों के विविध संगठनों को एक सूत्र में बांधा जाय, और एक ध्येय तथा समान नीति को ध्यान में रखकर कार्य किया जाय।

---

* यद्यपि ये स्थान भी, चीफ-कमिश्नर के प्रान्त में होने के कारण, नागरिक स्वतंत्रता की दृष्टि से, ब्रिटिश भारत के अन्य (गवर्नरों के) प्रान्तों से तो पीछे हो हैं, तथापि इनमें उतनी निरंकुशता नहीं होती, जितनी राजपूताना के राज्यों में होती है।

# अड़तीसवाँ अध्याय

## बीकानेर

इस राज्य में नागरिक स्वतंत्रता का दमन इतना पूर्ण है कि आदमी कानाफूसी करके कहते हैं कि हम जेलखाने में रह रहे हैं। केवल राज्य से बाहर आने के समय ही वे अपने दबे हुए विचारों को प्रकट करते हैं, उनमें से कुछ वीर आत्माएँ बम्बई, देहली या कलकत्ते के सामयिक प्रकाशनों में अपना बोझा हल्का करती हैं। —सारंगधर दास

इस राज्य का क्षेत्रफल २३,३१७ वर्गमील है। विस्तार की दृष्टि से इसका भारतवर्ष के सब राज्यों में सातवाँ और राजपूताने में दूसरा नम्बर है। जनसंख्या ( १९४१ की गणना के अनुसार ) १२,९२,९३८ और वार्षिक आय सवा करोड़ रु० से अधिक है।

इस राज्य की स्थापना जोधपुर नरेश के पुत्र बीकाराव जी ने सन् १४६५ ई० में की थी। इसी से इसका नाम बीकानेर पड़ा। ब्रिटिश सरकार से इसकी संधि सन् १८१८ ई० में हुई। सन् १८५७ में यहाँ के महाराजा ने अंग्रेजों का पक्ष लिया, इससे पंजाब का कुछ इलाका इनके राज्य में मिला दिया गया।

महाराजा श्री गंगासिंह जी सन् १८८७ ई० में गद्दी पर बैठे। उस समय ये नाबालिग थे। अतः सन् १८९८ तक राजप्रबन्ध पोलिटिकल एजन्ट की अध्यक्षता में रिजेन्सी द्वारा हुआ। पिछले योरपीय महायुद्ध में महाराज ने ब्रिटिश सरकार की ओर से एशिया, योरप और

अफ्रीका के रणक्षेत्रों में यथेष्ट भाग लिया। भारत के देशी राज्यों के प्रतिनिधि होकर आप १६१७ में साम्राज्य-युद्ध-सभा में, तथा १६१८-१६ में संधि-सभा में सम्मिलित हुए। सन् १६२१ में आप नरेन्द्रमंडल के प्रथम चान्सलर नियत हुए। इस प्रकार बीकानेर नरेश भारतीय ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के व्यक्ति हैं। इनके राज्य में शासन कैसा होता है ?

महाराज के मंत्री निम्नलिखित हैं :—(१) प्रधान मन्त्री (२) रेवन्यू (माल) मन्त्री (३) होम (गृह) मंत्री (४) आर्मी (सेना) मंत्री (५) पी॰ डब्ल्यू॰ (सार्वजनिक निर्माण) मन्त्री (६) कालोनाइजेशन (उपनिवेश) मन्त्री। अन्तिम मन्त्री का सदर मुकाम गंगानगर है। अन्य मन्त्री बीकानेर में रहते हैं, ये बहुत कम शिक्षित हैं, और प्रायः सब राजपूत, और महाराजा के रिश्तेदारों या सरदारों में से हैं। मन्त्रियों को महाराजा अपनी इच्छानुसार नियुक्त तथा बरखास्त करते हैं। ये व्यवस्थापक सभा के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं, उसका इन पर कोई नियंत्रण नहीं है। प्रत्येक मन्त्री को अपने-अपने विभाग में किसी कर्मचारी को रखने, निकालने, उस पर जुरमाना करने या उसे मुअत्तल करने ( दण्ड स्वरूप कुछ समय के लिए काम से हटाने ) का अधिकार है। परन्तु वास्तव में सारे अधिकार प्रधान मंत्री की सलाह पर निर्भर हैं, जो प्रायः स्वयं महाराज का कुटुम्बी, और कौंसिल में अत्यन्त प्रभावशाली होता है। *

---

* बीकानेर के गैर-राजपूतों को प्रायः इस पद पर नियुक्त होने का अवसर नहीं दिया जाता। क्या उनमें कभी यथेष्ट योग्यता या अनुभव नहीं होता ?

यहाँ 'व्यवस्थापक सभा ( असेम्बली ) की स्थापना सन् १९१३ ई० में हुई थी। इस प्रकार यह काफी पुरानी है परन्तु इसका सङ्गठन अभी तक पुराने ढङ्ग का ही है:—

| | | |
|---|---|---|
| निर्वाचित | | २० |
| म्युनिसपैलटियाँ | १२ | |
| सरदार | ३ | |
| जिला-बोर्ड | ३ | |
| जमीदार-बोर्ड | २ | |
| नामजद | | २५ |
| सरकारी | १३ | |
| सरदार | ३ | |
| राजवी | २ | |
| बीकानेर म्युनिसपैलटी | १ | |
| जमीदार | २ | |
| अन्य | ४ | |
| योग | | ४५ |

यह तो स्पष्ट ही है कि नामजद सदस्यों की अधिकता है, और निर्वाचन प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष है। अब तनिक इनका ब्यौरा देखिए। निर्वाचित सदस्यों में बीकानेर म्युनिसपैलटी दो सदस्य भेजती है। नौ म्युनिसपैलटियाँ ११, और दो म्युनिसपैलटियाँ मिल कर एक सदस्य देती हैं। म्युनिसपैलटियों के अध्यक्ष प्रायः तहसीलदार या नाजिम होते हैं। ये चाहे जिसे मेम्बर बना कर भेज देते हैं। तीन सदस्य ताजीमी सरदारों के चुने हुए होते हैं, यद्यपि ताजीमी सरदारों की कुल संख्या राज्य में केवल १५० के लगभग है।

गंगानगर का डिस्ट्रिक्ट बोर्ड व्यवस्थापक सभा में तीन मेम्बर भेजता है। तीन निजामतों का एक मेम्बर, और एक निजामत का एक मेम्बर होता है; ये दो मेम्बर जमींदार-बोर्डों के होते हैं; इन बोर्डों में अवकाश-प्राप्त फौजी अफसरों का प्रभुत्व होता है, जिसे वे चाहते हैं, उसे ही मेम्बर बनाकर भेज देते हैं।

यह तो निर्वाचित कहे जाने वाले सदस्यों की बात हुई। नामजद के विषय में कहना ही क्या! सरकारी तो सरकारी ही हैं। गैर-सरकारी में तीन ताजीमी सरदार होते हैं। पहले कहा जा चुका है कि राज्य में कुल ताजीमी सरदार लगभग १५० हैं, और तीन उनके चुने हुए सदस्य होते हैं, फिर भी उनमें से तीन और सदस्य नामजद किये जाते हैं, इसके अतिरिक्त उनमें से दो राजवी के नाते, नामजद होते हैं। मन्त्रियों में ५ ताजीमी सरदार हैं, और अफसरों में तीन अलग। इस प्रकार १५० ताजीमी सरदारों के कुल मिला कर १६ सदस्य हो जाते हैं। नामजद सदस्यों में जो 'अन्य' चार सदस्य बताये गये हैं, ये प्राय: पूंजीपति सेठ-साहूकार आदि होते हैं। निदान, व्यवस्थापक सभा में ताजीमी सरदारों, सेठ-साहूकारों और सरकारी अफसरों का ही बोलबाला रहता है। स्त्रियों को कोई अधिकार नहीं, न किसानों या अछूतों का ही मेम्बर बनाने में कुछ हाथ होता है।

व्यवस्थापक सभा के अधिवेशन में सभापति प्रधान मन्त्री होता है। अधिवेशन साल में दो-तीन दिन होता है, वह भी प्रति दिन तीन-चार घन्टे। तीसरे दिन तो महाराज का भाषण ही होता है। इस सभा का शासन में उल्लेखनीय प्रभाव नहीं। इसके अधिकतर मेम्बर ऐसे ही

आदमी बनते हैं जो अधिकारियों की हाँ-में-हाँ मिलाने वाले होते हैं। कदाचित इनकमटेक्स कानून जैसे किसी कानून के पास होने में शंका होती है तो उच्च अधिकारी साम दाम दंड भेद किसी-न-किसी प्रकार मेम्बरों को उसके लिए तैयार कर लेते हैं।* निदान, इस सभा को 'व्यवस्थापक सभा' कहना अशुद्ध है। इसके अनेक प्रस्ताव तो शोक, बधाई, या राजभक्ति के ही होते हैं। इसमें प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर नहीं मिलता, और इसकी कार्यवाही भी महीनों बाद छपती है।

व्यवस्थापक सभा का, आय-व्यय-अनुमान पत्र (बजट) पर कुछ नियंत्रण नहीं है। बजट प्रति वर्ष बनता ज़रूर है, पर यह आवश्यक नहीं कि वह समय पर ही बने।† उस पर बहस हो सकती है, परन्तु प्रायः मेम्बरों को उसकी आलोचना करने का साहस नहीं होता। बजट पर मत तो लिये ही नहीं जाते; दो-तीन घंटे में उसकी सब कार्यवाही प्रायः सर्वसम्मति से ही समाप्त हो जाती है। और, यदि कोई मेम्बर उसके विषय में कोई सुझाव उपस्थित भी करे तो उसके सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय का अधिकार तो प्रधान मंत्री अथवा महाराजा साहब को ही होता है।

करों में समानता और न्याय का आधार नहीं होता। राजपूत

* राजपूताने में सम्भवतः यही एकमात्र राज्य है, जिसने जनता पर आय-कर लगाया। यह कानून सन् १९४१ में बना। इसके अनुसार कोई व्यक्ति एक वर्ष में बीकानेर निवासी समझा जायगा, जो उस वर्ष कुल मिलाकर कम से कम १२० दिन बीकानेर राज्य में रहा हो।

† सन १९३७-३८ का बजट मई १९३८ में बना था।

प्रायः करमुक्त हैं, महाराजा को लाखों रुपये की आमदनी व्यक्तिगत होती है, यह बजट में दिखायी ही नहीं जाती। जनता को बजट ( एवं शासन-रिपोर्ट ) का दर्शन बहुत प्रयत्न करने पर भी नहीं हो पाता। महाराजा साहब कुल आय का दस प्रतिशत अपने लिए लेने की बात कहते हैं। परन्तु वे कितना ही रुपया खर्च कर डालें, उन पर किसी का नियंत्रण नहीं। श्री० सारंगधरदास जी ने 'बीकानेर' नामक अपनी अंगरेजी पुस्तक में दिखाया है कि सन् १९३५-३६ में जब कि राज्य की आय १२६ लाख रुपये थी, महलों का ( राजा साहब का ) खर्च १५ लाख ३६ हजार रुपये कहा गया था, जो १२ फी सदी होता है। परन्तु यदि सब मदों की सूक्ष्म जाँच करके महाराज तथा उनके परिवार सम्बन्धी विविध व्यय का जोड़ लगाया जाय तो वह २२ लाख रुपये से ऊपर बैठता है।* यह कुल आय का साढ़े सतरह फी सदी होता है। इसी प्रकार अन्य वर्षों का हिसाब लगाया जाय तो महाराज का खर्च दस फी सदी होने की बात में कोई तत्व नहीं रहता।

न्याय-पद्धति के लिए राज्य में प्रायः ब्रिटिश भारत की भद्दी नकल की जाती है। सब से उच्च संस्था यहाँ जुडीशल कमेटी है। इसमें हाईकोर्ट के फैसलों की अपील सुनी जाती है। इस कमेटी में सात सदस्य हैं, जिनमें से कानून का ज्ञान केवल तीन को ही है। फिर, इसमें प्रबन्ध विभाग के अधिकारियों की खासी संख्या रहती है। इस

* भारतवर्ष के वायसराय का वार्षिक वेतन २,५६,००० है। भारतवर्ष जैसे निर्धन देश के लिए यह एक भारी भार है, इसमें सन्देह नहीं। फिर, महाराजा बीकानेर के उपर्युक्त व्यय के सम्बन्ध में क्या कहा जाय !

दशा में राज्य का न्याय विभाग स्वतंत्र और निष्पक्ष होने का दावा सर्वथा निस्सार है। जुडीशल कमेटी के अधीन हाईकोर्ट है, उसके नीचे जिले की अदालतें, सेशन कोर्ट और मुंसिफी आदि हैं। यहाँ के न्याय करनेवालों पर प्रधान मंत्री और महाराज का प्रभाव नियमानुसार पड़ सकता है। विशेषतया राजनैतिक समझे जानेवाले अभियुक्तों के साथ यहाँ कैसा दुर्व्यवहार होता है, इसका कुछ आभास आगे दिया जायगा। साधारण मामलों में न्याय जल्दी या देर में होना सिफारिश, रिश्वत, या हाकिम की दिलचस्पी आदि पर निर्भर है।

अब स्थानीय स्वराज्य की बात लें। यहाँ २१ म्युनिसपैलटियाँ हैं। इनमें से छः के तो सब सदस्य (जिनकी संख्या ८ से १२ तक है) नामजद ही हैं, इनके प्रेसीडेन्ट भी प्रायः तहसीलदार आदि होते हैं। शेष १५ म्युनिसपैलटियों में निर्वाचित सदस्यों की संख्या नामजद की अपेक्षा अधिक है। सभापति जनता द्वारा निर्वाचित हो सकता है, पर बहुत कम स्थानों में ऐसा होता है। बीकानेर नगर के म्युनिसिपल बोर्ड में ४० सदस्य हैं—२५ निर्वाचित १० सरकारी, और ५ नामजद। सभापति सरकारी होता है। निर्वाचित सदस्यों को बोर्ड से पृथक् किया जा सकता है।* इससे निर्वाचित सदस्यों के बहुमत होने की बात निरर्थक हो जाती है।

राज्य में म्युनिसपल एक्ट है, उसके अनुसार, म्युनिसपैलटियों को

---

* इस समय राज्य ने दस सदस्यों को अलग किया हुआ है; इसका कारण, जनता के विचार से यह है कि वे लोकहित का पक्ष लिया करते, और इसमें सभापति का विरोध किया करते थे।

विविध कर लगाने का अधिकार है। वे अपनी सीमा के अन्दर आने अथवा बाहर जानेवाली चीजों पर महसूल लेती हैं; यह कर राज्य का आयात-निर्यात-कर विभाग या रेल विभाग वसूल करके इन्हें दे देता है। प्रत्येक म्युनिसपैलटी को, अपने नगर की उन्नति और स्वास्थ्य आदि के विषय में वैसा ही अधिकार और कर्तव्य है, जैसा ब्रिटिश भारत में। परन्तु अधिकांश जनता के अशिक्षित होने के कारण, उनके सब अधिकारों का उपयोग प्रायः तहसीलदार या नाजिम करते हैं, जो बहुधा इनके सभापति होते हैं। राज्य भर में जिला-बोर्ड केवल एक है—गंगानगर में।

हिन्दू विश्वविद्यालय काशी, आदि के बड़े सहायक होने के कारण महाराज शिक्षा-प्रेम के लिए प्रसिद्ध हैं, परन्तु बीकानेर राज्य में शिक्षा का प्रचार बहुत कम किया गया। सन् १९१२ में रजत जयन्ती के अवसर पर प्रजा को एक कालिज और पुस्तकालय प्रदान करने का निश्चय किया गया था, परन्तु कालिज सन् १९२८, और पुस्तकालय सन् १९३६ से पूर्व स्थापित न हो सका।

एक डिगरी कालिज के अतिरिक्त, राज्य की ओर से बीकानेर नगर में तीन हाई स्कूल हैं—१ लड़कों के, और १ लड़कियों का। लड़कों के स्कूलों में से एक राजपूतों के लिए है। इसे नोबल्स स्कूल कहते हैं। इसका खर्च बहुत अधिक है, और विद्यार्थियों को बहुत सुविधाएँ या रियायतें हैं। इसके हैडमास्टर का पद कालिज के प्रिंसीपल के समान है। राजपूत सरदारों की लड़कियों के लिए भी एक स्कूल है। कुछ अनिवार्य शिक्षा देने वाले प्राइमरी स्कूल भी हैं। राजधानी के बाहर

राज्य में चार जिलों में एक-एक हाई स्कूल हैं। राज्य की संस्थाओं से, विशेष लाभ राजपूतों का चाहा जाता है। यह तो राज्य में शिक्षा प्रचार के कई एक प्राइवेट उद्योग हो रहे हैं, अन्यथा, यदि जनता केवल राज्य के भरोसे रहती तो बहुत ही अंधकार होता।

राज्य में स्वास्थ्य, सफाई, सड़कों और पीने के पानी का प्रबन्ध राजधानी को छोड़ बाहर बहुत ही कम है। उद्योग धन्धों की उन्नति न होने से सर्वसाधारण की आजीविका का मुख्य साधन खेती है। किसानों पर नाना प्रकार की लागें तथा अन्य कर लगे हुए है। इसके फल-स्वरूप 'हजारों बीकानेरी किसान भूखे व फटे चीथड़ों में, काम की तलाश में हिसार या इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। और ये किसान वे जाट हैं, जिनकी सहायता से बीकानेर राज्य कायम हुआ था, और जिनकी उस सेवा के उपहार में आज तक भी जब कोई महाराजा गद्दी पर बैठता है तो उसके मस्तक में पाँव के अगूठे से जाट जाति के प्रतिनिधि ही राजतिलक किया करते हैं।'

इस राज्य का लोकहितकारी कार्य विशेषतया गंग नहर निकालना है।* वास्तव में इस नहर की योजना पंजाब सरकारने की थी; सरकार की इच्छानुसार ही बीकानेर महाराज ने इसमें भाग लिया। इन्होंने जमीन बेचकर खूब धन प्राप्त किया और यश भी। इस इलाके की जनता को लगान, आबपाशी, अधिकारियों के दुर्व्यवहार आदि शिकायतें बहुत रहती हैं राज्य ने प्रमुख कार्यकर्त्ताओं को नजरबन्द करने

* यह नहर सन १९२७ में सतलज नदी से निकाली गयी। यह लगभग ८० मील लम्बी है।

तथा अन्य दमनकारी उपायों को काम में लाने की नीति रखी है। इसके फल स्वरूप कितने ही आदमी राज्य छोड़कर चले गये। जनता में सङ्गठन का प्रयत्न हो रहा है।

महाराजा साहब के सुन्दर भाषणों के कारण बाहर के आदमियों की इस राज्य के विषय में प्रायः अच्छी ही धारणा रही। परन्तु वे भ्रम में थे। सन् १९३१ ई० में यहाँ के कुछ सज्जन अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद के कार्य में दिलचस्पी लेने लगे। इन्हीं दिनों पत्र-पत्रिकाओं में बीकानेर सम्बन्धी कुछ लेख प्रकाशित हुए। इधर चूरू में, एक सभा में राज्य की लगान-वृद्धि आदि की आलोचना की गयी। बस, अधिकारियों ने निश्चय कर लिया कि राष्ट्रीय भावनाओं वाले व्यक्तियों का ऐसा दमन किया जाय कि सर्वसाधारण को हमेशा के लिए शिक्षा मिल जाय। सन् १९३२ के आरम्भ में आठ व्यक्ति सन्देह के आधार पर गिरफ़्तार किये गये। तीन माह से अधिक के बाद मुकदमा चला। अभियुक्तों के साथ कैदियों से भी बुरा व्यवहार किया गया। अदालत में पेश किये गये कागजों से कई बातें ऐसी प्रकट होती हैं, जो किसी भी राज्य के अधिकारियों के लिए चिन्तनीय होनी चाहिएँ।* पर महाराज के शासन ने उनकी ओर ध्यान देने और उचित कार्यवाही करने का कष्ट नहीं उठाया। मुकदमा दो साल तक चला। अन्त में सात अभियुक्तों को भिन्न-भिन्न अवधि की कठोर सजाएँ दी गयीं।

कुछ लोगों का कथन है कि इस संकट का मूल कारण बीकानेर शासन का वर्णन और आलोचना करनेवाली एक पुस्तिका है, जो लन्दन

* देखिए 'बीकानेर राजद्रोह और षडयंत्र का मुकदमा; कुछ ज्ञातव्य बातें'।

की गोलमेज सभा के अवसर पर तैयार की गयी थी। उसकी एक टाइप की हुई प्रति किसी प्रकार बीकानेर के प्रधान मंत्री को मिल गयी। अधिकारियों ने श्री० सत्यनारायण जी सर्राफ वकील, आदि को इसके लिए उत्तरदायी समझा और उनपर मुकदमा चलाया। परन्तु श्री० अमृतलाल जी सेठ ने ३१ दिसम्बर १९३२ को राजपूताना स्टेट्स पीपल्स कन्वेंशन ( ब्यावर ) के सभापति पद से घोषित किया कि वह पुस्तिका मैंने तैयार और सम्पादित की; उसका उत्तरदायित्व मुझ पर है।

जुलाई १९३२ ई० से राज्य में 'पब्लिक सेफ्टी एक्ट' ( सार्वजनिक सुरक्षा कानून ) प्रचलित किया गया। इसमें पीछे समय-समय पर कुछ परिवर्तन हुआ है। यह जनता में 'बीकानेर का काला कानून' कहा जाता है। इसका प्रयोग कई बार जनता की जागृति का दमन करने, कार्यकर्त्ताओं को कैद या निर्वासित करने, और समाचार-पत्रों को जब्त करने आदि के लिए किया जा चुका है। संस्थाओं को रजिस्टरी करानी होती है। सार्वजनिक कार्य के लिए यहाँ कोई सङ्गठन पनप नहीं सकता। अधिकारियों ने अपने घोर दमन के द्वारा निस्सन्देह जनता पर आतंक बैठाने में 'सफलता' प्राप्त की है।* परन्तु शायद वे नहीं जानते कि इसके कारण बीकानेर ने इतिहास में अपने लिए कैसा चिन्तनीय स्थान बनाया, तथा जनता की देशी राज्यों के सम्बन्ध में कहाँ तक दुर्भावना बढ़ायी है! रही, जनता की बात; वह तो थोड़े-बहुत

* श्री सारङ्गधर दास जी ने आ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद की ओर से इस राज्य में दौरा करके अपनी रिपोर्ट दी है, जो 'बीकानेर' नाम से अंगरेजी में छपी है। उसमें अनेक देश-निकालों और जब्तियों का उल्लेख है।

समय में उठकर ही रहेगी।

बीकानेर का दो-तिहाई भाग पट्टा, जागीर या ठिकानों का है। जागीरदारों को कानून से तो दीवानी या फौजदारी अधिकार नहीं है, तथापि अदालतों में, उनके पद या सम्मान के आधार पर, उनका काफी प्रभाव है। जनता के साथ उनका व्यवहार अमानुषिक है। एक जागीरदार एक स्त्री का नाक काटने पर भी अदालत से छूट गया था, पीछे विशेष कारण से उसे सजा हो गयी। दूसरे जागीरदार ने सुथार ( बढ़ई ) औरतों को तथा उनके मवेशियों को मालगुजारी वसूल न होने के कारण अपने गढ़ में बन्द कर लिया, और यह भी उस समय जब कि अनावृष्टि के कारण फसल नहीं हुई थी। ऐसे उदाहरणों से जागीरदारों का दुर्व्यवहार और चरित्र जाना जा सकता है, फिर भी राज्य में इन्हें विशेष पद, मान और प्रतिष्ठा प्राप्त है।

महाराज ने अक्तूबर १९४१ में एक जोरदार भाषण दिया, उसका मुख्य अंश बीकानेर राजपत्र के २३ अक्तूबर के विशेषांक में प्रकाशित हुआ। आपकी घोषणा में जो बातें आदर्श या सिद्धान्त रूप से कही गयी हैं, उनका उल्लेख इस पुस्तक के दूसरे अध्याय में किया जा चुका है। उनके विषय में कोई मतभेद नहीं है। परन्तु आपका यह दावा बिल्कुल गलत है कि बीकानेर राज्य में उनके अनुसार शासन होता है। भविष्य के लिए आपने घोषित किया है कि "हम अपने निजी खर्च के लिए राज्य की साधारण वार्षिक आय का नौ फीसदी से अधिक नहीं लेंगे। शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य-सुधार, ग्रामोद्धार, खेती और सभ्य जीवन के दूसरे सुधार के कामों में किसी प्रकार की कमी

नहीं की जायगी। पहले राजसभा और फिर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिस-पैलटियों और दूसरी संस्थाओं द्वारा जिनमें चुनाव होता है, राज्य की हर शाखा में अपनी प्यारी प्रजा को शामिल करने की नीति बीकानेर के राज्य का ज़रूरी अङ्ग समझी जायगी। शासन-विभाग अधिक उदार बनाया जायगा।" अन्त में महाराज ने कहा कि हमारे युवराज महाराज कुमार शार्दूलसिंह जी अपनी पूरी मर्ज़ी से, इस फरमान में दिये हुए सब बचनों में हमारे साथ शामिल हैं।

महाराजा साहब की घोषणा देखने-सुनने में अच्छी है। परन्तु अप्रेल १९४२ में राष्ट्रीय सप्ताह के अवसर पर राजस्थान चरखा संघ की स्थानीय शाखा को खादी और हरिजनोद्धार सम्बन्धी सभा करने की भी इजाज़त न मिलने से उसमें क्या तत्व रह जाता है! अन्य राज्यों की तरह बीकानेर की प्रधान आवश्यकता उत्तरदायी शासन पद्धति है। कुछ तात्कालिक समस्याएँ निम्नलिखित हैं:—उद्योग-धंधों की उन्नति, शिक्षा का प्रचार, राजपूत और ग़ैर-राजपूत का भेदभाव हटाना, जनता को भाषण-लेखन और प्रकाशन आदि की स्वतंत्रता, राज्य के बजट पर जनता का अधिकार, राजनैतिक कार्य के लिए सुविधाएँ तथा आर्थिक सहायता। क्या बड़ी-बड़ी घोषणाएँ करनेवाले महाराजा साहब अब ज़बानी जमा-खर्च न करके, इन व्यावहारिक बातों की ओर ध्यान देने का कष्ट उठाएँगे?



# उनतालीसवाँ अध्याय

## अलवर

रियासती जनता आज भी उसी तंत्र के अधीन जीवन यापन कर रही है, जिसके द्वारा कभी भी ऐसे लोमहर्षक कांड सम्भव हो सकते हैं। जब तक वह तंत्र बदल नहीं जाता, नीमूचाणा हमको हमेशा हमारी परवशता और निस्सहायावस्था की याद दिलाता रहेगा।

—शोभालाल गुप्त

इस राज्य का क्षेत्रफल ३,१५८ वर्गमील और जनसंख्या (सन् १९४१ की गणना के अनुसार) ८,२३,०५५ है। वार्षिक आय छत्तीस लाख रुपये है।

यहाँ के वर्तमान राजवंश के संस्थापक श्री० प्रतापसिंह जी नरूका कछवाहा राजपूत थे। अठारहवीं शताब्दी की उथल-पुथल में उन्होंने जयपुर की अधीनता त्यागकर अपना अधिकार बढ़ाया। सन् १८०३ में, अलवर की अंगरेजों से सन्धि हुई। सन् १८९२ में सवाई महाराज श्री० जयसिंह को गद्दी मिली। ये उस समय दस वर्ष के थे। अत; राजकार्य पोलिटिकल एजन्ट की निगरानी में एक कौंसिल द्वारा होने लगा। महाराज को शासनाधिकार दिसम्बर १९०३ में प्राप्त हुए। कुछ विषयों के अधिकार उस समय रोक लिये गये थे, ये १९०९ में दिये गये। महाराज १९२३ में साम्राज्य-परिषद में, और

१९२९ में गोलमेज-परिषद ( लन्दन ) में उपस्थित हुए। ये समाज-सुधार और हिन्दी-प्रचार के प्रेमी थे; परन्तु बहुत खर्चीली तबियत के थे; भवन-निर्माण या नगर-सुधार का भी इन्हें बहुत शौक था। १९२९ में इनकी रजत जयन्ती धूमधाम से मनायी गयी। महाराज ने, जो 'प्रभु' कहलाते थे, 'राजर्षि' की उपाधि प्राप्त की। सन् १९३३ ई० में कुशासन, और माली हालत खराब होने के आधार पर महाराज को अलवर से निकाल दिया गया। राज्य का शासन-कार्य पोलिटिकल डिपार्टमेंट द्वारा नियुक्त अंगरेज प्राइम मिनिस्टर चलाने लगा।*

सन् १९३७ ई० में महाराजा जयसिंह का पेरिस में देहान्त हो जाने के बाद महाराज तेजसिंह गद्दी पर बैठे। १९ दिसम्बर १९४१ के बाद चीफ-मिनिस्टर के पद पर एक भारतीय नियुक्त हुआ है। पोलिटिकल डिपार्टमेंट की देख-रेख में एकतंत्रीय शासन चल रहा है। गतवर्ष राज्य में एक प्रबन्धकारिणी सभा (एग्जीक्यूटिव कौंसिल) स्थापित की गयी है, जिसके सभापति ( प्रेसीडेन्ट ) स्वयं महाराजा साहब हैं। इस सभा के सदस्य निम्नलिखित होते हैं:—(१) चीफ-मिनिस्टर ( उपसभापति ) (२) रेवन्यू (माल) मिनिस्टर (३) होम (गृह) मिनिस्टर (४) आर्मी (सेना) मिनिस्टर (५) डिवेलपमेंट (उन्नति) मिनिस्टर (६) महाराज के प्राइवेट सेक्रेटरी।

मिनिस्टर अपने-अपने विभाग सम्बन्धी अपील सुनते हैं, पर उनका

---

* पोलिटिकल डिपार्टमेंट को शासन-कार्य संभाले ९ वर्ष हो गये। इस समय भी राज्य पर ४३ लाख का ऋण बना हुआ है; माली हालत में कोई सुधार नहीं हुआ।

उत्तरदायित्व जनता के प्रति नहीं होता। ये महाराज के प्रति जिम्मेवार होते हैं; उनके द्वारा ही नियुक्त तथा अलहदा किये जाते हैं। मंत्रियों के कार्य का विभाजन भी स्वयं महाराज द्वारा ही किया जाता है। कौंसिल में कोरम तीन मेम्बरों का होगा, लेकिन प्रेसीडेंट, वाईस-प्रेसीडेंट या एक सीनियर मेम्बर का होना बहुत जरूरी है। यह कौंसिल महाराज के महलों के अतिरिक्त सारी रियासत का बजट पास करेगी,* तथा नये महकमों को बनाना, कर्ज लेना जो तीन हजार से ऊपर का हो, जमीन का बन्दोबस्त करना, लगान में ऐसी छूट या माफी जो १०००) से ऊपर हो, म्युनिसपल टेक्स के अलावा अन्य करों का लगाना, राजनैतिक संस्थाओं तथा अखबारों के सम्बन्ध आदि के बारे में अपने अन्तिम निर्णय देगी। लेकिन जागीर-माफियों के जब्त करने, किसानों, जागीर-माफियों तथा इस्तमरारी गाँवों में हकूक जमींदारी देने, नये कानून बनाने, ताजीमी सरदारों की गिरफ्तारी तथा फौजों को बाहर भेजने के बारे में केवल सिफारिश (महाराज साहब से) करेगी।

यह कौंसिल चीफ-मिनिस्टर को छोड़कर अन्य मिनिस्टरों के फैसलों की अपील भी सुनती है। मिनिस्टर के फैसले में तथा इस कौंसिल के फैसले में केवल यह अन्तर है कि कौंसिल में सब मिनिस्टर मिलकर बहुमत से निर्णय देते हैं।

---

* बजट हर साल बनता है, पर दूसरी साल खतम होने पर शासन-रिपोर्ट में प्रकाशित होता है, जनता का उस पर कोई नियंत्रण नहीं। चार लाख रुपया तो महाराज के निजी खर्च के ही होते हैं।

गज़ट में यह स्पष्ट कहा गया है कि इस कौंसिल के कारण महाराज के उन अधिकारों में किसी प्रकार की कमी न होगी, जिनके अनुसार वे प्रत्येक हुक्म को बदल सकते हैं, तथा संशोधन आदि कर सकते हैं; और, महाराजा साहब इस कौंसिल के अलावा स्वतंत्र आज्ञा दे सकते हैं। इस स्पष्टीकरण के बाद कौंसिल की महत्वहीनता के विषय में कोई सन्देह नहीं रहता। अलवर में कानून बनाने के लिए व्यवस्थापक सभा (असेम्बली) स्थापित नहीं हुई है; उपर्युक्त प्रबन्धकारिणी सभा ही कानूनों का निर्माण करती है।

अलवर राज्य में दो ज़िले हैं। जिले का हाकिम एक ही व्यक्ति रेवन्यू (माल) की दृष्टि से कलेक्टर, प्रबन्ध की दृष्टि से जिला-अफसर, और न्याय की दृष्टि से जिला-मजिस्ट्रेट होता है। राज्य में दस निजामतें हैं, जो पहले तहसील कहलाती थीं। नाजिम (तहसीलदार) अपने क्षेत्र में माल के सब कार्य का जिम्मेवर है; उसे फौजदारी मामलों में दूसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट के अधिकार होते हैं। उपर्युक्त दस निजामतों में से ५ में मुंसिफ हैं जो दीवानी तथा फौजदारी के प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के अधिकार काम में लाते हैं। अलवर शहर में एक सेशन कोर्ट भी है। राज्य की सर्वोच्च न्याय-संस्था हाई-कोर्ट है। प्रायः मुकदमों के फैसला होने में बहुत देर लगती है; न्याय मँहगा तो है ही।

अलवर राज्य में तीन म्युनिसपैलटियाँ हैं। अलवर शहर की म्युनसिपैलिटी में निर्वाचित मेम्बरों की अधिकता है, परन्तु उसका सभापति जिला-मजिस्ट्रेट अपने पद के कारण होता है उसमें।

एक हरिजन और एक महिला सदस्य नामजद है। तिजारे क़स्बे की टाउन-कमेटी में इस वर्ष से चुने हुए सदस्य होंगे, और राजगढ़ की म्युनिसपैलटी नामजद सदस्यों की है। म्युनिसपैलटियों की मुख्य आय चुंगी है, ज़कात से भी उन्हें कुछ सहायता मिलती है। राज्य में पंचायतें नहीं हैं।

राज्य में शिक्षा का प्रचार कम ही है। यहाँ राज्य की ओर से केवल एक इंटर कालिज तथा कुछ अन्य स्कूल हैं। कुछ प्राइवेट संस्थाएं भी हैं, उन्हें राज्य से सहायता मिलती है।

बिना रजिस्टरी कराये यहाँ कोई सभा स्थापित नहीं हो सकती। अखबार निकालने के लिए इजाजत मिल जाती है। कानून गजट में प्रकाशित किये जाते हैं, उनका पालन भी होता है। पर कानून-विरुद्ध होने पर भी बेगार अब तक प्रचलित है।

इस राज्य की जनता की हलचलों का समाचार बाहरवालों के सामने विशेष रूप से मई १९२५ के नीमूचाणा कांड से आया। उक्त वर्ष में ज़मीन का नया बन्दोबस्त हुआ, उससे विशेषतया राजपूत किसानों के अधिकार कम हो गये, और जमीन का लगान बढ़ गया। राजपूत कमेटी समाज-सुधार के अतिरिक्त जनता के कष्टों को कानूनी उपायों से दूर करने में लगी हुई थी। पर बहुत समय तक उसके प्रयत्नों का कोई फल नहीं निकला। आन्दोलन बढ़ता गया। अधिकारियों ने उसे दमन करने की ठान ली। ता० १४ मई को राज्य की सेना ने बानसूर तहसील के नीमूचाणा गाँव में सभा करनेवाले राजपूत किसानों पर गोलियाँ चलायी। स्त्रियों, और पशुओं तक को

बेमायी मौत मरना पड़ा। गाँव में आग लगा दी गयी। जब इसकी चहुँओर चर्चा हुई और जाँच के लिए दबाव डाला गया तो राज्य ने जैसे-तैसे इसकी लीपा-पोती कर दी।

सार्वजनिक कार्यकर्ताओं की ग़ैर-सरकारी जाँच कमेटी की जो रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हो पायी, उसमें कहा गया था कि २५१ झोपड़े और ७१ पशु जलकर खाक हुए और १० हजार से लेकर एक लाख तक की सम्पत्ति नष्ट हुई। इस कमेटी के सभापति श्री० मणिलाल जी कोठारी ने अगस्त १९२८ में लखनऊ सर्वदल सम्मेलन के सामने बताया था कि इस कांड में ९५ आदमी गोली से भूने गये, २५० से अधिक घायल हुए और अनेक घर जलाये गये।

इस कांड से जनता पर कुछ समय तक आतंक तो रहा, पर इससे असंतोष मिटने वाला न था। राज्य ने किसी तरह उसे दमन करने का प्रयत्न किया। पीछे कुछ शासन-सुधार भी हुए। सरकार ने इस अवसर पर राज्य में हस्तक्षेप न किया। पीछे १९३२-३३ में मेवों का आन्दोलन होने पर नयी-शासन व्यवस्था स्थापित हुई।

राज्य में खालसे की अपेक्षा जागीर-माफी प्रजा की दशा बहुत शोचनीय है, कारण जागीरदारों ने इस प्रजा के बिस्वेदारी और मौरूसी अधिकार जप्त कर लिये हैं। स्व० महाराज के राज्य-त्याग के बाद उनके समय में दी हुई जागीर-माफ़ियों में तो वह अधिकार वापिस कर दिये गये, परन्तु पुरानी जागीर-माफियों में ऐसा नहीं किया गया। प्रजामंडल ने इस सवाल को अपने हाथ में लिया है; जून १९४१ में उसने 'जागीर-माफी कान्फ्रेंस' नामक एक बहुत बड़ी सभा करके सरकार से इस विषय की माँग की है। इसके उत्तर में

चीफ-मिनिस्टर ने लिखा है कि महाराजा साहब की सरकार इस विषय पर विचार कर रही है। आवश्यकता है कि यह विचार-कार्य जल्दी पूरा हो जाय। लाग-बाग कानूनन बन्द होने पर भी जागीरी इलाकों में जबरदस्ती ली जाती हैं। जागीरदार राज्य में पदाधिकारी हैं। उन्होंने जनता की माँग को दबाने के लिए सामन्त-मंडल कायम किया है।

राज्य में पहिले कांग्रेस कमेटी स्थापित की गयी थी, परन्तु हरिपुरा कांग्रेस के प्रस्ताव के बाद प्रजामंडल की स्थापना हुई। राज्य ने दमन किया, कुछ कार्यकर्त्ताओं को जेल भी भेजा, पर प्रजामंडल अपनी परीक्षा में सफल रहा। राज्य द्वारा सन् १९४० में इसकी रजिस्टरी हुई। परन्तु इस समय उसका उद्देश्य 'उत्तरदायी शासन' के बजाय 'राज्य के शासन-कार्य में जनता का उत्तरोत्तर सहयोग' कर दिया गया। अब इसी उद्देश्य के अन्तर्गत प्रजामंडल राज्य में सुधारों की माँग करता है। इसका संगठन दृढ़ होता जा रहा है, और इसकी शाखाएँ राज्य भर में खुल रही हैं तथा खादी और हरिजन-उद्धार आदि रचनात्मक कार्य कर रही हैं। इसने एक खादी उद्योग प्रदर्शनी बहुत अच्छे ढंग से की, जिसमें राज्य का भी सहयोग मिला। यह भीलों की उन तकलीफों को दूर करने का भी प्रयत्न कर रहा है जो, उन्हें 'जरायम पेशा' समझे जाने से, पुलिस द्वारा दी जाती हैं। प्रजामंडल ने राज्य द्वारा सख्ती से लड़ाई का चन्दा वसूल किये जाने का भी विरोध किया, और इस विषय में अफसरों की जाँच की। इस जाँच के सिलसिले में श्री० भोलानाथ जी मास्टर और

पं० हरनारायण जी को 'भारत-रक्षा कानून' में गिरफ़्तार किया गया था, परन्तु पीछे छोड़ दिया गया और मुकदमा उठा लिया गया। इस प्रकार प्रजामंडल राज्य के कोप-भाजन बनने की जोखम उठाकर भी लोक-सेवा में लगा है।

# चालीसवाँ अध्याय

## भरतपुर

'प्रजा बलं राज्य बलं प्रशस्ते' इस पुराने आदर्श वाक्य को स्व० महाराजा किशनसिंह जी ने अपने शासन-समिति-विधान के ऊपर लिखा था।

यह राज्य 'राजस्थान का सिंहद्वार' कहा जाता है। इसका क्षेत्रफल १९७८ वर्गमील, और आबादी (सन् १९४१ की गणना के अनुसार) ५,७५,६२५ है। वार्षिक आय लगभग चालीस लाख रुपये है। यहाँ का राजवंश जाट है। इस राज्य की स्थापना ग्यारहवीं शताब्दी में हुई। अठाहरवीं सदी में महाराजा सूरजमल जी (१७५५-६३) बहुत प्रसिद्ध हुए। भरतपुर की वीरता और दृढ़ता का भारतीय इतिहास में विशेष स्थान है; अंगरेजों को भी इसका खूब अनुभव करना पड़ा। अन्ततः सन् १८०५ में उनकी इस राज्य से संधि हुई।

सन् १९०० ई० में महाराजा रामसिंह गद्दी से उतारे जाकर, उनके पुत्र श्री० किशनसिंह जी गद्दी पर बैठाये गये, जो उस समय बाल्य

अवस्था में ही थे। आपकी नाबालगी में राजप्रबन्ध एक कौंसिल द्वारा हुआ। आपको शासनाधिकार १६१८ में दिया गया। आपका व्यक्तित्व अच्छा था। आप प्रजासत्तात्मक शासन के पक्ष में थे। हिन्दी भाषा और खादी वस्त्र के प्रति आपका का प्रेम था। आपने स्वाभिमान का अच्छा परिचय दिया था। यदि कुछ अवांच्छित व्यक्तियों से आपका पाला न पड़ता तो आप राजपूताने के उन्नत शासकों में होते। जो हो, आप सरकार की निगाह में खटकने लगे, गद्दी से उतारे गये, और आप से कठोर व्यवहार किया गया। सन् १६२६ में आपका निर्वासित अवस्था में ही देहान्त हो गया, और आपके पुत्र श्री० बृजेन्द्रसिंह जी गद्दी पर बैठाये गये। उस समय ये नाबालिग थे। अतः राजकार्य के लिए एक कौंसिल नियत की गयी, जिसके अध्यक्ष सरकार द्वारा नामजद हुए। श्री० बृजेन्द्रसिंह जी को उनके भाइयों सहित शिक्षा-प्राप्ति के लिए इङ्गलैंड भेजा गया, यद्यपि इस विषय में जनता का घोर विरोध था।*

स्व० महाराना किशनसिंह जी ने ता० २ मार्च १६२७ को, अपनी प्रजा को राजकाज में संगठित रूप में सहयोग करने का अधिकार प्रदान करने की घोषणा की और १५ सितम्बर को "शासन-समिति-विधान १६२७" के, ४ अक्तूबर १६२७ से, अमल में आने की स्वीकृति दी।

दुर्भाग्य की बात है कि जब उपर्युक्त शासन-समिति के चुनाव की बहुत कुछ तैयारी हो चुकी, उम्मेदवार निर्वाचन के लिए आ गये,

---

* नाबालगी शासन में सूरजमल जयन्ती मनाना बन्द किया गया और ठाकुर देशराज जी तथा श्री० गोकुलचन्द जी जैसे कार्यकर्त्ताओं को कारावास दिया गया।

पोलिंग ( निर्वाचन ) अफसर पोलिंग-स्टेशनों पर पहुँच गये तो मिस्टर मेकेंजी ने ( जो महाराजा किशनसिंह जी के गद्दी से उतारे जाने पर राज्य के एडमिनिस्ट्रेटर नियत हुए थे ) तार द्वारा इन तैयारियों को रोक दिया।

प्रायः लोगों की यह धारणा है कि राजा सुधार-प्रिय नहीं होते। महाराजा भरतपुर का अब से १५ वर्ष पहले प्रजा को उपयुक्त महत्वपूर्ण अधिकार देना ऐसी धारणा को खंडन करने वाला अच्छा उदाहरण है। पुनः ऐडमिनिस्ट्रेटर मि० मेकन्जी का व्यवहार इस बात का जीता जागता प्रमाण है कि अनेक बार सुधारों को रोकनेवाली शक्ति पोलिटिकल विभाग या स्वयं सर्वोच्च सत्ता ही होती है।

महाराज वृजेन्द्रसिंह जी को शासनाधिकार सन् १९३९ में मिले। भारतवर्ष की अन्य अनेक रियासतों की भाँति भरतपुर में एकतंत्री शासन है। महाराज की सहायता के लिए एक कौंसिल है, जिसके प्रेसीडेन्ट ( सभापति ) वे स्वयं हैं। परन्तु वास्तविक शासन-सूत्र राज्य के दीवान के हाथ में है, जो कौंसिल का वाइस-प्रेसीडेन्ट (उपसभापति) भी है। वह भारत-सरकार द्वारा नियुक्त किया गया है, और उसी के प्रति जिम्मेदार है। कौंसिल में चार मिनिस्टर हैं:—(१) रेवन्यू ( माल ) मिनिस्टर, (२) जुडीशल ( न्याय ) मिनिस्टर (३) होम ( गृह ) मिनिस्टर और (४) शिक्षा और स्वास्थ्य मिनिस्टर। दीवान, कौंसिल के वाइस-प्रेसीडेन्ट के अतिरिक्त, महाराज का सहकारी भी है। महाराज को यह अधिकार है कि वे चाहें तो कौंसिल को भंग करके केवल दीवान द्वारा ही शासन कर सकते हैं। इस दशा में दीवान के अधीन कुछ सेक्रेटरियों में विविध शासन-विभाग बाँट दिये जायँगे।

दीवान पुलिस का सर्वोच्च अफसर इन्स्पेक्टर-जनरल भी है। राजस्व और ऐंजिनयरी इसके ही सुपुर्द है। रेवन्यू मिनिस्टर के पास सहकारी साख, कृषि, पशुओं की नस्ल का सुधार, बैंक, आयात-निर्यातकर, ग्राम-सुधार, मनुष्य-गणना कोर्ट-आफ वार्ड्स, प्रकाशन विभाग का भी काम है। जूडीशल मिनिस्टर चीफ-जज भी है और इसे न्याय, कानून और मवेशीखाने सम्बन्धी अधिकार है। शिक्षा और स्वास्थ्य मिनिस्टर जेल, म्युनसपैलटी, जंगल, और शिकार विभागों का भी सर्वोच्च अधिकारी है। होम मिनिस्टर का क्षेत्र सदावर्त, वकालत, कोठी खास, विधवा भवन, अनाथालय, तोशकखाना आदि हैं। चारों मिनिस्टर अपने कार्य के लिए दीवान के प्रति उत्तरदायी हैं, कोई जनता के प्रति जिम्मेवर नहीं है।

शासन में जनता का सहयोग दिखाने के लिए राज्य में एक केन्द्रीय सलाहकार समिति ('सेन्ट्रल एडवाइजरी कमेटी') तथा प्रत्येक तहसील में तहसील-सलाहकार समिति स्थापित है। केन्द्रीय कमेटी का संगठन इस प्रकार है:—

| | | |
|---|---|---|
| निर्वाचित ( परोक्ष ) | | २० |
| नामजद | | |
| गैर-सरकारी | ५ | १० |
| सरकारी | ५ | |
| योग | | ३० |

चुने हुए सदस्य दस तहसीलों की तहसील-कमेटियों में से प्रत्येक के दो-दो प्रतिनिधि लेने से हो जाते हैं।

तहसील-कमेटियों के सदस्यों का चुनाव करने के लिए मतदाता देहातों और कस्बों के नम्बरदार आदि होते हैं। ये कमेटियाँ अपने क्षेत्र के आबकारी, चुंगी, और कृषि सम्बन्धी मामलों में राय देती हैं। पिछले दिनों इन्हें कुछ सामाजिक मामले निपटाने का भी काम दिया गया है। इनके सभापति सरकारी अफसर ही होते हैं। राज्य में कानून बनाने अथवा जनहित-सम्बन्धी प्रश्न पूछने के लिए कोई व्यवस्थापक सभा नहीं है। विविध विभागों के अधिकारियों पर जनता का नियंत्रण नहीं है।

पहले यहाँ न्याय की सब से छोटी संस्था पंचायतें थीं। इनका अब अभाव है। तीन बड़े नगरों—भरतपुर, दीग और बयाना—में मुंसिफी हैं। राज्य की दस तहसीलें हैं, जिनके तहसीलदारों को दूसरे दर्जे के और नायब तहसीलदारों को तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट के अधिकार हैं। न्याय और प्रबन्ध की दृष्टि से राज्य तीन जिलों में विभक्त है, जिन्हें निजामत कहते हैं। नाजिम जहाँ प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट हैं, वहाँ जिले की शान्ति और सुव्यवस्था के लिए उत्तरदायी हैं। ये जिले के पुलिस-अधिकारियों अर्थात् सरकल-पुलिस-इन्स्पेक्टरों तथा प्रबन्ध करनेवाली अन्य संस्थाओं को ज़िले की शान्ति और सुव्यवस्था के लिए आदेश कर सकते हैं। भरतपुर नगर ( राजधानी ) में अदालत जजी है। जज को डिस्ट्रिक्ट और सेशन जज के अधिकार प्राप्त हैं। सेशन जज के फैसलों की अपील जुडीशल मिनिस्टर के यहाँ होती है। इस प्रकार न्याय विभाग स्वतंत्र न होकर शासन विभाग के अधीन है। पुनः जुडीशल मिनिस्टर के निर्णय के विरुद्ध अपील कौंसिल की मीटिंग

में होती है। इससे स्पष्ट है कि कौंसिल एक ओर जहाँ शासक सभा है, वहाँ निर्णायक सभा भी है, जो सर्वथा अनुचित और सिद्धान्त-विरुद्ध है।

मालगुजारी वसूल करने और भूमि-सम्बन्धी प्रबन्ध के लिए राज्य में दो कलेक्टर हैं, और दस तहसीलें है। कलेक्टरों के सदर मुकाम दीग और भरतपुर नगर हैं, इन्हें साधारण बोलचाल में 'महकमा माल की कचहरी' कहते हैं।

भरतपुर तथा दीग में म्युनिसिपल कमेटियाँ हैं। तहसीली और एक अन्य कस्बे में टाउन बोर्ड हैं। भरतपुर म्युनिसपैलटी में १७ सदस्य हैं—१० निर्वाचित और ७ नामजद। नामजद सदस्यों में से तीन सरकारी, और चार गैर-सरकारी है। चेयरमेन का चुनाव सदस्य करते हैं। प्रत्येक टाउन बोर्ड में चार निर्वाचित और तीन नामजद सदस्य हैं। 'स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं' में नामजद सदस्यों का इतना अधिक रहना बहुत चिन्तनीय है। मताधिकार के लिए निर्धारित योग्यता का परिमाण भी बहुत ऊँचा है—यह नागरिक अधिकारों को संकुचित करने वाला है।

शिक्षा की दशा साधारण है। राज्य में एक इंटर कालिज, एक हाई स्कूल, तथा तहसीलों में मिडल स्कूल हैं। कुछ संस्थाओं को राज्य की सहायता मिलती है। भरतपुर नगर में एक सरकारी अस्पताल और एक देशी औषधालय है। तहसीलों में शफाखाने हैं। पशु-चिकित्सा की भी व्यवस्था है।

नाबालगी शासन में यहाँ जनता की नागरिक स्वतंत्रता का

बुरी तरह अपहरण किया गया। कोई सभा आदि बिना विशेष कठिनाइयों के नहीं हो सकती थी। राष्ट्रीय नेताओं के चित्र रखना तक अक्षम्य अपराध माना जाता था। खादी वस्त्र धारण करनेवाले संदेह की दृष्टि से देखे जाते थे। सन् १९३७ में यहाँ नया दमनकारी कानून 'क्रिमिनल ला एमेंडमेंट एक्ट' अर्थात् संशोधित फौजदारी कानून बना दिया गया। राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओं ने प्रजामंडल स्थापित करके उसकी रजिस्टरी कराने की दर्खास्त दी तो नाबालगी शासन के प्रमुख सर रिचार्ड टोटनहम ने ( जो पीछे दीवान बनाये गये थे ), उसे अस्वीकार कर दिया। इस पर सत्याग्रह हुआ जो कई महीने खूब जोर से चला; उसमें सैकड़ों व्यक्तियों ने भाग लिया। दो सौ से अधिक पुरुष एवं स्त्रियाँ, जिनके साथ बच्चे भी थे, जेल गयीं। अन्ततः दिसम्बर १९३९ में दीवान के साथ प्रजामंडल का समझौता हुआ, और उसकी 'प्रजापरिषद' के नाम से रजिस्टरी की गयी। तब से सभा, जलूस, राष्ट्रीय गीत व नारे, खादी धारण आदि के नागरिक अधिकार प्राप्त हुए हैं। अब प्रजापरिषद एक संगठित संस्था है, जिसके लगभग ५,००० सदस्य हैं। उसकी कार्यकारिणी है; एवं तहसीलों की पृथक्-पृथक् कमेटियाँ हैं।

राज्य में सरकारी नौकरी तथा साधारण खेती को छोड़कर जनता के लिए कोई व्यवसाय नहीं है। उद्योग-धंधों की बेहद कमी है। राज्य की ओर से कोई प्रोत्साहन नहीं; इसके विपरीत, पुराने धंधों का भी बहुत ह्रास हो गया है। नमक बनाने का कार्य जिससे यह राज्य पहले धन-धान्य पूर्ण था, अब सरकार की कृपा से ही बन्द है।

इससे राज्य में बेकारी बढ़ी हुई है। आबादी घट गयी है। महकमा सायर ( आयात-निर्यात कर ) के नियम तथा व्यवहार बहुत कष्टप्रद हैं, उसके कारण कोई व्यापार यहाँ पनप नहीं पाता। राज्य की ओर से शासन-रिपोट प्रति वर्ष छपती है। 'राजपत्र' नाम से गजट भी निकलता है। शासन-व्यय बहुत अधिक है। उच्च पदाधिकारियों को, जो अधिकांश में राज्य से बाहर के हैं, भारी वेतन दिया जाता है। शिक्षा स्वास्थ्य आदि जनहित-कार्यों की प्रायः उपेक्षा की जाती है। प्रजापरिषद जनता के कष्टों और असुविधाओं को दूर करने और उत्तरदायी शासन पद्धति की स्थापना कराने के लिए आन्दोलन कर रही है।

---

# इकतालीसवाँ अध्याय

---

## जोधपुर

कीमत चाहे जो चुकानी पड़े, हम उत्तरदायी शासन लिये बिना चैन नहीं लेंगे। सरकार निरे स्वार्थी लोगों का गुट है। सरकार मुझे जनता से अलग कर सकती है, लेकिन मेरी आत्मा को नहीं कुचल सकती, और वह उत्तरदायी शासन के आन्दोलन को समाप्त नहीं कर सकती।

—जयनारायण व्यास

जोधपुर ( या मारवाड़ ) राजपूताना में सब से बड़ा देशी राज्य है। इसका क्षेत्रफल ३६,०२१ वर्ग मील, जन संख्या ( सन् १९४१

की गणना के अनुसार) २५, ५५, ९०४ और वार्षिक आय दो करोड़ रुपये है। इस राज्य में केवल ७,०२१ वर्गमील ही खालसा ज़मीन है, शेष २९,००० वर्गमील जागीरदारों के अधीन है, इसी प्रकार ९०२ गाँव खालसा है और ३,४४४ गाँव जागीरी हैं।

यहाँ के शासक राठोर राजपूत हैं। इस राज्य का सूत्रपात तेरहवीं सदी में कन्नौज के अन्तिम राजा जयचन्द के पोते सिहाजी राठौर ने किया। राजा जोधा ने सन् १४५८ में जोधपुर शहर की नींव डाली; इसके पूर्व राजधानी मंडोर थी। मराठों और पिंडारियों के आक्रमण से बचने के लिए अंगरेज़ों से जोधपुर की संधि १८१८ में हुई।

सन् १९१८ में श्री० उम्मेदसिंह जी गद्दी पर बैठे, उस समय आप पन्द्रह वर्ष के थे। आपकी नाबालगी में राजप्रबन्ध रेज़ीडेन्ट के नियंत्रण में एक कौंसिल द्वारा हुआ। आपको शासनाधिकार सन् १९२३ में मिले। अब शासन-कार्य स्टेट कौंसिल द्वारा होता है, जिसमें महाराजा साहब के अतिरिक्त सात मंत्री हैं—एक चीफ़-मिनिस्टर या प्रधान मंत्री और छः अन्य मंत्री। चीफ़-मिनिस्टर के अधीन ये विषय हैं—विदेश और राजनीति, रेल, पुलिस, राजस्व, हकूमत, जागीरी समस्याएँ आदि। अन्य मंत्री निम्नलिखित हैं:—१—महाराज का कौंसिलर (सलाहकार); गृह विभाग इनके जिम्मे है। २—डिप्टी चीफ़-मिनिस्टर; माल विभाग इनके जिम्मे है। ३—न्याय मंत्री (जुडीशल मिनिस्टर)। ४—सार्वजनिक निर्माण मंत्री।* ५—मिनिस्टर-इन-वेटिंग। ६—विभाग-रहित मंत्री ('मिनिस्टर विदाउट पोर्टफोलियो')।

* आज कल यह मंत्री हवाई हमले से हिफाजत का काम करता है; सार्वजनिक निर्माण विभाग प्रधान मंत्री को सौंपा हुआ है।

प्रधान मंत्री अंगरेज है। अन्य मंत्रियों में से एक तो जोधपुर महाराज के छोटे भाई हैं, दो जागीदार, एक रावराजा, एक मदरास हाईकोर्ट के अवकाश-प्राप्त जज और एक अन्य अंगरेज है। सर्वसाधारण जनता में से कोई मिनिस्टर न इस समय ही है, और न पहले हुआ है। मन्त्रियों को महाराजा द्वारा निर्धारित कार्य सौंपा हुआ रहता है। इसके सिवा सरदारों की कमेटी रहती है, जो जागीर सम्बन्धी मामलों में सलाह देती है।

राज्य में सब हुक्म तथा कानून महकमाखास से जारी होते हैं। इसका खास काम नीचे के महकमों या विभागों (जो विविध मन्त्रियों के जिम्मे होते हैं) तथा अदालतों की निगरानी, हिदायतें करना और उनको अमल में लाना है। इसके हिन्दी तथा अंगरेजी के दफ़्तरों का कार्य विभिन्न विभागों के सेक्रेटरी या सुपरिंटेंडेन्ट करते हैं। राज प्रबन्ध के लिए राज्य २२ भागों अर्थात् परगनों में विभक्त हैं। परगने का अफसर हाकिम कहलाता है, उसका काम दीवानी वा फौजदारी इन्साफ करना, मालगुजारी वसूल करना, इमारती पट्टे देना, रजिस्टरी करना, लावारसी जायदाद की कार्यवाही करना और परगने का आम बन्दोवस्त व जमा-खर्च करना है।* अधिकांश परगनों में हाकिम का सहायक 'नायब हाकिम' भी होता है।

सन् १९३९-४० में, यहाँ सुधारों के रूप में एक केन्द्रीय सलाहकार-बोर्ड और २२ परगना-सलाहकार बोर्ड थे। इनका चुनाव राज्य ने किया था, तथापि उसने इनकी सलाह की कुछ कद्र न की। अस्तु, व्यवहार में शासन एकतंत्री ही रहा।

* इससे स्पष्ट है, कि शासन और न्याय कार्य पृथक्-पृथक नहीं है।

२८ मई १९४१ को नये सुधारों की घोषणा की गयी। इसके अनुसार ६४ सदस्यों की प्रतिनिधि सलाहकार सभा ('रेप्रेजेन्टेटिव एडवाइजरी असेम्बली') संगठित की गयी है:—

| | | |
|---|---|---|
| निर्वाचित | | ४१ |
| सार्वजनिक क्षेत्र | ३३ | |
| विशेष क्षेत्र | ८ | |
| नामजद | | २३ |
| गैर-सरकारी | ९ | |
| सरकारी | १४ | |
| योग | | ६४ |

गैर-सरकारी सदस्यों में अल्पसंख्यक जातियों के प्रतिनिधियों के लिए स्थान रखा गया है। असेम्बली की आयु दो वर्ष निश्चित की गयी है। वह जनता की सामाजिक, आर्थिक, व्यावसायिक, शिक्षा सम्बन्धी, स्थानीय संस्थाओं की उन्नति और देवस्थानों के सुधार सम्बन्धी विविध विषयों पर अपनी सलाह दे सकती है; और जागीरी इलाकों के बाबत सिफारिश कर सकती है।

इन सुधारों में दो बातें अच्छी हैं—प्रथम तो चुनाव संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली के अनुसार होगा; दूसरे, राज्य के लिए एक ही सभा संगठित की गयी है, जागीरदारों आदि के लिए दूसरी सभा का आयोजन नहीं किया गया है। तथापि सुधार संतोषप्रद नहीं हैं। असेम्बली में नामजद सदस्यों की संख्या इतनी अधिक है कि यदि उनके साथ विशेष क्षेत्रों से निर्वाचित सदस्य मिल जायँ, (जिसकी बहुत

सम्भावना है ) तो सार्वजनिक क्षेत्रों से निर्वाचित सदस्यों की अधिकता नाममात्र की रह जाती है। निर्वाचन सम्बन्धी व्यवस्था भी ठीक नहीं है। फिर, असेम्बली आखिर एक सलाहकार सभा ही तो है, इस सलाह या सिफारिश से शासक बाध्य नहीं है। वे चाहें तो इसकी सर्वथा उपेक्षा कर सकते हैं। मारवाड़ लोकपरिषद की कार्यकारिणी ने इस सम्बन्ध में विविध संशोधनों की आवश्यकता बतायी परन्तु जोधपुर सरकार ने उन्हें स्वीकार न किया तथा सुधारों को पूर्व रूप में ही अमल में लाने का निश्चय रखा। इस पर परिषद ने असेम्बली का बहिष्कार कर दिया। इससे प्रायः सभी स्थानों से जागीरदार आदि प्रतिगामी दलों के ही आदमी चुने गये।

न्याय की सर्वोपरि अदालत इजलासखास है। इस में महाराजा साहब तथा (कौंसिल के) सातों मंत्री होते हैं। यह चीफकोर्ट की अपील सुनती है। किसी मिनिस्टर के हुक्म की अपील तथा निगरानी भी इसी में होती है। इसे मारवाड़ राज्य की 'प्रिवी कौंसिल' कहा जाता है। इसके नीचे चीफकोर्ट है, जिसका कार्य अपने से नीचे की अदालतों की अपील सुनना है। राज्य में चार सेशनकोर्ट और पाँच जुडीशल सुपरिंटेन्डेन्टों की अदालतें हैं। परगनों ( जिलों ) में हाकिम तथा नायब हाकिम है, जिन्हें दीवानी और फौजदारी के निर्धारित अधिकार हैं। बड़े ठिकानों में जागीरदारों को प्रथम, द्वितीय या तृतीय श्रेणी के न्याय सम्बन्धी अधिकार हैं।* राज्य में अनेक मुकदमों का बड़ी मुद्दत

*जागीरदार प्रायः अपने इन अधिकारों का दुरुपयोग करते हैं, इस लिए बहुतों के अधिकार छीने या घटाये भी गये हैं।

तक फैसला नहीं हो पाता, इससे लोगों को बड़ी परेशानी और धन-हानि होती है। पंचायतों के प्रचार की बड़ी आवश्यकता है।

इस राज्य में म्युनिसपैलटियां आदि स्वराज्य, संस्थाएँ बहुत कम रही हैं। जोधपुर शहर को छोड़ कर खालसा में कुल मिला कर सात म्युनिसपल बोर्ड हैं, जो विविध उपजातियों के या सरकारी सदस्यों के बने हुए हैं। जागीरी क्षेत्र में केवल दो म्युनिसपैलटियां हैं, वे भी नाममात्र की। जोधपुर शहर के म्युनिसपल बोर्ड की स्थापना राष्ट्रीय कांग्रेस के करीब-करीब साथ ही हुई थी, परन्तु इसका प्रथम इलकेवार चुनाव सन् १९४१ में हुआ। स्थानीय लोकपरिषद का उसमें प्रचंड बहुमत रहा। बोर्ड के सभापति, अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद के प्रधान मन्त्री, श्री० जयनारायण जी व्यास निर्वाचित हुए। बोर्ड के अधिकार बहुत कम होने, तथा राज्य का यथेष्ट सहयोग न मिलने पर भी उसने पानी, सड़क, रोशनी तथा जनता की अन्य सुविधाओं की व्यवस्था के सम्बन्ध में अच्छा लोकहितकारी कार्य किया। परन्तु उसे अपने इस कार्य से सन्तोष न हुआ। आखिर, २५ मई १९४१ ई० को श्री० व्यास जी ने अधिकारियों से सहयोग न मिलने आदि के सम्बन्ध में एक सविस्तर वक्तव्य देकर लोकपरिषद-पार्टी के तेरह सदस्यों सहित त्यागपत्र दे दिया।

राज्य शिक्षा में बहुत पिछड़ा हुआ है। सन् १९४१ ई० की मनुष्य-गणना के अनुसार यहाँ एक हजार में केवल ४६ व्यक्ति पढ़े-लिखे हैं। जोधपुर शहर में अवश्य कई संस्थाएँ हैं, एक कालिज और दरबार हाईस्कूल के अतिरिक्त कई जातियों के अपने-अपने हाईस्कूल हैं,

कन्याओं की शिक्षा की भी व्यवस्था है। परन्तु परगनों और देहातों में शिक्षा का प्रबन्ध बहुत ही कम है। विशेषतया जागीरी इलाकों में लोगों की निजी पाठशालाएँ अधिकारियों द्वारा बन्द किये जाने का भी कटु अनुभव होता है। इसका कारण नहीं बताया जाता; अनेक दशाओं में लिखित सूचना भी नहीं दी जाती।

दिसम्बर १९१२ में जब इन पंक्तियों का लेखक पोकरण में, मारवाड़ी शिक्षा मंडल द्वारा संचालित, माहेश्वरी स्कूल का हेडमास्टर था, ठिकाने ने जोधपुर दरबार के सन्मुख उक्त स्कूल पर सम्भवतः यह अभियोग लगा कर कि यहाँ विद्यार्थियों को 'वन्देमातरम्' कहना सिखाया जाता है, उसे बन्द कर दिया था। इस बात को तीस वर्ष हो गये, अब भी परिस्थिति में विशेष सुधार नहीं हुआ।

दमन और नागरिक अधिकारों की अवहेलना में यह राज्य बहुत आगे रहा है। साइक्लोस्टाइल और टाइपराइटर एक्ट आदि प्रेस के संहारक कानूनों का अपयश लेने वाला यही राज्य है। सन् १९३२ का आर्डिनेन्स, राजद्रोह-कानून इत्यादि अपने ढङ्ग के अनोखे कानून हैं, जिनसे राजनैतिक संस्थाओं को दम चाहे-जब घोटा जा सकता है; कार्यकर्त्ता चाहे-जब नज़रबन्द किये जा सकते हैं। पुरानी बातों को जाने दें। सन् १९४१ में (जब कि राज्य ने शासन-सुधारों की ओर कदम बढ़ा दिया था), यहाँ मारवाड़ी विद्यार्थी सम्मेलन पर यह कहकर रोक लगायी गयी कि उसमें राजनैतिक चर्चा होगी, जो युद्ध के दिनों में वांछनीय नहीं है। राज्य में संस्थाओं की रजिस्टरी करानी होती है। रजिस्टरी-कानून के प्रयोग से सभा-सोसायटियों का मनमाना दमन हो सकता है।

राज्य में एक काम अच्छा हुआ है। सन् १६४० ई० से यहाँ 'प्रजा सेवक' नामक साप्ताहिक पत्र बड़ी निर्भीकता से निकला। अब तक राजपूताने के कार्यकर्त्ताओं को अपना स्वतंत्र पत्र निकालने के लिए अजमेर या ब्यावर की शरण लेनी होती थी, पर अब जोधपुर राज्य ने सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता श्री० अचलेश्वरप्रसाद जी शर्मा के सम्पादकत्व में ऐसा उत्तम पत्र अपने यहाँ निकलने दिया। क्या राज्य अपनी इस एकमात्र उल्लेखनीय उदारता को बनाये रखेगा !*

जोधपुर राज्य में जन-जागृति की लहर काफी समय से है। सन् १६१८ ई० से यहाँ कितनी ही सार्वजनिक कार्य करने वाली संस्थाएँ स्थापित हुईं, यथा मारवाड़ हितकारिणी सभा, यूथ-लीग (युवक संघ), जोधपुर पीपल्स एसोसियेशन, बाल भारत सभा, जोधपुर राज्य प्रजामंडल, नागरिक स्वतंत्रता संघ,आदि। इनका कार्य-क्षेत्र प्रायः जोधपुर नगर तक ही सीमित था। राज्य की दमन-नीति के कारण इनमें कोई चिरंजीवी न हुई। नवम्बर १६३७ में जोधपुर राज्य प्रजामंडल गैर-कानूनी ठहराया गया और उसके प्रधान श्री० अचलेश्वरप्रसाद जी को ढाई वर्ष की कैद की सजा दी गयी। नागरिक स्वतंत्रता-संघ भी इन्हीं दिनों गैर-कानूनी ठहराया गया। राज्य में उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित कराने के लिए मई १६३८ में, मारवाड़ लोकपरिषद की स्थापना हुई। क्रमशः इसके सदस्यों की

* मई १९४२ में श्री० शर्मा जी जेल गये, और पत्र के लिए नया डिक्लेरेशन दाखिल किया गया। पुस्तक छपते समय तक पत्र के पुनः प्रकाशन की अनुमति नहीं दी गयी।

संख्या बढ़ी, और राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में इसकी नयी-नयी शाखाएँ खुलती गयीं। यह बात अधिकारियों को खटकने वाली रही। जागीरदारों ने भी चहुँओर यह प्रचार किया कि परिषद तो अराजकतावादियों और क्रान्तिकारियों की है। फल-स्वरूप जोधपुर में लोकपरिषद के कार्यकर्त्ताओं का दमन किया गया। बड़ी कठिनाई से, काफी संघर्ष के बाद, राज्य का परिषद से समझौता हो पाया। परिषद का खुले रूप में प्रथम अधिवेशन फरवरी १९४२ को लाडनू में श्री० रणछोड़दास जी गट्टानी बी०ए० एल-एल० बी० की अध्यक्षता में बड़े समारोह से हुआ।

पहले कहा जा चुका है कि जोधपुर राज्य में अस्सी सैकड़ा से भी अधिक जमीन के मालिक जागीरदार हैं। ये जनता का भरसक शोषण करते हैं। राज्य में गैर-कानूनी ठहरायी हुई बेगार और लागें ये कसकर लेते हैं, और जो कोई इनकी ज्यादतियों के विरुद्ध जबान हिलाता है, उसे बुरी तरह सताते हैं। २८ मार्च १९४२ को मारवाड़ में उत्तरदायी शासन-दिवस मनाया गया। कई ठिकानेवालों को यह सहन न हुआ। चंडावल में कार्यकर्ताओं पर लाठियों और भालों से हमला किया गया। दो दर्जन व्यक्तियों को सख्त चोटें आयीं, जिनमें एक महिला भी थी। नीमाज में चंडावल का अनुकरण किया गया। रोड के जागीरदार ने परिषद के प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री० उमाराम जी चौधरी का घर जलवा दिया!

इन बातों को लोक परिषद कब तक देखती रहती! उसने पहले चंडावल के मामले की जाँच करने का निश्चय किया। इस पर वहाँ

१४४ दफ़ा लगाकर सार्वजनिक सभाओं पर रोक लगादी गयी। परिषद ने अब सत्याग्रह करने की ठान ली। उसके सभापति श्री० गट्टानी जी तथा अन्य सज्जन चंडावल पहुँच गये, पर उसी दिन राज्य ने सभाओं पर लगायी रोक हटाली। यह जनता की विजय हुई। पर इससे मूल जागीरी समस्या हल न हुई। लोकपरिषद के डिक्टेटर श्री० जयनारायण जी व्यास ने महाराज से मिलकर भ्रम-निवारण करना चाहा, पर उनकी बात स्वीकार न की गयी। आखिर, श्री० व्यास जी को, परिषद के कई अन्य डिक्टेटरों, सभापति श्री० गट्टानी जी, तथा विविध कार्यकर्ताओं को गिरफ़्तार करके बन्दी बनाया गया, जिन में श्री० अचलेश्वरप्रसाद जी शर्म्मा (सम्पादक 'प्रजा-सेवक') भी थे।* परिषद ने राज्य में उत्तरदायी शासनपद्धति स्थापित करने और जागीरदारों के अत्याचारों का अन्त करने के लिए भरसक प्रयत्न किया, कष्ट सहे, और बलिदान किया तथा करती रहेगी। उसके कार्यकर्त्ताओं की गिरफ़्तारी से राज्य में शान्ति नहीं हो सकती; शान्ति का उपाय यही है कि परिषद की माँगें—जो सर्वथा उचित और न्यायानुमोदित हैं—स्वीकार की जायँ।

---

* जेल में बन्दियों के साथ बहुत दुर्व्यवहार किया गया, और उनकी शिकायतों की ओर ध्यान नहीं दिया गया। इस पर श्री० व्यास जी तथा अन्य व्यक्तियों ने भूख-हड़ताल की। इनमें एक सज्जन राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता श्री० बालमुकुन्द जी बिस्सा भी थे; आपका जोधपुर के अस्पताल में देहान्त ही हो गया। परिस्थिति जानने के लिए अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद के श्री० द्वारकानाथ जी कचरू और कन्हैयालाल जी वैद्य जोधपुर गये तो उन्हें साल भर तक के लिए राज्य से बाहर निकाल दिया गया।



# बियालीसवाँ अध्याय



## मेवाड़

आज राजस्थान का वह पुण्य गौरव अतीत अन्धकारमय गर्भ में लीन हो चुका है। चित्तौड़ का कीर्ति-स्तम्भ जर्जरित भग्नावशेषों में ही परिणत हो गया है। —इन्द्र विद्यालंकार

मेवाड़ राजपूताने का अत्यन्त प्रतिष्ठित राज्य है। इसे इसकी राजधानी के नाम पर उदयपुर राज्य भी कहा जाता है। इसका क्षेत्रफल १२,६६१ वर्गमील, जनसंख्या (सन् १९४१ की गणना के अनुसार) १६,२६,१२८ है। सन् १९३८ में अजमेर-मेरवाड़ा का एक हिस्सा, वहाँ के रहनेवालों के विरोध करने पर भी, ब्रिटिश सरकार ने इस राज्य को सौंप दिया; इस हिस्से का क्षेत्रफल २५० वर्गमील और जनसंख्या लगभग ४६ हजार है। मेवाड़ राज्य (खालसा) की वार्षिक आय लगभग ५० लाख चित्तौड़ी और २५ लाख कलदार रुपये है। राज्य का एक-तिहाई भाग जागीर और माफी है।

इस राज्य की नींव रामचन्द्र जी के वंशज कनकसेन ने सन् १४४ ई० के लगभग डाली। राजा को महाराणा की उपाधि है, वह गहलोत राजपूतों के अन्तर्गत सिसोदिया उपजाति का है। गहलोत राजवंश की स्थापना सन् ७२४ में बप्पारावल ने की थी।

इस राज्य की राजधानी चित्तौड़ पर मुसलमानों ने तीन बार धावा किया, सन् १३०३, १५३४ और १५६७ में। अन्तिम आक्रमण से अकबर का चित्तौड़ पर अधिकार हो गया तो राणा उदयसिंह ने उदयपुर नगर बसाकर उसे राजधानी बनाया। पीछे उनके पुत्र सुप्रसिद्ध महाराणा प्रताप ने लगभग सारा मेवाड़ राज्य वापिस ले लिया। इनके बाद प्रायः राज्य की स्थिति में उथल-पुथल रही। पहले मुगलों का सामना करना पड़ा, और पीछे मरहठों और पिंडारियों का। अन्ततः सन् १८१८ में महाराणा भीमसिंह ने अंगरेजों की सहायता लेना स्वीकार कर लिया। सन् १९३० में महाराणा फतेहसिंह का देहान्त होने पर श्री० भूपालसिंह जी गद्दी पर बैठे।

शासन-व्यवस्था एकतंत्रीय है। स्व० महाराणा फतेहसिंह जी के समय में शासन-प्रबन्ध ही नहीं, न्याय, और कानून-निर्माण सम्बन्धी अधिकारों का भी पूर्ण उपयोग केवल महाराणा साहब ही करते थे; नाममात्र को महकमा खास का एक मंत्री था। महाराणा साहब के अन्तिम समय में मंत्री दो रहने लगे थे। महाराणा भूपालसिंह जी के गद्दी पर बैठने के समय एक मुसाहबआला (प्रधान परामर्शदाता) की नियुक्ति की गयी, और भिन्न-भिन्न विभागों का नियमानुसार संगठन किया गया। सन् १९४० ई० में इस पद्धति का अधिक विकास हुआ; मुसाहबआला के स्थान पर प्रधान मन्त्री नियुक्त किया गया और उसकी अधीनता में चार मंत्रियों की समिति बनायी गयी, जो अपने-अपने कार्य के लिए उत्तरदायी बना दिये गये। मंत्रियों के विभाग ये हैं:—(१) शिक्षा, स्वास्थ्य आदि (२) माल, (३) राजस्व, और

(४) गृह। प्रधान मन्त्री एवं अन्य मन्त्री महाराणा साहब द्वारा नियुक्त होते हैं और उनके ही प्रति उत्तरदायी होते हैं, जनता के प्रति नहीं।

राज्य नौ जिलों में विभक्त है। जिले के प्रमुख कर्मचारी को डिप्टी कलेक्टर कहते हैं, उसे माल, शासन और न्याय सम्बन्धी सब अधिकार होते हैं, और वह विविध विषयों में सम्बंधित मंत्रियों के अधीन होता है। राज्य में एक सलाहकार बोर्ड स्थापित है, उसमें सब सदस्य, सरकारी और गैर-सरकारी नामजद ही होते हैं। इस बोर्ड को राज्य के कुछ साधारण विषयों में सलाह देने भर का अधिकार है, बजट जैसे महत्वपूर्ण विषय में तो वह सलाह भी नहीं दे सकता। सन् १९४१ में एक व्यवस्थापक सभा (लेजिस्लेटिव असेम्बली) स्थापित करने के सम्बन्ध में एक योजना प्रकाशित की गयी है, उसके अनुसार असेम्बली में सभापति के अतिरिक्त ६५ सदस्य होंगे:—

| | | |
|---|---|---|
| निर्वाचित | | ३९ |
| सार्वजनिक क्षेत्र | ३० | |
| विशेष क्षेत्र | ९ | |
| नामजद | | २६ |
| गैर-सरकारी | १४ | |
| सरकारी | १२ | |
| योग | | ६५ |

विशेष निर्वाचन क्षेत्रों में जागीरदार, उद्योग-धंधे, व्यापार, मजदूर, वकील आदि होंगे। सरकार असेम्बली में पेश किये हुये बिल के लिए ऐसे दो आदमियों को नामजद कर सकती है, जिन्हें उसके विषय में

विशेष ज्ञान या अनुभव हो और उस बिल के सम्बन्ध में, उन्हें मेम्बरों के सारे हक्क होंगे, और वे ऊपर बतलाए मेम्बरों के सिवा होंगे।* इस असेम्बली का कार्य-काल तीन वर्ष का होगा। प्रति वर्ष इसके दो अधिवेशन होंगे, और वे दस-दस दिन रहेंगे। असेम्बली के सभापति को नियुक्त करने तथा उसे हटाने का अधिकार महाराणा साहब को ही होगा; उपसभापति मेम्बरों द्वारा और उन्हीं में से चुना जायगा।

महाराणा, राजपरिवार, सेना, संधि, महाराणा द्वारा निश्चित किये हुए विषयों और असेम्बली के विधान आदि के विषय में, असेम्बली में कोई प्रस्ताव या संशोधन उपस्थित नहीं किया जा सकेगा। राज्य की आय, जनता के धार्मिक अधिकार या रिवाज आदि के कुछ विषय ऐसे रखे गये हैं, जिन पर कोई प्रस्ताव या संशोधन उसी दशा में उपस्थित किया जा सकेगा, जब पहले से उसके लिए स्वीकृति ले ली गयी हो।

इस योजना के सम्बन्ध में यहाँ के प्रजामंडल का मत निम्नलिखित है:—

(१) योजना में जनता के आधारभूत नागरिक अधिकारों की घोषणा शामिल होनी चाहिए। (२) योजना की भूमिका में यह साफ होना चाहिए कि राज्य इस योजना को उत्तरदायी शासन की ओर ले जानेवाला एक कदम मानता है। (३) विशेष हितों और वर्गों

* इन मेम्बरों को मत देने का अधिकार होगा। इससे स्पष्ट है कि यदि सरकार चाहे तो वह किसी प्रस्ताव पर विचार करते समय, अपने पक्ष का बल दो मतों से बढ़ा सकती है।

को जो भी प्रतिनिधित्व दिया जाय, वह चुने हुए सदस्यों में से नहीं, बल्कि नामजद सदस्यों में से दिया जाय। (४) असेम्बली को अपना सभापति खुद चुनने का अधिकार होना चाहिए। (५) किसानों को इस बात की आजादी होनी चाहिए कि वे, जिसे चाहें, प्रतिनिधि चुन सकें। (६) असेम्बली को बजट पर प्रस्ताव करने और मत देने का अधिकार हो। (७) असेम्बली को उन प्रस्तावों पर विचार करने के लिए, जिनका असर राज्य के आय-व्यय पर पड़ता हो, राज्य की पूर्व स्वीकृति आवश्यक न हो। (८) असेम्बली के विधान, संगठन आदि सम्बन्धी विषय उसके विचार-क्षेत्र के बाहर न हों। (६) विधान की वह उपधारा हटा दी जाय जिसमें यह कहा गया है कि ऐसे प्रस्ताव आदि असेम्बली में पेश न किये जा सकेंगे, जिन्हें महाराणा निश्चित करार देदें। (१०) मतदाताओं की योग्यताओं में काफी कमी होनी चाहिए।

राज्य में सर्वोच्च न्याय-संस्था हाईकोर्ट है, इसमें चीफ-जस्टिस के अतिरिक्त तीन अन्य जज हैं। इसके 'आरिजिनल' भाग में दीवानी के बहुत बड़े-बड़े मुकदमे होते हैं। अपील भाग में सेशन-कोर्टों के, और अव्वल दर्जे के ठिकानों के, मुकदमों की अपील होती है। राज्य में सेशन-कोर्ट दो जगह हैं—उदयपुर नगर में और भीलवाड़ा में। न्यायाधीशों को न्याय करने की यथेष्ट स्वतंत्रता नहीं है, अनेक बार उनपर अधिकारियों का अनुचित दवाव पड़ता है।

राज्य में प्राय ब्रिटिश भारत के कानून ही मेवाड़-कानून के रूप में प्रचलित हैं। आठ-दस वर्ष हुए एक 'ला कमेटी' इसलिए स्थापित

की गयी थी, कि मेवाड़ के लिए कानून के मसविदे तैयार करके महकमाखास, (जो राज्य का सेक्रेटेरियट आफिस कहा जा सकता है) के पास मंजूरी के लिए भेजे। इस कमेटी ने मेवाड़ 'पिनलकोड', रजिस्टरी, कोर्ट-फीस आदि के सम्बन्ध में कुछ कानून बनाये। हाल में इस कमेटी का पुनर्निमाण हुआ है, इस में कुछ गैर-सरकारी सदस्य भी नामजद हुए हैं।

सन् १९३९ ई० तक राज्य भर में, केवल उदयपुर नगर में ही म्युनिसपैलटी थी; उसमें भी सदस्य राज्य द्वारा नामजद होते थे। मेवाड़ प्रजामंडल की स्थापना होने के बाद, उसकी माँग होने पर राज्य ने म्युनिसपैलटी में निर्वाचित सदस्य रखने का निश्चय किया। प्रजा-मंडल पर प्रतिबन्ध होने के कारण किसी ने निर्वाचन में भाग न लिया। उदयपुर नगर के अतिरिक्त अब चार अन्य स्थानों में भी म्युनिसपैलटियाँ है, वे उदयपुर म्युनिसपैलटी के अधीन हैं। उनके सदस्य सरकार द्वारा नामजद हैं। राज्य में पंचायतें भी बहुत कम हैं, उनका कार्य प्रारम्भिक अवस्था में है।

राज्य की आय का १६,१७ फीसदी भाग महाराणा साहिब के लिए खर्च होता है, इसके अतिरिक्त कुछ अन्य मदों के खर्च का भी विशेष लाभ महाराणा साहब को ही मिलता है। पुलिस और फौज पर लगभग २० प्रतिशत आय खर्च हो जाती है। इसकी तुलना में जनता की शिक्षा स्वास्थ्य आदि राष्ट्र-निर्माणकारी कार्यों में बहुत कम व्यय होता है। विशेषतया देहातों में इन कार्यों की व्यवस्था बहुत कम है।

मेवाड़ राज्य का लगभग एक-तिहाई भाग जागीरों में है यहाँ जागीरदारों का काफी ज़ोर है, उनमें से १६ प्रथम श्रेणी के हैं, और ३२ द्वितीय श्रेणी के। कुछ जागीरदारों को सरकार की ओर से गारंटी है, उनके विरुद्ध महाराणा, सरकार की स्वीकृति बिना, कोई कारवाई नहीं कर सकते। जागीरदारों की दुर्व्यवस्था और निरंकुशलता के कारण वहाँ की जनता की अवस्था अत्यन्त चिन्तनीय है।

भारतवर्ष भर में मेवाड़ ही वह राज्य है जिसकी जनता ने सब से प्रथम सत्याग्रह में भाग लिया। बिजौलिया के किसान बेगार, लाग-बाग तथा लगान की ज्यादती से बहुत कष्ट पा रहे थे। उन्होंने श्री० पथिक जी के नेतृत्व में अपने उद्धार का महान प्रयत्न किया। इसमें उन्हें जेल, मारपीट, तथा माली नुकसान सब ही सहना पड़ा। आखिर सन् १६२२ में ए० जी० जी० ने मेवाड़-सरकार के बिजौलिया के किसानों और जागीरदारों के बीच में पड़कर समझौता करा दिया। बेगार तथा बेजा लागतें उठा दी गयीं, किसानों की पंचायतों को स्वीकार किया गया। जमीन का लगान कायम करने के लिए स्थायी बन्दोबस्त करने की बात तय हुई। देशी राज्यों में सत्याग्रह की यह पहली विजय थी। बिजौलिया की जागृति की लहर दूर-दूर तक पहुँची। संगठन हुए, और बेगार तथा अनुचित लाग-बाग का जगह-जगह विरोध किया जाने लगा। श्री० मोतीलाल जी तेजावत के नेतृत्व में भीलों का विराट् आन्दोलन हुआ, जिसमें दमन के फल-स्वरूप अनेक भील मारे गये। हाँ, पीछे लगान में कमी हुई, और कई अनुचित लागें हटा दी गयीं। ठिकाना बेगूं में भी जबरदस्त किसान आन्दोलन हुआ।

जनता में अधिकार-प्राप्ति की भावना बनी रही। सन् १९३८ में मेवाड़ प्रजामंडल स्थापित किया गया। दो सप्ताह में ही इसके सैकड़ों सदस्य बन गये। अधिकारियों ने इस पर प्रतिबन्ध लगाया। अक्तूबर में यहाँ सत्याग्रह-संग्राम बहुत जोर से हुआ, जिसमें महिलाओं ने भी खूब भाग लिया।

सत्याग्रह पूरे छः मास तक चला। पीछे महात्मा गाँधी के आदेशानुसार वह स्थगित कर दिया गया। कार्यकर्त्ता रचनात्मक कार्य करने लगे। उनके आन्दोलन से राज्य में बेगार-प्रथा बन्द हुई। फरवरी १९४१ में प्रजामंडल पर से प्रतिबन्ध उठाया गया। इसके बाद राज्य में उसका खूब प्रचार हुआ। किसान-समिति का भी संगठन हुआ। प्रजामंडल भीलों के सेवा-कार्य, पुराने कर्ज के दावों को निपटाने, हरिजन तथा दलितों का उत्थान, औद्योगिक उन्नति, शिक्षा-प्रचार तथा अन्य जनहित-कार्यों में लगा हुआ है। नवम्बर १९४१ में प्रजामंडल का प्रथम अधिवेशन श्री० माणिक्यलाल वर्मा के सभापतित्व में बड़े समारोह से हुआ, उसने राज्य में उत्तरदायी शासन स्थापित करने का, अपना उद्देश्य घोषित किया, और जनता को नागरिक अधिकार देने की ओर राज्य का ध्यान आकर्षित किया।

जनता को नागरिक स्वतंत्रता नहीं है। सन् १९३८ के सत्याग्रह के समय जारी किये गये दमनकारी कानून अब भी मौजूद हैं। संस्था बनाने, सभा-सम्मेलन करने, भाषण देने और प्रेस सम्बन्धी स्वतंत्रता बहुत कम है। कितने ही व्यक्तियों तथा पत्रों का मेवाड़-प्रवेश निषिद्ध है। शासन में प्रजा के अधिकार की बात दूर रही, लोगों को

अधिकार है। इसे केबिनेट या मंत्रिमण्डल कहा जाता है; परन्तु जन-सत्तात्मक शासनप्रणाली में जैसे मंत्रिमण्डल होते हैं, वैसा सङ्गठन इसका नहीं है, इसलिए इसका यह नाम अनुचित है।

कुछ दिनों पूर्व कौंसिल में प्रधान मंत्री अर्थात् प्राइम-मिनिस्टर के अतिरिक्त मिनिस्टर-इन-वेटिंग, न्याय-मंत्री, माल-मंत्री, उन्नति-विभाग-मंत्री, सेना-मंत्री और गृह-मन्त्री थे। अब नए प्राइम-मिनिस्टर सर मिर्जा इस्माइल के आने के बाद से उनके खुद के अलावा कौंसिल में सिर्फ चार मन्त्री और रखे गये हैं—यथा अर्थ-मन्त्री, माल-मन्त्री, गृह-मन्त्री, और सेना-मन्त्री। मन्त्रियों की सहायता के लिए पाँच सेक्रेटरी भी रहेंगे जिनमें से एक चीफ-सेक्रेटरी कहलायेगा। पाँच मन्त्रियों के अतिरिक्त एक सेटलमैण्ट-मिनिस्टर भी है, जो कौंसिल में उसी दशा में उपस्थित होता है, जब कोई बन्दोबस्त सम्बन्धी विषय विचाराधीन होता है। मिनिस्टर-इन-वेटिङ्ग का कौंसिल में स्थान नहीं है। प्रत्येक मन्त्री को कुछ-कुछ शासन विभाग सौंपे हुए हैं।

प्रधान मंत्री राजनैतिक विभाग (नरेन्द्र मण्डल आदि), सार्व-जनिक-निर्माण-कार्य, उद्योग और व्यापार आदि के काम देखते हैं। फाइनेंस-मिनिस्टर राजस्व, शिक्षा, रेलवे, डाकखाने, स्टेट प्रेस आदि के काम देखते हैं। होम-मिनिस्टर न्याय, आबकारी और जकात, जेल, स्वास्थ्य और चिकित्सा, म्युनिसपैलटी आदि विभागों के काम देखते हैं। माल-मंत्री के जिम्मे बन्दोबस्त और लगान, जंगलात, कृषि, ग्राम-सुधार, सलाहकार बोर्ड, सांभर शामलात आदि विभाग हैं। सेना-मंत्री फौज, पुलिस, किले, हवाई रक्षा कार्य, शस्त्रास्त्र, पेंशन पानेवाले सैनिक आदि से संबंधित कार्य देखते हैं। मिनिस्टर-इन-वेटिंग घर-गृहस्थी

( 'हाउसहोल्ड' ) राजकीय सहायता या दान, महल और उसके बाग, मोटर, पालकीखाना, रथखाना, दवाखाना; शिकारखाना, खबर, आदि विभागों का काम देखते हैं।

अब तक कौंसिल के प्रेसीडेण्ट स्वयं महाराजा साहब रहते थे। अब प्रधान मन्त्री ही प्रेसीडेन्ट नियुक्त कर दिये गये हैं। मन्त्रियों की नियुक्ति या अलहदगी महाराजा साहब ही कर सकते हैं, जनता का इस पर कुछ नियन्त्रण नहीं है। इससे स्पष्ट है कि मन्त्री जनता के प्रति जिम्मेवार नहीं है। प्रधान मंत्री की नियुक्ति प्रकट में तो महाराजा साहब द्वारा ही होती है, परन्तु ऐसी नियुक्ति तथा शासन के अन्य महत्वपूर्ण मामलों में ब्रिटिश सरकार के राजनैतिक विभाग का काफी असर दिखायी देता है।

कानून बनाने के लिए यहाँ कोई व्यवस्थापक सभा नहीं है। कौंसिल में पास होकर जो कानून महाराजा साहब द्वारा स्वीकृत हो जाता है, वही अमल में आने लगता है।

आय-व्यय का बजट प्रति वर्ष कौंसिल ही बनाती और पास करती है। प्रस्तावित बजट जनता की सम्मति के लिए प्रकाशित नहीं किया जाता। पास होने पर भी वह सर्वसाधारण को नहीं मिल पाता। शासन-रिपोर्ट भी दो वर्ष से ही जनता के सामने आने लगी है।

मालगुजारी की वसूली के लिए राज्य के दो भाग दीवानी शर्की और दीवानी गर्बी है। इनके अन्तर्गत ११ निजामतें हैं, जिनमें ३० तहसीलें हैं। इनके अधिकारी क्रमशः दीवान, नाज़िम और तहसील-दार हैं। इनके सहायक नायब दीवान, नायब नाज़िम और नायब तहसीलदार हैं।

नाज़िम निजामत का माल-अफसर होने के अलावा मजिस्ट्रेट भी है। दीवानी मामलों के काम मुंसिफ करते हैं। कहीं-कहीं सबजज और एसिस्टेएट सेशन जज भी हैं। अपील के लिए अपील कोर्ट है और रियासत की सब से ऊँची अदालत चीफ-कोर्ट है जिसमें एक चीफ-जस्टिस और तीन जज हैं। मुकदमों का फैसला होने में देर तो बहुत लगती ही है; न्याय मँहगा भी बहुत पड़ता है। बहुत से मामलों में पुलिस का गुप्त रूप से अनुचित हस्तक्षेप होता है या असर पड़ता है। सीकर, खेतड़ी और उणियारा ठिकानों को दीवानी तथा फौजदारी के अधिकार प्राप्त हैं, बाकी ठिकानों के मामले निजामतों में जाते हैं। लेकिन छोटे ठिकानों में भी कई एक जनता को गैर-कानूनी तरीके से दबाते रहते हैं।

राज्य में स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं की शोचनीय कमी है। उल्लेख योग्य म्युनिसपैलटी केवल राजधानी में ही है। राज्य में कई कस्बे ऐसे हैं जिनकी आबादी घनी है तथा जहाँ की जनता में शिक्षित वर्ग की कमी नहीं है, परन्तु उनमें भी म्युनिसपल बोर्ड स्थापित नहीं किये गये हैं। झुंझनू और हिण्डौन में नाममात्र की म्युनिसपल कमेटी हैं जिनके सब सदस्य नामज़द हैं। जयपुर शहर के म्युनिसपल बोर्ड में भी मताधिकार बहुत संकुचित है। तीस सदस्यों में १५ नामज़द किये जाते हैं। चेयरमैन भी सरकार द्वारा नामज़द सरकारी व्यक्ति है। नामज़द चेयरमैन के अधिकार काफी विस्तृत हैं और सम्बन्धित मिनिस्टर तो सर्वेसर्वा ही है। ग्राम-पंचायतों के संगठन के लिए कानून बन चुका है। पंचायतें कहीं भी सफल नहीं हो रही हैं, कारण इनमें भी सरकार

के नामज़द व्यक्ति हैं जो जनता का विश्वास-प्राप्त नहीं कर पाते। इन्हें खर्च के विषय में कोई अधिकार नहीं हैं, और ये ग्राम-सुधार आदि कार्य के लिए आवश्यक धन संग्रह नहीं कर सकतीं।

एक केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड है। इसको यह काम सौंपा हुआ है कि सार्वजनिक हित के प्रश्नों पर सलाह दिया करे। परन्तु उसकी सलाह का कोई महत्व नहीं, इस लिए इस बात का भी कुछ महत्व नहीं कि 'बोर्ड के विधान का आधार व्यापक है, बोर्ड में विभिन्न हितों और वर्गों के प्रतिनिधि मौजूद हैं, और इसके ४८ सदस्यों में से ३५ ग़ैरसरकारी हैं।'

जिला सलाहकार बोर्डों की दशा भी असन्तोषप्रद है। जनता की आवश्यकताओं तथा शिकायतों को जानने के लिए इनकी स्थापना की गयी थी। परन्तु इनका संगठन प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों से इतना पिछड़ा हुआ है कि उसमें जनता का प्रतिनिधित्व नहीं हो सकता। इसलिए प्रजामण्डल ने इन सलाहकार बोर्डों के ऐसे सरकारी या अर्द्ध-सरकारी संगठन का पूर्णतया विरोध किया है। वास्तव में इन दिखावटी संस्थाओं के सदस्य अपने सफ़र के भत्ते के हक़दार होने के लिए कभी-कभी मीटिङ्ग में भाग ले लेते हैं; उन्हें लोकहितकारी कार्य की चिन्ता नहीं होती। यदि कभी ये किसी उपयोगी कार्य का प्रस्ताव भी करते हैं, तो अधिकारी उसे अमल में लाने के लिए बाध्य नहीं होते।

शिक्षा के लिए जयपुर शहर में एम० ए० तक का डिग्री कालिज, एक संस्कृत कालिज, एक शिल्प और कला ( आर्ट एण्ड क्राफ्ट ) का स्कूल, दो सरकारी हाई स्कूल और दो-एक सरकारी मिडिल स्कूल

हैं। परन्तु राजधानी को छोड़ कर राज्य भर में 'नोबल्स हाई स्कूल' के अतिरिक्त एक भी राजकीय हाई स्कूल नहीं है। शिक्षा में उन्नति और प्रचार की बात तो दूर रही; पहले यहाँ शिक्षा निश्शुल्क थी, अब अंगरेजी स्कूलों तथा कालिजों में विद्यार्थियों को फीस देनी पड़ती है। नागरिकों को शिक्षा-संस्थाएँ संचालित करने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता; इसके विपरीत इसमें विविध बाधाएँ खड़ी कर दी जाती हैं। राज्य से इजाजत लिए बिना कोई छोटी-से-छोटी शिक्षा-संस्था नहीं खोली जा सकती है। और, इन संस्थाओं में भी अध्यापकों की नियुक्ति के लिए डायरेक्टर शिक्षा-विभाग की अनुमति की जरूरत पड़ती है। राज्य को इस बात का गर्व होना चाहिए था कि शेखावाटी तथा रियासत के अन्य भागों में प्रवासी धनी-मानी और उदार सज्जन तथा कई-एक संस्थाएँ शिक्षा-प्रचार में उसका हाथ बँटा रहीं हैं। परन्तु राज्य के शिक्षा विभाग ने बिड़ला कालिज को डिग्री कालिज न बनने देकर अनिष्टकारी मनोवृत्ति का परिचय दिया है। चरखा संघ, हरिजन सेवक संघ, राजपूताना शिक्षा मण्डल, मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी, विड़ला ऐजूकेशनल ट्रस्ट, वनस्थली बालिका विद्यालय आदि संस्थाएँ शिक्षा आदि विभिन्न रचनात्मक प्रवृत्तियों को सुन्दर ढंग से विकसित कर रही हैं और जन-हितकारी कार्य में लगी हुई हैं परन्तु किसी को भी राज्य की सहायता, सहयोग या सहानुभूति प्राप्त नहीं हैं।

स्वास्थ्य और चिकित्सा के सम्बन्ध में भी विशेषतया देहातों में राज्य की नीति उपेक्षापूर्ण है। ग्राम-सुधार विभाग है अवश्य, पर

उसके कार्य प्रायः शून्य ही हैं। दौसा आदि कई स्थानों में तो लोगों को पानी तक का कष्ट है। जयपुर राज्य में, जहाँ कहीं हैं, वहाँ सड़कें अच्छी हैं।

जयपुर में लगान आदि के सम्बन्ध में जनता को बहुत सी शिकायतें रही हैं। किसान आन्दोलन के फल-स्वरूप शेखावाटी में कई वर्षों के बाद अब बन्दोबस्त होने को है, परन्तु उसके विषय में कई आशङ्काएँ हैं। बेगार यहाँ जाब्ते से तो बन्द है, परन्तु देहातों और जागीरी इलाकों में इसका खूब ज़ोर है।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, जयपुर में दो-तिहाई रियासत जागीरदारों के अधिकार में है। सामान्यतया जागीरदार प्रजा की शिक्षा, स्वास्थ्य, दुर्भिक्ष-निवारण आदि बातों पर ध्यान नहीं देते। इसके अतिरिक्त यदि राज्य की ओर से किसी विषय में सुधार करने की भावना से कोई कमेटी आदि नियुक्त की जाती है, तो उसमें बाधा डालने में भी इनका खास भाग रहता है, और ये राज्य की प्रगति को रोकते रहते हैं।

गत वर्षों में राज्य के उच्च पदों पर विदेशियों तथा बाहर वालों की भरमार रही है। प्राइम-मिनिष्टर बहुत समय से सरकार के राजनैतिक विभाग का व्यक्ति होता आ रहा है। पिछले कई वर्षों में इस पद पर अंगरेज ही रहे, और उनके समय में सीकर-काण्ड, जामामसजिद-गोलीकाण्ड और प्रजामण्डल-सत्याग्रह आदि घटनाएँ हो गयीं। अब सर मिर्जा इस्माइल की प्रधान मंत्री के पद पर जो नियुक्ति हुई है, उससे सन्तोष प्रकट किया जा रहा है। इनसे पहिले भी एक हिन्दुस्तानी प्राइम-मिनिस्टर थे, पर जनमत की उपेक्षा करने में उन्होंने

कोई कमी नहीं की।

जयपुर में कई वर्षों तक नाबालगी शासन रहा जो बहुत खर्चीला था। इस खर्चीले-शासन से सुधार बिल्कुल ही न हुआ, यह तो नहीं कहा जा सकता; तथापि अंगरेज अधिकारी प्रायः ऐसी योजना बनाते थे कि राजप्रबन्ध ब्रिटिश भारत की तरह दीखने तो लगे, लेकिन सचमुच में लोगों को कुछ भी अधिकार प्राप्त न हों। जनता ने अपना बढ़ा हुआ असन्तोष दो लम्बी हड़तालों आदि के द्वारा प्रकट किया, पर अधिकारियों पर इसका भी प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने सार्वजनिक सभाओं पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए कानून बना डाला। तथा राजप्रबन्ध में कई उलटफेर कर दिये। पहले कोर्ट-फीस कम थी, बहीखातों की सादी तहरीर व रुक्कों पर हज़ारों का लेनदेन हो जाता था। अब नये क़ानून पास हुए, कोर्ट-फीस बढ़ा दी गयी, स्टाम्प का नया क़ायदा जारी किया गया, जो बहुत असुविधाजनक हुआ।

नाबालगी शासन से यह अनुभव हुआ कि अंगरेज देशी राज्यों में अधिकारी बनकर कार्यकर्त्ताओं के निर्वासन, समाचारपत्रों के प्रवेश-निषेध और सार्वजनिक सभाओं की बन्दी द्वारा लोक-जीवन नष्ट कर देते हैं तथा राज्य को विदेशी माल से भरकर इनका द्रव्य बरबाद करते हैं। पहले जयपुर का सुरक्षित कोष बहुत प्रसिद्ध था। नाबालगी में बहुत सा द्रव्य सरकारी बैंकों में जमा करा दिया गया। राजकोष से स्थानीय व्यापरियों की सहायता देना बन्द कर दिया गया।

क्रमशः लोगों को शासन के अधिकाधिक दोष दिखायी देने लगे। शासन-सुधार की ओर कार्यकर्त्ताओं का ध्यान आकर्षित होने लगा। प्रजा का अपने संगठन की ओर ध्यान गया और यहाँ प्रजामण्डल का जन्म हुआ। आरम्भ के कुछ वर्षों में इसका कार्य शिथिल

रहा। सन् १९३६ में श्री० हीरालाल जी शास्त्री, उनकी कार्यकर्ता मण्डली, जिसने जीवन कुटीर के प्रयोग में सेवा की अच्छी शिक्षा प्राप्त की थी, तथा जयपुर शहर के प्रमुख नागरिकों ने मिलकर मण्डल का पुनः सङ्गठन किया। तब से यह बराबर प्रगति कर रहा है। इसका उद्देश्य महाराजा साहब की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन स्थापित करना है। मई सन् १९३८ में प्रजामण्डल का अधिवेशन स्व० सेठ जमनालाल जी बजाज की अध्यक्षता में बहुत सफलता पूर्वक हुआ क्रमशः इसका कार्यक्षेत्र बढ़ता गया। इसकी विविध जिला-कमेटियाँ, और प्रवासी-कमेटियाँ बन गयीं। उधर राज्य ने दमनकारी कानूनों, पब्लिक सोसायटीज़ एक्ट ( सार्वजनिक संस्था कानून ), प्रेस एक्ट ( छापाखाना कानून ) और राजकर्मचारियों के लिए बनाये गए क़ानूनों आदि से जन शक्ति को दबाना चाहा।

पब्लिक सोसायटीज एक्ट का आशय यह था कि राज्य से मंजूरी लिये बिना कोई संस्था काम नहीं कर सकती, चाहे उसका उद्देश्य सामाजिक या धार्मिक ही क्यों न हो। प्रेस एक्ट के अनुसार साइक्लोस्टाइल तक रखने के लिए भी पहले राजकीय अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया। राजकर्मचारियों के नियमों में उन्हें आदेश किया गया कि वे अपने आश्रित व्यक्तियों को राजनैतिक हलचल में भाग लेने से रोकें, न रुक सकते हों तो अपने विभाग के अफ़सर को इसकी सूचना दें। सभा करने और जुलूस निकालने पर पाबन्दी पहिले से ही लगी हुई थी, राज्य ने प्रजामण्डल के अकाल-सेवा जैसे कार्यों में भी सहयोग न देने की नीति बर्ती। इन बातों से राज्य का कार्यकर्त्ताओं से विरोध उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

प्रजामण्डल के सभापति सेठ जमनालाल जी मण्डल के अकाल

कष्ट-निवारण के काम को देखने जयपुर जा रहे थे। राज्य ने उनके जयपुर प्रवेश पर पाबन्दी लगा दी। इस स्थिति में सत्याग्रह-आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। सेठ जमनालाल जी बजाज और पं० हीरालाल जी शास्त्री आदि कई नेता और सत्याग्रहियों के कई जत्थे गिरफ़्तार हुए। सत्याग्रह से जयपुर में जनता को जो लाभ हुआ और जो लोक-जागृति हुई उससे इनकार नहीं किया जा सकता। प्रजा की उत्तरदायी शासन की माँग उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है।

सत्याग्रह बन्द हो जाने पर अधिकारियों ने सभाबन्दी और जलूस-बन्दी क़ानूनों को रद्द कर दिया तथा समाचारपत्रों पर सत्याग्रह के दिनों में लगायी गयी रोक उठाली। अंगरेज प्रधान मन्त्री की जगह हिन्दुस्तानी आ गया, परन्तु इससे अधिकारियों के दमन-कार्य में विशेष अन्तर नहीं आया। सेठ जी ने महाराज तथा मन्त्रियों से मिलकर कई ग़लतफहमियाँ दूर कीं। अन्ततः राज्य ने प्रजामण्डल के उत्तर-दायी शासन के उद्देश्य को, तथा जनता की शिकायतों के सम्बन्ध में मण्डल के प्रतिनिधित्व को, स्वीकार कर लिया। प्रजामण्डल अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए जनता की नैतिक, सामाजिक और आर्थिक दशा सुधारने तथा उनकी विविध शिकायतें दूर करने के प्रयत्न में लगा हुआ है। उसका चौथा वार्षिक अधिवेशन श्रीमाधोपुर में श्री० हीरालाल जी शास्त्री के सभापतित्व में इस वर्ष ( सन् १९४२ ) सम्पन्न हुआ है। मण्डल में एक 'प्रगतिशील दल' भी बना है।



# चवालीसवाँ अध्याय



## जैसलमेर

'ज़िमी टल्लद, ज़मां टल्लद, मगर बन्दा नमीं टल्लद' ( अर्थात् ज़मीन चाहे टल जाय, ज़माना चाहे बदल जाय, मगर बन्दा टस-से-मस होने वाला नहीं )।

यह राजपूताने का वह देशी राज्य है, जिसका, क्षेत्रफल की दृष्टि से, भारतवर्ष भर की सब रियासतों में दसवाँ, और राजपूताने के राज्यों में तीसरा स्थान है। परन्तु इसका अधिकांश भाग रेगिस्तान होने से यहाँ जल का बड़ा कष्ट है, और पैदावार कम होती है। इस लिए आबादी भी बहुत कम है। यही कारण है कि राज्य का क्षेत्रफल सोलह हजार वर्ग मील से अधिक होने पर भी यहाँ की जनसंख्या ( १९४१ की गणना के अनुसार ) ९३, २४६ है। यहाँ की औसत वार्षिक आय चार लाख रुपये है।

राज्य का राजवंश जादूभाटी राजपूत है, और शासक का पद 'महारावल' है। वर्त्तमान राजधानी रावल जैसल ने सन् ११५६ में बनायी थी। सन् १२९४ और १३०६ में इस राज्य ने मुसलमानों का वीरता पूर्वक सामना किया, अन्ततः सम्राट् शाहजहाँ के शासन-काल में, रावल सबलसिंह मुगल-सिंहासन की अधीनता स्वीकार करने को बाध्य हुआ।

सन् १८१८ ई० में इस राज्य की ब्रिटिश सरकार से संधि हुई। सन् १८२९ ई० में इस का बीकानेर से झगड़ा हुआ, परन्तु ब्रिटिश सरकार बीच में पड़ गयी और महाराणा उदयपुर ने झगड़ा निपटा दिया। सन् १८४४ में सिंध हस्तगत करने पर, अंगरेजों ने जैसलमेर को कुछ इलाके दे दिये जो पहले इस राज्य के थे।

श्री० जवाहरसिंह जी सन् १९१४ में गद्दी पर बैठे। ये दीवान और 'हाकिमों' की सहायता से शासन करते हैं। दीवान के पद पर होशियार, अंगरेजी के जानकार व्यक्ति की नियुक्ति की जाती है, जो रेजीडेन्ट आदि से पत्र-व्यवहार आदि का कार्य अच्छी तरह कर सके। राजकार्य पुराने ढर्रे का है, शासन में पूर्ण स्वेच्छाचार और निरंकुशता है। 'हाकिम' बहुधा हिन्दी भाषा भी शुद्ध लिखना-पढ़ना नहीं जानते। जनता से सद्व्यवहार करने का उन्हें अभ्यास ही नहीं होता। वे अपना स्वार्थ सिद्ध करते हुए राज्य की आय बढ़ाते हैं।

शासन में जनता के प्रतिनिधियों की कोई आवाज नहीं। म्युनिस-पैलटी आदि संस्थाओं का अभाव है। केवल जैसलमेर नगर में नाममात्र को एक कमेटी कायम की गयी है। महाराजा साहब के गद्दी पर बैठने के समय, सन् १९१४ ई० में प्रथमवार यहाँ एक मिडल स्कूल (काल्विन स्कूल) और विंढम लायब्रेरी की स्थापना की घोषणा हुई थी। सर इलियट कालविन एजंट गवर्नर-जनरल, राजपूताना, द्वारा इनकी बुनियाद रखी गयी थी। पर इन संस्थाओं का कार्य आरम्भ होने में वर्षों लग गये, और अब भी इनकी दशा कुछ संतोषप्रद नहीं है। राजधानी की यह हालत है, फिर राज्य के अन्य स्थानों की

तो बात ही क्या ! राज्य भर में राजधानी में एक अस्पताल है, जो विशेषतया राजकीय कर्मचारियों तथा प्रभावशाली व्यक्तियों की ही सेवा में रहता है।

इस राज्य की शासनपद्धति, और न्याय तथा दमन सम्बन्धी बातों पर विविध गिरफ़्तारियों और सजाओं से अच्छा प्रकाश पड़ता है। अतः नमूने के तौर पर एक मुकदमे की मुख्य-मुख्य बातों का आगे उल्लेख किया जाता है।*

श्री० रघुनाथसिंह जी मेहता माहेश्वरी नवयुवक मंडल के मंत्री थे। १४ मई १९३२ को इन्हें अदालत में बुलवाकर, बिना मुकदमा चलाये और अपराध बताये, सिर्फ जबानी हुक्म से जेल भेज दिया गया। इस पर नगर में सनसनी फैल गयी। बहुत से आदमियों ने सभा करके यह निश्चय किया कि जब तक रियासत मेहता जी को बिना किसी प्रकार के बन्धन के रिहा न कर दे, तब तक जातिगत सारे कार्य जीमण (जाति-भोज), मेला, दर्शन, राग रंग और 'दरबार का सलाम' इत्यादि सब बन्द कर दिये जायँ। गिरफ़्तारी का प्रभाव बाहर भी तेजी से बढ़ता गया; नागपुर में एक जैसलमेर प्रजापरिषद करना तय हुआ, और सत्याग्रह संग्राम की तैयारी होने लगी।

---

* इसके विस्तृत विवरण के लिए श्री० सागरमल जी गोपा द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित 'रघुनाथसिंह का मुकदमा' पढ़िए। श्री० गोपाजी सन् १९४१ में रियासत-प्रवेश-प्रतिबन्ध की अवज्ञा की सूचना देकर जैसलमेर गये थे। आप गिरफ्तार किये जाकर जेल में बन्द कर दिये गये।

श्री० कर्णसिंह मेहता ने दरबार को एक पत्र लिखा कि 'रघुनाथ-सिंह के कई मित्र बड़े अधीर हो रहे है, और मुझे उकसा रहे है कि जैसलमेर की प्रजा की कान्फ्रेंस नागपुर या बम्बई में जल्दी भरायी जावे। और उसमें जैसलमेर राज्य के सब जुल्मों का दिग्दर्शन कराया जावे, और उन जुल्मों की सूची पार्लिमेन्ट के हर एक मेम्बर को, और स्टेट-सेक्रेटरी की सेवा में विलायत भेजी जावे, और वायसराय महोदय या ए० जी० जी० से मिलने के लिए जैसलमेरी प्रजा का एक डेप्यूटेशन तैयार किया जाय, इत्यादि। मैं असमंजस में पड़ा हुआ हूँ।'' मुझे रघुनाथ-सिंह में कोई बुराई नहीं दिखती। वह राजद्रोही नहीं, जैसलमेर राज्य का भी द्रोही नहीं। बेचारा जाति-सेवा की उमंग में अकारण ही श्रीजी हुजूर का कोप-पात्र बनकर पीसा जा रहा है। इसलिए मैं फिर एक बार हुजूर से प्रार्थना करता हूं कि हुजर रघुनाथसिंह को मेरे अनुरोध पर रिहा कर दें।'

श्री० रघुनाथसिंह जी को दो वर्ष सपरिश्रम जेल और २००) जुरमाने की सजा दे दी गयी थी।* परन्तु जब प्रवासी जैसलमेरियों ने जगह-जगह इस निर्णय का विरोध किया और श्री० कर्णसिंह जी मेहता के पत्र से महाराज को मालूम हुआ कि मामला बहुत बढ़नेवाला है तो १७ जून १९३२ की रात को उन्होंने रघुनाथसिंह जी को निर्दोष मुक्त कर दिया। हाँ, अपनी बात रखने के लिए माहेश्वरी युवक मंडल जैसी सामाजिक संस्था पर से भी प्रतिबन्ध नहीं उठाया, उसे गैर-कानूनी ही करार रखा।

---

* फैसले की तथा गवाहों के इजहारों की, नकल नहीं दी गयी। क्या इसलिए कि कहीं पत्रों में इसकी आलोचना हो, और फैसले की नकल ए. जी. जी. को भेज दी जाय?

इस राज्य में जनता की जागृति सन् १९२० में आरम्भ हुई कही जा सकती है। ता० २ फरवरी को, विवाहों के अवसर पर बहुत-से प्रवासी जैसलमेरी माहेश्वरी, जिनमें यह लेखक भी था, एवं जैसलमेर-निवासी विविध जातियों के अनेक सज्जनों ने महाराजा साहब की सेवा में एक मान-पत्र उपस्थित किया, जिसे पीछे 'जैसलमेरीय प्रजा का माँग पत्र' कहा जाने लगा।

उसकी मुख्य बातें संक्षेप में इस प्रकार थीं:—[क] फाल्विन स्कूल और विल्सन लायब्रेरी का कार्य सुचारु रूप से चलाया जाय। इस राज्य में शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं को स्थान-स्थान पर स्थापित करने तथा प्रजा वर्ग की ओर से स्थापित संस्थाओं को आश्रय और सहायता देकर उन्हें उत्साहित करने की परम आवश्यकता है। [ख] यहाँ पर एक सामयिक पत्र [अखबार] की बड़ी आवश्यकता है। यह आरम्भ में मासिक रूप में हो सकता है। एक प्रेस या छापखाना खोलने की योजना भी शीघ्र होनी चाहिए। [ग] सफाई और स्वास्थ्य आदि स्थानीय प्रबन्ध करने के लिए यहाँ पर एक म्युनिसपैलिटी के संगठन की बड़ी सख्त जरूरत है। इस कार्य में विलम्ब करना अनुचित है। [घ] इस राज्य में रेल की बड़ी आवश्यकता है। जब तक इस का रेल (और तार) के द्वारा बाहरी दुनिया से सीधा और घनिष्ठ सम्बन्ध न होगा, यहाँ की उन्नति का कार्य बहुत-कुछ रुका रहेगा। [च] बाहर से आनेवालों के सामान पर महसूल लेने की व्यवस्था केवल जैसलमेर राज्य में ही रहनी चाहिये, जैसा कि सन् १९१२ ई० से पहले नियम था। महसूल ठहराने में सामान की असली कीमत का सवाया किया जाना अनुचित और-नीति-विरुद्ध है। इसका संशोधन शीघ्र होना चाहिए। [छ] कृषि, व्यापार, शिक्षा, और शिल्प आदि की वृद्धि व विस्तार की आवश्यकता है। [ज] शासन-कार्य प्रजा के सहयोग से, उत्तमता से संचालित हो।

श्रीमान् महाराजा साहब ने उपर्युक्त बातों का बहुत सहानुभूति-पूर्ण उत्तर दिया और इन्हें जल्दी ही कार्य-रूप में परिणत करने का आश्वासन दिया। इससे उत्साहित होकर कई सज्जनों ने राज्य की त्रुटियों की ओर राजा साहब का ध्यान दिलाने का प्रयत्न किया। ता० ६ जुलाई १६२० के 'विजय' में 'एक जानकार' ने जैसलमेर राज्य के 'अंधेरखाते के कुछ नमूने' शीर्षक लेख प्रकाशित किया, जिसमें ४० बातों का उल्लेख था। उनमें पूर्वोक्त को छोड़कर शेष बातें मुख्यतया ये थीं:—

(१) राज्य में कानून नहीं, (२) बजाजों का नाप और सुनारों की तोल तीन तरह की, तथा नाज घी आदि की तोल अनेक प्रकार की होने से जनता को बहुत धोखा और हानि होती है। (३) राज्य की भाषा शुद्ध नागरी नहीं, अदालतों की लिखावट में कुछ-का-कुछ पढ़ा जाता है। (४) न्याय में शीघ्रता नहीं, वर्षों अदालतों की खाक छाननी पड़ती है। (५) अफीम का नियंत्रण नहीं, सारा राज्य अफीमची हो चला है। (६) कन्या विक्रय खूब होता है। (७) राज्य से बाहर जानेवाली प्रजा से ॥) प्रति व्यक्ति 'भोलावा' टेक्स लिया जाता है। (८) अकाल में पानी की व्यवस्था नहीं होती। (९) सरकारी अहलकारों का वेतन ब्रिटिश भारत के खिदमतगारों के बराबर है, जिससे रिश्वत बढ़ रही है, अत्याचार खूब होते हैं। (१०) राज्य में दिवालिये और सज़ायाफ्ता कर्मचारी रखे जाते हैं। (११) राजकर्मचारी अपना निजी व्यापार भी करते हैं, जिससे अन्य व्यापारियों को भारी नुकसान होता है, और राज्य का काम भी बिगड़ता है। (१२) सैकड़ों प्रकार के करों में से कुछ ये हैं:—खाड़ी, 'भोलावा', दशहरा, गडीसर, नेतरा, नज़र इत्यादि।

इसके बाद भी समय-समय पर विविध सज्जनों ने राजा साहब

को समाचारपत्रों द्वारा तथा अन्य प्रकार से इसकी याद दिलायी। पर कुछ फल नहीं हुआ। राज्य के जिन व्यक्तियों का सुधार-आन्दोलन से कुछ सम्बन्ध विदित हुआ, उन्हें तरह-तरह से दबाया गया। समाचारपत्रों के पठन-पाठन पर रोक लगा दी गयी। जिस राज-कर्मचारी का लड़का या रिश्तेदार राज्य से बाहर रहकर भी आन्दोलन में भाग लेता प्रतीत हुआ, उस राजकर्मचारी को दंड दिया गया।

सन् १९३३ में हमारे परिचित श्री० नन्दकिशोर जी गोदाणी राजा साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी और जुडीशल सुपरवाइजर नियुक्त हुए; उस समय इन पंक्तियों के लेखक ने उनका ध्यान नयी बातों की ओर न दिलाकर उन्हें सन् १६२० की ही माँगों की याद दिलायी थी। अपने खुले पत्र के अन्त में हमने लिखा था कि "यद्यपि पिछले दस-पंद्रह वर्षों में संसार में महान परिवर्तन हो गये, कुछ का कुछ हो गया, पर मालूम होता है कि समय की प्रगति के साथ-साथ जैसलमेर राज्य ने कुछ प्रगति नहीं की। इसके विपरीत, इस बीच में माहेश्वरी युवक मंडल और सर्व-हितकारी वाचनालय पर कुदृष्टि रही। ऐसी बातों के लिए विशेष दायित्व परामर्शदाताओं तथा प्रबन्धकर्त्ता अधिकारियों पर होता है। प्रायः राजा लोग अपने प्राइवेट सेक्रेटरी, या दीवान आदि उच्च अधिकारियों के कानों से सुनते हैं, उनकी आँखों से देखते हैं, और उनकी कर्तृत्व शक्ति से ही कुछ किया करते हैं। परमात्मा ने आज आप को यह गौरवपूर्ण पद प्रदान किया है। आप के जैसलमेर के जीवन का एक-एक दिन राज्य के कुछ अग्रगामी होने में सहायक हो।"

सन् १६४० में 'हिन्दुस्तान' के कांग्रेस अंक में देशी राज्यों के सम्बन्ध में लिखते हुए श्री० अचलेश्वरप्रसाद जी शर्मा इस राज्य के विषय में कहते हैं—

'प्रजामंडल का, उसका जन्म लेते ही गला घोंट दिया गया, और अनेक कार्यकर्त्ता गिरफ़्तार कर लिये गये। कुछ लोग आतंक के कारण भागकर सिंध के गडरी नामक स्थान में जा बसे। मगर, जैसलमेर-पुलिस ने वहाँ भी उनका पीछा न छोड़ा। कार्यकर्त्ताओं ने थरपारकर ज़िले के सुपरिंटेन्डेन्ट को जैसलमेर-पुलिस की अनीति के बारे में शिकायत की। इस पर सुपरिंटेन्डेन्ट महोदय ने उनकी रक्षा करने के बजाय यह हुक्म निकाल दिया कि तुम यहाँ भी खतरनाक साबित हो रहे हो, अतः या तो अपनी राजनैतिक हलचलें बन्द करो, अन्यथा तुम को जैसलमेर भेज दिया जायगा।* कराची के मेयर ने श्री० जयनारायण व्यास जी के पत्र पर सिन्ध असेम्बली में इस विषय पर अनेक सवाल पूछे थे। जैसलमेर में आर्यसमाज का कार्य भी खतरनाक समझा जाता है। अधिकारी गण किसी भी प्रकार की सार्वजनिक प्रवृत्ति पसन्द नहीं करते।'

सन् १९२० की बात हुई, सन् १९३२ और १९४० की भी बात हुई। और अब? वही चाल बेढंगी, जो पहले थी वह अब भी है। सन् १९१४ में महाराज ने गद्दी पर बैठते समय कहा था कि 'हम जैसलमेर में तरक्कियात जमाना में बहुत पीछे रह गये हैं। दर हकीकत हम वैसे ही हैं, जैसे कि हम सदियों पहले थे। हम बरसों से नबातात की जिन्दगी बसर कर रहे हैं और बढ़ना और तरक्किए-जमाना के साथ तरक्की करना भूल गये हैं।' ऐसी भावपूर्ण बात कहने वाले राजा साहब से लोगों की बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। राजा साहब को अट्ठाइस वर्ष का सुदीर्घ अवसर मिला। पर आपने क्या सुधार किया? राजा लोग कब तक टस-से-मस न होने का गर्व करेंगे?

*जनता के विरुद्ध ब्रिटिश भारत के सरकारी अधिकारियों का, देशी राज्यों के राजा-महाराजाओं से सहयोग का कैसा अच्छा उदाहरण है!

# पैंतालीसवाँ अध्याय

## कोटा

"सरकारी पदों पर जम जानेवाले महानुभावों ने अपने विज्ञापनों द्वारा कोटा के रामराज्य को दूर-दूर तक अच्छी तरह प्रख्यात कर रखा था......।
—मोतीलाल जैन

राजपूताने के इस राज्य का क्षेत्रफल ५,७२५ वर्गमील, जनसंख्या (१६४१ की गणना के अनुसार) ७,७७,३६८ और औसत वार्षिक आय पचास लाख रुपया है। इस राज्य में ३६ जागीरें हैं। यहाँ का राजवंश चौहान राजपूत है। शासक का पद 'महाराव' है। यह राज्य पहले बूंदी में मिला हुआ था। सतरहवीं सदी के आरम्भ में यह उससे अलग हुआ, जब बूंदी के राव रत्नसिंह जी के दूसरे लड़के माधोसिंह जी को यह राज्य सम्राट् जहाँगीर से मिला।

सन् १८०४ ई० में यहाँ के मन्त्री और रीजेन्ट जालिमसिंह जी ने जसवन्तराव होल्कर के विरुद्ध अंगरेजों की सहायता की। उन्होंने मराठों से झालावाड़ का परगना जीत लिया। उस पर अंगरेजों ने उनका अधिकार मान लिया, वैसे वह कोटा के शासन में ले लिया गया। जालिमसिंह जी बड़े प्रभावशाली व्यक्ति थे। उनके प्रभुत्व से कोटा दरबार को बड़ा असंतोष था। पीछे यह फैसला किया गया कि झालावाड़ का राज्य उन्हें (तथा उनके वंश को) दे दिया जाय। सन्

१८१७ में कोटा राज्य अंगरेज सरकार के संरक्षण में आया।

श्री० उम्मेदसिंह जी सन् १८८९ ई० में गद्दी पर बैठे, उस समय ये सोलह वर्ष के थे। इनके ट्यूटर ( शिक्षक ) और गार्डियन (संरक्षक) श्री० मास्टर शिवप्रसाद जी अच्छे विचारों वाले थे। प्रधान मंत्री चौबे रघुनाथदास जी भी बहुत योग्य थे। इनके प्रभाव से शासन-व्यवस्था स्वेच्छाचारी होते हुए भी लोकहितकारी रही। लगान उचित परिमाण में लिया गया, शिक्षा निश्शुल्क की गयी, और अध्यापक अच्छे सुयोग्य रखे गये, भिन्न-भिन्न विभागों के कार्यालयों की सुव्यवस्था की गयी, खनिज व्यवसाय आदि की उन्नति की गयी। पीछे नये मन्त्री के समय में कई बातों में अहितकर परिवर्तन हो गया।

अस्तु, महाराजा साहब को शासनाधिकार सन् १८९६ ई० में मिले। 'राज्य शासन को अधिक उत्तम बनाने के लिए', सन् १९४१ से यहाँ नया विधान बना है।* इसमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि इस विधान की किसी धारा से महाराजा के उन परम्परागत अधिकारों पर कोई असर नहीं पड़ता, जिनके अनुसार वे किसी राजकर्मचारी या कर्मचारियों के किसी विषय से सम्बन्ध रखनेवाले निश्चयों को बदल सकते हैं, या नामंजूर कर सकते हैं। इस प्रकार महाराज के एकछत्र अधिकार ज्यों-के-त्यों बने रहेंगे।

नये 'विधान' में बताया गया है कि कौंसिल ( राजसभा ) के सभापति स्वयं महाराजा साहब, और उपसभापति प्रधान मंत्री होंगे,

---

*यह कोटा राजपत्र (स्टेट गज़ट) के ता० २१ नवम्बर १९४१ के विशेषांक में प्रकाशित हुआ है।

तीन राजमंत्री और रहेंगे। गृह-मंत्री, शिक्षा-मंत्री और माल-मंत्री। मंत्रियों की नियुक्ति महाराज करेंगे। राजसभा का अधिवेशन कम से कम सप्ताह में एक बार होगा, उसमें सभापति सहित तीन राजमंत्रियों की आवश्यकता होगी। प्रधान मंत्री का सेक्रेटरी (सेक्रेटरी महल-खास) कौंसिल-सेक्रेटरी का काम करेगा। कोई विषय राजसभा में विचारार्थ उपस्थित करने के लिए प्रधान मंत्री की अनुमति ली जायगी। राजसभा के अधिवेशनों में महाराज उपस्थित होने की दशा में भी मत नहीं देंगे, परन्तु जो प्रस्ताव पास होंगे, चाहे वे सर्वसम्मति से पास हों अथवा बहुमत से, उनका मंजूर संशोधित या नामंजूर करना महाराज की मर्जी पर निर्भर है। इसका अर्थ यह है कि राज-सभा को किसी भी विषय में पूर्ण या स्वतंत्र अधिकार नहीं है। महाराज को अधिकार है कि किसी मंत्री के अधिकार घटायें या बढ़ायें। प्रत्येक मंत्री अपने अधीन विभागों के सुप्रबन्ध के लिए राज-सभा के प्रति जिम्मेवर होगा। जनता के प्रति जिम्मेवर होने की कोई बात नहीं है।

राज मंत्रियों के सब निर्णयों की अपील राजसभा में होगी परन्तु म्युनिसिपल कमेटियों के मामलों में गृह-मंत्री का निर्णय अन्तिम माना जायगा।

राजसभा को कानून बनाने का अधिकार होगा, परन्तु राजसभा द्वारा मंजूर किया गया कानून तभी लागू हो सकेगा जब महाराज की लिखित अनुमति प्राप्त हो जायगी। इससे ये बातें स्पष्ट हैं—प्रथम तो यह कि राज्य में कानून और शासन इन दो कार्यों के लिए पृथक्

पृथक् व्यवस्था नहीं है; दूसरे, कानून बनाने में जनता का कुछ भी भाग नहीं है; तीसरे, यह कि यद्यपि राजसभा के सब सदस्य महाराजा साहब द्वारा नियुक्त होते हैं, तथापि इस सभा द्वारा बनाये हुए किसी कानून का लागू होना उस समय तक सम्भव नहीं है, जब तक महाराज इसकी मँजूरी न दें। इस प्रकार कानून-निर्माण सम्बन्धी अधिकार इस सभा के हाथ में नाममात्र ही है।

अब आय की बात लें। विधान के अनुसार मंत्री अपने-अपने विभाग का बजट प्रधान मंत्री के पास भेजेंगे। वह सब बजटों को इकट्ठा करके उनपर राजसभा की अनुमति और महाराज की मंजूरी प्राप्त करेगा। तब मंत्री उसे अमल में लायेंगे। इस प्रकार आय-व्यय की प्रत्येक मुख्य मद पर अन्तिम अधिकार महाराजा साहब को ही है।

न्याय के विषय में 'विधान' में कहा गया है कि हाईकोर्ट के जज की नियुक्ति महाराजा साहब करेंगे और वह उतने समय तक अपने पद पर रहेगा, जब तक महाराजा चाहेंगे। हाईकोर्ट के फैसलों की अपील और निगरानी राजसभा में उन नियमों के अनुसार होगी, जो महाराजा साहब मंजूर फरमावेंगे। दया के लिए दरखास्तें महाराजा साहब की सेवा में पेश होंगी।

इन शासन-सुधारों के सम्बन्ध में कोटा राज्य प्रजामंडल के प्रधान मंत्री श्री० मोतीलाल जी जैन ने ठीक ही कहा है:—"इस सवा सौ वर्ष पुराने ढंग को, निकम्मी, रद्दी की टोकरी में फेंकी हुई, और बेहद खर्चीली कौंसिल के बनाये जाने पर, जिसमें प्रजा और प्रजामत का कोई स्थान नहीं है, कुछ भी कहना, लिखना या बोलना इस के महत्व को अकारण ही बढ़ा देना है। इस कौंसिल के शासन-विधान में

ऐसी उल्लेखनीय वस्तु ही क्या है! जो अब तक अलिखित था, वह लिखित हो गया है। पहले, दरबार के अतिरिक्त तीन मेम्बर थे, सो अब हो गए हैं चार। शासकों की दृष्टि में, निर्वाचित एसेम्बली की घोषणा किये बिना ही, यदि यही सुधार और प्रगति है तो कोटा की शासन-व्यवस्था के लिए कोई अद्भुत ही शब्दकोष खोजना पड़ेगा।"

मालूम हुआ है कि महाराजा साहब ने अपना तथा अपने परिवार का बजट अब ५ लाख रुपये वार्षिक का बनाया है; राज्य डेढ लाख रुपया शिक्षा और स्वास्थ्य पर खर्च करता है; सहकारी समितियों का प्रचार हो रहा है।

कोटा में जनता की जागृति का आरम्भ हुए बीस वर्ष से अधिक हो गये। सन् १९२० ई० में जबकि राजपूताने के अनेक भागों में आदमी खुले तौर से किसी आन्दोलन में भाग लेने से बचते थे, श्री० पंडित नयनूराम जी ने खुल्लमखुल्ला सार्वजनिक क्षेत्र में आने का साहस किया और कोटा में पहले-पहल राजस्थान सेवा संघ की शाखा स्थापित की तथा श्री० पथिक जी द्वारा उठाये गये बेगार-आन्दोलन में सहयोग प्रदान किया। राज्य के अधिकारियों तथा पिट्ठुओं ने उनका विरोध किया, भय दिखाया, और प्रलोभन भी दिया, पर पंडित जी दृढ़ रहे, और कोटा राज्य से बेगार-प्रथा हटाने में बहुत-कुछ सफल हुए। पंडित जी ने बूंदी, झालावाड़ आदि के कार्यकर्त्ताओं से मिल कर हाडौती प्रजा की शिक्षा और उन्नति का अच्छा कार्य किया। पीछे कोटा राज्य प्रजामंडल को जन्म दिया गया। इसने जनता की जागृति में अच्छा भाग लिया। इसका उद्देश्य उत्तरदायी शासन की प्राप्ति है।

दुख का विषय है कि किसी ने पंडित नयनूराम जी की क्रूरतापूर्वक

हत्या कर दी। पंडित जी सार्वजनिक आन्दोलन में आने से पूर्व पुलिस के सब-इन्स्पेक्टर थे। आप से उस समय अनेक दुष्ट और बदमाश परेशान रहते थे। पीछे जब आप आन्दोलन करने लगे तो अनेक अधिकारियों के कोप-भाजन रहे। अस्तु, किसी सज्जन के जीवन का इस प्रकार अन्त होना मानवता का दुर्भाग्य है। आशा है, पंडित जी के बलिदान से कोटा राज्य की जनता का बल बढ़ेगा और प्रजामंडल प्रगतिशील होगा।



# छियालीसवाँ अध्याय



## सिरोही

अगर प्रजामंडलों को कुचल देने के लिए जान-बूझकर ऐसी कोशिशें की जाती हों, तो उन्हें इस चुनौती को स्वीकार करके हर तरह की जोखिम उठाने को तैयार हो जाना चाहिए। उन्हें श्रद्धा रखनी चाहिए कि स्वतंत्रता और सत्य को सदा के लिए कभी दबाया ही नहीं जा सकता।

—म० गाँधी

सिरोही राजपूताने के दक्षिण-पश्चिम में है। इसका क्षेत्रफल १९६४ वर्ग मील, जनसंख्या (सन् १९४१ ई० की गणना के अनुसार) २,३३,८७९, और औसत वार्षिक आय दस लाख रुपये हैं। राज्य का आधे से अधिक भाग जागीरदारों के अधीन है। कुछ गाँव हाथ-खर्च के, धर्मादा व इनामी भी हैं। बाकी का हिस्सा 'खालसा' है। आबू के

सुप्रसिद्ध मन्दिर इसी राज्य में हैं।

यहाँ के राजा चौहान वंश के देवरा राजपूत हैं। इनका पद 'महाराव' है। इस राज्य के प्राचीन निवासी भील हैं। वर्तमान सिरोही नगर सन् १४२५ ई० में बसाया गया। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में सिरोही और जोधपुर में कई लड़ाइयाँ हुईं; यहाँ के शासक राव शिवसिंह ने अंगरेजों की सहायता ली। सन् १८२३ में सिरोही राज्य और ब्रिटिश सरकार में संधि हुई। तत्पश्चात् सिरोही, जोधपुर राज्य की प्रधानता से, मुक्त किया गया। सन् १८४५ ई० में राजा साहब ने आबू पहाड़ पर कुछ भूमि अंगरेजों को 'सेनिटोरियम' (स्वास्थ्य-स्थान) बनाने के लिए दी।

श्री० स्वरूपसिंह जी सन् १६२७ में गद्दी पर बैठे। इन्हें शासन-कार्य में सहायता देने के लिए, सन् १६४१ ई० से मंत्रिमंडल के रूप में एक 'कौंसिल-आफ-स्टेट' है, जिसमें राजा साहब द्वारा नियुक्त तीन सदस्य हैं। इसमें जनता के प्रति कुछ भी उत्तरदायी न होने से इस सुधार का कोई महत्व नहीं है।

सन् १९४१ से यहाँ एक केन्द्रीय सलाहकार कमेटी है। इसका सभापति रेवन्यू-मेम्बर होता है। उसके अतिरिक्त इसमें २२ सदस्य होते हैं, १० निर्वाचित और १२ नामजद। इस प्रकार बहुमत नामजद सदस्यों का है—इनमें से सात गैर-सरकारी और ५ सरकारी होते हैं। जिन दस सदस्यों का निर्वाचन होता है, वे प्रत्यक्ष रीति से नहीं, परोक्ष रूप से चुने जाते हैं, आठ तहसील सलाहकार कमेटियों द्वारा, एक सिरोही म्युनिसपैलटी द्वारा, और एक आबू की म्युनिसपैलटी द्वारा।

साधारण तौर से जब इनका चुनाव दरबार द्वारा स्वीकृत होगा, तभी ये सभासद रह सकेंगे। उसके बाद भी अगर किसी एक जाति या दल के सदस्य ज्यादह हो गये तो दरबार उसमें रद्दोबदल कर सकेंगे। जिन सदस्यों के राजभक्त होने में शंका होगी, उन्हें अयोग्य ठहराया जायगा। सदस्यों की योग्यता के विषय में, उनके पढ़े-लिखे होने का नियम नहीं है।

इस कमेटी की अवधि दो साल की होगी। और यह चार मास में एक बार (तीन दिन के लिए) बुलायी जायगी। कमेटी में उपस्थित करने के लिए प्रश्न तथा प्रस्ताव ४० दिन पहले भेजने होंगे। सहायक प्रश्न नहीं पूछे जा सकेंगे। कोरम १२ सदस्यों का होगा। कोई सदस्य तीन प्रस्ताव या पांच प्रश्न कर सकेगा। कमेटी का सारा कार्यक्रम सभापति (रेवन्यू मेम्बर) की मर्जी पर चलेगा।

कमेटी का कार्यक्षेत्र बहुत संकुचित तथा परिमित है। यह राज्य के बजट, सरकारी नौकरों की नियुक्तियों, तथा विविध विभागों के विधान के विषय में कोई विचार नहीं कर सकेगी। खालसा तथा जागीरी गांवों के सम्बन्ध में यह सिफारिश कर सकेगी। केवल निम्न-लिखित विषयों पर विचार करके यह अपने प्रस्ताव दरबार के सामने रख सकेगी:—शिक्षा, स्वास्थ्य, टीका और चिकित्सा, सामाजिक रीति और सामाजिक कानून, काश्तकारों की आर्थिक स्थिति, ग्राम-सुधार, गृह-उद्योग, व्यापार और शिल्प, बाजार, पशुओं की उन्नति, म्युनिसपैलटी, सड़क, और ग्राम-पंचायत।

राज्य में स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं की बहुत कमी है। कहीं-कहीं

बरायनाम म्युनिसपैलिटियाँ स्थापित की गयी हैं।

गत वर्ष ( १९४१ ) केवल आबू की म्युनिसपैलटी में निर्वाचन-प्रथा को स्थान दिया गया। इसमें प्रजामंडल का बहुमत है, वह बहुत-कुछ कार्य करना चाहता है, परन्तु अधिकारी उसके काम में अड़ंगा लगाते हैं। राज्य ने ग्राम-पंचायत बोर्ड की स्थापना की भी घोषणा की है। इसके सभी सदस्यों की नियुक्ति दीवान साहब करेंगे। उनका सरपंच जागीरदार या पटेल ( सरकारी कर्मचारी ) नियुक्त किया जायगा। उससे न्याय की क्या आशा की जाय! प्रजामंडल की ओर से इस बोर्ड का बहिष्कार किया गया है।

सिरोही राज्य में पहले १२ तहसीलें थीं। अब कौंसिल ने इसे ५ तहसीलों में विभक्त किया है। प्रत्येक तहसील एक तहसीलदार के अधीन है। तहसीलदार का सब-ट्रेजरी ( छोटा खजाना ) पर नियंत्रण रहता है; वह सब-रजिस्ट्रार भी होता है। सिरोही राज्य भर का रजिस्ट्रार डिस्ट्रिक्ट-एँड-सेशन जज है। राज्य का ट्रेजरी-अफसर अलग है। अपनी तहसील के माली मामलों में तहसीलदार को पूरा अधिकार होता है। तहसीलदारों के ऊपर राज्य में एक रेवन्यू-अफसर है, जो सेटलमेंट-अफसर भी है। उसके ऊपर रेवन्यू-मेम्बर है। माली मामलों की अपील रेवन्यू-मेम्बर तथा कौंसिल में होती है।

गत वर्ष से यहाँ दीवानी तथा फौजदारी सम्बन्धी न्याय की सर्वोच्च अदालत हाईकोर्ट है, जिस में एक जज है। इसके अतिरिक्त राज्य में एक डिस्ट्रिक्ट-एँड-सेशन जज है। उसके अधीन एक डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट व सिविल जज है। आबू में सब-जज को प्रथम श्रेणी के

मजिस्ट्रेट के अधिकार हैं। तहसीलदारों को माली अधिकारों के अतिरिक्त प्रथम या द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट के अधिकार हैं।

लेखन, भाषण, या प्रकाशन आदि से सम्बन्धित नागरिक अधिकार यहाँ प्राय: कुछ भी नहीं हैं। सभा करने के लिए चौबीस घंटे पूर्व पुलिस में सूचना देना आवश्यक है। पबलिक सेफ्टी-एक्ट (सुरक्षा कानून), पबलिक सोसायटीज-एक्ट (संस्था कानून) अर्जी-नवीस कानून आदि दमनकारी नियम प्रचलित हैं। प्रेस (छापाखाने) और पत्रों को कोई स्वाधीनता नहीं है। सन् १९४० में राज्य से समझौता हुआ था, उसका पालन नहीं किया जाता। लाग-बाग और बेगार भी यहाँ मौजूद है। सिरोही नगर में 'ईस' नाम की एक लाग रानी जी की तरफ से है। इसके बहाने प्रत्येक शाक-भाजी बेचनेवाले से आध पाव शाक लिया जाता है। 'ईस' का अर्थ सिरोही की भाषा में 'मुफ्त' है। जब इसे हटाने की माँग की गयी तो इसे 'अतीत की याद' बताकर इसका समर्थन किया गया। आबू के मन्दिरों के यात्रियों की लूटमार से रक्षा करने के लिए जो टेक्स पहले लगा था, अब सड़क बन जाने से अनावश्यक हो जाने पर भी लिया जाता है; गत वर्षों में यह और बढ़ा दिया गया है। इससे जनता में बड़ा असंतोष है। पहले कहा गया है, इस राज्य में आधे से ज्यादह गाँवों पर जागीरदारों का प्रभुत्व है। वहाँ तो और अधिक चिन्तनीय निरंकुशता है; कानून का राज्य ही नहीं है।

अब हाथ-खर्च के इलाके की बात लें। यह महाराना के निजी खर्च के गाँव होने से हाथ-खर्च कहलाता है। इसका एक अलग

महकमा है, जिसका कारोबार दरबार साहब के पर्सनल सेक्रेटरी की देख-रेख में होता है। यहाँ अधिकारियों की, जागीरी गांवों से भी अधिक, मनमानी चलती है, और उनके विरुद्ध की हुई शिकायतों पर कुछ ध्यान नहीं दिया जाता, जनता को नाममात्र की भी नागरिक स्वतंत्रता नहीं। सभा, जलूस या फेरियों के लिए यहाँ पूर्णतया निषेध है। महाराज अपने खर्च के लिए राजकोष से काफी द्रव्य अलग लेते ही हैं, फिर हाथ-खर्च के अलग गांव रखने की क्या आवश्यकता है!

सिरोही राज्य में जनता की जागृति को आरम्भ हुए बहुत समय हो गया। पहली संस्था सन् १९०५-६ में 'संप सभा' ( यूनियन क्लब ) नाम से स्थापित हुई; उसका उद्देश्य स्वदेशी-प्रचार और शिक्षा-विस्तार के अतिरिक्त प्रजा की तकलीफों को मिटाने का उद्योग करना था। परन्तु इसके कुछ कार्यकर्त्ता राज्याधिकारी थे, उनके स्वार्थवश इसे विशेष सफलता न मिली, और सन् १९०८ में यह एक विशेष कानून द्वारा बन्द कर दी गयी। दूसरी बार सन् १९११-१२ में श्री० मोतीलाल जी तेजावत के नेतृत्व में, भीलों में खूब आन्दोलन हुआ। उससे कई सामाजिक सुधार हुए। पीछे समय-समय पर अन्य आन्दोलन होते रहे। सन् १९३४ में, सिरोही के कुछ बम्बई-प्रवासियों द्वारा 'सिरोही राज्य प्रजामंडल' की स्थापना हो जाने पर, वहाँ संगठित रूप से कार्य होने लगा। तत्पश्चात् श्री० गोकुलभाई भट्ट सहित प्रमुख कार्यकर्त्ताओं की गिरफ़्तारी पर २३ जनवरी १९३९ को सिरोही राज्य में प्रजामंडल स्थापित किया गया। तब से यह संस्था सत्य और अहिंसा के बल पर शान्त

और वैधानिक उपायों से जन-जागृति का कार्य कर रही है। इसे समय-समय पर दमनकारी कानूनों तथा अन्य अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। इसके सदस्यों ने जेल-यात्रा ही नहीं, लाठी, तलवार और गोली के वार सहे हैं और दृढ़तापूर्वक अपना आन्दोलन जारी रखा है।*

मई सन् १९४२ में प्रजामंडल का दूसरा अधिवेशन श्री० पुखराज जी सिंघी की अध्यक्षता में हुआ, उसमें अधिक प्रस्ताव पास न करके उत्तरदायी शासन की माँग की गयी।

# सैंतालीसवाँ अध्याय

## डूंगरपुर

इस राज्य की कुल अबादी का ५८ प्रतिशत भील हैं। यह जाति अज्ञान और दारिद्र्य के कारण सदियों से पूँजीवाद और सत्तावाद की शिकार रही है। आधुनिक विज्ञान और सभ्यता से वंचित, यह जाति ऐसी दीन हीन और असहायावस्था में है कि इसमें स्वाभिमान और स्वाधिकारों की अनुभूति नष्ट-प्रायः हो गयी है। —भोगीलाल पंड्या

यह दक्षिण राजपूताने का एक छोटा सा राज्य है। इसका क्षेत्रफल १४६० वर्ग मील, जनसंख्या २,७४,२८१ (सन् १९४१), और औसत वार्षिक आय साढ़े सात लाख रुपये है। भूमि ऊँची नीची और

*देखिए, 'सिरोही राज्य प्रजामंडल; प्रथम परिषद व द्वितीय वार्षिक अधिवेशन, आबू, ता: २४, २५, २६ जनवरी १९४१ का वृत्तान्त।'

कम उपजाऊ है। इस की नींव तेरहवीं शताब्दी में पड़ी; राजवंश उदयपुर राजवंश की एक शाखा है। शासक का पद 'महारावल' है। सन् १८२८ में यहाँ के राजा की अंगरेजों से संधि हुई।

राजा लक्ष्मणसिंह जी सन् १९१८ में, दस वर्ष की उम्र में, गद्दी पर बैठे। दस वर्ष शासन-कार्य एक कौंसिल द्वारा हुआ, जिसका अध्यक्ष, सरकार के राजनैतिक विभाग का एक अफसर था। राजा साहब को शासनाधिकार सन् १९२८ में मिले।

राजा साहब दीवान की सहायता से शासन करते हैं, एक प्रबन्ध-कारिणी सभा है, उसमें सात सदस्य हैं, जो राजा साहब द्वारा नामजद और उसी के प्रति उत्तरदायी हैं। एक व्यवस्थापक सभा भी है, उसका काम राजा साहब को आवश्यक विषयों में सलाह देना है। उसके सब सदस्य राजा साहब द्वारा नामजद होते हैं वे न जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं, और न उसके प्रति किसी अंश में भी उत्तरदायी।

न्याय कार्य के लिए दीवानी और फौजदारी की अदालतें हैं। हाईकोर्ट की भी व्यवस्था है। साधारणतया न्याय ठीक समय पर हो जाता है, कभी-कभी कुछ विशेष कारणों से देर हो जाती है।

राज्य में तीन म्युनिसपैलटियाँ हैं, आधे सदस्य जनता द्वारा चुने हुए, और आधे राज्य द्वारा नामजद होते हैं, सभापति नामजद ही होते हैं। म्युनिसपैलटियों को चुंगी की तथा पशु आदि पर लगनेवाले करों की आमदनी होती है। यहाँ पंचायतें नहीं हैं।

राज्य का बजट प्रति वर्ष बनता है, पर जनता का उस पर कोई नियंत्रण नहीं है। आय का लगभग दस प्रति स्वयं राजा साहब के

लिए खर्च होता है।

राज्य में एक हाईस्कूल के अतिरिक्त कुछ पाठशालाएँ हैं, जिनमें से एक में अंगरेजी पढ़ायी जाती है, और शेष में हिन्दी। प्राइवेट पाठशाला खोलने के लिए राज्य से स्वीकृति लेनी पड़ती है। राज्य भर में दो अस्पताल तथा एक औषधालय है, और एक वैद्य साल में तीन महीने गांवों में जाकर औषधियां देता है। सड़कें अधिकांश में कच्ची हैं। कृषि पुराने ढङ्ग से होती है, कुछ सुधार नहीं हुआ। उल्लेखनीय उद्योग-धन्धों का अभाव ही है।

राज्य में अठावन प्रतिशत आबादी भीलों की है, जो भारतवर्ष की अति प्राचीन परन्तु सब से अधिक पददलित और पिछड़ी हुई जाति है। इनमें से अधिकांश को कड़ी मेहनत करते रहने पर भी बारहों महीने न भरपेट भोजन ही मिलता है, और न तन ढकने को वस्त्र ही।

श्री० भोगीलाल जी पंड्या की अध्यक्षता में, यहां सेवा-संघ प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। इसके साधन बहुत परिमित हैं और कार्य क्षेत्र है—जनता में शिक्षा-प्रचार, समाज-सुधार, अस्पृश्यता-निवारण, वस्त्र-स्वावलम्बन, स्वच्छता-प्रचार, चिकित्सा, मद्य-निषेध, कृषि-सुधार, दुर्भिक्ष या बाढ़ पीड़ितों की सहायता, और संगठन आदि। इस संस्था के प्रयत्न से कई साधारण तथा रात्रि-पाठशालाएँ चल रही हैं। लोगों में भूत-प्रेत आदि का अन्ध विश्वास कम हो रहा है। वे कपास और आलू आदि की खेती करने लगे हैं। कई गांवों के भीलों और चमारों ने शराब और अफीम का सेवन त्याग दिया है। मकानों में रोशनदान बनने लगे हैं। दापा (कन्या-विक्रय) और पहला (वर पक्ष की ओर से जेवर कपड़ा आदि देना)

और स्त्री-अपहरण के कानून लोगों को समझाये गये हैं।

राजपूताने के अन्य के राज्यों की भाँति यहाँ के जागीरदार भी जनता से प्रायः बुरा व्यवहार करते हैं। सेवा-संघ लोगों के कष्ट अधिकारियों के सामने रख कर उन्हें दूर कराने का प्रयत्न करता है। उसका कार्य रचनात्मक होने से निर्विघ्न होता रहता है; राज्य से संघर्ष के अवसर कम आते हैं। तथापि कोई शासन-सुधार की योजना राज्य के सामने नहीं है। सार्वजनिक माँग जनता के प्रति उत्तरदायी शासन की है।

# अड़तालीसवाँ अध्याय

## राजपूताने के कुछ अन्य देशी राज्य

[ शाहपुरा, बूंदी, धौलपुर, किशनगढ़, करौली, झालावाड़ और टोंक ]

संसार की बड़ी-बड़ी घटनाओं और ब्रिटिश भारत के राजनैतिक आन्दोलनों का राजपूताने के देशी राज्यों पर भी स्वाभाविक और जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। जो लोग सदियों से दासता की चक्की में पिसे जाते रहे, उन्होंने अब करवट बदली है। —अचलेश्वरप्रसाद शर्मा

### शाहपुरा

राजपूताने का यह छोटा सा राज्य अजमेर—मेरवाड़ा के दक्षिण में है। इसका क्षेत्रफल ४०५ वर्गमील, जनसंख्या ६१,१७१ (सन् १९४१), और औसत वार्षिक आय साढ़े तीन लाख रुपये है। यह राज्य सन् १६२९

में स्थापित हुआ, जबकि सम्राट् शाहजहाँ ने सुजानसिंह को कुछ परगने दिये। पीछे कुछ परगने उदयपुर राज्य की ओर से मिल गये।

यहाँ का शासक 'राजाधिराज' कहलाता है। राजप्रबन्ध राजा के हाथ में है, उनका सहायक दीवान है। दीवान के हाथ में कोई विशेष सत्ता नहीं है, वह सब कार्य राजा की इच्छानुसार ही करता है। वह जनता के प्रति किसी अंश में भी उत्तरदायी नहीं है। कानून बनाने के लिए अथवा उस विषय में सलाह देने के लिए यहाँ कोई सरकारी या गैर-सरकारी संस्था नहीं है। राजा साहब की आज्ञा ही कानून है।

न्याय-कार्य के लिए दीवानी और फौजदारी अदालतें तथा सेशन कोर्ट हैं, और कहने को हाईकोर्ट तक है। परन्तु न्याय विभाग स्वतंत्र नहीं है, उस पर राजा साहब का बहुत प्रभाव है। विशेषतया माल के मामलों में जनता को बहुत शिकायतें हैं, किसानों के बहुत से मुकदमों का फैसला बड़ी मुद्दत के बाद तय होता है। साधारणतया न्याय मँहगा पड़ता है, गरीबी की दरखास्त देने से कुछ सस्ता पड़ जाता है।

राज्य भर में केवल एक म्युनिसपैलटी है—राजधानी अर्थात् शाहपुरा नगर में। उसमें सब मेम्बर अधिकारियों द्वारा नियुक्त होते हैं, जनता से चुने हुए नहीं। पंचायतों में ऐसे ही व्यक्ति लिये जाते हैं, जो अधिकारियों को पसन्द हो; जनता के हाथ में कोई अधिकार नहीं।

बजट प्रति वर्ष तैयार तो होता है, पर सर्वसाधारण को उसके विषय में कुछ ज्ञान नहीं होता; फिर, उस पर जनता के किसी अंश में नियंत्रण होने की तो बात ही क्या! राजा साहब आय में से जितना

चाहें, अपने लिए तथा अन्य मदों में खर्च कर सकते हैं।

राज्य की ओर से केवल शाहपुरा नगर में एक हाई स्कूल है, मिडल स्कूल तोड़ दिया गया है। १४४ गाँवों में केवल १४ पाठशालाएँ हैं। प्राइवेट संस्थाओं पर कड़ा प्रतिबन्ध है, बिना राज्य की अनुमति के कोई स्कूल नहीं खोला जा सकता, और अनुमति मिलना भी आसान नहीं है। चिकित्सा की बात यह है कि खास शाहपुरा में एक अस्पताल और एक देशी दवाखाना है। राज्य के अन्य भागों में दवाई का प्रबन्ध बहुत कम है। सड़कें तो शहर के बाहर प्रायः हैं ही नहीं। उद्योग-धंधों का भी यहाँ अभाव ही है; अनेक आदमियों की निगाह राजकीय नौकरी पर लगी रहती है। कृषि की दशा साधारण ठीक है, पर राज्य की ओर से पले हुए जंगली सुअर उसे खराब करते हैं, और लगान भी अधिक है। इससे किसान ऋण से दबे हुए हैं। बेगार भी अभी दूर नहीं हुई।

सन् १९३८ में यहाँ प्रजामंडल की स्थापना हुई। उसने बेगार उठवाने, सुअरों के बाड़े हटवाने, मोटर-किराया कम करवाने और म्युनिसिपैलटी कायम कराने आदि के शान्त आन्दोलन किये। इसके अतिरिक्त उसने किसानों की सहायता, मवेशियों की चराई छुड़वाने, अकाल में अनाथों की रक्षा आदि का प्रयत्न किया। उसे पिछले दिनों अधिकारियों की दमन-नीति का सामना करना पड़ा। कुछ कार्यकर्ता तो राज्य छोड़ने को ही विवश हो गये। नागरिक यहाँ बिना इजाजत सभा-सोसायटी नहीं कर सकते, कथा-वार्ता या मौलूद नहीं बाँच सकते, जुलूस नहीं निकाल सकते, प्रभातफेरी नहीं लगा सकते,

पेंफलेट नहीं बाँट सकते, किसी किस्म का साइनबोर्ड नहीं लगा सकते। सभा करने की इजाज़त भी एक नियत जगह के सिवाय दूसरे किसी स्थान के लिए नहीं दी जाती। जिन राजा साहब की, आर्य सामाजिक संसार में, बड़ी प्रतिष्ठा है, और जो बड़े-बड़े समारोहों में भाग लेते हैं, उनके शासन में नागरिकों की यह दशा है।

## बूंदी

यह राजपूताना के दक्षिण-पूर्व में एक पहाड़ी राज्य है। इसका क्षेत्रफल २,२०५ वर्गमील, और जनसंख्या (१९४१ की गणना के अनुसार) २,४९,३७४ है। औसत वार्षिक आय साढ़े चौदह लाख रु० है।

राजा चौहान राजपूत हैं। शासक का पद 'महाराव राजा' है। सन् १६२५ ई० तक इस राज्य में आधुनिक कोटा और झालावाड़ राज्य भी सम्मिलित थे। पीछे यहाँ मुगलों, तथा बाद में मराठों, के आक्रमण हुए। सन् १८१८ में इस राज्य की अंगरेजों से संधि हुई।

सन् १९२७ ई० में राजा ईश्वरीसिंह गद्दी पर बैठे। राजप्रबन्ध एक कौंसिल की सहायता से होता है, जिसमें दीवान के अतिरिक्त चार अन्य सदस्य हैं। अंगरेजी दीवान मि० राबर्टसन ने आते ही एक आर्डिनेन्स जारी कर दिया; सार्वजनिक जीवन का, भाषण और लेखन की स्वतंत्रता का, दम घोट दिया गया। जनता ने प्रजामंडल बनाया। सन् १९३८ में उस पर वार किया गया, और संस्थाओं की रजिस्टरी कराने का कानून लागू कर दिया गया। म्युनिसपैलटी में जनता का प्रतिनिधित्व नहीं है। तथापि उसके द्वारा टेक्स लगाये

जाते हैं। पेट्रोल, सीमेंट और मोटर-बस चलाने आदि के कई धन्धों की ठेकेदारी राज्य ने स्वयं ही ले रखी है। वर्त्तमान महायुद्ध आरम्भ होने पर महाराज दीवान सहित इङ्गलैंड चले गये और राज्य का शासन-कार्य सरकार के राजनैतिक विभाग की देख-रेख में होने लगा, जिससे न तो जनता को संतोष है, और न जनहित का ही कोई विशेष कार्य होता है।

## धौलपुर

धौलपुर राजपूताने का नितान्त पूर्वी राज्य है। इसका क्षेत्रफल ११७३ वर्गमील, और जनसंख्या (१९४१ की गणना के अनुसार) २,८६,९०१ है। औसत वार्षिक आय १६ लाख रुपये है। यहाँ के राजा बमरौलिया जाट वंश के हैं। शासक का पद 'महाराजराना' है। यहाँ के शासक की अंगरेजों से संधि १८०६ में हुई।

राना उदयभानु सिंह जी सन् १९११ में गद्दी पर बैठे। इन्हें पूरे शासनाधिकार १९१३ में मिले। ये राजप्रबन्ध, कुछ विभागों के सेक्रेटरियों की सहायता से, करते हैं। यहाँ कोई प्रबन्धकारिणी सभा, व्यवस्थापक सभा या सलाहकार सभा नहीं है। राज्य में पाँच तहसीलें हैं। न्याय-कार्य तहसीलदार करते है, उनके फैसलों की अपील क्रमशः नाजिम और जुडीशल अफसर के यहाँ होती है। इजलासखास, जिसमें भिन्न-भिन्न सेक्रेटरी होते हैं, और जिसके अध्यक्ष राजा साहब होते हैं, जब-चाहे किसी फैसले की निगरानी के रूप में, हस्तक्षेप कर सकता है।

राजा साहब शिक्षित हैं; लन्दन की गोलमेज सभा की बैठकों में भाग ले चुके हैं, और नरेन्द्र मंडल के चांसलर भी रहे हैं। पर राज्य

में जनता को सार्वजनिक जीवन की सुविधाएँ नहीं है। कठोर दमन-नीति वर्ती जाती है। जनता को नागरिक स्वतंत्रता नहीं है। संस्थाएँ स्थापित करने में यहाँ बड़ी बाधाएँ हैं, यहाँ तक कि आर्यसमाज की ओर से खोला हुआ स्कूल भी बन्द कर दिया गया। क्या, इसलिए कि महाराजा साहब सनातनधर्मी हैं ? यहाँ की एकमात्र संस्था नागरी प्रचारणी सभा है, जो हजारों व्यक्तियों के हस्ताक्षरों से भेजे गये मेमोरियल के बाद खोली जा सकी थी।

सन् १९३६ में 'कमेटी दुकानदारान' ने कस्टम ड्यूटी का खुला विरोध किया, जो कुछ वर्षों से ही लगायी गयी थी। मई १९३८ में इस सम्बन्ध में होनेवाली सार्वजनिक सभा को भङ्ग किया गया। इस पर जनता ने कई दिन हड़ताल रखी और सैकड़ों आदमी घरबार छोड़ कर आगरा चले गये। तब एक पुलिस-अफसर ने पं० श्रीकृष्ण-दत्त जी पालीवाल के पास जाकर आश्वासन दिया कि जनता की शिकायतें दूर की जायँगी। श्री० पालीवाल जी की सलाह मानकर धौलपुर वाले अपने घर वापिस आगये। प्रजामंडल स्थापित होगया, उसका प्रभाव तथा कार्य क्रमशः बढ़ता गया। पर राज्य से उसका समय-समय पर संघर्ष होता रहा। कितनी ही गिरफ्तारियाँ भी हुईं, तथापि वह अपना कार्य कर रहा है।

## किशनगढ़

यह राज्य राजपूताना के प्रायः मध्य में है। इसका क्षेत्रफल ८५८ वर्गमील, और जनसंख्या ( १९४१ की गणना के अनुसार ) १,०४,१२७ है। इसकी औसत वार्षिक आय साढ़े सात लाख रु० है।

इस राज्य की स्थापना जोधपुर महाराज के दूसरे पुत्र उदयसिंह जी ने सन् १५९४ में की। अंगरेजों से इसकी संधि सन् १८१८ में हुई। शासक 'महाराजाधिराज' कहलाते हैं।

सन १९२६ से १९३९ तक महाराजा यज्ञनारायण सिंह जी का शासन रहा। उनकी सहायता के लिए उनकी अध्यक्षता में एक कौंसिल थी, जिसमें निम्नलिखित सदस्य थेः—(१) चीफ-मिनिस्टर और जुडीशल मेम्बर, (२) रेवन्यू मेम्बर, (३) सार्वजनिक निर्माण कार्य मेम्बर (४) एडिशनल (अतिरिक्त) मेम्बर। यह कौंसिल राज्य में सर्वोच्च न्यायालय थी। इसके नीचे अपीलेट कोर्ट, स्मालकाज कोर्ट (अदालत खफीफा), जिला मजिस्ट्रेटों के कोर्ट तथा अन्य अदालतें थीं।

सन १९३९ में श्री सुमेरसिंह जी, जो गोद आये हुए हैं, गद्दी पर बैठे। उस समय इनकी उम्र दस साल की थी। अतः अभी कई वर्ष तक नाबालगी शासन रहेगा। राजप्रबन्ध राजनैतिक विभाग की देखरेख में एक कौंसिल द्वारा होता है, जिसमें चार सदस्य हैं, और जिसके अध्यक्ष जयपुर के रेजीडेन्ट हैं।

राज भर में केवल राजधानी (किशनगढ़) में एक हाई स्कूल है, और वहीं म्युनिसपैलटी है। यहाँ की कपड़े की मिल के मज़दूरों का उसके मालिकों से संघर्ष बना ही रहता है। मज़दूरों सम्बन्धी नियम पुराने ढङ्ग के तथा असामयिक हैं। अधिकारियों द्वारा मज़दूरों का दमन किया गया। मज़दूर यूनियन गैर-कानूनी ठहराया गया। संस्थाओं की रजिस्टरी के कानून ने सार्वजनिक जीवन का उसकी शैशव अवस्था में ही गला घोंट दिया।

## करौली

पूर्वी राजपूताने के इस राज्य का क्षेत्रफल १,२२७ वर्ग मील, और जन-संख्या ( १९४१ की गणना के अनुसार ) १,५३,४२३ है। औसत वार्षिक आय साढ़े छः लाख रु० है। यहाँ का राजा यादव राजपूत वंश का है। उसका पद 'महाराव' है। १८०४ में इस राज्य का अंगरेजों से सम्बन्ध हुआ, और १८१७ में उनसे संधि हुई।

राजा भोमपाल देव सन् १९२८ में गद्दी पर बैठे। यहाँ न कोई प्रबन्ध-कारिणी सभा है, और न व्यवस्थापक सभा या सलाहकार सभा। राजा साहब दीवान की सहायता से शासन करते है। पहले यहाँ दीवानी या फौजदारी आदि के कानून नहीं के बराबर थे, अब कुछ विषयों के कानून ब्रिटिश भारत के ढंग पर बनाये गये हैं। राज्य में पाँच तह-सीलें हैं। उनमें एक-एक तहसीलदार है, जिसे मालगुजारी के अति-रिक्त तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट के अधिकार हैं। तहसीलदारों के ऊपर, राजधानी (करौली नगर) में, एक डिप्टी-कलेक्टर है, जो नायब दीवान के अधीन है। जिला-मजिस्ट्रेट और सबजज भी हैं, इनके फैसलों की अपील सेशन्स जज सुनते हैं। न्याय सम्बन्धी सर्वोच्च अधिकारी चीफ-जस्टिस है, यह पद दीवान को ही मिला हुआ है। इनके फैसले की नजरसानी राजा साहब के यहाँ होती है।

शहर में एक म्युनिसपैलटी है, जिसमें कुछ समय से चुनाव-प्रथा जारी की गयी है, किन्तु अभी नामजद सदस्यों की ही अधिकता है। भूतपूर्व राजा भँवरपाल जी को शेर के शिकार का बड़ा शौक था।

शेरों से कितना ही नुकसान हो, दूसरों को उन्हें मारने का अधिकार नहीं था। शिकार के प्रसंग में, तथा अन्य विषयों में भी यहाँ बेगार का भयंकर प्रकोप रहा है। अन्यान्य सज्जनों में स्व० कुंअर मदनसिंह जी को यह असह्य प्रतीत हुआ। आपने अपने इस विषय के विविध अनुभव सन् १९२३ ई० के 'कर्त्तव्य' (इटावा) में विस्तारपूर्वक प्रकाशित किये।

आपने भगवान् सूर्य नारायण को साक्षी देकर यह प्रतिज्ञा की कि जब तक इस राज्य से पापिनी बेगार नहीं उठा दी जायगी, जब तक राज्य से सुअर मारने की आज्ञा प्रदान नहीं की जायगी, मैं पैरों में किसी प्रकार का जूता न पहनूंगा और खाट पर न सोऊंगा। यदि छः मास तक राज्य ने न सुना तो अन्न खाना छोड़ दूंगा, और दूध और पत्ते पर जीवन बिताऊँगा। उसके बाद आगामी फाल्गुन कृष्णा ८ सं० १९८० तक भी राज्य ने न सुना तो निराहार व्रत करूंगा, जिससे कि आगामी होली पर या तो मेरी होली हो जायगी या बेगार की ही होली होगी।

राज्य ने बेगार उठाने के बजाय, ७ सितम्बर १९२५ को इसे व्यवस्थित रूप दे दिया; इजलास खास के रूबकार में ब्योरेवार आदेश किया गया कि राज्य के भिन्न-भिन्न २५ विभागों के अधिकारियों को किस-किस जाति या पेशे वालों से किस-किस प्रकार की बेगार लेने का अधिकार है। कहना नहीं होगा कि यह 'रूबकार' अत्यन्त निन्दनीय और लज्जास्पद है।

स्व० कुंअर मदनसिंह जी की पवित्र स्मृति में, राज्य में 'मदन खादी

कुटीर' नामक सार्वजनिक संस्था खादी का कार्य कर रही है। राजनैतिक कार्य के लिए यहाँ प्रजामंडल है।

## झालावाड़

यह राज्य राजपूताना के दक्षिण पूर्व में है। इसका क्षेत्र-फल ८२४ वर्ग मील, और जनसंख्या (१९४१ की गणना के अनुसार) १,२२,०९९ है। औसत वार्षिक आय सवा सात लाख रुपये है। सन् १८३८ में यह राज्य कोटा राज्य में से बनाया गया है।

शासक का पद 'महाराजराना' है। यह राज्य अपने विद्या-प्रेम के कारण प्रसिद्ध रहा है। महाराजा भवानीसिंह जी ( १८९९—१९२९ ) बड़े विद्वान और प्रजाहितैषी थे। आप ने शिक्षा और साहित्य के प्रचार की ओर अच्छा ध्यान दिया। आपने स्कूलों के अतिरिक्त पुस्तकालयों की भी स्थापना की तथा साहित्य-निर्माण में सहायता दी। आपकी संरक्षकता में सन् १९२०-२१ में 'सौरभ' मासिक पत्रिका प्रकाशित हुई, जो उस समय की दृष्टि से यथेष्ट गौरव की वस्तु थी।

सन् १९२९ ई० से महाराज राजेन्द्रसिंह जी राज्य कर रहे हैं। आपको इस कार्य में दीवान से सहायता मिलती है। हरिजनों को अधिकार दिये जाने के सम्बन्ध में अच्छा कार्य हो रहा है। इस राज्य में शिक्षित व्यक्तियों की औसत राजपूताने भर के राज्यों में सब से अधिक है। तथापि इसे बढ़ाने एवं जनता के लिए राजनैतिक सुधारों की व्यवस्था करने की यहाँ भी बड़ी आवश्यकता है।

## टोंक

टोंक राजपूताने का एकमात्र ऐसा राज्य है, जिसका प्रधान शासक ('नवाब') मुसलमान है। इसका क्षेत्रफल २,५४३ वर्गमील और जनसंख्या (१९४१ की गणना के अनुसार) ३,५३,६८७ है। औसत वार्षिक आय तेईस लाख रुपये है।

इस राज्य की स्थापना सन् १७६८ में अमीरखाँ ने की थी, जो होल्कर की सेना का सरदार था। इसकी सिंधिया, पेशवा और अंगरेजों से लड़ाई रही। सन् १८०६ में होलकर ने इसे टोंक (जागीर के रूप में) दे दिया। इसके द्वारा राजपूताने के राज्यों पर धावा हुआ। सन् १८१७ में अंगरेजों ने राजपूताने में शान्ति स्थापित करने के लिए अमीरखाँ से समझौता किया, टोंक उसके पास बना रहने दिया और उसकी सेना कम कर दी।

नवाब मोहम्मद सआदत अलीखाँ सन १९३० में गद्दी पर बैठे। वे शासन-कार्य एक स्टेट-कौंसिल की सहायता से करते हैं; जिसमें एक उपसभापति और ५ सदस्य होते हैं। पिछले दिनों कुछ सुधारों की घोषणा हुई है, जिसमें व्यवस्थापक सभा, म्युनिसपैलटियों तथा ग्राम-पंचायतों की स्थापना का उल्लेख है। अधिकांश जनता हिन्दू है, और उन्हें धार्मिक विषयों में न्याय तथा नागरिक अधिकारों की शिकायतें हैं, जिन का एकमात्र उपाय उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित होना है।



# उनंचासवाँ अध्याय

## मध्यभारत के देशी राज्य

मध्यभारत के राजनैतिक जीवन का श्रेय गवालियर, इन्दौर और धार की उन आत्माओं को है, जो या तो षड्यंत्र के आरोप में जेल में ठूंस दिये गये, या शिवाजी उत्सव और गणेशोत्सव के सिलसिले में नौकरी से हटा दिये गये, या रियासत से निकाल दिये गये।

—हरिभाऊ उपाध्याय

मध्यभारत देशी राज्यों का ही समूह है। इस प्रदेश में जो राज्य हैं, वे भारत-सरकार के सम्बन्ध की दृष्टि से पाँच भागों में विभक्त हैं। गवालियर रेजीडेन्सी,* इन्दौर एजन्सी, भोपाल एजन्सी, बुन्देलखंड एजन्सी और मालवा एजन्सी के क्रमशः २, २, १०, ३३ और १३, इस प्रकार कुल मिलाकर ६० राज्य मध्यभारत में हैं। उपर्युक्त एजंसियों के मुख्य राज्य ये हैं—(१) गवालियर; (२) इन्दौर और रीवा; (३) भोपाल, बड़ी देवास, छोटी देवास, राजगढ़, नरसिंहगढ़ और खिलचीपुर; (४) अजयगढ़, बावनी, दतिया, ओरछा, बिजावर, चरखारी, छतरपुर, पन्ना, समथर, मैहर और नागोद; (५) धार, जावरा, रतलाम, अलीराजपुर, बरवानी, झाबुआ, सैलाना, और

* इस रेजीडेन्सी में रामपुर और बनारस का भी समावेश है, परन्तु वे संयुक्त-प्रांत में स्थित हैं।

सीतामऊ। अन्य राज्य बहुत छोटे-छोटे हैं, यहाँ तक कि किसी-किसी राज्य का क्षेत्रफल पाँच वर्गमील, जनसंख्या, एक हजार से कुछ ही अधिक, और औसत वार्षिक आय केवल छः हजार रुपये हैं। अगले अध्यायों में हम नमूने के तौर से उपर्युक्त प्रत्येक समूह के कुछ राज्यों की शासनपद्धति का विचार करेंगे।

कुछ समय से भारत-सरकार के सामने छोटे-छोटे देशी राज्यों के लिए संयुक्त हाईकोर्ट और संयुक्त पुलिस स्थापित करने की योजना है। यह योजना मध्यभारत में अमल में आने लगी है। पहले बुन्देलखंड के लिए ओरछा में संयुक्त हाईकोर्ट और संयुक्त पुलिस की व्यवस्था हुई। अब रतलाम में मालवा समूह के राज्यों के लिए ऐसी ही व्यवस्था की जानेवाली है। इस समूह में झाबुआ, सैलाना, सीतामऊ, जावरा और रतलाम शामिल हैं।

मध्यभारत की पश्चिमोत्तर सीमा राजपूताने से मिली हुई है। यहाँ के निवासियों का रहन-सहन, जाति, भाषा राजपूतानावालों की सी ही है। कई राजा राजपूत हैं, और कुछ ऐसे मराठे हैं जो पहले राजपूत थे, पीछे दक्षिण में जाने पर मराठों में मिल गये। उनका राजपूतों से विवाह सम्बन्ध होता रहता है। इसी प्रकार मध्य-भारत में जागीरदारी आदि की समस्याएँ भी राजपूताने के समान ही हैं। साधारणतया मध्यभारत, राजपूताने की अपेक्षा अधिक शिक्षित और उन्नत है। और, यहाँ जनता के दमन के लिए वैसे मध्यकालीन उपाय काम में नहीं लाये जाते, जैसे राजपूताने के राज्यों में लाये जाते हैं, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि यहाँ नागरिक

स्वतंत्रता की दृष्टि से परिस्थिति विशेष अच्छी है। मध्यभारत का बहुत उन्नत समझा जाने वाला इन्दौर राज्य कई वर्ष सभाबन्दी के कानून से कलंकित रहा है, सन् १९४१ ई० में वहाँ प्रजामंडल जैसी शान्ति और अहिन्सा नीति से काम करनेवाली संस्था के वार्षिक अधिवेशन पर प्रतिबन्ध का उदाहरण मिला है। गवालियर में अब तक कार्यकर्त्ताओं को बिना मुकदमा चलाये राज्य से निकाले जाने की घटना जनता के सामने रही है। यह तो उन्नत कहे जानेवाले राज्यों की बात है। इससे अन्य राज्यों की स्थिति के विषय में सहज ही कल्पना की जा सकती है। रतलाम और झाबुआ आदि ने अपने कारनामों से लोकमत को न केवल अपने विरुद्ध, वरन् सब देशी राज्यों के समूह के ही विरुद्ध, बनाने में सहायता दी है।

मध्यभारत के कुछ सार्वजानिक कार्यकर्त्ताओं का उल्लेख अगले अध्यायों में प्रसंगानुसार किया जायगा। यहाँ की उन संस्थाओं में, जिनका कार्यक्षेत्र किसी विशेष राज्य में परिमित न होकर पूरे प्रदेश भर में है, दो विशेष उल्लेखनीय हैं:—(१) राजपूताना-मध्यभारत (देशी राज्य) सभा और (२) मध्यभारत प्रजापरिषद। इनमें से पहली संस्था के विषय में, सैतीसवें अध्याय में लिखा जा चुका है। मध्य-भारत प्रजापरिषद की स्थापना उसके बहुत समय बाद, हुई। जब-कि पहली संस्था राजपूताना सम्बन्धी कार्य भी करती है, और विशेषतया उसकी ही समस्याओं को हल करने में लगी रहती है, मध्य-भारत प्रजापरिषद अकेले मध्यभारत के ही विषयों की ओर ध्यान देती है। इसके प्रमुख कार्यकर्त्ता सर्वश्री आचार्य नरेन्द्रदेव, सिद्धनाथ

माधव आगरकर, और कन्हैयालाल वैद्य आदि सज्जन रहे है। रतलाम, झाबुआ आदि जिस राज्य के सम्बन्ध में विशेष आवश्यकता उपस्थित हुई, इस सभा ने अपनी यथेष्ट शक्ति लगायी है, और यह मध्यभारत के देशी राज्यों सम्बन्धी सामूहिक प्रश्नों पर भी विचार करती रही है।

जुलाई १६४२ में, उज्जैन में मध्यभारत के कार्यकर्त्ताओं का सम्मेलन हुआ, यह इस प्रदेश में अपने ढंग का पहला ही था। इसमें यहाँ की प्रमुख रियासतों के लगभग साठ कार्यकर्त्ता एकत्र हुए। रचनात्मक कार्य के सम्बन्ध में यथेष्ट विचार-विनिमय हुआ। यह निश्चय किया गया कि खादी की उत्पत्ति बढाने के लिए अधिक केन्द्र स्थापित किये जायँ, खादी विद्यालय और सरंजाम कार्यालय खोले जायँ, और मध्यभारत के लिए एक संगठनकर्त्ता नियत किया जाय। ऐसे सम्मेलनों की आवश्यकता तथा उपयोगिता स्पष्ट है।

# पचासवाँ अध्याय

## गवालियर

मैं इस बात को बुरा समझता हूं कि लोगों की माँगें उस समय स्वीकार की जायँ, जब वे माँगते-माँगते थक जायँ, निराश हो जायँ और अशान्ति पैदा करने को तैयार हो जाँय। —स्व० महाराजा माधवराव

यह मध्यभारत का प्रमुख राज्य है। इसका क्षेत्रफल २६,३६७ वर्गमील, जन-संख्या लगभग चालीस लाख, और औसत वार्षिक आय

पौने तीन करोड़ रुपये हैं। वास्तव में इसके दो भाग हैं, उत्तरीय भाग गवालियर, और दक्षिणी भाग मालवा कहलाता है। मालवा कई टुकड़ों में बँटा हुआ है, जिनके बीच में दूसरी रियासतें आ गयी हैं।

इस राज्य की स्थापना अठारहवीं सदी में हुई। सन् १७२६ में पेशवा बाजीराव ने रानों जी शिन्दे (सिन्धिया), मल्हार राव होलकर, और ऊदाजी पंवार नामक सेनानायकों को मुगल बादशाह के सूबेदार से, मालवा प्रान्त विजय करने के लिए भेजा। कुछ समय में सारा मालवा प्रान्त मराठों के आधिपत्य में आ गया, और उसके भिन्न-भिन्न भाग इन सेनानायकों को जागीर में मिले। इन जागीरों में से गवालियर, इन्दौर और धार के राज्यों की स्थापना हुई। उपर्युक्त तीनों सेनानायक शिन्दे, होलकर और पँवार राजवंशों के मूल पुरुष थे। क्रमशः ये जागीरदार स्वतंत्र राजा बन गये, और अपने-अपने राज्य की वृद्धि का प्रयत्न करने लगे। यद्यपि श्री महादजी सिन्धिया (सन् १७६९-९४) पेशवा के अधीन थे, उनका दबदबा भारतवर्ष में हो गया था। गवालियर राज्य की अंगरेजों से सन्धि सन् १८०५ में, और फिर १८४४ में हुई।

स्व० महाराजा माधवराव जी ने सन १८८६ ई० से सन १९२५ तक राज्य किया। आपने राज्य की अच्छी उन्नति की। आपके उद्योग से शासन सम्बन्धी तथा गवालियर राज्य सम्बन्धी छोटी से लेकर बड़ी बातों तक का समावेश 'पोलिसी दरबार' में किया गया। १९२१ ई० में आपने 'मजलिस आम' की स्थापना की, जिसका कार्य परामर्श देने

वाली संस्था का था। राज्य की दूसरी संस्था 'मजलिस कानून' थी, इसके पास ग्वालियर सरकार के कानूनी मसविदे बहस के लिए भेजे जाते थे। महाराजा जिवाजीराव सन् १६२५ में गद्दी पर बैठे। ये उस समय नाबालिग थे। अतः शासन-कार्य के लिए महारानी (राजमाता) की अध्यक्षता में रिजेन्सी कौन्सिल संगठित हुई।

नवम्बर १६३६ में श्री० जिवाजीराव ने शासन-सूत्र ग्रहण किया। शासन-कार्य छः विभागों में विभक्त है:—(१) विदेश और राजनैतिक, (२) सेना, (३) गृह, (४) माल, (५) राजस्व, (६) कानून और न्याय। प्रत्येक विभाग एक-एक मंत्री के सुपुर्द है। इनके अतिरिक्त दो मंत्री ऐसे भी हैं, जिनका कोई विशेष निर्धारित विभाग ('पोर्टफोलियो') नहीं है। ये मंत्री (१) न्याय सम्बन्धी अपील और निगरानी तथा (२) माल सम्बन्धी अपील और निगरानी के कार्य का निरीक्षण करते हैं। पुलिस और 'जयाजी प्रताप' * विभाग स्वयं महाराज के अधीन है। उनकी ओर से हुजूर सेक्रेटरी इनका कार्य-संचालन करता है। सन् १६३६ की घोषणा में महाराज ने एक मंत्री अपनी पसन्द का ऐसा भी नियुक्त करने की सूचना दी है, जो प्रजा में से, गैर-सरकारी होगा। तदनुसार श्री० तख्तमल जी जैन स्थानीय स्वराज्य विभाग के मंत्री नियुक्त किये गये। †

---

* राज्य का हिन्दी-अंगरेजी साप्ताहिक पत्र।

† आपने मंत्रिमंडल में रहना अनुचित समझ कर अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। इससे सुधारों की निस्सारता प्रगट होती है।

मजलिस आम और मजलिस कानून के सम्बन्ध में भी उक्त घोषणा द्वारा कुछ सुधार किये गये थे। परन्तु वे बहुत असंतोषजनक रहे, और अमल में नहीं आये। इस पर ३० सितम्बर १९४१ को दशहरे के दिन महाराज की नयी घोषणा हुई। पहली घोषणा में प्रजा-सभा ( मजलिस आम ) के ८५ सदस्य निश्चित किये गये थे, जिनमें से ५० निर्वाचित हों। अब उसका संगठन इस प्रकार है :—

| | | |
|---|---|---|
| निर्वाचित | | ५५ |
| देहाती क्षेत्र | ४३ | |
| शहरी क्षेत्र | ७ | |
| विशेष | ५ | |
| नामजद | | ३५ |
| योग | | ९० |

दूसरी व्यवस्थापक सभा (मजलिस कानून) का नाम अब राजसभा है। इसका संगठन इस प्रकार है—

| | | |
|---|---|---|
| निर्वाचित | | २० |
| देहाती क्षेत्र | ११ | |
| शहरी क्षेत्र | ५ | |
| विशेष | ४ | |
| नामजद | | २० |
| गैर-सरकारी | ८ | |
| सरकारी | १२ | |
| योग | | ४० |

दोनों सभाओं का कार्य-काल तीन-तीन साल निश्चित किया गया है। दोनों का कार्यक्षेत्र समान है। दोनों को बजट पर विचार करने तथा उसे पास करने का अधिकार है। कोई भी प्रस्ताव संशोधित या असंशोधित रूप में, जब तक दोनों सभाओं द्वारा स्वीकृत न होगा (और अन्त में राजकीय स्वीकृति प्राप्त न कर लेगा) कानून का रूप धारण न कर सकेगा। इस प्रकार कोई भी सभा दूसरी पर दबाव न डाल सकेगी; हाँ, दो सभाएँ होने से कानून बनाने की क्रिया में समय बहुत लगेगा।

प्रजासभा के संगठन में चिन्तनीय बात यह है कि चुने जाने वाले सदस्यों में से केवल सात ही शहरों और कस्बों के होंगे, जहाँ कि राजनैतिक जागृति रहती है और शिक्षित जनता अधिक होती है। इसके विपरीत, ४२ सदस्य देहाती जनता की ओर से आयेंगे; ये अधिकतर जमींदार वर्ग के होंगे, इनके सरकारी पक्ष में ही मत देने की सम्भावना अधिक होती है। विशेष हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य पाँच हैं, ये प्रायः सरकारी पक्ष में ही राय देंगे। दूसरी सभा (राजसभा) की तो व्यवस्था ही नहीं होनी चाहिए थी। इस के सदस्यों के चुनाव के लिए जागीरदार, साहूकार, उपाधिधारी आदि ऐसे व्यक्ति ही मत दे सकते हैं, जिनकी आर्थिक योग्यता या प्रतिष्ठा प्रजासभा के मतदाताओं की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। इसके परिणाम-स्वरूप इसके सदस्य प्रायः अनुदार और प्रतिगामी होते हैं।

न्याय-कार्य के लिए राज्य में सर्वोच्च संस्था हाईकोर्ट है, उसके अधीन सेशन और जिला-कोर्ट हैं तथा जिला-सबजज, आनरेरी

मजिस्ट्रेट और सिटी-मजिस्ट्रेटों के कोर्ट एवं परगना-कोर्ट आदि हैं। प्राणदंड के सब मामले महाराज के अन्तिम निर्णय के लिए उपस्थित किये जाते हैं।

आय के साधन परिमित और कम उन्नत होते हुए भी इस राज्य की आर्थिक स्थिति अच्छी है। स्व० महाराजा माधवराव जी के समय से कई कार्यों के लिए अलग-अलग निधि स्थापित हैं, जो क्रमशः बढ़ती जाती हैं। इस राज्य में डाक और तार का अपना अलग प्रबन्ध है। राज्य की अपनी रेल भी है। प्रारंभिक शिक्षा, पंचायतों, सहकारिता, कृषि-सुधार, जमींदार-सभाओं एवं निर्माण-कार्यों आदि की दृष्टि से राज्य उन्नतशील है। यह राज्य प्रतिवर्ष दो हजार रुपये लेखकों को प्रोत्साहित करने के लिए उनकी उत्तम कृतियों पर पुरस्कार के रूप में प्रदान करता है। * तथापि नागरिक अधिकार यहाँ भी नाममात्र के रहे हैं; शासकों की इच्छा पर लोगों को बिना मुकदमा चलाये देश (राज्य)-निकाले तक का दंड दिया जाता रहा है। सन् १९३९ की राजकीय घोषणा में कहा गया है कि जनता को भाषण, लेखन, प्रकाशन, और सभा करने आदि की नागरिक स्वतंत्रता का अधिकार रहेगा। परन्तु अभी स्थिति पूर्णतया संतोषप्रद नहीं है।

राज्य की शासन-रिपोर्ट प्रति वर्ष ब्यौरेवार प्रकाशित होती है, उसमें महराजा साहब की ओर से आलोचना भी रहती है। हाँ, रिपोर्ट अंगरेजी में ही छपती है, जिसका साधारण जनता में बहुत कम प्रचार

* हमारी कई पुस्तकों पर चालीस रुपये से लेकर दो सौ रुपये तक का पुरस्कार मिल चुका है।

है। राज्य के 'जयाजी प्रताप' पत्र का उल्लेख पहले किया जा चुका है। कुछ समय से श्री० जगन्नाथ जी मिलिन्द के सम्पादकत्व में सार्वजनिक हिन्दी साप्ताहिक 'जीवन' अच्छा निकल रहा है।

गवालियर राज्य में छोटी-बड़ी सब मिला कर पाँच सौ से अधिक जागीरें हैं, इनमें से लगभग एक-तिहाई बदइन्तजामी, फजूलखर्ची, नाबालगी या आपसी झगड़े आदि के कारण कोर्ट-आफ-वार्डस के अधीन हैं। कितने ही जागीरदार अपने माली, दीवानी, या फौजदारी अधिकारों का बहुत दुरुपयोग करते हैं, इससे जागीरी क्षेत्र में अत्याचार, अन्याय और रिश्वत का बड़ा जोर रहता है। सार्वजानिक कार्यकर्त्ता इस ओर ध्यान दे रहे हैं। कुछ समय से गवालियर-राज्य-सार्वजनिक सभा के अन्तर्गत, जागीरी प्रजा के अधिकारों के वास्ते भी सार्वजनिक सम्मेलन किये जा रहे हैं।

मकड़ावन के जागीरदार के विरुद्ध लगातार घोर शिकायतें होने पर, महाराज का उसे अधिकारच्युत करके, उसके लड़के को शिक्षा प्राप्त करने का आदेश देना उचित दिशा में कदम बढ़ाना है। अन्य जागीरों की भी बात विचारणीय हैं।

इस राज्य में राष्ट्रीय जागृति इस शताब्दी के आरम्भ से ही है। समय-समय पर वाचनालय, उत्सव, अखाड़ों आदि के द्वारा जनता में राष्ट्रीय भावों का संचार किया जाता रहा है। इस समय जनता की प्रमुख संस्था 'गवालियर राज्य सार्वजनिक सभा' है। इसका जन्म उज्जैन में सन् १९१७ में हुआ; बहुत समय तक इसका उद्देश्य स्थानीय उन्नति ही रहा। गत दशाब्दी में गवालियर वालों ने प्रजामंडल

बनाना चाहा तो अधिकारियों ने उसे बनने न दिया। इस पर उज्जैन की सभा को राज्य-व्यापी स्वरूप दिया गया; स्थान-स्थान पर इसकी शाखाएँ स्थापित की गयीं। इसने जनता की ओर से एक 'अर्जदास्त' तैयार करके अगस्त १९३७ में महाराज की सेवा में भेजी और मजलिस-आम-सुधार-जांच-समिति में जनता के प्रतिनिधि लिये जाने का आन्दोलन किया। अन्ततः इसके तीन सदस्य उसमें लिये गये। सुधार-समिति में बहुमत मिनिस्टरों का था। उनके आश्वासन पर सहयोग और समझौते की भावना से इन तीन सदस्यों ने उनके साथ सर्वसम्मत रिपोर्ट तैयार की। जून १९३९ में महाराज ने शासन-सुधारों की जो घोषणा की, वह सुधार-कमेटी की रिपोर्ट में सूचित सिफारिशों के अनुसार न थी। इसलिए सार्वजनिक सभा ने मताधिकार कमेटी का बहिष्कार किया; इससे वह कमेटी अपना कार्य न कर सकी। उसकी रिपोर्ट प्रकाशित नहीं की गयी। सन् १९४१ में महाराज की नयी घोषणा हुई; इसके द्वारा कुछ परिवर्तन किये गये। सार्वजनिक सभा ने अपने भिंड के अधिवेशन में इन्हें भी उत्तरदायी शासन की दृष्टि से असंतोषजनक सूचित किया, तथापि सुधार-कमेटी की रिपोर्ट में सूचित, अपनी कम-से-कम माँग स्वीकृत कराने के लिए उसने व्यवस्थापक सभा के चुनाव में भाग लेना और अपने उम्मेदवार खड़ा करना उचित समझा।

सार्वजनिक सभा ने शासन-सुधार के अतिरिक्त किसान, मज़दूर, तथा जागीरी प्रजा के कष्ट दूर करने के कामों को भी अपने हाथ में लिया है; और, उनमें क्रमशः सफलता भी मिल रही है। सभा का जनता

पर अच्छा प्रभाव है, इसे बढ़ाते रहने की आवश्यकता है। इसके लिए सभा के सदस्यों तथा कार्यकर्त्ताओं में त्याग और सेवा की भावना बनी रहनी चाहिए।

# इक्यावनवाँ अध्याय

## इन्दौर

यदि अपने ऐतिहासिक पूर्वजों की पुण्यस्मृति को सन्मुख रखकर तथा आधुनिक काल की परमावश्यकता—वैधानिक राजपद—का ध्यान रखकर, राज के एक सर्वोच्च सेवक—जैसा कि स्व० माधवराव महाराज सिंधिया अपने आपको कहा करते थे—के नाते श्रीमन्त यशवन्तराव साहब राजकाज करें तो होलकरों की उज्ज्वल परंपरा में, वे एक ऐतिहासिक मणि बन जायँगे। —'स्वराज्य'

इन्दौर या होलकर राज्य मध्यभारत के मालवा और नीमाड़ प्रदेशों में है। यह कई बड़े-बड़े टुकड़ों से मिलकर बना है। यहाँ का क्षेत्रफल ९,९०२ वर्गमील, जनसंख्या चौदह लाख और औसत वार्षिक आय सवा करोड़ रुपये से अधिक है।

यहाँ के राजवंश की नींव डालने वाले श्री० मल्हारराव होलकर सन् १६९४ में पैदा हुए थे। इनका उल्लेख गवालियर राज्य के प्रसंग में किया जा चुका है। सन् १७६६ में इनका देहान्त हो जाने से इनके पौत्र श्री० मालेराव गद्दी पर बैठे, पर वह साल भर पीछे ही

मर गये। उनके बाद उनकी माता सुप्रसिद्ध अहिल्याबाई ने राजकाज संभाला। ये अपनी दयालुता, और राजनैतिक कुशलता आदि सद्गुणों के कारण चिरस्मरणीय हैं। इन्दौर राज्य की ब्रिटिश सरकार से सन् १८०५ में, तथा फिर १८१८ में संधि हुई। श्री० तुकोजीराव द्वितीय (१८४४-८६) के समय में मध्यभारत में यंत्र-युग का प्रादुर्भाव हुआ। इन्दौर की स्टेट-मिल इनकी ही प्रेरणा का परिणाम थी। यह इन्दौर की प्रथम मिल मध्यभारत की भी प्रथम ही मिल है।

महाराज तुकोजीराव तृतीय ने सन् १६२६ ई० में राज्य-त्याग किया। इस का उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। उस समय उनके पुत्र (महाराजा यशवंतराव होलकर द्वितीय) नाबालिग थे। अतः शासन-कार्य प्रधान मंत्री तथा उनके मंत्रिमंडल द्वारा संचालित होने लगा, और उस पर ए० जी० जी० की निगरानी रही। महाराजा यशवन्तराव होल्कर को मई सन् १६३० में शासनाधिकार प्राप्त हुए। सन् १६३२ में ये गोलमेज सभा के सदस्य थे।

मंत्रिमंडल में प्रधान मंत्री तथा पाँच अन्य मंत्री हैं। शासन-कार्य संचालन के लिए मंत्रियों के अतिरिक्त चार मेम्बर और होते हैं, जो केवल उसी समय मंत्रिमंडल की मीटिंग में भाग लेते हैं, जब उनके विभाग का विषय उपस्थित होता है।*

---

* अप्रैल १९४२ से महाराज ने प्रधान मंत्री को पृथक् कर दिया, और मंत्रि-मंडल के सभापति आप स्वयं हो गये। इस प्रकार कार्य कब तक चलेगा, यह निश्चय नहीं।

इस राज्य में व्यवस्थापक परिषद सन् १९२६ में संगठित की गयी थी। इसमें नौ सदस्य रखे गये थे—सात निर्वाचित और दो सरकारी। सभापति सरकारी होता था। सन् १९४० ई० के सुधारों के अनुसार, व्यवस्थापक परिषद का संगठन इस प्रकार है :—

| | | |
|---|---|---|
| निर्वाचित | | ३७ |
| इन्दौर शहर | ४ | |
| अन्य म्युनिसिपल कस्बे | ६ | |
| देहाती क्षेत्र | १७ | |
| विशेष क्षेत्र | १० | |
| नामजद | | १६ |
| सरकारी | ८ | |
| गैर-सरकारी | ८ | |
| योग | | ५३ |

विशेष निर्वाचक संघों के प्रतिनिधि इस प्रकार होते हैं:—ग्रेजुएट १, जागीरदार २, कपड़े की मीलें १, अन्य कारखाने १, चेम्बर-आफ-कामर्स १, व्यापार-व्यवसाय १, स्त्रियाँ ३। इन दस प्रतिनिधियों में से जागीरदारों के दो, कपड़े की मिलों का एक, अन्य कारखानों का एक, एवं व्यापार-व्यवसाय का एक, इस प्रकार पाँच प्रतिनिधि प्रायः सरकारी पक्ष का ही बल बढ़ाने वाले होंगे। सभापति भी महाराजा साहब द्वारा नियुक्त होगा ( उपसभापति का निर्वाचन परिषद के सदस्य करेंगे )। कुल मिलाकर व्यवस्थापक सभा में साधारण जनता के सदस्यों का बहुमत है। परन्तु क्या यही काफी है?

व्यवस्थापक परिषद को प्रश्न पूछने, कानूनी मसविदों के प्रस्ताव

पास करने, और बजट पर केवल वादविवाद करने का अधिकार होगा। राजपरिवार, सेना, संधि आदि तो परिषद के क्षेत्र से बाहर हैं ही; परिषद को शासन-विधान तथा ऐसे अन्य विषयों के सम्बन्ध में भी कोई अधिकार नहीं है, जिन्हें महाराजा साहब परिषद के क्षेत्र से बाहर रखें। इससे स्पष्ट है कि परिषद की शक्ति और अधिकार बहुत परिमित हैं। फिर, इन सुधारों का लक्ष्य केवल 'जनता का शासन-कार्य में सहयोग बढ़ाना' ही तो है। 'नये शासन-विधान की जाँच छः वर्ष के बाद की जायगी, और इसके सफलता पूर्वक काम करने की दशा में एक मंत्री व्यवस्थापक परिषद के सदस्यों में से बनाया जायगा।' इन्दौर-राज्य-प्रजामंडल ने उपर्युक्त सुधारों को अत्यन्त नाकाफी सूचित किया परन्तु विशेषतया उत्तरदायी शासन प्राप्त करने के अपने लक्ष्य की दृष्टि से उसने चुनाव में भाग लेने का निश्चय किया।

इन्दौर राज्य में जिले का प्रधान अधिकारी 'सूबा' कहलाता है। सूबा साहब का मुख्य सम्बन्ध ज़मीन और मालगुजारी से होता है। वे ही जिले के मजिस्ट्रेट होते हैं। उनके अधीन सब-डिवीजन या परगनों के हाकिम होते हैं, जिन्हें अमीन कहा जाता है।

राज्य में म्युनिसपैलटियों के प्रबन्ध सम्बन्धी तथा आर्थिक अधिकार भी बहुत अल्प ही हैं। इन्दौर नगर तक में सभापति अभी तक एक नामजद सदस्य किया जाता है। इस राज्य में सन् १९०६ में, म्युनिसपैलटियाँ स्थापित करने के लिए कानून बनाया गया था; इसमें पीछे संशोधन हुआ। सन १९१९ में, बड़े-बड़े

तथा व्यापारिक महत्व के गाँवों में पंचायतें स्थापित करने के लिए ग्राम-पंचायत-कानून बनाया गया। सन १९२७ ई० में कृषि तथा सहकारिता विभाग को मिलाकर रेवन्यू मिनिस्टर (माल-मंत्री) के नियंत्रण में, ग्राम-सुधार विभाग का संगठन किया गया। समय-समय पर कृषि सम्बन्धी पत्र भी प्रकाशित तथा प्रोत्साहित किये गये। चार सौ से अधिक गावों में पंचायतें हैं। पंचायत का मुखिया सरपंच कहलाता है। पंचायतों को छोटे-छोटे दीवानी और फौजदारी के मामले निपटाने का अधिकार है।

इन्दौर के कालिज आगरा-विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हैं। राज्य में प्रारम्भिक शिक्षा निश्शुल्क है; इन्दौर म्यूनिसपैलटी की सीमा में तो यह अनिवार्य भी है। अब तो राज्य भर में इसे अनिवार्य करने के उद्देश्य से नेमावर जिले में बड़े वेग से कार्य आरम्भ कर दिया गया है। हाँ, समस्त राज्य को इसका गौरव कब तक प्राप्त होगा?

राज्य में ग्रामीण पुस्तकालयों के प्रचार के लिए अच्छा प्रयत्न हो रहा है। परन्तु अभी बहुत कार्य करना है। राज्य की ओर से मराठी और हिन्दी के साहित्य-कार्य के लिए सहायता दी जाती है। यहाँ की मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति अपनी मासिक मुख-पत्रिका 'वीणा' के अतिरिक्त कई पुस्तकमालाएँ प्रकाशित करती है, तथा लेखकों को उनकी उत्तम कृतियों पर पुरस्कार प्रदान करती है एवं राज्य में पुस्तकालयों और वाचनालयों के प्रचार में योग देती है।*

* समिति ने हमारी भी एक पुस्तक प्रकाशित की है, कई पुस्तकों को पुरस्कृत किया है, तथा कुछ पुस्तकों को इकट्ठी प्रतियाँ लेकर उनका पुस्तकालयों में प्रचार किया है।

राज्य में समय-समय पर कुछ अच्छे कायदे कानून बने हैं। म्युनिसपल कानून और पंचायत का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। मज़दूरों के हित के लिए भी राज्य ने कई कानून बनाये हैं, उनके वास्ते मकानों के बनाने की योजना भी राज्य के सामने है, यदि मिल-मालिकों का यथेष्ट सहयोग मिले तो इस दिशा में बहुत अच्छा कार्य हो सकता है। समाज-सुधार के कानूनों में बाल-विवाह तथा वृद्ध-विवाह प्रतिबन्धक कानून, नुकता-कानून, विवाह-खर्च प्रतिबन्धक कानून तथा 'सिविल मेरिज'-कानून उल्लेखनीय हैं। हरिजनों की शिक्षा और उन्नति का भी कार्य हो रहा है।

इन्दौर नगर में कभी-कभी हिन्दी साहित्य सम्मेलन, सम्पादक सम्मेलन, कवि सम्मेलन, खादी प्रदर्शनी आदि संस्थाओं के अधिवेशन होते रहते हैं। राज्य की ओर से इन सार्वजनिक कार्यों में सहयोग तथा सहायता मिलना प्रशंसनीय है। परन्तु इससे यह अनुमान करना भ्रम-मूलक होगा कि इन्दौर राज्य में जनता को नागरिक अधिकार यथेष्ट हैं। यहाँ पर सभा करने या जलूस निकालने आदि के सम्बन्ध में चिन्तनीय प्रतिबन्ध रहा है; अनेक कार्यकर्त्ताओं को जेल, जुर्माना या निर्वासन का दंड भोगना पड़ता है। राज्य से बाहर के आदमियों का भाषण कराने के लिए राज्य की अनुमति लेना अनिवार्य है। यही नहीं, बाहर के कार्यकर्त्ताओं पर पुलिस-कर्मचारियों की कड़ी निगाह रहती है।

पहले की बात तो जाने दें, सन् १९४१ में यह लेखक इन्दौर गया, तो अच्छी भावना लेकर नहीं लौटा। मेरे रेल से उतरते ही

सी० आई० डी० के एक आदमी ने मुझ से पूछा, आप कहाँ से आये हैं, आपका नाम क्या है, आप कहाँ ठहरेंगे, इत्यादि। सम्भवतः मेरी खादी की टोपी के कारण ही उस कर्मचारी ने मुझे अपने प्रश्नों का निशाना बनाया। यदि इस युग में भी इन्दौर राज्य के लिए खादी की टोपी एक चौंकाने वाली चीज है तो यह राज्य अपनी राजनैतिक प्रगति में कहाँ है, यह स्पष्ट और चिन्तनीय है। स्मरण रहे कि इन्दौर मध्यभारत की एक उन्नत मानी जानेवाली रियासत है, और यदि उसकी राजधानी में ही यह बात है, तो वहाँ के गाँव-खेड़ों में (तथा अन्य कम उन्नत राज्यों में) क्या होता होगा! आशा है, प्रगतिशीलता का दम भरनेवाला यह राज्य इस प्रकार के आरोपों को शीघ्र दूर करेगा।

इन्दौर में लोक-जागृति का आन्दोलन बहुत वर्षों से हो रहा है। इन्दौर राज्य प्रजापरिषद का प्रथम अधिवेशन सितम्बर १९२१ ई० में हुआ था। उसके कुछ प्रस्ताव निम्नलिखित विषयों के थे—पंचायतों की स्थापना प्रजा की सहायता से, और बिना विलम्ब, की जाय; निर्वाचित लोकप्रतिनिधि-सभा स्थापित की जाय; राज्य भर में अनिवार्य और निश्शुल्क शिक्षा देने की योजना कार्यरूप में परिणत की जाय, सार्वजनिक भाषण, लेखन और प्रकाशन सम्बन्धी प्रतिबन्धक नियम रद्द कर दिये जायँ; बेगार उठा दी जाय; जागीरी क्षेत्र के दोषों को दूर किया जाय; कृषि तथा उद्योग की उन्नति की जाय। उस अवसर पर सर्वश्री भानूदास शाह, डाक्टर व्यास, और सूरजमल जैन राज्य से निर्वासित कर दिये गये थे। पीछे जनता में कई उतार-चढ़ाव आये। सन् १९३५ ई० में प्रजामंडल स्थापित हुआ। परन्तु सभा-बन्दी क़ानून और संगठन की कमी के कारण कुछ समय तक विशेष

कार्य न हो सका। १९३६ के अन्त में इन्दौर शहर का म्युनिसपल चुनाव लड़ा गया, यद्यपि उसमें अनेक बाधाएँ थीं, तथापि लोकपक्ष को अच्छी सफलता मिली। सन् १९३९ में प्रजामंडल की शक्ति बढ़ी। यह गम्भीरता पूर्वक कार्य कर रहा है। इसे कई अच्छे-अच्छे सुयोग्य सज्जनों की सेवाएँ प्राप्त हैं। इसका उद्देश्य श्रीमान इन्दौर नरेश की छत्रछाया में उत्तरदायी शासनपद्धति प्राप्त करना है। यह समय-समय पर राज्य का ध्यान वर्तमान शासन-प्रणाली के दोषों को निवारण करने की ओर दिलाता है, और जनता को रचनात्मक कार्यों की प्रेरणा करता है। इसकी इस समय राज्य में तीस से अधिक शाखाएँ और चार हजार से अधिक सदस्य हैं। इसकी साप्ताहिक 'प्रजामंडल पत्रिका' प्रकाशित होती है।

सन् १९४१ में प्रजामंडल के वार्षिक अधिवेशन की तैयारियाँ खूब धूमधाम से हुईं। जनता में अभूतपूर्व जागृति थी। परन्तु राज्य ने ठीक अधिवेशन आरम्भ होने के पूर्व सभाबन्दी कानून लगा दिया। 'प्रजामंडल पत्रिका' का 'परिषद अंक' जब्त कर लिया गया। मंडल द्वारा निषेधाज्ञा की अवज्ञा की जाने पर कितने ही सत्याग्रही गिरफ्तार किये गये। पीछे उन्हें बिना शर्त मुक्त किया गया। मंडल का स्थगित अधिवेशन लगभग एक साल बाद जाकर हो सका। इस बीच में मंडल द्वारा आयोजित इन्दौर राज्य म्युनिसपल कान्फ्रेन्स का प्रथम अधिवेशन उत्साह पूर्वक किया गया। निदान मंडल के कार्यकर्त्ताओं के सामने सेवा, त्याग और कष्ट-सहन का मार्ग है। उसे प्रत्येक विचारशील नागरिक का सहयोग और सहानुभूति मिलनी चाहिए।

फरवरी १९४२ में प्रजामंडल ने एक परगने की सात पंचायतों की परिषद करायी। यह इन्दौर राज्य की पहली पंचायत परिषद थी। इसका मुख्य उद्देश्य यह था कि पंचायतों के लिए ऐसे पंच चुने जायँ जो सच्चे ईमानदार और गाँव की सेवा करने वाले हों; गाँवों की भयंकर दरिद्रता दूर करने की दृष्टि से तथा उन्हें स्वावलम्बी बनाने के लिए खादी और ग्रामोद्योग की तरक्की हो। प्रजामंडल ने गाँवों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए यह उपाय सुझाया है कि प्रत्येक गाँव के लगान का कम-से-कम दसवाँ हिस्सा सरकार उस गाँव की सेवा के लिए छोड़ दिया करे।

मई १९४२ में महाराजा इन्दौर ने संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति मि० रुजवेल्ट को एक खुली चिट्ठी में, अन्यान्य बातों के अतिरिक्त यह लिखा था कि "मैं अन्तर्राष्ट्रीय पंचों द्वारा अपने राज्य के सम्बन्ध में किये गये किसी भी निर्णय को बिना किसी संकोच के मानने को तैयार होऊँगा, चाहे उसका परिणाम कुछ ही क्यों न हो; क्योंकि यद्यपि संयोग से मैं जन्मतःराजा हूँ, किन्तु विचारतः मैं अन्तर्राष्ट्रीयतावादी और लोकतंत्रवादी हूँ और मेरी श्रद्धा का यह मुख्य अंग है कि एकतंत्र और लोकतंत्र में कहीं मेल नहीं बैठ सकता।" महाराजा साहब के ये उद्गार प्रशंसनीय हैं। भारतीय जनता और विशेषतया इन्दौर के नागरिकों का निवेदन है कि अन्तर्राष्ट्रीय पंचायत के निर्णय की प्रतीक्षा किये बिना ही महाराज अपने लोकतंत्रवादी होने का परिचय दें, जिससे इन्दौर राज्य का हित होने के अतिरिक्त अन्य राजाओं के लिए भी अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित हो।



# बावनवाँ अध्याय



## भोपाल

भारतवर्ष भर में, मुसलिम शासकों वाले राज्यों में, केवल हैदराबाद को छोड़ कर, भोपाल का महत्व सबसे अधिक माना जाता है।

इस राज्य का क्षेत्रफल ६,६२४ वर्गमील, और औसत वार्षिक आय अस्सी लाख रुपया सालाना है। यहाँ की जनसंख्या साढ़े सात लाख है, उसमें से लगभग सातवाँ हिस्सा मुसलमान और शेष हिन्दू हैं, जिनमें कुछ मूल निवासी गोंड़ भी हैं।

प्रधान शासक का पद 'नवाब' है। वर्त्तमान राजवंश का आदि पुरुष दोस्त मोहम्मद खाँ अफगान था, जो सन् १७०८ के लगभग देहली आया और मालवा में क्रमशः अपनी शक्ति बढ़ाता रहा। मुगल राज्य के क्षय के कारण होनेवाली अराजकता से लाभ उठाकर उसने भोपाल तथा आसपास के प्रदेश पर अपना अधिकार जमा लिया। वह पीछे स्वतंत्र सरदार हो गया। इस राज्य की अंगरेजों से संधि सन् १८१८ में हुई। यहाँ समय-समय पर कई बेगमों ने शासन किया है। सन् १९२६ से नवाब मोहम्मद हमीदुल्ला खाँ का शासन आरम्भ हुआ। ये अपनी माता के राज्यकाल में चीफ-सेक्रेटरी थे। ये नरेन्द्रमंडल के सदस्य हैं, तथा उसकी स्थायी समिति के सभासद की हैसियत से १९२८ में इंगलैंड भी गये थे।

राजप्रबन्ध नवाब साहब स्वयं देखते हैं। आप की सहायता

के लिए एक प्रबन्धकारिणी सभा है, जिसे स्टेट-कौंसिल कहा जाता है। इसके प्रेसीडेन्ट माल-विभाग के मंत्री हैं, और चार अन्य मंत्री इसके सदस्य हैं। मंत्री नवाब साहब द्वारा नियुक्त किये जाते हैं, और उनके प्रति ही जिम्मेवर होते हैं। कोई मंत्री व्यवस्थापक परिषद के प्रति जिम्मेवर नहीं है। प्रत्येक मंत्री को एक या अधिक विषय सौंपा हुआ रहता है। शासन-कार्य प्रायः निम्नलिखित विभागों में विभक्त होता है:—(१) राजनैतिक सम्बन्ध, (२) माल (रेवन्यू), जिसमें कृषि और जंगल आदि सम्मिलित हैं, (३) कानून और न्याय, (४) स्वास्थ्य और चिकित्सा, (५) स्थानीय स्वराज्य, (६) शिक्षा, (७) राजस्व, (८) आयात-निर्यात और आबकारी, (९) सार्वजनिक निर्माण कार्य, (१०) वाणिज्य, उद्योग और श्रम, और (११) साधारण शासन।

व्यवस्थापक परिषद का कार्य यहाँ सन् १९२७ ई० से आरम्भ हुआ। पहले इसमें १६ नामजद और ८ निर्वाचित सदस्य थे। अब इसका संगठन इस प्रकार है—

| | | |
|---|---|---|
| निर्वाचित | | १० |
| भोपाल नगर | ३ | |
| सिहोर नगर | १ | |
| कारतकार | ४ | |
| व्यापारी | २ | |
| नामजद | | १४ |
| सरकारी | १२ | |
| जागीरदार | २ | |
| योग | | २४ |

नागरिक क्षेत्र से वकीलों और अन्य शिक्षितों का प्रतिनिधित्व होता है। व्यवस्थापक परिषद का सभापति नवाब साहब द्वारा नियुक्त होता है। नामजद सदस्यों के बहुमत के होते हुए, जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों की आवाज दबी रहती है। फिर, इस व्यवस्थापक परिषद को केवल यह अधिकार है कि निर्धारित विषयों में से किसी विषय के सम्बन्ध में सरकार से सिफारिश कर दे। सरकार इसके किसी भी प्रस्ताव को मानने के लिए बाध्य नहीं है। इसमें फौज, हाईकोर्ट और व्यवस्थापक परिषद सम्बन्धी किसी कानून के संशोधन का प्रस्ताव नहीं किया जा सकता। निम्नलिखित विषयों के प्रस्ताव इस परिषद में तब ही विचारार्थ उपस्थित किये जा सकते हैं, जब पहले से शासक की स्वीकृति ले ली जाय :—कोई धर्म, या धार्मिक रीतिरिवाज, भोपाल राज्य का अन्य देशी राज्यों तथा सरकार से सम्बन्ध, सार्वजनिक ऋण, राजकीय आय पर प्रभाव डालनेवाला विषय। बजट परिषद में उपस्थित किया जाता है; परिषद उसके सम्बन्ध में अपनी सम्मति दे सकती है, वह किसी सरकारी माँग को अस्वीकार या कम नहीं कर सकती। ऐसा कोई नियम नहीं है कि इतने समय के बाद परिषद का नया चुनाव होना चाहिए; इसकी अवधि चाहे जितनी बढ़ायी जा सकती है।

शासक अपने राजकीय अधिकार से, इस परिषद में लाये बिना भी, कोई कानून बना सकता है, एवं किसी कानून का संशोधन कर सकता है। शासक अपनी इच्छानुसार कोई फरमान (आर्डिनेन्स) जारी कर सकता है, जो उस समय तक जारी रहेगा, जब तक वह मन्सूख न किया जाय। इन बातों से स्पष्ट है कि परिषद के अधिकार कितने

क्रम और उसका संगठन कितना असंतोषप्रद है।

पहले यहाँ न्याय-कार्य इसलाम धर्म के नियमों के अनुसार होता था। काजी मुख्य न्यायाधीश का कार्य करता था। धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन किया गया। अब काजी उन्हीं धार्मिक विषयों में परामर्श देता है, जिनका सम्बन्ध मुसलमानों के व्यक्तिगत कानून से हो। १६२२ ई० में भोपाल में हाईकोर्ट स्थापित किया गया। इसमें चीफ-जस्टिस के अतिरिक्त दो या अधिक जज रहते हैं। इनकी नियुक्ति निर्धारित योग्यता होने पर, शासक द्वारा की जाती है। हाई-कोर्ट दीवानी तथा फौजदारी के मामलों की अपील सुनता है, और सब मातहत अदालतों के काम की निगरानी करता है। भोपाल शहर के अन्दर के इसे न्याय सम्बन्धी प्रारम्भिक या इब्तदाई ( आरिजिनल ) अधिकार भी है। विशेष दशाओं में इसके फैसलों की अपील सुप्रीम जुडीशल कौंसिल में होती है। इसमें न्याय के तीन विशेषज्ञ होते हैं तथा उनकी सहायता के लिए राज्य के कानून और न्याय विभाग का सेक्रटरी रहता है। पहले नवाब साहब के सामने अपीलों पर विचार होता था, अब इस कौंसिल की सिफारिशें नवाब साहब की सेवा में भेजी जाती हैं, और उनकी स्वीकृति के बाद अन्तिम निर्णय किया जाता है। राज्य में न्याय-कार्य शासन-विभाग से पृथक् है। कुछ थोड़े से छोटे-छोटे स्थानों को छोड़ कर, जिनमें माल-विभाग के अधिकारी ही मुकदमों का फैसला करते हैं, और सब जगह न्याय-कार्य के वास्ते पृथक् व्यक्ति हैं।

राज्य में स्थानीय स्वराज संस्थाओं की बहुत कमी है। केवल

भोपाल नगर में ही म्युनिसपैलटी है। इसमें पहले दस निर्वाचित और दस नामजद सदस्य थे। अब १५ निर्वाचित और ५ नामजद हैं। सभापति भी राज्य द्वारा नामजद होता है। कुछ स्थानों में स्वास्थ्य-कमेटियों की व्यवस्था की हुई है। निदान स्थानीय स्वराज्य की दृष्टि से राज्य की स्थिति चिन्तनीय ही है।

यहाँ सर्वसाधारण की शिक्षा की व्यवस्था भी बहुत मामूली ही है। गत वर्षों में इस ओर कुछ ध्यान दिया गया है। अब यहाँ तीन हाईस्कूल, दस मिडिल स्कूल, और एक लड़कियों का हाईस्कूल राज्य की ओर से है। कुछ प्राइवेट संस्थाएँ हैं। कुरान, फारसी, तथा अरबी की शिक्षा के लिए यह राज्य दूर-दूर तक प्रसिद्ध है। परन्तु शिक्षा देने वाली अधिकांश संस्थाएँ भोपाल नगर में ही केन्द्रित हैं। अन्य संस्थाओं में, विशेषतया देहातों में उनकी शोचनीय कमी है। प्राइमरी स्कूलों की व्यवस्था राजधानी में भी ऐसी नहीं है, जैसी चाहिए।

राज्य के पबलिसिटी-अफसर लिखते हैं—"शहर में प्राइमरी स्कूल अनिवार्यता के आधार पर चलाये जाते हैं, परन्तु दुर्भाग्य से राज्य द्वारा हर प्रकार का प्रयत्न किये जाने पर भी, लोगों ने अभी तक साधारण शिक्षा से होनेवाले लाभ का उचित मान करना नहीं सीखा है। माता-पिताओं को हर प्रकार का प्रलोभन दिया जाता है, और दबाव भी डाला जाता है कि अपने बालकों को स्कूल भेजें। आलोचनीय वर्ष में १३६ व्यक्तियों को दण्ड दिया गया, फिर भी सफलता बहुत थोड़े अंश में मिली है।"

क्या सब दोष जनता का ही है? अधिकारी बिल्कुल निर्दोष हैं? क्या शिक्षा-पद्धति में कुछ सुधारों की आवश्यकता नहीं है? क्या

पाठ्य पुस्तकों की भाषा और भावों के विषय में बहुसंख्यक जनता को बहुत असंतोष नहीं है ! वर्त्तमान परिस्थिति में यदि अधिकांश जनता शिक्षा की ओर यथेष्ट रूप में आकर्षित न हो तो क्या आश्चर्य ! अधिकारियों को चाहिए कि समुचित सुधार करें, फिर उन्हें शिक्षा की ओर जनता की उपेक्षा की शिकायत का अवसर न मिलेगा।

राज्य में नागरिक अधिकारों की बहुत ही कमी है। यहाँ प्रेस एक्ट ( छापाखाना कानून ) इतना कड़ा है कि लोगों की प्रेस रखने की स्वतंत्रता का अपहरण सा ही हो जाता है। मजिस्ट्रेट को अधिकार है कि वह प्रेस रखने वाले से, पहले ही जमानत माँग ले। प्रेस रखने के लिए लाइसेन्स लेना लाजमी है। यों तो यह कानून सन् १६१७ ई० से जारी है, पर सन् १९३५-३६ ई० में यह बहुत कड़ा कर दिया गया। बाहर से छपा हुआ साहित्य मँगाने में भी, सायर ( चुंगी ) कानून के कारण बड़ी कठिनाई है। सन् १६३७ ई० से यहाँ धार्मिक या अन्य किसी भी प्रकार का भाषण, राजकीय अनुमति प्राप्त किये बिना नहीं दिया जा सकता। धार्मिक भाषण के लिए काजी अथवा धर्मशास्त्री से, और अन्य प्रकार के भाषणों के लिए जिला-मजिस्ट्रेट से आज्ञा लेना अनिवार्य है। राज्य से बाहर वालों का भाषण तो व्यवहार-रूप में, प्रायः बन्द ही है।

राज्य में अधिकतर जनता हिन्दू है, और उन्हें अधिकारियों की साम्प्रदायिक नीति के सम्बन्ध में बहुत शिकायतें हैं। आवश्यकता है कि वे अपना ध्यान राज्य में उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित कराने के लिए केन्द्रित करें। इसमें उन्हें अन्य जाति या धर्मवाले विचारशील

नागरिकों का भी सहयोग मिलेगा। हर्ष का विषय है कि इस दिशा में प्रयत्न हो रहा है। कुछ समय से राज्य में 'भोपाल स्टेट पीपल्स कान्फ्रेंस' नामक संस्था स्थापित है। इसमें मुसलिम कार्यकर्त्ताओं का भी बहुत प्रशंसनीय भाग है। इसका उद्देश्य उत्तरदायी शासन प्राप्त करना है। इसने समय-समय पर बड़ी-बड़ी सभाएँ करके, नागरिक स्वतंत्रता, बेकारी-निवारण और शासन-सुधार की माँग की है। परन्तु राज्य का इस ओर सहानुभूति और सहयोग का हाथ बढ़ाना तो दूर, उसने इस संस्था के कई प्रमुख कार्यकर्त्ताओं और पदाधिकारियों को जेल का मेहमान बनाया। जुलाई १९४२ में सर्वश्री० शाकिरअली खाँ, चतुर्नारायण मालवीय आदि सज्जन अपनी दो-दो साल की सख्त सजा पूरी करके रिहा हुए हैं। जनता ने आपके स्वागत के लिए सभा करने के लिए आज्ञा माँगी, तो मजिस्टेट ने उस की स्वीकृति नहीं दी। क्या यही सुशासन या 'राम-राज्य' का परिचय है!



# तरेपनवाँ अध्याय



## रीवा

सरकार के लिए सब से अच्छा मार्ग महाराजा ( रीवा ) को वैधानिक शासक की हैसियत से पुनः गद्दी पर बैठा देना है। जिम्मेदराना हुकूमत ही ऐसा अचूक इलाज है, जो रियासतों की जनता के दुःख का अन्त कर सकता है। प्रगति की ओर बढ़नेवाली और ईमानदार हुकूमत तभी हमेशा कायम रह सकती है, जब व्यक्तिगत और निरंकुश शासन समाप्त

हो जाय, और राजा अपनी प्रजा के प्रति उत्तरदायी बन जाय। शासक बदल देने या उसके कुछ अधिकार कम कर देने से कोई लाभ नहीं हो सकता। महाराजा के शासन के स्थान पर नौकरशाही का राज्य कायम कर देने से तो हालत और भी बिगड़ जायगी। —आचार्य नरेन्द्र देव

मध्यभारत के बघेलखंड प्रदेश में रीवा राज्य प्रमुख है। इसे बांधव-राज्य भी कहा जाता है। इसका क्षेत्रफल १३,००० वर्ग मील, जन-संख्या १६ लाख और वार्षिक आय साठ लाख रुपये है।

यहाँ के शासक बघेल राजपूत हैं। तेरहवीं शताब्दी में बघेलों ने यहाँ गुजरात से आकर बांधवगढ़ पर अधिकार किया और इस प्रदेश में अपने राज्य की स्थापना की। सन् १५९७ ई० में बांधवगढ़ पर सम्राट् अकबर का अधिकार हो गया था, पर उसने उसे जल्दी ही बघेलों को लौटा दिया। रीवा राज्य का अंगरेजों से सन् १८१२ और १८१३ की संधियों के अनुसार सम्बन्ध स्थापित हुआ। महाराज रघुराजसिंह ने सन् १८५७ में अंगरेजों की सहायता की, उसके उपलक्ष में उन्हें सोहागपुर और अमरकंटक के परगने दिये गये, जो मरहठों ने ले लिये थे। सन् १९१८ में, महाराजा व्यंकटरमण का देहान्त हो जाने पर उनके पुत्र महाराजा गुलाबसिंह जी गद्दी पर बैठे। ये उस समय पन्द्रह वर्ष के थे। इन्हें शासनाधिकार सन् १९२२ में मिले।

शासन-कार्य में महाराज का एकाधिपत्य है।* उनकी सहायता के लिए, उनकी अध्यक्षता में, तथा उनके ही प्रति उत्तरदायी एक स्टेट-कौंसिल है। इसमें पांच-से-सात तक सदस्य होते हैं, जिनमें

* इस समय महाराज के शासनाधिकार स्थगित हैं। इस विषय में विशेष आगे लिखा जायगा।

वाइस-प्रेसीडेन्ट के अतिरिक्त बहुधा दो इलाकेदार तथा शेष मंत्री होते हैं।

मंत्री प्रायः निम्नलिखित होते हैंः—(१) माल-मंत्री। (२) उद्योग-मंत्री; आयात-निर्यात विभाग इसी के अधीन है। (३) अर्थ-मंत्री; शिक्षा-विभाग इसी के अधीन है। (४) गृह-मंत्री; पुलिस-विभाग इसी के अधीन है। (५) न्याय मंत्री; राजनैतिक विभाग इसी के अधीन हैं। उपर्युक्त सब मंत्री महाराज द्वारा नियुक्त होते हैं। कोई मंत्री जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं होता। सेना-विभाग स्वयं महाराजा साहब के नियन्त्रण में है, जो सेनापति हैं।

महाराज को कानून निर्माण के विषय में परामर्श देने के लिए एक सलाहकार समिति है। इसे 'राजपरिषद' कहते हैं। इसमें बीस सदस्य होते है, जो सब नामजद होते हैं, कोई सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित नहीं होता। इस परिषद का एक अधिवेशन विजयदशमी के अवसर पर और एक, होली के अवसर पर, होता है। यहाँ अधिकांश में ब्रिटिश भारत का 'ताज़ीरात हिन्द' आदि कानून माना जाता है। इसके अतिरिक्त प्रधान शासकों ने समय-समय पर जो विशेष आज्ञाएँ प्रकाशित की हैं, उन्होंने भी कानून का रूप धारण कर लिया है।

राज्य तीन जिलों और बारह तहसीलों में बँटा है। प्रत्येक तहसील के माल-विभाग का अधिकारी तहसीलदार, और ज़िले का डिप्टी-कमिश्नर है। डिप्टी-कमिश्नरों के ऊपर रेवन्यू-मिनिस्टर है, जिसके अधीन जंगल-विभाग भी है। इस विभाग की सर्वोच्च अदालत रेवन्यू-बोर्ड है, उस पर महाराजा साहब की निगरानी है।

न्याय के लिए 'पंचायतों'* के अतिरिक्त आनरेरी मजिस्ट्रेट, डिप्टी-मजिस्ट्रेट, ज़िला-मजिस्ट्रेट और सेशन जज हैं। इनके ऊपर चीफ़-कोर्ट है, जिसमें तीन जज हैं। चीफ़-कोर्ट की अपील महाराजा साहब के यहाँ होती है, उसमें कानून के विद्वानों की एक जुडीशल-कमेटी निर्णय करती है।

राज्य में पाँच म्युनिसपैलटियाँ हैं, वे सरकारी संस्थाएँ हैं। सभापति सरकारी कर्मचारी होता है, सदस्य भी सरकारी कर्मचारियों के मतानुसार ही नामजद होते हैं। इन्हें कर लगाने का अधिकार नहीं है, इसलिए इनकी कोई स्वतंत्र आय नहीं है। सरकार जो रुपया देती है, उससे ये काम चलाती हैं। इस प्रकार शासन-प्रबन्ध तथा कानून-निर्माण के अतिरिक्त, स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं में भी जनता का प्रतिनिधित्व या नियंत्रण नहीं है। गत वर्षों में शिक्षा-प्रचार की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। अब यहाँ कितने ही सरकारी, तथा सरकार द्वारा सहायता प्राप्त प्रारंभिक स्कूलों के अतिरिक्त दो हाई स्कूल, एक संस्कृत विद्यालय, एक औद्योगिक स्कूल तथा एक डिग्री कालिज ( बी० ए० तक की पढ़ाई करानेवाला ) भी है। रघुराज-साहित्य-परिषद का क्षेत्र उसके नाम से ही विदित है। व्यंकट-विद्यासदन सरकारी वाचनालय और संग्रहालय है। राजकीय आश्रय में 'प्रकाश' नामक साप्ताहिक पत्र भी प्रकाशित होता है। राज्य ने एक महिलाश्रम तथा एक जनाना अस्पताल भी खोल रखा है। दो अनाथालय भी हैं। परन्तु रीवा नगर ( राजधानी ) को छोड़कर

*इन्हें यहाँ 'चौरा' कहा जाता है।

राज्य में अन्यत्र सार्वजनिक संस्थाएँ बहुत ही कम हैं।

राज्य का बजट तथा शासन-रिपोर्ट प्रति वर्ष छपती तो हैं, वह केवल अफसरों या खास-खास अन्य व्यक्तियों को ही मिलती है। सर्वसाधारण तक नहीं पहुँचती।

रीवा राज्य का दो-तिहाई भाग इलाकेदारों या जमींदारों आदि के अधीन है। पर इनमें और अन्य स्थानों के जमींदारों में अन्तर है। रीवा में अधिकांश जमींदार और इलाकेदार वे हैं, जो पहले स्वतन्त्र थे, और युद्ध में हारकर या अन्य कारणों से महाराज के अधीन हो गये। इनका सम्बन्ध रीवा दरबार से वही रहा, जो रीवा दरबार का ब्रिटिश सरकार से था, और है। क्रमशः इन लोगों के हाथ से शासन, न्याय और दंड आदि के अधिकार छीन लिये गये। दूसरे प्रकार के इलाकेदार वे हैं, जो महाराज के भाई और सम्बन्धी हैं। इन्हें अपनी सम्पत्ति पर माल सम्बन्धी अधिकार है, और इन्हें प्रति वर्ष एक निश्चित रकम दरबार को देनी पड़ती है। तीसरे प्रकार के जमींदार वे हैं, जिन्हें जमींदारी, युद्ध में प्राण देने के उपलक्ष में, मिली है। ये उसे रहन या बय कर सकते हैं, तथा जिसे चाहें दे सकते हैं। चौथी प्रकार की पवाई धार्मिक है जो ब्राह्मणों को दी गयी है। इसमें पानेवाले की चौथी पुश्त में 'चौथ' लगाया जाता है। इसे पैपरवार कहते हैं। इससे मिलती-जुलती देवार्थ है, जो देवताओं के राग-भोग के लिए दी जाती है। परन्तु यह पैपरवार की तरह हस्तान्तर योग्य नहीं है। [प्रकाश बी० ए० लिखित 'रीवा' के आधार पर]

अब इस राज्य की जन-जागृति तथा नागरिक अधिकारों की बात लें। पूर्वोक्त पुस्तक रीवा' से विदित होता है कि यहाँ महाराज की सेवा में १४ अगस्त १९३० को लिखित आवेदनपत्र दिया गया। इस राज्य में यह अपने ढंग का पहला लिखित राजनैतिक आवेदनपत्र

था, जिसमें सभी श्रेणी के लोगों के दुख को दूर करने की प्रार्थना की गयी। इस आवेदनपत्र में प्रत्येक जाति व वर्ग के प्रमुख व्यक्ति और मुख्य-मुख्य इलाकेदार और पवाइदारों के हस्ताक्षर थे। अधिकारियों ने इस आवेदनपत्र पर ध्यान न देकर दमन करना आरम्भ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि आन्दोलन बढ़ता गया, और इलाकेदार तथा जमींदार जनता की ओर झुकते गये। इसी समय कुछ सज्जनों ने सुधार कराने के प्रयत्नों से संतुष्ट न हो, परिमित राजसत्तात्मक शासन की योजना सर्वसाधारण के सम्मुख रखी।

रीवा उन थोड़े से राज्यों में से है, जहाँ पिछले बारह साल से कांग्रेस कमेटी चली आ रही है। यहाँ उसके सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातों का उल्लेख किया जाता है।* इस कमेटी की नियमानुसार स्थापना, ३० मई १९३१ को हुई। इसका कार्यालय रीवा में रखा गया। इसमें रीवा के अतिरिक्त, मध्यभारत की ३१ अन्य रियासतें भी सम्मिलित थीं। जुलाई में इसके मंत्रीजी गिरफ़्तार किये गये, और रीवा राज्य में कांग्रेस की ओर से आन्दोलन छिड़ गया।

बहुत से आदमी गिरफ़्तार किये गये, महिलाओं ने भी अच्छा भाग लिया। कई स्थानों पर १४४ धारा लगा दी गयी। रीवा में ५०० आदमियों का जत्था सत्याग्रह करने के लिए आया। महाराज पिछले दिनों बाहर गये हुए थे, वे शीघ्र ही रीवा आये। उन्होंने कांग्रेस-नेताओं से मिलकर सब सत्याग्रहियों को छोड़ दिया, और कांग्रेस के रचना-कार्य में बाधा न डालने का आश्वासन दिया। बघेलखंड जिला-

* 'बघेलखंड जिला कांग्रेस कमेटी का संक्षिप्त इतिहास' के आधार पर।

कांग्रेस-कमेटी की १६ तहसीली शाखाएँ खोली गयीं, जिनमें से १० रीवा राज्य में थीं; मार्च १९३२ तक इनमें कांग्रेस के १२ हजार स्वयं-सेवक हो गये थे। ४ फरवरी १९३२ को जिला-कांग्रेस-कमेटी की ओर से महाराज को राज्य में उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित करने के लिए ब्योरेवार आवेदनपत्र दिया गया; जिसमें नागरिकों के मौलिक अधिकारों के प्रसंग में कहा गया—

प्रारम्भिक शिक्षा निश्शुल्क और अनिवार्य होगी। मालगुजारी और लगान में काफी कमी की जायगी, जिससे किसानों की हालत शीघ्र अच्छी हो जाय। कर्मचारियों के वेतन और खर्च में बहुत अधिक कमी की जायगी। किसी भी कर्मचारी का वेतन साधारणतया विशेषज्ञों को छोड़कर २००) रु० मासिक से अधिक न होगा। सब नागरिक कानून के सामने बराबर होंगे। सब को भाषण, सम्मेलन सम्बन्धी तथा धार्मिक स्वतन्त्रता होगी। आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार की जायगी कि न्याय और उचित रहन-सहन का समावेश हो। 'कोठार' ( सरकारी ज़मीन या खालसा ) और पवाईदारों की प्रजा को समान अधिकार रहेगा।

२८ अप्रेल की शाम को मिस्टर कोरफील्ड का, जो उस समय रीवा राज्य की कौंसिल के वाइस-प्रेसीडेन्ट थे, पत्र मिला कि 'श्रीमान माँगों पर विचार कर रहे हैं।' परन्तु उसी दिन, रात के समय, कमेटी की कार्य-समिति के सब सदस्य तथा कुछ अन्य सज्जन गिरफ़्तार करके जेल भेज दिये गये। इस पर सत्याग्रह संग्राम आरम्भ हुआ। हजारों आदमियों ने लाठी-चार्ज और गिरफ्तारियों का स्वागत करके अपनी वीरता का परिचय दिया। जेल भेजे जानेवालों की संख्या लगभग

४०० थी। जेल में खूब सख्तियाँ की गयीं, और मार-पीट भी। दो व्यक्ति तो वहाँ ही मर गये, और पाँच व्यक्ति जेल से आने के कुछ ही दिन बाद। म० गांधी के सामूहिक सत्याग्रह बन्द करने पर यहाँ भी सामूहिक सत्याग्रह बन्द हो गया। इस आन्दोलन मे ५० हजार आदमियो के भाग लेने की बात तो स्वयं मिस्टर कोरफील्ड ने कही थी।

कांग्रेस-कमेटी जन-जागृति का भरसक प्रयत्न करती रही है। गत वर्षों में महाराजा रीवा ने जनता के नागरिक अधिकारों को अंशतः स्वीकार करके, शिक्षा प्रचार तथा हरिजन उत्थान की व्यवस्था करके, काश्तकारों को छूट देकर और उनके अधिकारों के सम्बन्ध में नया कानून बनाकर राज्य में कुछ सुधार जारी किये। परन्तु शासन उत्तरदायी करने की ओर कोई उल्लेखनीय कदम नहीं उठाया गया, यद्यपि जनता को इस विषय की माँग उपस्थित किये दस वर्ष हो गये।

फरवरी १९४२ से महाराज रीवा पर कुछ संगीन मामलों का अभियोग है। इन्दौर रेजीडेन्सी में, बन्द कमरे में, उनकी जाँच हो रही है। रीवा के कुछ स्थानीय कार्यकर्त्ताओं ने इस प्रकार का आन्दोलन किया कि महाराजा साहब को शासनाधिकार वापिस दिये जायँ। कांग्रेस के उच्च अधिकारियों का यह विचार रहा है कि यदि भारत सरकार किसी महाराजा के विरुद्ध कुछ आरोपों की जाँच करना चाहती है तो उसे ऐसा करने देना चाहिए; प्रजा के नेताओं को कोई ऐसा काम न करना चाहिए जिससे उनपर अनाचार के अनुमोदन का लांछन लग सके। अस्तु, नागरिकों को उत्तरदायी शासन की स्थापना के जोरदार आन्दोलन करते रहना चाहिए।



# चौवनवाँ अध्याय



## ओरछा

राज्य की शासनप्रणाली एकतंत्री और प्रजा के प्रति अनुत्तरदायी है। शासन में सुधार के नाम पर 'टप्पा-प्रजामंडल' के नाम से राज्य भर में सरकारी संस्थाएँ बनायी गयी हैं। —'हिन्दुस्तान'

बुन्देलखंड के राज्यों में ओरछा ( या टीकमगढ़ ) बहुत प्राचीन, प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित है। इसका क्षेत्रफल २०८० वर्गमील, जनसंख्या सवा तीन लाख और औसत वार्षिक आय चौदह लाख रुपये के लगभग है।

राजवंश बुन्देला राजपूत है। इस राज्य की नींव श्री० रुद्रप्रताप ( सन् १५०१-३१ ई० ) ने डाली। उसके बाद, सब से प्रसिद्ध राजा वीरसिंह ( सन् १६०५-२७ ) हुआ। उसने राज्य का विस्तार किया। सन् १८१२ में इस राज्य की अंगरेजों से संधि हुई।

महारजा वीरसिंह देव सन् १६३० में गद्दी पर बैठे। आप 'चीफ एडवाइजर' और मंत्रियों की सलाह से शासन करते हैं। आपके चार मंत्री हैं—( १ ) चीफ-मिनिस्टर, ( २ ) राजस्व और पुलिस-मंत्री ( ३ ) न्याय और राजनीति-मन्त्री और ( ४ ) शिक्षा-मन्त्री।

शिक्षा-मन्त्री हजूर-सेक्रेटरी का भी काम करते हैं। मन्त्रियों का कार्यक्षेत्र समय-समय पर बदलता रहता है।

राज्य में पाँच तहसीलें है। प्रत्येक तहसील एक तहसीलदार के अधीन है। रेवन्यू ( माल ) और फौजदारी के सभी काम उसके अधिकार में हैं। फौजदारी, माल, फांसी आदि के मामलों में अन्तिम निर्णय महराज का होता है।

अक्तूबर १६३६ से यहाँ कानून बनाने के लिए एक व्यवस्थापक मण्डल या 'धारा सभा' संगठित है, जिसके दो अंग हैं (१) ओरछा राज्य प्रजामंडल ( या प्रजामंडल या मंडल ), (२) राजपरिषद। इस धारा सभा का विधान प्रायः ब्रिटिश भारत के व्यवस्थापक मंडल के ढङ्ग पर बनाया गया है। प्रजामंडल में सभापति के अतिरिक्त ३३ सदस्य होते हैं:—

| | |
|---|---|
| टप्पा-प्रजामंडलों के निर्वाचित सभापति | २१ |
| महाराज द्वारा नामजद | १२ |
| योग | ३३ |

टप्पा-प्रजामंडलों के विषय में आगे लिखा जायगा। यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त २१ निर्वाचित सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष ही है। प्रजामंडल का नया संगठन साधारणतया तीन वर्ष में होगा। मंडल का सभापति तथा मंत्री महाराज द्वारा नामजद होगा। इसके अधिवेशन, वर्ष में कम से कम दो बार, होंगे। इसमें किसी विषय का विचार करने के लिए यह अनिवार्य है कि निर्वाचित तथा

नामजद दोनों प्रकार के सदस्यों में से कम-से-कम दो-तिहाई सदस्य उपस्थित हों।

मंडल द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव पर सभापति के हस्ताक्षर होने के पश्चात् वह महाराज की सेवा में उपस्थित किया जायगा; वे चाहें उसमें की गयी विनय को स्वीकार करें, न करें, अथवा कोई अन्य आज्ञा दें। मण्डल द्वारा स्वीकृत बिल ( कानून का मसविदा ), सभापति के हस्ताक्षर के बाद मन्त्री द्वारा राजपरिषद में भेजा जाता है।

राजपरिषद में सभापति के अतिरिक्त ११ सदस्य होंगे—६ राज-कर्मचारी तथा ५ अन्य; सब-के-सब नामजद। एक बार नियुक्त किया गया परिषद प्रथम अधिवेशन की तिथि से साधारणतया तीन वर्ष तक कार्य करेगा। उसके प्रतिवर्ष कम-से-कम दो अधिवेशन होंगे। उसमें किसी विषय पर विचार करने के लिए यह अनिवार्य है कि कम-से-कम तीन राजकर्मचारी सदस्य तथा दो अन्य सदस्य उपस्थित हों।

परिषद द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के सम्बन्ध में वही नियम हैं, जो मंडल द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के सम्बन्ध में हैं। बिल की बात यह है कि यदि किसी बिल को परिषद ठीक उसी रूप में स्वीकार कर ले, जिस रूप में वह प्रजामंडल द्वारा स्वीकृत हुआ था तो वह बिल धारा सभा द्वारा स्वीकृत माना जायगा। यदि परिषद बिल में कुछ संशोधन या परिवर्तन आदि करे तो वह बिल संशोधित रूप में पुनः मंडल के विचारार्थ भेजा जायगा। यदि मंडल उक्त संशोधन आदि स्वीकार करले तो बिल धारा सभा द्वारा स्वीकृत माना

जायगा। दोनों सभाओं में समझौता न होने की दशा में, महाराजा की स्वीकृति से, दोनों सभाओं का संयुक्त अधिवेशन किया जायगा, और उस अधिवेशन का निर्णय धारा सभा का निर्णय माना जायगा।

धारा सभा द्वारा पास किया हुआ बिल (कानून सम्बन्धी मसविदा) महाराज की स्वीकृति के पश्चात् राज्य का कानून माना जायगा। महाराज चाहें तो उक्त बिल में संशोधन, परिवर्तन या परिवर्द्धन कर सकते हैं, अथवा उसे पुनः विचारार्थ धारा सभा में लौटा सकते हैं। आवश्यकता समझने पर महाराज किसी भी विषय में कोई कानून या नियम प्रचलित करने की आज्ञा दे सकते हैं। धारा सभा में निर्धारित विषयों के प्रश्न पूछे जा सकते हैं। कुछ विषयों के प्रस्ताव या बिल मंत्रिमंडल की पूर्व स्वीकृति बिना, उपस्थित नहीं किये जा सकते। और, कुछ विषय धारा सभा के अधिकार-क्षेत्र से बाहर ही हैं, उनपर किसी प्रकार का प्रश्न, प्रस्ताव या बिल उपस्थित नहीं किया जा सकता।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि धारा सभा को कोई वास्तविक अधिकार नहीं है। उसकी दूसरी सभा (राजपरिषद) भारतीय व्यवस्थापक मंडल की राजपरिषद की भद्दी नकल है, जो ब्रिटिश सरकार ने ओरछा राज्य से बीस वर्ष पहले सन् १९१६ में बनायी थी। ओरछा की राजपरिषद के समस्त सदस्य (तथा सभापति) महाराज द्वारा नियुक्त किये जाने के कारण यह और भी अधिक प्रतिगामी है।

अब टप्पा-प्रजामंडल की बात लें। 'टप्पा' को ब्रिटिश भारत की दृष्टि से जिला कह सकते हैं। टप्पा-प्रजामंडल मानो जिला-कमेटी हुई।

राज्य में इनका संगठन अच्छा है। इनके पंचों के चुनाव में जनता को व्यापक मताधिकार है। इनकी कार्यपद्धति सरल है। इनके द्वारा रोजमर्रा की सार्वजनिक समस्याओं का हल आसानी से हो जाता है। ये जनता की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति की अच्छी व्यवस्था करते हैं। हाँ, इनके पास आय के स्वतंत्र साधन न होना, और उसके लिए अधिकारियों के आश्रित रहना खटकता है।

राज्य की ओर से हिन्दी काव्य को प्रोत्साहन देने के लिए दो हजार रुपये वार्षिक का पुरस्कार दिया जाता है—एक वर्ष खड़ी बोली के, और एक वर्ष ब्रजभाषा के, सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ पर। गत वर्षों में यहाँ कुछ विषयों के सुधार सम्बन्धी कानून बनाये गये हैं—यथा भूमि-प्रतिबन्ध ( जमीन रहन रखने के सम्बन्ध में ) विधान, अनमेल विवाह निषेध विधान, बाल विवाह निषेध-संशोधन विधान, कृषक-रक्षा विधान आदि और, ये कानून अधिकतर हिन्दी में प्रकाशित किये गये हैं, जिससे सर्वसाधारण इनसे परिचित हो सकें। ये बातें अच्छी हैं, परन्तु शासन में जनता के प्रति उत्तरदायित्व नहीं है; यह धारा सभा के संगठन और अधिकारों से स्पष्ट हो जाता है। नागरिक स्वतंत्रता की भी कमी है; किसी आदमी को बिना मुकदमा चलाये जेल में रखने और उसकी रिहाई की अवधि निश्चित न करने के उदाहरणों का यहाँ अभाव नहीं है। इस ओर यथेष्ट ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।



# पचपनवाँ अध्याय

## छोटी देवास

महाराजा देवास ग्वालियर राज्य के उच्च अफसर रहे हुए हैं, अतएव शासनपद्धति और प्रचार आदि का अच्छा अनुभव रखते हैं। कौंसिल के द्वारा शासन चलता है किन्तु शासन की बागडोर महाराज के हाथों में ही है, और शासन अनुत्तरदायी है।

—'हिन्दुस्तान'

देवास का राज्य दो भागों में विभक्त है (१) देवास सीनियर या बड़ी देवास और (२) देवास जूनियर या छोटी देवास। इन दोनों राज्यों के संस्थापक पँवार या परमार राजपूत वंश के श्री० तुकोजी राव और जीवाजी राव थे। ये दोनों आपस में भाई-भाई थे और सन् १७१० के लगभग पेशवा बाजीराव प्रथम के साथ मालवा में आये थे। पेशवा ने मालवा पर अधिकार करने के बाद यह प्रान्त सिंधिया तथा पँवारों में बाँट दिया। श्री तुकोजी और जीवाजी को देवास, सारंगपुर, आलोट, गड़गुच्या, रिंगणोद, बाँगोद तथा कुछ अन्य परगने मिले। दोनों भाइयों ने इस राज्य को आपस में बाँट लिया। इनके भागों को बड़ी देवास और छोटी देवास कहते हैं। बहुत समय तक दोनों भागों का शासनप्रबन्ध इकट्ठा एक ही दीवान

के द्वारा होता रहा। सन् १८१८ में दोनों राज्यों की ब्रिटिश सरकार से संधि हुई। १८४१ में संयुक्त राजप्रबन्ध बन्द होकर दोनों राज्य सब प्रकार से पृथक्-पृथक हो गये। इनका पद और मान प्रायः बराबर है।

छोटी देवास का क्षेत्रफल ४१९ वर्ग मील, जनसंख्या ७० हजार और औसत वार्षिक आय सातलाख रुपये से अधिक है। महाराजा सदाशिव राव खासे सन् १९३४ में गद्दी पर बैठे। इससे पूर्व आप गवालियर राज्य में होम-मेम्बर रहे हैं।

इस राज्य में शासन और व्यवस्था आदि के लिए संस्थाओं का खूब विस्तार है परन्तु जनता का वास्तविक अधिकार बहुत कम है। शासन कार्य के लिए एक 'स्टेट-कौंसिल' है, जिसमें अध्यक्ष के अतिरिक्त दस सदस्य होते हैं। इनमें से सात सदस्य (१) पोलिटिकल या राजनैतिक (२) माल, (३) राजस्व, (४) म्युनिसपैलटी, (५) व्यापार, आयात-निर्यात और आबकारी, (६) शिक्षा, और (७) कानून-विभाग के होते हैं। इन सात सदस्यों में से प्रत्येक के लिए पाँच-पाँच सदस्यों की एक मशविरा कमेटी है, जिसका चुनाव राजसभा करती है। स्टेट-कौंसिल का आठवाँ सदस्य सरदारों और जागीरदारों की तरफ से होता है। नवाँ और दसवाँ सदस्य दो दर्शक होते हैं; ये किसानों और व्यापारियों की ओर से होते है, और इनका चुनाव राजसभा करती है।

राज्य में एक जन-प्रतिनिधि मंडल (पीपल्स रेप्रेजेन्टेटिव असेम्बली) अर्थात् 'राजसभा' नामक संस्था है, जिसमें ६३ निर्वाचित और ५ नामजद सदस्य हैं। साधारणतया इसका अधिवेशन साल में एक

बार होता है, आवश्यकता होने पर विशेष अधिवेशन किया जाता है। इसके जिम्मे ये काम हैं:—प्रश्न पूछना, बजट पर चर्चा करना, राज्य-शासन पर चर्चा करना, पुलिस, शिक्षा, म्युनिसपैलटी और पंचायत तथा धर्मादे या देवस्थानों के विषय में सुधार सुझाना; विशेष कमेटियाँ नियुक्त करके जाँच करना, मशविरा-कमेटियों का चुनाव करना, कौंसिल के लिए दो दर्शक सदस्यों को चुनना, और स्थायी कमेटी का चुनाव करना।

राज्य में एक मजलिस कानून (व्यवस्थापक सभा) है, जिसमें ११ निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। राजसभा के सेक्रेटरी डाक्टर एस० आर० ओक की पुस्तिका* से इसके संगठन के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश नहीं पड़ता, इतना ज्ञात होता है कि गत पाँच वर्षों में इसने पाँच कानून पास किये।

इस राज्य में स्थानीय स्वराज्य संस्थाएँ बहुत समय से हैं। देवास शहर के लिए एक म्युनिसिपैलटी है, उसके सब मेम्बर निर्वाचित होते हैं, और मेम्बरों में से ही प्रेसीडेन्ट का चुनाव होता है। इसके अतिरिक्त हर एक परगने में भी एक-एक म्युनिसपैलटी है, पर इनका संगठन इतना उदार प्रतीत नहीं होता।

प्रत्येक गांव के लिए ग्राम-समिति है। ग्राम-समितियों के ऊपर प्रत्येक मुहाल में परगना बोर्ड, और परगना बोर्डों के ऊपर सेंट्रल बोर्ड

---

* A Glimpse of Administration, Dewas State Junior, प्रकाशित मई १९३९

है। प्रत्येक ग्राम या ग्राम-समूह के लिए एक पंचायत है। पंचायतों को दीवानी और फौजदारी के साधारण अधिकार हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें गाँवों में कुछ प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकार भी होते हैं। उनकी आय के साधन ये हैं:—दावे की फीस, जुर्माना, मवेशीखाना और अन्य फुटकर आय।

डाक्टर ओक अपनी पूर्वोक्त पुस्तिका में लिखते हैं:—

सन् १९३५ ई० से पूर्व जब राज्य की आय ७,५०,००० रु० थी, महाराज का महल सम्बन्धी खर्च २,२०,००० था। अब राज्य की आय ९,००,००० रु० होने पर भी महल सम्बन्धी खर्च १,१०,००० है, जिसमें महाराजा साहब का निजी व्यय भी सम्मिलित है। महाराज इस मद के खर्च को घटाने के लिए निरंतर सतर्क रहते हैं। महाराज जनता से यथेष्ट सम्पर्क रखते हैं, वे प्रत्येक गाँव में पैदल जाते हैं, और स्वयं प्रत्येक प्रार्थनापत्र को सुनते हैं। परगना दरबार आदि समय-समय पर होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रजा जब और जहाँ चाहे, किसी भी विषय के सम्बन्ध में सभा कर सकती है। वे स्थानीय साप्ताहिक पत्र 'मार्तंड' में कोई भी लेख प्रकाशित कर सकते हैं। जागीरी क्षेत्र में भी लोगों को ऐसे ही अधिकार हैं, जैसे खालसे में। अधिकांश जागीरदार सभ्य और सुशिक्षित हैं। नागरिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता है। हरिजनों के लिए सब मन्दिर खुले हुए हैं। हाई स्कूल के साथ औद्योगिक स्कूल भी खुला है। अनिवार्य शिक्षा की योजना की जा रही है। स्त्री शिक्षा पर उचित ध्यान दिया जा रहा है। समाज-सुधार के कानून पास किये गये हैं। ग्राम-सुधार के लिए बजट में व्यवस्था की गयी है। ग्रामीणों की ऋण-ग्रस्तता का प्रश्न विचाराधीन है। बेगार का पूर्ण निषेध है, और राज्य में भेंट की प्रथा नहीं है।...जनता में किसी प्रकार के उत्तरदायी शासन की माँग नहीं थी। इसके विपरीत, महाराजा साहब ने अपनी इच्छा से

ही उन्हें इतने अधिकार और शासन में भाग दे दिया है कि वे अधिक उत्तरदायित्व में हिस्सा बटाने में अपनी असमर्थता सूचित करने के प्रस्ताव पास कर चुके हैं।

हमें डाक्टर साहब का यह कथन एकपक्षीय और अत्युक्तिपूर्ण प्रतीत होता है; उनकी अन्तिम बात तो बहुत ही चिन्तनीय है। जनता की अयोग्यता या असमर्थता आदि का दायित्व किस पर है? राज्य इस विषय में दोष-मुक्त नहीं हो सकता। जबकि डाक्टर ओक अपनी पुस्तिका की प्रस्तावना में कहते हैं कि न्याय-कार्य करनेवाली पंचायतें, प्रतिनिधिक असेम्बली, म्यूनिसपैलटी और जल-प्रबन्ध की संस्थाएँ स्थापित हुए पच्चीस वर्ष हो गये, पाठकों को सहज ही यह जानने का कौतुहल होगा कि इतने वर्षों में जनता ने क्या प्रगति की है? और वह प्रगति कितनी महत्व-शून्य है, यदि पच्चीस वर्ष बाद भी जनता में उत्तरदायी शासन की माँग की भावना इस समय तक उत्पन्न नहीं हुई है, जबकि देश के अनेक भागों में अपेक्षाकृत बहुत थोड़े समय में ही बहुत जागृति हो गयी है। डाक्टर ओक की पुस्तिका का प्रथम वाक्य ही उनकी अत्युक्ति का परिचय देता है, वे लिखते हैं कि 'महाराजा साहब प्रति दिन १८ घंटे से कम परिश्रम नहीं करते, और शासन की सब शाखाओं की प्रत्येक ब्यौरेवार बात की छान-बीन करते हैं।' अधिकारियों की अत्युक्तिपूर्ण बातों से जनता का सरकारी प्रकाशनों पर से विश्वास उठ जाता है।



# छप्पनवाँ अध्याय

## रतलाम

रतलाम मालवा एजन्सी का एक छोटा सा राज्य है, और अधिकांश राज्यों में जैसी शोचनीय स्थिति है, उसमें यह कोई अपवाद नहीं है।

—रणछोड़दास कपाडिया

इस राज्य का क्षेत्रफल ६९३ वर्ग मील, जनसंख्या एक लाख से अधिक और औसत वार्षिक आय दस लाख रुपये है।

राजवंश राठौर राजपूत है। जोधपुर राजवंश के श्री रतनसिंह जी (१६४४—५८) ने इस राज्य की नींव डाली थी। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में यहाँ मराठों का बड़ा दबाव रहा। सन् १८१९ में सर जान मालकम ने रतलाम और गवालियर दरबार का समझौता कराया। पीछे यहाँ अंगरेजों का अधिकार बढ़ता गया।

राजा सज्जनसिंह जी १८९३ में गद्दी पर बैठे। शासन-व्यवस्था के लिए एक नाममात्र की कौंसिल है। सरकारी प्रकाशन के अनुसार, राजा साहब को उज्वल ('एनलाइटेन्ड') शासन के उपलक्ष्य में सन् १९२० में अपनी प्रजा पर प्रतिबन्ध-रहित फौजदारी अधिकार प्रदान किये पीछे सन् १९३० में योरपियन ब्रिटिश प्रजा, अमरीका निवासियों और सरकारी नौकरों को छोड़कर उन सब लोगों पर राजा साहब को फौजदारी अधिकार वंश-परम्परा के लिए प्रदान कर दिये गये

जो राज्य के अन्दर कोई अपराध करें। प्रजा को इस 'उज्वल' शासन का अनुभव दूसरा ही है। उसे शासन के विरुद्ध बहुत सी शिकायतें है। अ० भ० देशी राज्य लोकपरिषद के सभापति श्री० जवाहरलाल जी नेहरू द्वारा नियुक्त पंडित द्वारकानाथ जी कचरू की इस राज्य के विषय में जाँच की रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, उसमें बहुत उपयोगी सामग्री है।* उसके आधार पर कुछ बातें आगे दी जाती हैं।

शासन-रिपोर्ट की बात यह है कि सन् १९०७-८ के बाद तीस साल तक रिपोर्ट प्रकाशित ही नहीं हुई। कारण स्पष्ट है कि 'एजन्सी ने उसे छपाने का आग्रह नहीं किया' और अधिकारियों ने भी उसके विषय में कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं समझी।

श्री० कचरू जी ने बतलाया है कि राज्य में स्पष्ट रूप से जो रुपया महाराजा साहब के लिए खर्च होता है, उसके अतिरित भिन्न-भिन्न विभागों का भी बहुत सा खर्च ऐसा होता है, जिसका उपयोग महाराजा साहब के लिए ही होता है। इस प्रकार महाराजा साहब सम्बन्धी खर्च, राज्य की कुल आय का लगभग १६ फी सदी हो जाता है। यह तो साधारण बात ठहरी। फिर राजपरिवार के व्यक्तियों की विवाह-शादी का खर्च अलग रहा। सन् १९३८ में कुल मिलाकर राज्य की आय का ५० फी सदी महाराजा और उनके परिवार के निमित्त खर्च हुआ, जबकि शिक्षा में लगभग दो फी सदी, और चिकित्सा में दो फी सदी से भी कम खर्च हुआ। इससे राज्य की शिक्षा और चिकित्सा-व्यवस्था का सहज ही अनुमान हो सकता है।

* देखिए 'रतलाम' नामक अंगरेजी पुस्तक; प्रकाशित १९४०।

राज्य भर में हाई स्कूल एक ही है, और उससे ऊँचे दर्जे की संस्था तो कोई है ही नहीं। चिकित्सा के लिए राजधानी में एक अस्पताल तथा जिलों में तीन शफाखाने हैं। गाँवों की जनता की नितान्त उपेक्षा की जाती है, और राज्य में कस्बा तो केवल एक ही है, जो कि राजधानी है। सड़कों की भी बुरी दशा है केवल राजमहल और रेलवे स्टेशन के पास की सड़क कुछ ठीक है। यह होते हुए भी किसानों पर करों का भार और ज्यादतियाँ बहुत हैं।

राज्य की ४६ फी सदी भूमि जागीरी इलाके में है। वहाँ जनता की दशा और भी खराब है। जागीरदार अशिक्षित और अपव्ययी तो हैं ही, वे अपने-अपने ठिकाने में स्वेच्छाचारी हैं, उन्हें दीवानी और फौजदारी के अधिकार हैं, जिनका वे प्रायः दुरुपयोग करते रहते हैं।

नागरिक स्वतंत्रता का यहाँ अभाव सा ही है। बाहरवालों को सार्वजनिक सभा में भाषण करने की अनुमति नहीं होती, सभा-सम्मेलनों में गुन्डे अनेक प्रकार से विघ्न उपस्थित करते हैं; और अधिकारी उस ओर ध्यान नहीं देते। नागरिकों को, विशेषतया सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं को तनिक सन्देह पर गिरफ्तार कर लिया जाता है, और गिरफ्तारी के लिए वारंट जारी नहीं किये जाते। राजवन्दियों से अमानुषिक व्यवहार होता है। राज्य में लाठी-चार्ज आदि की जाँच तक नहीं होती।

नागरिकों की राजनैतिक जागृति के विषय में मोटे तौर से यह कहा जा सकता है कि सन् १६३८ से पूर्व यहाँ वास्तव में कोई व्यापक

राजनैतिक संगठन न था। कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन के बाद यहाँ प्रजामंडल की स्थापना की गयी। उक्त वर्ष के अन्त तक उसके लगभग छः सौ सदस्य हो गये, और कई गाँवों में उसकी शाखाएँ खुल गयीं। जनवरी १६३६ में उसने जनता की माँगों की सूची तैयार की। ये माँगें आठ थीं—निर्वाचित व्यवस्थापक सभा, निर्वाचित म्युनिसपल और पंचायत बोर्ड, अनिवार्य और निश्शुल्क शिक्षा, स्वास्थ्य और चिकित्सा की व्यवस्था, इत्यादि। प्रजामंडल का उद्देश्य महाराज की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन प्राप्त करना घोषित किया गया। मंडल का विस्तार उत्तरोत्तर बढ़ता रहा। राज्य के मजदूरों के हितों की ओर ध्यान देने का भी प्रयत्न किया गया; मज़दूरों का नेतृत्व श्री० जुग्गनखाँ ने किया जो राष्ट्रीय विचारों के मुसलिम सज्जन थे। इन्होंने पूरी लगन से सेवा की, इसी का यह फल हुआ कि प्रजामंडल में मज़दूर और मुसलमान काफी संख्या में सम्मिलित हुए। राज्य के अधिकारियों को ऐसी बात कैसे सुहाती! श्री० जुग्गनखाँ को पाँच वर्ष के लिए राज्य से निकल जाने की आज्ञा दी गयी; और जब उन्होंने इसकी अवहेलना की तो उन्हें छः माह की कैद की सजा दी गयी। इस अवधि के बाद जब वे कारावास से बाहर आये तो षड्यंत्र का मामला तैयार था, जिसमें उन्हें भी शामिल कर दिया गया। जेल में बन्द रहनेवाला व्यक्ति राज्य के विरुद्ध षड्यंत्र कैसे रच सकता है, यह समझ से बाहर की बात है।

ता० १२ जून को सार्वजनिक जलूस निकाल कर अधिकारियों के सामने जनता की शिकायतें रखी जानेवाली थीं। परन्तु शासन ने

दमन का मार्ग ग्रहण करके जलूस पर प्रतिबन्ध लगा दिया। विशेषतया प्रजामंडल के कार्यकर्त्ताओं की गिरफ्तारियाँ, तलाशियाँ और मारपीट होने लगी। यह क्रम चलता रहा। पश्चात् ता० २८ मार्च १६४० को और उसके बाद जो भयंकर दमन हुआ, उसका ब्योरा श्री० कचरू जी ने अपनी पुस्तक में तिथिवार दिया है। उसका हिन्दी अनुवाद श्री० कन्हैयालाल जी वैद्य, प्रधान मंत्री, मध्यभारत देशी राज्य लोक-परिषद ने अपनी सम्मति सहित छपाया है। उसकी घटनाओं की चर्चा न करके हमें यही बताना है कि राज्य ने कई प्रमुख कार्यकर्त्ताओं पर कथित षड्यंत्र का मामला चलाया। अभियुक्तों के बचाव के लिए एक कमेटी बनायी गयी, उसके संयोजक श्री० वैद्य जी थे। १९ महीने तक मुकद्दमा चलने के बाद, सेशन जज ने अभियुक्तों को सात वर्ष से दस-दस वर्ष तक की सख्त कैद तथा जुरमाने की सजा दी। अपील होने पर कुछ सजाएँ कम हो गयीं। श्री० बिहारीलाल जी तो जेल में ही मर गये। श्री० जुग्गन खाँ जेल में स्वास्थ्यप्रद भोजन तथा अच्छा व्यवहार प्राप्त न करने के कारण बीमार पड़ गये। जब उनके कुछ विशेष समय जीवित रहने की आशा न रही तब उन्हें जेल से छोड़ा गया, पर इस दशा में भी उन्हें तुरन्त ही राज्य से बाहर निकल जाने की आज्ञा दी गयी। वे उज्जैन ले जाये गये, और वहाँ वे लगभग एक सप्ताह में मर गये। निदान, कठोर दंड देने और अभियुक्तों तथा कैदियों से दुर्व्यवहार करने में इस राज्य ने कुछ कमी नहीं की। क्या जब तक देशी राज्यों के काफी नागरिक घोर कठोर सजाएँ न भुगत लेंगे, उत्तरदायी शासन का मार्ग प्रशस्त न होगा ?

---

# सत्तावनवाँ अध्याय



## झाबुआ

झाबुआ की प्रजा को कम-से-कम यह तो आशा थी कि अपनी शिकायतों को दूर कराने के लिए वैध उपाय काम में लाने की उन्हें आजादी रहेगी। परन्तु यह आशा भी नये शासन के आर्डिनेन्सों के कारण टूट गयी। —कन्हैयालाल दौलतराम वैद्य

इस राज्य का क्षेत्रफल १३३६ वर्ग मील, जनसंख्या डेढ लाख, और औसत वार्षिक आय साढेचार लाख रुपये है। यह राज्य रतलाम, सैलाना, कुशलगढ़, जोबट, इन्दौर आदि राज्यों से घिरा हुआ है। राजवंश राठौर राजपूत है, और उसका विकास जोधपुर के राजघराने से हुआ है। यह राजवंश मध्यभारत में तीन सौ वर्ष से है। अंगरेजों का मालवा पर अधिकार होने से पूर्व, यह राज्य होलकर के अधीन था। इस समय भी राज्य के लगभग १७ उमराव होलकर राज्य को करीब ७ हजार रुपये वार्षिक खिराज देते हैं।

राजा उदयसिंह जी गोद आये हुए हैं। ये सन् १८९५ में गद्दी पर बैठे, इन्हें पूर्णाधिकार १८९८ में मिले। १९०० में इनके अधिकार कम किये गये, वे कुछ शर्तों पर १९१८ में वापिस मिले; परन्तु सन् १९१८ में फिर कम किये गये, और १९११ में वापिस दिये गये।

शासन की कुव्यवस्था ही रही। अन्तत: १६३४ से राजा साहब राज्य से निर्वासित होकर प्रायः इन्दौर में रहते हैं। ३६ वर्ष के शासन में ३० दीवान और लगभग इतने ही नायब दीवान और नाजिम बदले गये।* राजा साहब ने नागरिक स्वतंत्रता के अपहरण, अपनी प्रजा से ही नहीं अपनी नौ-नौ रनियों के साथ-दुर्व्यवहार†, फिजूलखर्चो, ऐयाशी आदि के ऐसे-ऐसे कांड किये कि आखिर देशी राज्यों के मामलों में, जनहित के लिए प्रायः हस्तक्षेप न करने वाली सर्वोच्च सत्ता को भी इस राज्य में दखल देना पड़ा। और, उसने एडमिनिस्ट्रेटर (प्रबन्धक) या दीवान नियुक्त करने की नीति छोड़ कर यहाँ के शासन के लिए एक कौंसिल का निर्माण किया। इस अवसर पर तत्कालीन पोलिटिकल एजन्ट ने कहा था कि 'शासन-व्यवस्था में परिवर्तन इस लिए किया जा रहा है कि झाबुआ की प्रजा को न्यायपूर्ण, प्रामाणिक और कुशल शासन का लाभ हो।' परन्तु यह आशा पूरी नहीं हुई।

नयी व्यस्था के अनुसार शासन-प्रबन्ध के संचालन और निगरानी का अधिकार पोलिटिकल एजन्ट को है, जो सर्वोच्च सत्ता के प्रति उत्तरदायी है। कौंसिल में तीन सदस्य हैं—सभापति, उपसभापति और जुडीशल मेम्बर। ये सदस्य पदच्युत राजा साहब की सिफारिश पर

---

* श्री० कन्हैयालाल जी वैद्य द्वारा प्रकाशित 'न्हिदर झाबुआ' नामक अंगरेजी पुस्तक के आधार पर।

† उपर्युक्त पुस्तक में महारानी गोरनी जी का २६ अप्रैल १९३४ का पत्र उद्धृत है, जो उन्होंने पोलिटिकल एजन्ट के पास भेजा था। इससे महाराजा साहब के चरित्र पर बहुत दुखदायी प्रकाश पड़ता है।

नियुक्त किये गये हैं, और इन्हें निकालने या बदलने के सम्बन्ध में कोई नियम निर्धारित नहीं है।

सभापति के अधीन विदेश और राजनैतिक विभाग, सेना, चिकित्सा, जागीरदारी, माफी, महल, राज की निजी सम्पत्ति आदि विभाग हैं। उपसभापति के हाथ में हिसाब और उसकी जाँच का विभाग, मालगुजारी, जंगल, बन्दोबस्त, आबकारी, निर्माणकार्य, खजाना, पुलिस, शिक्षा, आबकारी, 'कस्टम' (आयात-निर्यात), व्यापार और उद्योग विभाग हैं। उसे हाईकोर्ट के भी अधिकार हैं, जिनके लिए वह सभापति के प्रति उत्तरदायी नहीं है। इसके अतिरिक्त वह 'कस्टम' के मामलों में अन्तिम अपील सुनता है तथा प्रधान कस्टम-अफसर है। जुडीशल मेम्बर के अधीन कानून, न्याय आदि के विभाग हैं। कौंसिल के सब निर्णय बहुमत से होते हैं। परन्तु किन्हीं खास मामलों में, पोलिटिकल एजन्ट की सम्मति से, सभापति को कौंसिल का निर्णय न मानने का भी अधिकार है।

इस कौंसिल में प्रजा का सहयोग या प्रतिनिधित्व बिल्कुल नहीं है। यह वास्तव में एक अनियंत्रित संस्था है, जनता के प्रति किसी प्रकार उत्तरदायी नहीं है। इसके सदस्यों की योग्यता, उनके पद की दृष्टि से सर्वथा अपर्याप्त है। राज्य के सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार कौंसिल के उपसभापति को हैं। इससे यह स्पष्ट है कि यहाँ न्याय शासन् से पृथक् या स्वतंत्र नहीं है। नीचे की अदालतें नाजिम व तहसीलदारों की अदालतें हैं। नाजिम को प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के अधिकार हैं, तहसीलदार को उससे कम। अधिकतर न्यायाधिकारी अनुभवहीन

तथा अयोग्य होते हैं। समय-समय पर इनके पक्षपात, अन्याय और अत्याचार की शिकायतें पोलिटिकल एजन्ट से की जा चुकी हैं।

कौंसिल शासन ने अपने प्रारम्भ से ही नागरिक अधिकारों पर कुठाराघात किया। वैध आन्दोलन, शान्तिपूर्ण हड़ताल, और शासन-नीति की आलोचना को आर्डिनेन्स द्वारा रोक दिया। 'व्यापारी-संघ, थादला' को नाजायज करार दिया, और उसमें सम्मिलित होना या सहायता देना जुर्म ठहराया गया। सार्वजनिक कार्य करने वालों पर मुकदमे चलाये गये और उनकी जायदाद कुर्क की गयी।

राज्य में करों की भरमार है। चाँदी पर, कपास पर, घास पर, ईंधन पर टेक्स हैं। राज्य में कपास के कारखाने वालों को ही कपास ख़रीदने का अधिकार है, और वे मनमाने दाम पर खरीद करते हैं। उन्हें खुश रखने तथा लाभ पहुँचाने के लिए एक 'लट्ठा टेक्स' लगाया गया है, यह उन सब लोगों को देना होता है जो कपास राज्य से बाहर ले जाना चाहते हैं। इसलिए जनता को लाचार होकर अपनी कपास इन कारखाने वालों को ही बेचनी होती है। राज्य में अनेक वस्तुओं पर एकाधिकार है; मोटर से लेकर गाड़ी टेक्स वसूल करने व चारा इकट्ठा करने का भी एकाधिकार है।

म्युनिसपैलटियों में निर्वाचित सदस्य नहीं है, सरकारी या नामजद हैं। जहाँ म्युनिसपैलटियाँ नहीं हैं, या उन्हें नियमानुसार 'हाउस टेक्स' (गृह-कर) लगाने का अधिकार नहीं है, वहाँ भी यह कर लगाया जाता है। शिक्षा के लिए राज्य भर में सर्वोच्च संस्था एक हाई स्कूल है। राज्य में अस्पताल केवल एक है, वहाँ भी दवाइयाँ ठीक मिलने

का प्रबन्ध नहीं है। पहले बेगार बन्द की जा चुकी थी, अब फिर जारी है। पुलिस का भी व्यवहार बहुत असंतोषजनक और दमनकारी है।

अब कौंसल के समय के उस भीषण कांड का उल्लेख किया जाता है, जिससे दूर-दूर के निवासियों का ध्यान इस राज्य की ओर आकर्षित हुआ है। १७ जनवरी १९४१ को सैलाना व रतलाम राज्य के ७० भील अपने सिर पर तथा २७ गधों पर लगभग ६६ मन कपास लेकर बामनिया मंडी ( होलकर राज्य ) को जा रहे थे, जहाँ माल की आयात या निर्यात पर कोई टेक्स नहीं लगता। एकाएक रात के तीन बजे के लगभग, झाबुआ राज्य के जकात ( आयात-निर्यात-कर ) विभाग के सुपरिटेन्डेंट ने कान्स्टेबलों और अन्य कर्मचारियों सहित उन पर धावा बोल दिया; और, जब वे इन्दौर राज्य की सीमा से दो सौ कदम के फासले पर तथा रेलवे स्टेशन के पास ही थे, उन्हें घेर लिया और बिना सूचित किये उन पर गोली चला दी। तीन आदमी मरे, लगभग तीस बुरी तरह घायल हुए। दो स्त्रियों पर निर्लज्ज बलात्कार किया गया, और सब माल जब्त कर लिया गया। ऐसे संगीन मामले में महीनों तक कौंसिल कुछ कार्यवाही न कर सकी। बाद में भी दोषी अधिकारियों को साधारण सजाएँ देकर कानून का उपहास ही किया गया।*

ये घटनाएँ बहुत भयंकर थीं; इन्दौर, रतलाम, सैलाना, झाबुआ और सर्वोच्च सत्ता का इनसे सम्बन्ध था। इन्दौर राज्य ने अपने विदेश

---

* इस विषय में विशेष जानने के लिए श्री० द्वारकानाथ जी कचरू की 'झाबुआ ट्रेजडी' नामक अंगरेजी पुस्तक उपयोगी है।

विभाग द्वारा कुछ कार्यवाही की. परन्तु उसका वास्तविक व्योरा ज्ञात नहीं हुआ। रतलाम और सैलाना ने अपनी प्रजा की कुछ चिन्ता नहीं की। झाबुआ ने अपने अधिकारियों के ऐसे घोर अपराध को यथेष्ट ध्यान देने योग्य न समझा। और, सर्वोच्च सत्ता की ओर से भी हाईकोर्ट द्वारा खुली जाँच और न्याय कराने की आशा व्यर्थ ही रही।

झाबुआ राज्य प्रजापरिषद कई वर्ष से राज्य के कुशासन को दूर करने का आन्दोलन कर रही है। झाबुआ में भी परिषद का अधिवेशन हुआ, जिसमें अधिकारियों के अत्याचारों, आर्डिनेन्स राज्य, एकाधिकार-नीति, कर-वृद्धि, संस्थाओं के दमन, और बेगार आदि का विरोध किया गया। सरकार से अनुरोध किया गया कि कौंसिल-शासन को हटा कर एक अनुभवी और सुयोग्य दीवान नियुक्त किया जाय। कौंसिल शासन से ऊबकर बहुत से आदमी इस राज्य को छोड़कर पास के ब्रिटिश भारत के स्थानों में आ गये हैं, पर उस शासन में अभी तक परिवर्तन नहीं किया गया।

राजा साहब का कोई उत्तराधिकारी नहीं है। कहा जाता है कि कौंसिल के सभापति ही राजगद्दी के उम्मेदवार हैं। कौंसिल ने आठ वर्ष के शासन में अपनी अयोग्यता का ही परिचय दिया है। उसने जनता पर कर-भार खूब बढ़ा कर पोलिटिकल डिपार्टमेंट में यह दिखाया है कि नये प्रबन्ध में राज्य की आय बढ़ रही है। उसने जनता से प्राप्त धन का सरकारी इमारतों आदि में मनमाना दुरुपयोग किया है और शिक्षा स्वास्थ्य आदि जनहितकारी कार्यों की ओर ध्यान नहीं दिया है। राज्य में कुशासन पहले भी था, और अब भी है। अन्तर केवल

यह है कि पहले पोलिटिकल एजंट से शिकायत करने से उसका कुछ अंश में सुधार होने की आशा थी, अब वह नहीं रही। इन कौंसिल के सदस्यों में ऐसा परिवर्तन कब होगा कि जनता के कष्ट न रहें, और शासन जनहितकारी ही नहीं, जनता के प्रति उत्तरदायी हो जाय !

# अठावनवाँ अध्याय

## सीतामऊ

चाहे वह एक जन्मजात सम्राट्, बादशाह या राजा हो, या वह व्यक्तिवर्ग किसी प्रजातंत्र की सर्वशक्तिमान परिषद् ही क्यों न हो, अयोग्य शासक या शासकों के हाथ में सत्ता कभी भी अधिक काल के लिए नहीं रह सकती। इस कथन की सत्यता का इतिहास साक्षी है।

—महाराजकुमार रघुबीरसिंह

यह मध्यभारत में, मालवा एजन्सी में एक छोटा सा राज्य है। इसका क्षेत्रफल २०२ वर्गमील, जनसंख्या लगभग ३० हजार और औसत वार्षिक आय पौने तीन लाख रुपये है। यह उन राज्यों के एक उदाहरण के रूप में है, जिन्होंने बहुत छोटे होते हुए भी अपना एक शासन-विधान तथा राज्यपरिषद और म्युनिसपल बोर्ड सम्बन्धी नियम बनाकर सर्वसाधारण के लिए प्रकाशित कर दिये हैं।

सीतामऊ राज्य की स्थापना राजा केशवदास जी ने सन् १६९५ में की। ये रतलाम के राजा रत्नसिंह जी के पोते थे। इन्हें सम्राट्

औरंगजेब से सनद मिली थी। पीछे अठारहवीं सदी में मराठों का यहाँ बड़ा जोर रहा। सन् १८२० में सर जान मेलकम ने तय किया कि सीतामउ राज्य सिंधिया को ६०,००० रु० ( सलीमशाही ) वार्षिक कर दिया करे। सन् १८६० में इसमें से ५,००० रु० की माफी हो गयी। सन् १८८५ में जबकि श्री० बहादुरसिंह जी गद्दी पर बैठे, सिंधिया ने उनसे नजराना माँगा परन्तु अंगरेजों ने कहा कि नजराना लेने का अधिकार केवल अंगरेज सरकार को ही है। सरकार ने नजराने की रकम आधी कर दी। सन् १९०० में राजवंश का उत्तराधिकारी न रहने कारण भारत-सरकार ने काछी-बरौदा के ठाकुर के भाई रामसिंह को यहाँ की गद्दी के लिए चुना। क्योंकि राज्य में दुर्भिक्ष का संकट था, और इसे सिंधिया को भारी कर देना पड़ता था, सरकार ने इस राज्य से मिलने वाले नजराने की आधी रकम भी माफ कर दी।

सन् १९३८ के विधान के अनुसार राज्य का शासन-कार्य राजा साहब एक शासन-समिति की सहायता से चलावेंगे, जिसका सभापति युवराज होगा, तथा उपसभापति राज्य का दीवान होगा। इनके अतिरिक्त इस समिति में पाँच अन्य सदस्य होंगे, जिनमें से एक सदस्य ऐसा होगा जो समिति के सेक्रेटरी का भी कार्य किया करेगा। सदस्यों की नियुक्ति या बरखास्तगी का अधिकार राजा साहब को होगा। शासन-समिति का कोई सदस्य राज्य-परिषद के प्रति उत्तरदायी नहीं है।

शासन-कार्य और मदें चार भागों में विभक्त हैं:—(१) राजा साहब सम्बन्धी। इनका बजट राजा साहब ने पूर्णतया अपने अधीन रखा है। (२) राजपरिवार सम्बन्धी। इनका प्रबन्ध शासन-समिति को

सौंपा गया है। (३) खज़ाना, रेवन्यू आफिस, चुंगी, आबकारी, जेल, तार, पेन्शन, जंगल, ग्राम-सुधार, बैंक और शासन-सुधार आदि। इनका बजट तथा प्रबन्ध शासन-समिति के अधिकार में है, परन्तु राज्य-परिषद इन पर मत दे सकती है। (४) शिक्षा, अस्पताल, म्युनिसपैलिटी, पंचायती कोर्ट, सेंट-जॉन एम्बूलेन्स। इनके बारे में काट-छांट करने एवं अन्य जिम्मेवरी राज्य-परिषद पर रखी गयी है।

राज्य-परिषद की स्थापना 'राज्य के शासन में प्रजा का सहयोग प्राप्त करने के लिए' की गयी है। इसमें प्रेसीडेन्ट के अतिरिक्त २१ सदस्य होंगे :—

| | | |
|---|---|---|
| निर्वाचित | | १३ |
| सीतामऊ शहर | ४ | |
| लदूना कस्बा | १ | |
| देहात | ५ | |
| ठिकानेदार | ३ | |
| नामजद | | ८ |
| गैर-सरकारी | २ | |
| सरकारी | ६ | |
| योग | | २१ |

परिषद का कार्यकाल तीन वर्ष होगा। कोरम, सभापति के अतिरिक्त आठ सदस्यों का रहेगा। परिषद के संगठन में यह बात विचारणीय है कि जबकि ठिकानेदारों को देहाती क्षेत्र में प्रतिनिधित्व है, उनके पृथक् प्रतिनिधित्व की क्या आवश्यकता थी! अब उनका बल बहुत बढ़ गया है, और क्योंकि वे प्रायः सरकारी पक्ष का समर्थन

करनेवाले होते हैं, और प्रेसीडेन्ट सरकारी है ही, कार्य-रूप में प्रजा-पक्ष की प्रधानता नहीं रहती।

परिषद में निर्धारित विषयों के कानूनों के मसविदे, या पुराने कानूनों के संशोधन आदि का विचार होता है। परिषद में जो बिल या प्रस्ताव बहुमत से पास होगा, वह शासन-समिति की निजी राय के साथ, स्वीकृति या अन्य उचित आज्ञा के लिए पेशी खास (राजा साहब के इजलास खास) में पेश होगा। यदि राजा साहब की स्वीकृति मिल जायगी तो वह कानून बन जायगा। राजा साहब चाहें तो वे उसे अस्वीकार कर सकते हैं, या उसे फिर विचारार्थ परिषद में लौटा सकते हैं। वे 'रूबकार' जारी करके नया कानून भी बना सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि राज्य-परिषद के वास्तविक अधिकार बहुत ही कम हैं, उत्तरदायी शासन का तो नाम ही नहीं।

सीतामऊ शहर (राजधानी) में म्युनिसपल बोर्ड है। उसका नया संगठन तीन साल में होता है। उसमें प्रेसीडेन्ट (दीवान) के अतिरिक्त ८ सदस्य सरकारी नामजद, और १३ गैर-सरकारी निर्वाचित होते हैं। कोरम आठ सदस्यों का होता है। बोर्ड को कुछ टेक्स लगाने का अधिकार है। सदस्यों में से एक-तिहाई से अधिक सरकारी होने से, तथा प्रेसीडेन्ट भी सरकारी होने से, बोर्ड को वास्तव में 'स्थानीय स्वराज्य संस्था' नहीं कहा जाना चाहिए।

राज्य में जनता को भाषण, लेखन, सभा-सम्मेलन आदि की स्वतंत्रता नहीं है। नागरिक स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध है, और दमन भी है। राज्य में प्रजामंडल स्थापित है, परन्तु ऐसे वातावरण में वह

राजनैतिक कार्य नहीं कर सकता। वह खादी आदि के विधायक कार्यक्रम से जनता में संगठन और जागृति का संचार करने के लिए प्रयत्नशील है।

युवराज श्री० रघुवीरसिंह जी विद्वान और साहित्यिक हैं। आपकी अंगरेजी की एक पुस्तक देशी राज्यों के सम्बन्ध में भी छपी है। आप ही इस समय राज्य-परिषद् एवं शासन-समिति के प्रेसिडेन्ट हैं। क्या आपकी योग्यता का उपयोग राज्य में उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित करने में होगा?



# उनसठवाँ अध्याय



## मध्यभारत के कुछ अन्य देशी राज्य

### [ धार, राजगढ़, और नरसिंहगढ़ ]

कोई बात यहाँ ऐसी संतोषजनक नहीं है, जिससे मध्यभारत के रहने वालों का सिर ऊँचा हो सके; मराठा, बुन्देले, बघेले, कुछ अन्य राजपूत और कुछ मुसलमान इस सारे भाग के शासक हैं; कहना न होगा कि इन जातियों में पिछले ज़माने में बड़े-बड़े वीर धर्मात्मा और परोपकारी शासक हो चुके हैं। —एक मध्यभारत निवासी

### धार

इस राज्य का नाम धार के ऐतिहासिक नगर से पड़ा है, जो बहुत प्राचीन तथा प्रसिद्ध है, और अपने समय के आदर्श राजा भोज

की याद दिलाता है। इस राज्य का क्षेत्रफल १८०० वर्गमील, जन-संख्या ढाई लाख और औसत वार्षिक आय साढ़े सत्तरह लाख रुपये है। राजवंश पंवार राजपूत है। जब मुसलमानों ने पंवार राजपूतों को दक्षिण की ओर ढकेला तो ये वहाँ जाकर मराठों में मिल गये। पिछले शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में इस राज्य पर पड़ौसियों के बहुत धावे हुए; और, महारानी मैनाबाई ने बड़ी चतुराई और साहस से इसकी रक्षा की। सन् १८१६ में इस राज्य की अंगरेजों से संधि हुई।

महाराजा उदाजीराव पंवार का, सन् १६२६ में देहान्त हुआ। आपका कोई पुत्र न था; महारानी ने अपने भतीजे को गोद लिया जो आनन्दराव पंवार चतुर्थ कहलाये। ये गद्दी पर बैठने समय ६ वर्ष के थे। इनका शिक्षण डेली कालिज इन्दौर में हुआ, पीछे ये इंगलैंड भी गये। इनका शासन सम्बन्धी शिक्षण हो रहा है। नाबालगी में शासन-कार्य एक कौंसिल द्वारा होता रहा है, उसमें दीवान सहित, जो कि उसके प्रेसीडेन्ट है, सात सदस्य हैं। कौंसिल को स्वतंत्रता नाममात्र की है, वास्तविक सत्ता पोलिटिकल विभाग की है। राज्य में शिक्षा तथा स्वास्थ्य का साधारण प्रबन्ध है।

हाल में म्यूनिसपैल्टी के विधान में सुधार किया गया है। उसके अनुसार सभापति और उपसभापति की नियुक्ति तो महाराज द्वारा ही होगी, परन्तु वे उन चार व्यक्तियों में से चुने जायँगे, जिनके लिए म्युनिसपल बोर्ड सिफारिश करेगा। स्त्रियों को भी चुनाव का अधिकार दिया गया है।

प्रजा को अपना संगठन करने की स्वतंत्रता नहीं है, उसके समय-

समय पर किये गये प्रयत्नों का दमन किया गया। नागरिकों को भाषण, लेखन व सभा-सम्मेलन करने की भी स्वाधीनता नहीं है। पुलिस किसी भी संदिग्ध व्यक्ति को गिरफ़्तार, कर सकती है। लगान और करों की वृद्धि से जनता कष्ट-पीड़ित है। क्या महाराजा के शासनाधिकार पाने पर सुधार होगा!

## राजगढ़

इस राज्य का क्षेत्रफल ९६२ वर्गमील, जनसंख्या सवा लाख से अधिक और औसत वार्षिक आय दस लाख रुपये है। राजवंश उमत राजपूत जाति का है, जो परमार राजपूतों की एक शाखा है।

राजा वीरेन्द्रसिंह जी का देहान्त २६ अक्तूबर १९३६ का हुआ। उसके बाद उनके पुत्र विक्रमादित्यसिंह का जन्म १८ दिसम्बर १९३६ को हुआ। उसी दिन से ये राजगद्दी के अधिकारी हो गये। ऐसी दशा में राज्य का दुर्भाग्य यह होता है कि उसका शासन पोलिटिकल विभाग की निगरानी में चला जाता है। राजगढ़ में भी यही हुआ। नाबालगी में शासन-कार्य एक कौंसिल द्वारा होने लगा, जिसका अध्यक्ष मध्य-भारत एजन्सी का सरकारी पदाधिकारी है। कार्यकर्ताओं के दमन, गिरफ़्तारी, सजा या निर्वासन आदि के द्वारा प्रजामंडल का संगठन छिन्न-भिन्न कर दिया गया है, और जनता की सभा-सम्मेलन लेखन और भाषण की स्वतंत्रता छीन ली गयी है। पुलिस का बोलबाला है। नाबालगी शासन की मियाद पूरी होने में अभी काफ़ी समय है; नागरिक उत्सुकता-पूर्वक उसकी प्रतीक्षा में हैं।

## नरसिंहगढ़

इस राज्य का क्षेत्रफल ७३४ वर्गमील, जनसंख्या सवा लाख, और औसत वार्षिक आय सात लाख रुपये है। राजवंश ऊमत राजपूत जाति का है, जो परमार राजपूतों की एक शाखा है। नरसिंहगढ़ नगर श्री० परसराम जी ने बसाया, उन्होंने ही सन् १६८१ में इस राज्य की स्थापना की।

स्व० राजा अर्जुनसिंह जी ने अपनी लगातार बीमारी के कारण एक रीजेन्सी कौंसिल की स्थापना की थी, जिसकी रीजेन्ट (राज-प्रतिनिधि) रानी साहब थीं, और अध्यक्ष भोपाल के पोलिटिकल एजन्ट। सन् १९२४ में उनका देहान्त होने पर उनके पुत्र राजा विक्रमसिंह गद्दी पर बैठे, इनकी आयु उस समय पन्द्रह वर्ष की थी। इनकी नाबालगी में शासन-प्रबन्ध रीजेन्सी कौंसिल द्वारा होता रहा। सन् १९२९ में राजा विक्रमसिंह जी को शासनाधिकार प्राप्त हुए। इस समय से रीजेन्सी कौंसिल का स्थान तीन सदस्यों की स्टेट-कौंसिल ने लिया; उसमें प्रेसीडेन्ट राजा साहब, उपसभापति दीवान, तथा एक सदस्य एक जागीरदार रहे। राज्य में हाईकोर्ट है, परन्तु शासन-व्यवस्था जनता के प्रति अनुत्तरदायी है। नागरिक स्वतन्त्रता का अभाव है। कार्यकर्त्ताओं का अधिकारियों से बहुत संघर्ष रहने के बाद समझौता हुआ। फिर भी नरसिंहगढ़ मित्र-मंडल के चुनाव में दीवान आदि ने हस्तक्षेप किया। अब वे दीवान नहीं हैं। राजा साहब ने नागरिक स्वतन्त्रता का आश्वासन दिया है।

# साठवाँ अध्याय



## संयुक्तप्रान्त के देशी राज्य

### [*टेहरी-गढ़वाल, रामपुर, और बनारस]

जहाँ तक राजाओं के उत्कर्ष में सहायता मिलती है, और उनके स्वेच्छाचारी शासन में बाधा नहीं पड़ती, उनमें साम्प्रदायिक मनोवृत्ति प्रकट हो सकती है, परन्तु जहाँ इस स्थिति में अन्तर आया, महाराजाओं और नवाबों के मनोभाव एक ही प्रकार के दिखायी देंगे। जब अलवर (शासक) को अपने लिए रुपये की जरूरत हुई तो क्या उसने अपनी हिन्दू जनता को छोड़ दिया? जब रामपुर को अपना मतलब सिद्ध करना होता है, तो क्या वह मुसलिम प्रजा को छोड़ देता है। क्या पटियाला उसके मार्ग में बाधा डालने वाले सिक्खों को छोड़ देता है! विश्वास रखिए! राजाओं की अपनी अलग ही जाति है, वे न हिन्दू हैं, न मुसलमान और न सिक्ख। —अमृतलाल सेठ

संयुक्तप्रान्त में देशी राज्य तीन हैं—टेहरी-गढ़वाल, रामपुर, और बनारस। ये एक-दूसरे से पृथक् और दूर-दूर हैं। राजनैतिक दृष्टि से टेहरी-गढ़वाल का सम्बन्ध शिमला पहाड़ी राज्य एजन्सी से, और अन्य दो राज्यों का, ग्वालियर रेजीडेन्सी से है।

### टेहरी-गढ़वाल

*इस राज्य का क्षेत्रफल ४,५०० वर्गमील, जनसंख्या पौने पाँच लाख,

और औसत वार्षिक आय उन्नीस लाख रुपये है।

राजवंश पंवार राजपूत है। इस राज्य की स्थापना सन् ६८८ में हुई थी। महाराजा नरेन्द्रशाह सन् १९१३ में गद्दी पर बैठे, उस समय वे १५ वर्ष के थे। उन्हें शासन के पूरे अधिकार १९१९ में मिले।

पहले कहा जा चुका है कि सरकारी प्रबन्ध की दृष्टि से यह राज्य शिमला पहाड़ी राज्यों में गिना जाता है। उन राज्यों में, इसकी दशा अपेक्षाकृत अच्छी है। यहाँ एक असेम्बली है, पर वह प्रजा की वास्तविक प्रतिनिधि न होकर विशेषतया मध्य श्रेणी तथा जमीदारों या पूँजीपतियों की ही संस्था है। उसे अभी तक अपना अध्यक्ष चुनने तथा बजट पर बहस करने का भी अधिकार नहीं; बजट पर मत देना तो दूर की बात रही। सभाओं पर प्रतिबन्ध लगाने वाला कानून इसी सभा ने बनाया था। राज्य में कुछ स्कूल तथा एक हाईकोर्ट भी है। परन्तु प्रजा के मौलिक अधिकारों का अभाव ही है। राजा साहब ने प्रजा को क्रमशः प्रतिनिधि-शासन प्रदान करने की घोषणा कर रखी है, और असेम्बली में, नामजद सदस्यों की अपेक्षा निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ा दी है, यद्यपि वह पर्याप्त नहीं है।

यहाँ सभाओं की रजिस्टरी का कानून प्रचलित है, उसके कारण सार्वजनिक कार्य शान्तिपूर्वक चलाना अत्यन्त कठिन है। उसके लिए कार्यकर्त्ताओं को सत्याग्रह का ही मार्ग रह जाता है। यहाँ की प्रमुख सार्वजनिक और राजनैतिक संस्था हिमालय प्रान्तीय देशी राज्य लोक-परिषद है। इस विषय में अट्ठाइसवें अध्याय में लिखा जा चुका है। जनता के सामने मुख्य रचनात्मक कार्य यह है—(१) कार्यकर्त्ताओं का

शिक्षण और संगठन, (२) साक्षरता-प्रचार (३) उन के धंधे की व्यवस्था करना और (४) समाज-सुधार तथा नागरिकों को उनके अधिकार और उत्तरदायित्व का ज्ञान कराना और उनमें सामूहिक एकता की भावना उत्पन्न करना।

## रामपुर

इस राज्य का क्षेत्रफल ८९२ वर्गमील, जनसंख्या पाँच लाख और औसत वार्षिक आय ५१ लाख रुपये है। यह राज्य इस बात की यादगार है कि इस प्रदेश में कभी रुहेलों का प्रभुत्व था। शासक का पद नवाब है। सन् १९३० में सैयद रजाअली खाँ गद्दी पर बैठे।

सन् १९३४ ई० से, नवाब साहब की निगरानी में, राजप्रबन्ध के लिए एक स्टेट-कौंसिल है। इसके अध्यक्ष चीफ-मिनिस्टर हैं। उनके अतिरिक्त इसमें निम्नलिखित सदस्य हैं—(१) फाइनेंस और रेवन्यू मिनिस्टर (२) होम मिनिस्टर और (३) स्टेट एडवोकेट। कुछ खास विषयों में नवाब साहब को विशेषाधिकार है, उन्हें छोड़कर अन्य विषय कौंसिल के अधीन हैं। बजट पर कौंसिल का नियंत्रण है; हाँ, नवाब साहब और उनके परिवार के लिए व्यय की जो रकम निर्धारित है वह अलग है।

सन् १९३१ ई० में यहाँ एक व्यवस्थापक कमेटी बनायी गयी थी, उसमें ८ सरकारी और ६ गैर-सरकारी सदस्य थे। गैर-सरकारी सदस्यों में से ३ नामजद तथा ३ म्युनिसिपल बोर्ड द्वारा निर्वाचित थे। चीफ-मिनिस्टर इस कमेटी का अध्यक्ष था, और अन्य सब मिनिस्टर अपने पद के कारण इसके सदस्य थे। इस प्रकार इस कमेटी में सरकारी

अथवा सरकार द्वारा नामजद सदस्यों की ही प्रधानता थी; जो तीन सदस्य निर्वाचित बताये गये हैं, उनका निर्वाचन भी परोक्ष था। पुनः यह कमेटी उन निर्धारित विषयों पर केवल अपनी सम्मति ही दे सकती थी, जिनके सम्बन्ध में कोई कानून बनाया जाने वाला होता या जो इसे सौंपे जाते। इसे स्वतंत्र रूप में कुछ अधिकार न था। यह एक सलाहकार समिति मात्र थी।

१ जनवरी १९४० के फरमान के अनुसार नयी मजलिस अर्थात् व्यवस्थापक सभा (लेजिस्लेटिव असेम्बली) स्थापित की गयी; उसमें ३४ सदस्य होने लगे—

| | | |
|---|---|---|
| निर्वाचित | | १७ |
| नामजद | | १७ |
| गैर-सरकारी | ५ | |
| सरकारी | १२ | |
| योग | | ३४ |

निर्वाचित सदस्यों में से कुछ सदस्य म्युनिसपैलटी, तथा वकील-सभा आदि संस्थाओं द्वारा निर्वाचित होने से, उनका निर्वाचन प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष होता है। फिर, पृथक् निर्वाचन पद्धति का उपयोग किया जाता है; यद्यपि निर्वाचन का आधार प्रादेशिक न होकर व्यावसायिक रखा गया है, संयुक्त निर्वाचन पद्धति का अवलम्बन नहीं किया जाता। इसके अतिरिक्त नामजद सदस्यों की संख्या, कुल सदस्यों की संख्या की आधी है, अर्थात् निर्वाचित सदस्यों की संख्या के समान है। इन सब बातों से स्पष्ट है कि मजलिस का संगठन बहुत दूषित है।

निर्धारित सीमा और नियमों के अनुसार मजलिस राज्य के लिए कानून बना सकती है, और सार्वजनिक हित तथा महत्व के विषयों पर प्रस्ताव पास कर सकती है। मजलिस को बजट पर वादविवाद तथा प्रस्ताव करने का अधिकार है, परन्तु वह किसी सरकारी माँग को अस्वीकार, या घटाकर स्वीकार नहीं कर सकती। इससे उसके अधिकारों का बहुत सीमित होना स्पष्ट ही है।

सन् १९३० ई० से यहाँ न्याय-कार्य के लिए सर्वोच्च संस्था हाईकोर्ट स्थापित है, उसमें चीफ-जस्टिस के अतिरिक्त दो अन्य जज हैं। हाईकोर्ट को प्रारम्भिक ( आरिजिनल ). अपील तथा निगरानी के मामले सुनने का अधिकार है। कई विषयों सम्बन्धी, ब्रिटिश भारत के कानूनों को, स्थानीय परिस्थिति की दृष्टि से, संशोधित करके अमल में लाया जाने लगा है। दीवानी मामलों में हिन्दुओं और मुसलमानों के जातिगत कानून का पालन किया जाता है। न्याय सम्बन्धी अधिकारियों की नियुक्ति के लिए उनमें कानूनी योग्यता का होना अनिवार्य है। राज्य में एक चीफ मजिस्ट्रेट, तीन मजिस्ट्रेट और दो सिविल जज भी हैं। हाईकोर्ट के निर्णय की अपील जुडीशल कमेटी में सुनी जाती है, जिसमें चीफ-मिनिस्टर और रेवन्यू मिनिस्टिर होते हैं।

मालूम होता है कि राज्य भर में केवल रामपुर नगर को छोड़कर और कहीं कोई म्युनिसपैलटी नहीं है। पंचायतों का भी अभाव है। यह बहुत खटकने वाली बात है। रामपुर म्युनिसिपल बोर्ड में कुल १८ सदस्य हैं,—१२ निर्वाचित और ६ नामजद।

राज्य में शिक्षा-संस्थाएँ तीन प्रकार की हैं—(१) अरबी का

कालिज; इसमें पंजाब, बंगाल और अफगानिस्तान तक के विद्यार्थी आते हैं। यहाँ अरबी, फारसी और उर्दू की तथा इसलाम धर्म की उच्च शिक्षा दी जाती है। यहाँ के पुस्तकालय में बहुत से दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रतियाँ हैं। (२) इंटर कालिज, हाई स्कूल, एंग्लो-वर्नाक्यूलर स्कूल, लड़कियों का स्कूल (३) वर्नाक्यूलर स्कूल, विशेषतया देहाती जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए; और, अध्यापकों के लिए ट्रेनिंग स्कूल।

राजकीय प्रकाशन* में कहा गया है कि 'राज्य में स्वास्थ्य और चिकित्सा विभाग की अच्छी व्यवस्था है। रामपुर नगर में सदर अस्पताल और उसकी शाखा के अतिरिक्त यूनानी शफाखाना भी है, जिसमें योग्य हकीम काम करते हैं। तहसीलों की चिकित्सा-संस्थाओं के अतिरिक्त गाँवों में गश्ती शफाखानों का भी प्रबन्ध है। गतवर्षों में कृषि और मालगुजारी सम्बन्धी सुधार किये गये हैं, और काश्तकारी कानून से किसानों के अधिकारों की व्यवस्था की गयी है। बेगार बन्द कर दी गयी है, और उद्योग धंधों की ओर ध्यान दिया जा रहा है।' ये बातें अच्छी हैं; बशर्ते कि ये वस्तु-स्थिति का ठीक परिचय देती हों। हमें ज्ञात हुआ है कि यहाँ हिन्दुओं की (जो कुल जनसंख्या के आधे से अधिक हैं) शिक्षा तथा धार्मिक अधिकारों की उपेक्षा की जाती है, और सरकारी नौकरियों में भी उनके साथ अन्याय होता है। प्रश्न साम्प्रदायिक (हिन्दुओं का) नहीं है; बहुसंख्यक जनता के नागरिक

---

* A Bird's Eye-view of the Constitutional and Administrative Developments in Rampur State 1930-39.

अधिकारों का है। वास्तविक सुधार के लिए उत्तरदायी शासन आवश्यक है, उसके लिए जनता को, अपनी जाति या धर्म के भेद-भाव भुला कर, सम्मिलित रूप से प्रयत्न करना चाहिए।

## बनारस

इस राज्य का क्षेत्रफल ८७५ वर्गमील, जनसंख्या चार लाख, और औसत वार्षिक आय बीस लाख रुपये है।

यह बहुत प्राचीन राज्य है। बारहवीं शताब्दी से यहाँ मुसलमानों का अधिपत्य हुआ। सम्राट् औरंगजेब के मरने और मुगल राज्य के क्षीण होने पर यहाँ पुनः हिन्दू राजवंश की स्थापना हुई। पीछे इसे अवध के नवाबों से अपनी रक्षा करनी पड़ी। इसीलिए काशी के दूसरी ओर गंगा तट पर रामनगर का किला बनाया गया। राजा चेतसिंह को वारनहेस्टिंग्स के अत्याचारों से बचने के लिए अपना राज्य छोड़ जाना पड़ा। पीछे राज्य का कुछ भाग अंगरेजी राज्य में मिला लिया गया। सन् १६११ में पुराने राज्य का बड़ा भाग ( भदोही और चकिया आदि ) फिर इस राज्य में मिल गये। तब से ही यह राज्य, अपने नवीन रूप में, बना हुआ, समझा जाता है। राज्य के तीन भाग हैं:— (१) भदोही ज़िला; यहाँ आबादी घनी और अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न है। इसकी राजधानी ज्ञानपुर है। (२) चकिया जिला; यह अधिकतर जंगल है, आबादी कम तथा निर्धन और अशिक्षित है। राजधानी चकिया है। (३) रामनगर का किला और उसके पास की भूमि।

राजवंश भूमिहार ब्राह्मण है। महाराजा विभूतिनारायणसिंह सन् १६३६ में गद्दी पर बैठे। उस समय आप बारह वर्ष के थे। अतः

शासन-कार्य के लिए एक कौंसिल नियत की गयी। सन् १६४२ में बनारस-राज्य-एक्ट बना है। उसके अनुसार मंत्रिमंडल में तीन सदस्य होंगे—दीवान, एक कौंसिलर और एक मंत्री। इनकी नियुक्ति महाराज द्वारा होगी, और ये उनके प्रति ही जिम्मेवर होंगे। मंत्रि-मंडल का सभापति दीवान होगा। मंत्री व्यवस्थापक सभा के निर्वाचित सदस्यों में से चुना जायगा। वह राष्ट्र निर्माणकारी विभाग को संभालेगा। वर्तमान शासक की नाबालगी में मंत्रिमंडल का कार्य कौंसिल करेगी। एक्ट में जिस मंत्री की नियुक्ति की बात कही गयी है, वह अपने पद के कारण कौंसिल का सदस्य होगा।

व्यवस्थापक सभा को इस राज्य में 'प्रजामण्डल' नाम दिया गया है। इसके सदस्य इस प्रकार होंगे :—

| | | |
|---|---|---|
| निर्वाचित | | १६ |
| हिन्दू | १५ | |
| मुसलिम | ४ | |
| नामजद | | ७ |
| दीवान और कौंसिलर | २ | |
| अन्य | ५ | |
| योग | | २६ |

निर्वाचन संयुक्त प्रणाली से होगा, मुसलिम सदस्यों के लिए चार स्थान सुरक्षित रखे गये हैं। दीवान का, अपने पद के कारण, व्यवस्थापक सभा का सभापति होना, सभा को बजट पर केवल बहस करने की

इजाजत होना और मत देने का अधिकार न होना, तथा सभा में एक-चौथायी से अधिक नामजद सदस्यों का होना सुधारों की भावना के अनुकूल नहीं है।

राज्य के नागरिकों ने सभा करके यह निश्चय किया है कि यह एक्ट हमें मंजूर नहीं है; कारण, इसमें उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन का कहीं पता नहीं है। सभा इसमें संशोधन कराने के लिए वैधानिक और कानूनी कार्रवाई करेगी।

अब न्याय-प्रणाली की बात लीजिए। भदोही जिले में एक कलेक्टर-मजिस्ट्रेट है। उसे साधारण प्रबन्ध के अतिरिक्त फौजदारी और माल सम्बन्धी अधिकार हैं। आवश्यकता होने पर उसकी सहायता के लिए एक डिप्टी-कलेक्टर भी रह सकता है। कलेक्टर के अधीन एक तहसीलदार रहता है, जिसकी सहायता नायब तहसीलदार करते हैं। इस जिले के लिए एक सिविल जज होता है। उसे अदालत खफ़ीफ़ा ('स्माल-काज़-कोर्ट') के जज, तथा सेशन जज के अधिकार होते हैं। वह कलेक्टर-मजिस्ट्रेट के फ़ैसलों की अपील भी सुनता है। चकिया में कलेक्टर-मजिस्ट्रेट है; वही इस जिले का सिविल जज तथा अदालत खफ़ीफ़ा का जज होता है। उसके अधीन तहसीलदार तथा नायब तहसीलदार होते हैं।

भदोही के जज तथा चकिया के जज-मजिस्ट्रेट-कलेक्टर के फ़ैसलों की अपील चीफ़-जज के यहाँ होती है। उसे हाईकोर्ट के निगरानी सम्बन्धी अधिकार है। रामनगर में सब-डिविजनल मजिस्ट्रेट है, उसके फ़ैसलों की अपील भी चीफ़-जज के यहाँ होती है। चीफ़-जज रामनगर

में रहता है। उस के फैसलों का रिवीज़न निर्धारित नियमों के अनुसार महाराज कर सकते हैं।

रामनगर में म्युनिसपल वोर्ड और मदोही में जिला-वोर्ड है। राज्य में सर्वसधारण के लिए चार अस्पताल और दो शफाखाने हैं। शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं में दो हाई स्कूल, एक मिडल स्कूल और दो संस्कृत स्कूल आदि हैं।

स्व० महाराजा आदित्यनारायणसिंह जी के समय में भी लोगों को चकिया में अधिकारियों की ज्यादतियों के खिलाफ सत्याग्रह करना पड़ा था, परन्तु अन्ततः महाराज और स्टेट-कांग्रेस का परस्पर में समझौता हो गया था। महाराज ने जनता की कुछ माँगे स्वीकार करली थी और स्टेट-कांग्रेस ने शासन-सुधार कमेटी से सहयोग करने का निश्चय कर लिया था। महाराज के देहान्त के बाद कौंसिल शासन में जनता की सेवा करनेवाला, राज्य का सुप्रसिद्ध अखबार 'ग्रामवासी' वन्द किया गया। वालक उत्तराधिकारी को शिक्षा के बहाने राज्य से बाहर किया गया। फजूलखर्चियाँ बढ़ी। सर्वसाधारण पर आतंक जमाया गया। कार्यकर्त्ताओं और आलोचकों को कैद या जुरमाने आदि की सजाएँ दी गयीं। जनता ने व्यक्तिगत सत्याग्रह का अवलम्बन किया, जो आठ महीने बाद पंडित जवाहरलाल जी नेहरू के आदेश पर स्थगित किया गया। स्टेट-कांग्रेस का उद्देश्य उत्तरदायी शासन प्राप्त करना है।



# इकसठवाँ अध्याय

## सिक्कम और भूटान

ये दोनों राज्य बंगाल के उत्तर में हैं। यहाँ से तिब्बत को सीधा रास्ता जाता है, इसलिए इनका राजनैतिक महत्व बहुत है। सरकार इन्हें किसी एजन्सी में अन्य रियासतों के साथ न रखकर, इनसे पृथक् सम्बन्ध की व्यवस्था करती है। पहले इनका सम्बन्ध बंगाल-सरकार से था। अब पैंतीस वर्ष से इस व्यवस्था में परिवर्तन कर दिया गया है। सन् १९०६ ई० से ये राज्य भारत-सरकार से अलग-अलग सम्बन्धित हैं। दोनों के लिए पोलिटिकल एजन्ट अफसर गंटोक (सिक्कम) में रहता है।

### सिक्कम

यह राज्य नेपाल के पूर्व में है। इसका क्षेत्रफल २,८१८ वर्गमील, जनसंख्या एक लाख से अधिक, और औसत वार्षिक आय पाँच लाख रुपये है। यह राज्य हिमालय प्रदेश में है, और इसकी ऊँचाई समुद्र-तट से एक हजार से लेकर बीस हजार फुट तक है। इस राज्य की स्थापना सतरहवीं शताब्दी के मध्य में हुई। राजवंश बौद्ध है, इसके मूल पुरुष तिब्बत से आये, उनका सम्बन्ध चीन के राजवंश से था। इस राज्य पर तिब्बत, नेपाल और भूटान ने समय-समय पर चढ़ाई की। सन् १८१४-१५ में, नेपाल की लड़ाई के समय, इस राज्य का

अंगरेजों से सम्बन्ध हुआ। अंगरेजों को दार्जलिंग इसी राज्य से, १२,०००) वार्षिक के बदले, मिला है।

महाराजा ताशी नामग्याल सन् १६१४ में गद्दी पर बैठे। इन्हें पूर्ण शासनाधिकार सन् १६१८ ई० में मिले। महाराजा एक कौंसिल की सहायता से शासन करते हैं। गंटोक (राजधानी) में पोलिटिकल अफसर रहता है, वह महाराज तथा उनकी कौंसिल को आवश्यक परामर्श और सहायता करता है।

## भूटान

यह राज्य बंगाल और आसाम के उत्तर में है। इसका क्षेत्रफल १८,००० वर्गमील, जनसंख्या लगभग तीन लाख, और औसत वार्षिक आय सवा चार लाख रुपये है।

पहले यहाँ टेकपा जाति के आदमी रहते थे। सतरहवीं शताब्दी के मध्य में तिब्बत के सैनिकों ने उनमें से बहुत सों को यहाँ से हटा दिया, और इसे अपना उपनिवेश बना लिया। पीछे यहाँ तिब्बत के लामा 'धर्मराज' रहे। कालान्तर में यह विचार किया गया कि सांसारिक विषयों का धार्मिक या आत्मिक विषयों से मेल नहीं बैठता, अतः धर्मराज ने शासनप्रबन्ध के लिए अपना एक मंत्री नियत कर लिया, जिसका पद 'देवराज' हो गया। पीछे देवराज को 'शाव्दुंग रिम्पोच' कहा जाने लगा।

भूटान राज्य ब्रिटिश सरकार के सम्पर्क में सन् १७७२ में आया, जबकि कूचविहार के राजा ने भूटानियों से अपनी रक्षा करने के लिए अंगरेजों से सहायता माँगी। सन् १७७४ में संधि हो गयी। फिर १८२६

तक, जबकि अंगरेजों ने आसाम पर अधिकार किया, भूटान का अंगरेजों से कोई सम्पर्क न हुआ। भूटानियों द्वारा आसाम पर हमला किये जाने पर भूटान और अंगरेजों का संघर्ष हुआ। सन् १८४१ में भूटान की पहाड़ियों के नीचे के दर्रे ( आसाम के 'द्वार' ) अंगरेजी राज्य में मिला लिये गये। इसके उपलक्षय में भूटान को दस हजार रुपये वार्षिक दिये जाने लगे। १८६१ में भूटान का कुछ और भाग अंगरेजी राज्य में मिलाया गया और भूटान को प्रति वर्ष ५० हजार रुपये मिलने लगे। सन् १९०४ में ब्रिटिश सेना ने लासा ( तिब्बत की राजधानी ) पर चढ़ाई की, उस अवसर पर भूटान ने अंगरेजों की बड़ी सहायता की, और पीछे भी अच्छा सम्बन्ध बनाये रखा। सन् १९१० की संधि के अनुसार भूटान ने अपना बाहरी सम्बन्ध अंगरेजों के नियंत्रण में रखना स्वीकार किया, उसे मिलने वाली रकम अब पचास हजार रुपये से एक लाख कर दी गयी। भूटान अपने भीतरी मामलों में स्वतंत्र है। यहाँ ब्रिटिश रेजीडेन्ट रहता है।

राजवंश बौद्ध धर्मावलम्बी है। महाराजा जिगमे वांगचुक सन् १९२६ में गद्दी पर बैठे। यहाँ धार्मिक विषयों को शासन से पृथक् माना जाता है। धार्मिक मामलों की व्यवस्था करने वाले को 'धर्मराज' कहा जाता है, यह पहले बताया जा चुका है।

भूटान में अंगरेजी ढङ्ग की शिक्षा सन् १९१४ ई० से आरम्भ हुई। सन् १९२४ में कुछ विद्यार्थियों ने प्रथम बार मेट्रीक्यूलेशन परीक्षा पास की। वे अब राज्य के भिन्न-भिन्न विभागों में कार्य करते हैं।

कुछ आदमी नेपाल और भूटान का अंगरेजों से एकसा ही सम्बन्ध समझते हैं। वास्तव में नेपाल देशी राज्यों में नहीं गिना जाना चाहिए, वह स्वतंत्र है, और किसी भी सरकारी प्रकाशन में उसे देशी राज्यों की सूची में सम्मिलित नहीं किया जाता। इसके विपरीत, भूटान देशी राज्यों में है; हाँ, यहाँ के शासक नरेन्द्र-मंडल के सदस्य नहीं हैं, और १९३५ ई० के विधान में संघीय व्यवस्थापक मंडल में इनकी ओर से कोई प्रतिनिधि लेने का भी निश्चय नहीं किया गया था। इससे केवल यही प्रतीत होता है कि ब्रिटिश सरकार की इच्छा भूटान को भारतवर्ष की राजनीति से पृथक् रखने की रही है।



# बासठवाँ अध्याय



## बंगाल के देशी राज्य

### [ कूचविहार और त्रिपुरा ]

बंगाल प्रान्त में देशी राज्य दो हैं—कूचविहार, और त्रिपुरा। इनकी भूमि पहाड़ी है, और इनके अधिकांश भाग में जंगल है। इनके शासन-प्रबन्ध और नागरिक स्थिति के विषय में आगे क्रमशः लिखा जाता है।

### कूचविहार

यह राज्य उत्तरी बंगाल में है, क्षेत्रफल १३१८ वर्ग मील, जन-संख्या छः लाख, और औसत वार्षिक आय तीस लाख रुपये है।

राजवंश क्षत्रिय है। पन्द्रहवी शताब्दी के अन्त में श्री० विश्वसिंह ने पूर्वोत्तर भारत में स्वतंत्र राज्य स्थापित किया, जिसमें वर्त्तमान

कूचविहार भी सम्मिलित था। सन् १६०३ में मुगल सेनाओं ने इस राज्य के बहुत से भाग पर अधिकार कर लिया, यहाँ तक कि अठारहवीं सदी के आरम्भ में राज्य अपनी वर्त्तमान सीमा तक ही रह गया। सन् १७७३ ई० में इस राज्य की ईस्ट इंडिया कम्पनी से संधि हुई। महाराजा की उपाधि 'भूप बहादुर' है।

महाराजा श्री० नृपेन्द्र नारायण अपने समय के विचार से अच्छे प्रगतिशील विचारों के थे। आप ने १८८३ में शासनाधिकार प्राप्त करने पर शासन-कार्य में सहायता पाने के लिए एक प्रबन्धकारिणी कौंसिल की स्थापना की। पीछे सन् १६०६ में आपने एक व्यवस्थापक परिषद् भी बनायी, जिसके सदस्य भिन्न-भिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करने के लिए नामजद किये गये थे। इस परिषद् ने आवश्यक परिवर्तनों के साथ, ब्रिटिश भारत के ढङ्ग पर कानून बनाने का कार्य किया।

महाराजा जगद्दीपेन्द्र नारायण सन् १९२२ ई० में गद्दी पर बैठे। उस समय आपकी आयु केवल सात वर्ष की थी। आपकी नाबालिगी में रीजेन्सी कौंसिल ने राजप्रबन्ध किया, जिसकी अध्यक्षा महाराजा साहब की माता जी थीं। महाराज को शासनाधिकार सन् १६३६ ई० में मिले।

महाराज कौंसिल की सहायता से शासन करते हैं। वे एक या अधिक विभागों का कार्य स्वयं करते हैं; इसका परिणाम अच्छा नहीं होता।

यह बात उसी दशा में उचित कही जा सकती है, जब कि शासक अपने सम्बन्ध में व्यवस्थापक सभा द्वारा की हुई स्पष्ट आलोचना सुनने और उसपर भली भाँति विचार करने को तैयार हो, और साथ ही

व्यवस्थापक सभा भी इस विषय में महाराज का कुछ लिहाज न करके उनके कार्य की वैसी ही टीका करे, जैसे किसी अन्य मंत्री की। साधारणतया ऐसा नहीं होता; इसलिए महाराज कोई को विभाग न संभालना चाहिए। महाराज का आय-व्यय-परीक्षा ( 'आडिट' ) विभाग का कार्य संभालना तो सर्वथा अनुचित है। यह कार्य तो ऐसे व्यक्ति द्वारा ही होना चाहिए, जो हाईकोर्ट के जज की तरह सरकार से पृथक् तथा उसके नियंत्रण से सर्वथा मुक्त हो।

कौंसिल के अध्यक्ष महाराजा साहब स्वयं है। उसके अन्य सदस्य निम्नलिखित हैं:—(१) चोफ-मिनिस्टर ( उपसभापति ) (२) रेवन्यू मिनिस्टर (३) फाइनेन्स मिनिस्टर (४) फोर्थ ( चतुर्थ ) मिनिस्टर। ये तो पूर्ण सदस्य हैं; इनके अतिरिक्त एक सदस्य ऐसा होता है, जो केवल न्याय सम्बन्धी विषयों के ही विचार में भाग लेता है।

सन् १६३६ ई० से यहाँ द्वैध शासन पद्धति प्रचलित है, ( जैसा कि ब्रिटिश भारत के बड़े प्रान्तों में सन् १६१६ ई० में आरम्भ की गयी थी )। उस समय व्यवस्थापक परिषद के गैर-सरकारी सदस्यों ने अपने में से एक सदस्य को इस कौंसिल का सदस्य निर्वाचित किया। यह नवीन सदस्य शिक्षा, कृषि, उद्योग, स्वास्थ्य और चिकित्सा आदि विभागों का कार्य संभालता है। इन हस्तान्तरित विषयों के लिए वह व्यवस्थापक परिषद के गैर-सरकारी सदस्यों के प्रति उत्तरदाता है; उक्त विभागों का वजट परिषद द्वारा निर्धारित होता है।

पहले कहा गया है कि राज्य में व्यवस्थापक परिषद सन् १६०६ में स्थापित की गयी थी। सन् १६३६ में इसका संगठन बदला जाकर, इसमें गैर-सरकारी सदस्यों का बहुमत किया गया। अब इसमें १४ सदस्य

होते हैं:—८ गैर-सरकारी और ६ सरकारी। सरकारी सदस्यों में से चार कौंसिल के सदस्य, और दो अन्य होते हैं।

राज्य में एक हाईकोर्ट है; उसके अधीन दीवानी और फौजदारी की अदालतें हैं, जो प्रायः उसी प्रकार के कानून को अमल में लाती हैं, जैसे निकटवर्ती ब्रिटिश भारत के जिलों की अदालतें। आनरेरी मजिस्ट्रेटों की भी व्यवस्था है। पंचायत प्रणाली बंगाल प्रान्त के ढङ्ग पर है। राज्य में छः म्युनिसपैलटियाँ हैं, और इन्हें क्रमशः बढ़ाने का विचार है। इनकी आय के साधन बहुत परिमित हैं, इन्हें प्रायः राजकीय सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है।

राज्य में यथा-सम्भव उतना ही खर्च किया जाता है, जितना संरक्षित विभागों के लिए प्रबन्धकारिणी सभा (कौंसिल), और हस्तान्तरित विभागों के लिए व्यवस्थापक परिषद, वर्ष के आरम्भ में निश्चित करती है। महाराजा का निजी व्यय निर्धारित है। राज्य का एक रक्षित कोष है, जिसका परिमाण क्रमशः बढ़ाया जा रहा है। दुर्भिक्ष-निवारण के लिए अलग रकम सुरक्षित रखी जाती है। कृषि और उद्योग धंधों की उन्नति की ओर ध्यान दिया जा रहा है।

वर्तमान द्वैध शासनपद्धति के अनुसार, शिक्षा एक हस्तान्तरित विषय है, इसकी क्रमशः उन्नति हो रही है। राज्य में एक कालिज, सन् १८८८ ई० से स्थापित है, यह कलकत्ता विश्वविद्यालय से संलग्न है। हाई स्कूलों आदि की संख्या क्रमशः बढ़ रही है। हाँ, जिस राज्य ने अब से आठ वर्ष पहले प्रबन्धकारिणी सभा की स्थापना करके

अपनी प्रगतिशीलता का परिचय दिया था, उसका अब तक पूर्ण उत्तरदायी शासनपद्धति अवलम्बन न करना चिन्तनीय है।

## त्रिपुरा

यह राज्य बंगाल के टिपरा जिले के पूर्व में है। इसका क्षेत्रफल ४११६ वर्गमील, जनसंख्या चार लाख, और औसत वार्षिक आय अठाईस लाख रुपये है। राजवंश क्षत्रिय है।

महाराजा वीरविक्रम किशोरदेव वर्मन सन् १६२३ में गद्दी पर बैठे। शासन एकतंत्री और अनियंत्रित है। राजप्रबन्ध के लिए एक मंत्री है, उसे तीन नायब दीवानों से सहायता मिलती है, जो अपने-अपने विभाग का काम संभालते हैं। न्याय करनेवालों पर बहुधा अधिकारियों का अनुचित दबाव पड़ता है, और पुलिस जनता की रक्षा करनेवाली न होकर प्रायः एक आतंक जमानेवाली संस्था के रूप में सामने आती है।

राज्य में शिक्षा प्रचार बहुत कम है। कालिज एक भी नहीं है, केवल कुछ हाई स्कूल आदि हैं। विचित्र बात यह है कि उच्च श्रेणी वालों को तो सुविधाएँ दी जाती हैं, और सर्वसाधारण को उनसे वंचित रखा जाता है। राजपरिवार आदि के विद्यार्थियों की फीस माफ रहती है, सरकारी पदाधिकारियों के लड़के केवल आधी फीस देते हैं, और स्वतंत्र पेशेवालों के बालकों को पूरी फीस देनी होती है।

राज्य में नागरिक स्वतंत्रता का प्रायः अभाव ही है। लोगों को भाषण, लेखन, प्रकाशन आदि के अधिकार नहीं हैं। नवम्बर १६३८ में शासक की ओर से रामनगर, कृष्णनगर और रामपुर गाँववालों

को बेदखल करने की सूचना निकाली गयी। जनता द्वारा इसका सामूहिक रूप से विरोध होना स्वाभाविक था। दिसम्बर १६३८ में 'त्रिपुरा राज्य गण-परिषद' की स्थापना हुई। इसने जनता को संगठित करने और उनमें निम्नलिखित कार्यों के लिए अहिंसात्मक संघर्ष की भावना भरने का प्रयत्न किया:—(१) उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित करना, (२) कृषि सम्बन्धी नियमों का सुधार करना, (३) व्यापारिक एकाधिकारों को हटाना और (४) अन्य छोटी-छोटी माँगों को पूरा करना। गणपरिषद अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद से सम्बन्धित होकर उसके द्वारा निर्धारित नीति से काम करती है। इससे अधिकारी रुष्ट रहते हैं। समय-समय पर परिषद के सभापति, उपसभापति, मंत्री, एवं अन्य कार्यकर्त्ताओं को कैद किया गया या बिना मुकदमा चलाये राज्य से निर्वासित किया गया।* बहुत से मकानों की तलाशी ली गयी। लोगों को सार्वजनिक रूप से स्वाधीनता-दिवस नहीं मनाने दिया जाता।

राज्य सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं पर तरह-तरह के प्रतिबंध लगाकर अथवा उनके मुकाबले में नकली संस्थाएँ खड़ी करके जन-आन्दोलन को दमन करने की आशा करता है, परन्तु इससे चाहे क्षणिक सफलता मिल जाय, परिस्थिति में विशेष सुधार नहीं होता। उसके लिए तो जनता की माँगे पूरी करना और उत्तरदायी शासनपद्धति जारी करना आवश्यक है।

* कई बार ऐसा भी हुआ है कि जिन व्यक्तियों को इस राज्य से निकाला गया, वे बंगाल और आसाम के निकटवर्ती ब्रिटिश भारतीय क्षेत्र से भी निकाले गये।

# तरेसठवाँ अध्याय

# आसाम के देशी राज्य

## [ मणिपुर और खासी राज्य ]

आसाम प्रान्त में मुख्य देशी राज्य मणिपुर है। इसका क्षेत्रफल ८,६३८ वर्गमील, जनसंख्या लगभग ५ लाख और औसत वार्षिक आय दस लाख रुपये है। इस राज्य का बहुत सा भाग पहाड़ी है। इसमें एकमात्र कस्बा इम्फल है।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त और उन्नीसवीं के प्रारम्भ में बर्मा वालों के इस राज्य पर आक्रमण होते रहे। उनसे बचने के लिए यह राज्य सन् १८२६ में अंगरेजों के आश्रित हो गया। सन् १८६० में जनता महाराजा सूरचन्द्रसिंह जी के विरुद्ध खड़ी हो गयी, महाराजा साहब राज्य छोड़कर चले आये। इनके छोटे भाई टकेन्द्रजीतसिंह ने सबसे छोटे भाई कुलचन्द्र धामसिंह को गद्दी पर बैठा दिया। सरकार ने नये महाराज को तो स्वीकार किया, परन्तु वह टकेन्द्रसिंह जैसे प्रभावशाली व्यक्ति को वहाँ नहीं रहने देना चाहती थी। आसाम का चीफ-कमिश्नर सेना लेकर मणिपुर गया; वह वहाँ मार डाला गया। लड़ाई छिड़ गयी। अन्ततः श्री० टकेन्द्रसिंह जी और कुलचन्द्र धामसिंह पकड़े गये; पहले को फांसी और दूसरे को आजन्म कालापानी दिया गया। राज्य जब्त घोषित किया गया,

परन्तु पीछे १८९१ में राजवंश के एक पाँच वर्ष के लड़के चूड़चन्द्र-सिंह को दिया गया।* नये शासक की नाबालिगी में पोलिटिकल एजन्ट ने सुपरिन्टेन्डेंट की हैसियत से शासन-प्रबन्ध किया।

महाराजा चूड़चन्द्रसिंह को, बालिग होने पर सन् १९०७ में नियमानुसार शासनाधिकार दिया गया। महाराज नरेन्द्रमंडल के सदस्य हैं। आप एडवाइज़री ( सलाहकार ) दरबार की सहायता से शासन करते हैं, जिसमें सभापति और उपसभापति के अतिरिक्त छः नामज़द सदस्य मणिपुर के होते हैं। शासन जनता के प्रति कुछ भी उत्तरदायी नहीं है।

ऐसे मामलों का फैसला करने के लिए, जिनमें दोनों पक्ष मणिपुरी हों, सर्वोच्च न्यायालय दरबार है, और उसके नीचे अधीन अदालतें हैं। महाराज को अन्तिम अपील और निगरानी के अधिकार हैं। जो मामले योरपियन ब्रिटिश प्रजा या अफसरों के या आसाम के सैनिकों के हों, उनके सम्बन्ध में दीवानी तथा फौजदारी के अधिकार पोलिटिकल एजन्ट को हैं; उसे पहाड़ी लोगों के उन मामलों में सेशन जज के अधिकार हैं, जो प्रेसीडेन्ट द्वारा उसके पास भेजे जायँ। प्रेसीडेन्ट को प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के अधिकार होते हैं। राज्य में

---

* इस घटना से कई महत्वपूर्ण बातें निकलती हैं। एक तो एक राज्य के शासन में हस्तक्षेप किया गया, दूसरे वह राज्य फिर लौटा दिया गया, और तीसरे ब्रिटिश गवर्मेंट की मर्यादा रखने के लिए उन लोगों को, जिनके द्वारा अंगरेज अफसरों की मृत्यु हुई थी, कालापानी और फांसी तक का दंड दिया गया, यद्यपि वे लोग स्वतंत्र थे।

—सम्पूर्णानन्द बी० एस-सी०

थाना एक ही है, और वह है इम्फल में। वहाँ ही राजकीय तथा प्राइवेट पाँच हाई स्कूल हैं।

राज्य की शासन-रिपोर्ट में कहा गया है कि राज्य में शिक्षा निश्शुल्क है, यद्यपि वह अनिवार्य नहीं है; मणिपुरी विद्यार्थियों को राज्य से बाहर उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्रवृति दी जाती है और बेगार प्रथा पूर्णतया बन्द कर दी गयी है। परन्तु अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद की स्थायी कमेटी ने सन् १६४० में देशी राज्यों का जो सिंहावलोकन किया है, उससे मालूम होता है कि राज्य के जमीन सम्बन्धी तथा अन्य कानूनों से जनता को बहुत असन्तोष है, उनके विरुद्ध आन्दोलन करने में स्त्रियों ने प्रमुख भाग लिया और उनसे पुलिस ने निर्दयता का व्यवहार किया।

× × ×

आसाम में, मणिपुर राज्य के अतिरिक्त १५ खासी राज्य हैं। इनका पृथक-पृथक क्षेत्रफल ज्ञात नहीं है, कुल मिलाकर वह लगभग ३,६०० वर्गमील है। सबकी जनसंख्या लगभग पौने दो लाख, और औसत वार्षिक आय लगभग दो लाख रुपये है। खिरीम और मिलीम इनमें बड़े राज्य हैं। सबसे छोटा राज्य मलेसोहमत है, इसकी जनसंख्या ४३३ और वार्षिक आय ६५० रु० है। खासी राज्यों के सम्बन्ध में 'भूगोल' के देशी-राज्य-अंक में लिखा है कि 'इन राज्यों में एक प्रकार का प्रजासत्तात्मक राज्य है। राजा चुना जाता है। वह अपने लोगों को बहुत कम छेड़ता है।'



# चौसठवाँ अध्याय

## उड़ीसा के राज्य

इन राज्यों की शासनपद्धति पितृ-प्रधान, स्वेच्छाचारपूर्ण और मध्यकालीन है। यहाँ के सामाजिक और धार्मिक व्यवहार उस युग की याद दिलाते हैं, जो इतिहास में विलीन हो गया है।

—उड़ीसा राज्य जाँच-कमेटी रिपोर्ट

उड़ीसा में पूर्वी राज्य एजन्सी की २६ रियासतें हैं। इनमें से तेईस उड़ीसा राज्य एजन्सी में, दो ( कलहंडी और पटना ) छत्तीसगढ़ राज्य एजन्सी में, और एक ( मयूरभंज ) बंगाल राज्य एजन्सी में है। उड़ीसा राज्य एजन्सी की रियासतों में ढेंकनाल, तालचेर, बामरा, बौध, गंगपुर, क्योंझर, नयागढ़, नीलगिरी, सरायकेला आदि मुख्य हैं। उड़ीसा के सब देशी राज्यों का क्षेत्रफल २८,४४४ वर्गमील, जनसंख्या ४६ लाख, और वार्षिक आय लगभग एक करोड़ रुपये है। इनके निवासी संस्कृति, रीति-रिवाज, रहन-सहन, धार्मिक विचार तथा भावनाओं आदि सब बातों में अपने पड़ोसी उड़ीसा प्रान्त वालों से मिलते हैं; केवल यहाँ का शासन भिन्न प्रकार से होता है।

इन राज्यों का शासन-प्रबन्ध ब्रिटिश भारत के इलाके से तो भिन्न प्रकार का है ही; अन्य देशी राज्यों से भी इस बात में समान नहीं है कि इनके शासक राजनैतिक अफसरों के प्रत्यक्ष परामर्श और पथप्रदर्शन

के अनुसार राजकाज करते हैं। इनके सम्बन्ध में यह बात स्मरण रखने की है कि ये सब राज्य मुगलों के समय में तथा नागपुर के भोंसलों के समय में, उड़ीसा के स्वतंत्र राजाओं के अधीन छोटी-छोटी ज़मीदारियाँ थीं। अंगरेजों के शासन-काल में भी लगभग ८० वर्ष तक इनसे जमीदारियों की तरह व्यवहार हुआ। सन् १८८३ में सब स्थानीय अधिकारियों तथा दो न्यायशास्त्रियों (सर हेनरीमेन, और अलन होबहाउस) के मत के विरुद्ध भारत-मंत्री ने, साम्राज्यिक नीति के आधार पर, इन जमीदारियों को ब्रिटिश भारत से बाहर, देशी राज्य घोषित किया। उस समय से इनके छोटे-छोटे राजाओं को अधिकाधिक अधिकार दिये जाते रहे हैं। सन् १९१० ई० तक इनपर जो कड़ा निरीक्षण रहता था, वह भी पीछे हटा दिया गया।

फरवरी १९३७ में वायसराय ने उडीसा के राजाओं को सनदें दी थीं, उनकी कुछ बातों में राजाओं की स्थिति के विचार से मामूली अन्तर है। साधारणतता सनदों की धाराएँ इस प्रकार हैं:—

१—आप प्रतिवर्ष ब्रिटिश सरकार को...रु० देंगे।

२—आपको दीवानी और फौजदारी के पूरे अधिकार होंगे; हाँ, मृत्यु-दंड पाने वालों को इस बात की सुविधा देनी होगी कि वे दया के लिए पूर्वी राज्यों के ए० जी० जी० से प्रार्थना कर सकें। अगर कभी वायसराय को आवश्यकता प्रतीत हुई तो वह पुनः ऐसा नियम कर सकता है कि मृत्यु-दंड ए० जी० जी० द्वारा स्वीकृत हो।

३—आप राज्य के अन्दर सब जुर्मों को दमन करने की भरसक कोशिश करेंगे।

४—आप सब के साथ समान रूप से उचित और निष्पक्ष न्याय करेंगे।

५—आप अपनी सारी प्रजा के स्वार्थों को स्वीकार करेंगे और उनकी रक्षा करेंगे, और उन्हें न सतायेंगे, और न सताये जाने देंगे, और विशेषतया अपने राज्य के आदिम निवासियों की भलाई का स्वयं ध्यान रखेंगे।

६—पूर्वी राज्यों के ए० जी० जी० या ऐसे ही किसी अन्य राजनैतिक अधिकारी द्वारा आप को जो सलाह दी जायगी, उसके अनुसार ही आप काम करेंगे।

इन राज्यों की बहुत सी जनता आदिम निवासियों की है। शासन-पद्धति मध्यकालीन और स्वेच्छाचारमूलक है। यहाँ ब्रिटिश भारत की अपेक्षा लगान का परिमाण बहुत अधिक है, और वह बढ़ता ही जाता है। जनता पर कर लगाने में किसी सिद्धान्त का विचार नहीं रखा जाता। विवाह कर, शिक्षा कर, श्राद्ध कर, जंगल कर, दत्तक कर आदि अनेक कर हैं। राजा लोग प्रायः राज्य की आय का आधा हिस्सा तो अपने लिए तथा अपने परिवार के लिए ही खर्च कर देते हैं।

बजट में जो रकम उनके खर्च की दिखायी जाती है, उसके अतिरिक्त अन्य मदों के खर्च का भी काफी हिस्सा उनके ही उपयोग में आता है। उदाहरणार्थ नीलगिरी राज्य की बात लीजिए। वार्षिक आय डेढ़ लाख में से ५० हजार तो स्पष्ट रूप से राजा और राजपरिवार के लिए हैं ही। इसके अतिरिक्त जंगल की मद में राजमहल के बगीचे और मवेशियों का खर्च सम्मिलित है; सार्वजनिक निर्माण कार्य में महल की बिजली और थियेटर आदि का खर्च, शिक्षा में छोटी रानी के सम्बन्धियों की शिक्षा का खर्च, चिकित्सा की मद में महल के डाक्टर, दाई, औषधि आदि का खर्च, पशु-चिकित्सा में महल के अस्तबल का खर्च, पुलिस की मद में महल के नौकरों और बैंड-बाजे का खर्च, अतिथि-सत्कार की मद में

रानी के सम्बन्धियों का खर्च भी शामिल किया जाता है। यह सब खर्च पूर्वोक्त ५०,०००) रु० सहित राज्य की आय के आधे से अधिक हो जाता है। जो बात नीलगिरी के सम्बन्ध में कही गयी है, वह बहुत-कुछ अन्य राज्यों के विषय में भी चरितार्थ होती है। इस दशा में जनहितकारी कार्यों के लिए रुपये की हरदम कमी रहना स्वाभाविक ही है।

अधिकांश राज्यों में जनता द्वारा संचालित म्युनिसपैलटियाँ या लोकल बोर्ड नहीं है। अस्पताल या शफाखाने और स्कूल बहुत कम तथा दूर-दूर हैं। इन संस्थाओं के कर्मचारी प्रायः शासकों के कृपा-पात्र होते हैं, और उनकी नौकरी या वेतनवृद्धि आदि राजा साहब की इच्छा पर निर्भर होती है। जजों के विषय में भी यही बात है। उनमें प्रायः अपने उत्तरादित्वपूर्ण कार्य के लिए यथेष्ट योग्यता नहीं होती। वे बहुधा स्वतंत्र प्रकृति के भी नहीं होते। उनके द्वारा किये हुए फैसलों में जनता को विश्वास ही कैसे हो सकता है! कानून ठीक ढङ्ग से बनाये हुए, और छपे हुए नहीं होते। सर्वसाधारण को उन्हें जानने की सुविधा नहीं होती।

इन राज्यों में नागरिक स्वतंत्रता का प्रायः अभाव ही है। लोगों को बहुधा सभा-सम्मेलन, लेखन, प्रकाशन आदि की अनुमति नहीं होती। कई राज्यों में इस समय भी प्रजामंडल गैर-कानूनी घोषित किये हुए हैं। बिना मुकदमा चलाये गिरफ़ारी, देश निकाला, और माल की जब्ती प्रायः होती रहती है। राजकर्मचारियों द्वारा पुरुषों एवं स्त्रियों का पीटा जाना, सताया जाना और बेइज्जत किया जाना यहाँ कोई अनहोनी बात नहीं है।

जब राजा या अमला (राजकर्मचारी) दौरे पर जाते हैं तो किसानों

को उनके लिए बहुत आर्थिक भार सहना पड़ता है। जब राजपरिवार में कोई विवाह होता है तो लगान के अनुपात से फी रुपये पर तीन-चार आने के हिसाब से 'मागन' और वसूल किया जाता है। 'वेठी' ( बेगार ) यहाँ खूब प्रचलित है।* 'वेठी' से बनी हुई सड़कों पर किसानों को अपनी गाड़ियाँ चलाने की अनुमति नहीं होती, वे सड़कें तो राजा साहब की मोटर आदि के लिए सुरक्षित रहती हैं। तेल, नमक या पान आदि जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक वस्तुएँ भी लाइसेन्स बिना नहीं बेचने दी जातीं। लोगों को जंगली जानवर मारने या जख्मी करने की इजाज़त नहीं है, चाहे उनसे फसल की कितनी ही हानि क्यों न हो, अगर कोई व्यक्ति इस 'नियम' को भंग करे तो उस पर भारी जुरमाना होता है।

ऐसी परिस्थिति में जनता में असन्तोष होना स्वाभाविक ही था। समय-समय पर विविध राज्यों की जनता ने अपनी आर्थिक तथा राजनैतिक शिकायतों को दूर करने का प्रयत्न किया। अन्ततः सन् १९३१ में उड़ीसा के राज्यों की लोकपरिषद ( 'पीपल्स कान्फ्रेंस' ) की स्थापना हुई। इसका दूसरा अधिवेशन डा० पट्टाभि सीतारामैया की अध्यक्षता में, सन् १९३७ में हुआ। इस अवसर पर एक कमेटी नियुक्त हुई; आवश्यकता होने से अगले वर्ष इसका पुनर्निर्माण किया गया। इसके संयोजक श्री० सारंगधरदास ( मंत्री, उड़ीसा-राज्य-प्रजापरिषद ) नियुक्त किये गये। कमेटी का कार्य

* यद्यपि कुछ राज्यों में इस प्रथा को उठा दिये जाने की घोषणा हो चुकी है पर यह घोषणा केवल कागज पर बनी है; व्यवहार में इससे विशेष अन्तर नहीं आया।

उड़ीसा के राज्यों की विविध अनियमितताओं, ज्यादतियों और दमन-कार्यों की जाँच करना था। उसने भिन्न-भिन्न स्थानों में मीटिंग की, और दो हजार गवाहों के बयान लिये। उसने एक प्रश्नावली बनाकर उड़ीसा के सब राज्यों में भेजी, और कुछ समय बाद दूसरी प्रश्नावली इस विषय में विशेष दिलचस्पी लेनेवाले व्यक्तियों और संस्थाओं के पास भेजी। कमेटी राजाओं और राजकर्मचारियों का भी सहयोग प्राप्त करना चाहती थी, पर वह इसे न मिल सका। कई राज्यों, विशेष-तया ढेंकनाल के गुप्तचर कमेटी के पीछे लग गये, यद्यपि कमेटी अपना कार्य उड़ीसा प्रान्त में कर रही थी। ढेंकनाल के भूतपूर्व सुपरिंटेन्डेंट श्री० वृन्दावन लाल कमेटी की सहायता के लिए आये। इन्होंने अपने सम्बन्ध में राज्य के दुर्व्यवहार और पोलिटिकल अफसरों की उपेक्षा के विषय में मार्मिक बयान दिये। परन्तु ६ अगस्त १९३८ को ये ढेंकनाल और क्योंझर राज्य सम्बन्धी कागज़ात को लेकर गायब हो गये। क्योंझर राज्य के कुछ व्यक्तियों ने कमेटी के सामने गवाही दी थी, वे इन कागज़ात के गुम हो जाने पर कैद कर दिये गये।

कमेटी के मार्ग में अनेक बाधाएँ उपस्थित की गयीं तथापि उसने धैर्यपूर्वक अपना कार्य जारी रखा। अन्ततः उसने जुलाई १९३९ में अनेक ज्ञातव्य बातों से पूर्ण रिपोर्ट * उपस्थित की। बहुत-कुछ उसके ही आधार पर हमने इस पुस्तक में उड़ीसा के राज्यों के विषय में लिखा है।

* Enquiry Committee Report; Orissa States: 1939.

# पैंसठवाँ अध्याय

## तालचेर

यह वह राज्य है, जिसकी आबादी में से एक-तिहाई, अर्थात् सत्तर हजार में से लगभग पच्चीस हजार आदमी औरतें और बच्चे, यहाँ की असह्य ज्यादतियों के कारण अपना घरबार छोड़कर राज्य से निकल गये थे।

उड़ीसा के इस राज्य का क्षेत्रफल ३९९ वर्गमील, जनसंख्या सत्तर हजार, और औसत वार्षिक आय तीन लाख रुपये है। राजवंश क्षत्रीय है, परिवार की उपाधि 'वीरवर हरिचन्दन' है। राजा किशोर-चन्द्र जी सन् १८९१ में गद्दी पर बैठे जब कि वे ग्यारह वर्ष के थे। इन्हें शासनाधिकार दिये जाने तक नाबालगी शासन रहा।

शासन जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं है, उसमें राजपरिवार का पूरा हस्तक्षेप है। सब ऊँचे-ऊँचे पदों पर राजा साहब के भाई या लड़कों का अधिकार है। युवराज, राजा साहब का बड़ा लड़का सेशनजज है। पट्टायत साहब, शासक का सब से छोटा लड़का स्टेट-मजिस्ट्रेट, सब विभागों का कंटरोलिंग अफसर, और माल-अफसर है। शासक का एक भाई असिस्टेंट माल-अफसर है, और दो अन्य भाई तहसील-दार हैं, चौथा भाई आबकारी-अफसर है, और पाँचवाँ भाई जंगल-अफसर है।

इन पदाधिकारियों की योग्यता का यह हाल है कि युवराज (सेशन-जज) अंडर-ग्रेजुएट अर्थात् एफ़० ए० पास है; पट्टायत साहब (मजिस्ट्रेट आदि) अंडर-मेट्रिक हैं, अर्थात् एंट्रेंस क्लास भी पास नहीं हैं, और अन्य व्यक्ति मुश्किल से अंगरेजी मिडल तक पढ़े हैं। ऐसी योग्यता वाले कानून का अर्थ कहाँ तक समझते, और उसे ठीक अमल में लाते होंगे, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। सरकारी जाँच में, लोगों से कोई बात स्वीकार कराने के लिए मुख्य उपाय उन्हें पीटना है। उड़ीसा राज्य जाँच कमेटी को मिली हुई साक्षी से पता लगता है कि शासक के पास डोम जाति के कुछ नौकर रहते हैं, उनका काम ऐसे लोगों को पीटना है, जो कठिनाई से वश में आते हों।

राज्य के कानून और नियम 'तालचेर स्टेट मेनुअल' पुस्तक में संकलित समझे जाते हैं, पर यह केवल राजनैतिक विभाग को दिखाने के लिए होती है। राज्य या अधिकारियों के व्यवहार का इससे पता नहीं चलता; लोगों से लिये जानेवाले अनेक करों तथा बेगार आदि का इसमें कोई उल्लेख नहीं है।

सन् १९३९ में यहाँ एक व्यवस्थापक सभा बनायी गयी, उसमें २० सदस्य रखे गये—१० निर्वाचित और १० नामजद। इसके संगठन का आधार साम्प्रदायिक रखा गया। जनता ने इसका इसलिए विरोध किया कि सभा को कोई वास्तविक अधिकार नहीं दिया गया। प्रजा-मंडल ने इसके बहिष्कार का निश्चय किया। मई १९४१ में प्रजा-मंडल ने दरबार से निवेदन किया कि जनता की वास्तविक शिकायतें दूर की जायँ, पूर्व इसके कि वे ६ जून को मनायी जानेवाली राजा

साहब की स्वर्ण जयन्ती में भाग लें। राज्य ने उनकी माँग पर ध्यान नहीं दिया, फल-स्वरूप जनता ने असहयोग किया।

राज्य भर में एक अंगरेजी हाई स्कूल, एक संस्कृत 'टोल' तथा कुछ पाठशालाएँ हैं। इनकी फीस से, इनके खर्च की अपेक्षा अधिक द्रव्य प्राप्त किया जाता है। इनकी इमारतों की मरम्मत बेगार में करायी जाती है। राज्य में केवल एक अस्पताल है—राजधानी में। छूत की बीमारियों के निवारण या चिकित्सा की कोई व्यवस्था नहीं है।

जनता को भाषण, लेखन, प्रकाशन आदि की कोई स्वतंत्रता नहीं है। राज्य लोगों के सामाजिक विषयों में भी हस्तक्षेप करता है, जिसका उद्देश्य शासक की व्यक्तिगत आय की वृद्धि है, और जिसके फल-स्वरूप राज्य में कोई समाज-सुधार का कार्य नहीं हो सकता। विवाह या मृत्यु सम्बन्धी संस्कार अधिकारियों की अनुमति बिना नहीं किया जा सकता; और अनुमति कभी-कभी नहीं भी दी जाती। पाठकों को जानकर आश्चर्य होगा कि निम्नलिखित विषयों के लिए फीस निर्धारित की हुई है—

विवाह या पुनर्विवाह फीस ( वधु चार आने, वर छः आने )।
विधवा विवाह फीस ( वधु ढाई रुपये, वर तीन रुपये )।
बाल विवाह अनुमति फीस ( साढ़े पाँच आने )।
यज्ञोपवीत संस्कार फीस ( दो आने )
श्राद्ध फीस ( चार आने )।
गाय मारने का प्रायश्चित्त ( पाँच रुपये )।

राज्य में लगान की दर इससे मिले हुए ब्रिटिश भारत के जिले की अपेक्षा बहुत अधिक है। उड़ीसा प्रान्त भर में कहीं भी 'तालचेर

जितना लगान नहीं लिया जाता। इसके अतिरिक्त जनता से नाना प्रकार के अन्य कर भी वसूल किये जाते हैं। मागन, बेठी आदि के विषय में पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है।

सन् १९१२ से यहाँ के नागरिक अनुचित कर-भार, बेगार और अन्य ज्यादतियों के विरुद्ध आन्दोलन कर रहे हैं। उन्होंने शासक का तथा पोलिटिकल एजंट का ध्यान इस ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया। पोलिटिकल एजंट ने उनकी दरखास्तें हर बार राजा साहब के पास लौटा दीं, और दरखास्त देने का साहस करनेवालों को कठोर दण्ड भुगतना पड़ा। सन् १९३८ में इस राज्य के आदमियों ने राजा साहब के सामने अपनी विशेषतया कर सम्बन्धी शिकायतें रखीं, पर दरबार ने उन पर विचार करने के बजाय प्रजामंडल को गैर-कानूनी घोषित कर दिया, और दमनकारी कानून जारी कर दिये। अन्ततः लोगों ने सत्याग्रह किया। इसके फल-स्वरूप जो व्यक्ति खुशी-खुशी कैद हुए, उन्हें जेल में बुरी तरह पीटा गया। कुछ लोगों के हाथ पर, तथा कुछ के चूतड़ों पर गरम लोहे से 'नमकहराम' शब्द दागा गया। 'बेठी' से इनकार करने पर कुछ लोगों पर खूब मार पड़ी, और कुछ लोगों के घर जला दिये गये। एक अवसर पर गोली चलायी गयी, जिससे दो व्यक्ति अपनी जान से हाथ धो बैठे। स्थिति असह्य हो गयी। अहिंसात्मक आदोन्लन के लिए कोई गुंजायश न रही। सम्भव था, आदमी सशस्त्र विद्रोह की बात सोचते, परन्तु राजा साहब की सहायता के लिए ब्रिटिश सेना तैयार थी।

अन्ततः राज्य के लगभग पच्चीस हजार आदमी, औरतें और

बच्चे अपने घर-बार को छोड़ कर राज्य से निकल पड़े। उन्होंने उड़ीसा प्रान्त के अन्तर्गत आँगुल के जंगल में शरण ली। उड़ीसा की तत्कालीन (कांग्रेस) सरकार तथा मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी ने यथा-सम्भव उनकी सहायता की, तथापि उनके कष्टों का अन्त न था। यह घटना कोई ऐसी वैसी नहीं थी। दूर-दूर तक इसका शोर मचा। राजनैतिक विभाग में कुछ हलचल हुई, रेजीडेन्ट और पोलिटिकल एजन्ट ने कई बार इस विषय में विचार किया, पर कुछ फल न निकला। उड़ीसा-सरकार ने तथा वहाँ के प्रधानमंत्री ने इस विषय को वायसराय के सामने उपस्थित किया। ता० ६ और १० मार्च १९३९ को मेजर हेनेसी शरणार्थियों के पास गये, और २१ मार्च १९३९ को यह समझौता हुआ:—

१—विविध करों में लगान के प्रति रुपये पीछे २ आने से लेकर तीन आने तक की कमी होगी, और यह आश्वासन दिया जायगा कि बन्दोबस्त के बाद जो कि आगामी नवम्बर के आस-पास शुरू हो जायगा, लगान और दूसरे करों का सम्मिलित योग उससे ज्यादह नहीं होगा, जितना कि आंगुल (उड़ीसा प्रान्त) में उसी तरह की जमीनों पर लिया जाता है।

२—घास, चमड़ा, सींग, गांजा, अफीम, भंग, शराब को छोड़कर दैनिक जीवन के लिए आवश्यक सभी चीजों पर से एकाधिकार उठा दिया जायगा।

३—धार्मिक न्यायालयों और (जातीय) पंचायतों द्वारा किये गये जुरमानों की वसूली के लिए राज्य के शासन-यंत्र का उपयोग न किया जायगा।

४—'वेठी' उठा दी जायगी। वह केवल सार्वजनिक कार्यों के लिए, आवश्यक होने पर ही, ली जायगी, परन्तु उसके लिए भी साधारण दर के हिसाब से मजूरी दी जायगी।

५—उद्योग-धंधा करनेवाली जातियों पर लगे हुए विशेष कर उठा लिये जायँगे।

६—शरणागतों के साथ, उनके राज्य में वापिस लौटने पर कोई सख्ती नहीं की जायगी।

७—राजनैतिक विभाग द्वारा योजना स्वीकृत होते ही ऐसे वैधानिक सुधार अमल में लाये जायँगे, जिनसे प्रजा अपने प्रतिनिधियों द्वारा शासन प्रबन्ध में भाग ले सकेगी।

८—सभा और भाषण की स्वतंत्रता में कोई हस्तक्षेप नहीं होगा, बशर्ते कि सभा या भाषण में कोई आपत्तिजनक या राजद्रोहात्मक बात न कही जाय।

९—राज्य में लोगों को अपनी जमीन जायदाद के अन्दर जंगली जानवरों को मारने की अनुमति रहेगी, और इसके लिए कोई फीस नहीं ली जायगी, और न कोई जुरमाना किया जायगा।

इस प्रसंग में म० गांधी ने २२ अप्रैल के 'हरिजन' में लिखा कि 'मुझे ठक्कर बापा से मालूम हुआ कि मेजर हेनेसी को इस बात का पूरा विश्वास था कि उन्हें तालचेर के राजा साहब की ओर से समझौते पर दस्तखत करने का अधिकार था। अब राजा साहब इसको मानने से कैसे इनकार कर सकते हैं, यह समझना मुश्किल है। मगर जिस सनद के अनुसार राजा को तालचेर रियासत मिली हुई है, उसकी शर्तों से यह रहस्य और भी बढ़ जाता है।* इस सनद की छठी

* इस सनद की धाराएँ पिछले अध्याय में दी गयी हैं।

धारा के मातहत राजा उस सलाह के अनुसार काम करने के लिए बाध्य है, जो ए० जी० जी० या ऐसे किसी ब्रिटिश अधिकारी के द्वारा उसे दी जाय, जिसे कि वायसराय की ओर से इस तरह का अधिकार प्राप्त हो। इसलिए राजा साहब के लिए इसके सिवाय कोई चारा ही नहीं है कि वे असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजन्ट की इच्छानुसार कारवाई करें। अब सवाल यह है कि समझौते के अमल में आने में इतनी देर क्यों हो रही है। यह बीस हजार से अधिक शरणागतों के हितों का सवाल है, जिन्हें खाना तक बहुत कठिनाई से मिल रहा है, और जो प्रायः बिना आश्रय के पड़े हुए हैं। यह देरी तो न केवल खतरनाक है, वरन् दंडनीय भी है।'

# छियासठवाँ अध्याय

## हिंडोल

इस राज्य का क्षेत्रफल ३१२ वर्गमील, जनसंख्या पचास हजार, और औसत वार्षिक आय एक लाख चौतीस हजार रुपये है। राजा नवकिशोरचन्द्र सन् १९०६ में गद्दी पर बैठे, उस समय ये नाबालिग थे, अतः राजप्रबन्ध सरकार की ओर से हुआ। सन् १९१३ में बालिग होने पर इन्हें शासनाधिकार मिला। शासन-कार्य दो मेम्बरों की एक कौंसिल से होता है, जिसके सभापति राजा साहब ही हैं।

सितम्बर १६३८ और जनवरी १६३६ में यहाँ जिन सुधारों की घोषणा हुई, उनका उल्लेख आगे किया जायगा। उससे पूर्व इस राज्य की स्थिति उड़ीसा के अन्य राज्यों से मिलती जुलती ही थी। शासन में जनता के प्रतिनिधियों का कोई सहयोग न था। अपील सुनने के सर्वोच्च अधिकारी राजा साहब ही थे, और उनके द्वारा भी न्याय प्राप्त करने में जनता को विश्वास नहीं था। नीचे की अदालतों के फैसलों की अपील करना खतरे से खाली न था।* इससे राज्य की न्याय-सम्बन्धी स्थिति का सहज ही अनुमान हो सकता है। शिक्षा की बात यह है कि राज्य भर में कोई हाई स्कूल नहीं; मिडल स्कूल भी एक ही है, अन्य शिक्षा-संस्थाएँ प्राइमरी पाठशालाएँ हैं। राज्य में अस्पताल केवल एक है। बहुत से आदमियों को महामारियों के समय भी दवा-दारू नहीं मिल पाती। राज्य सामाजिक विषयों में हस्तक्षेप करता है। जाति बिरादरी के नियम चाहे जितने निन्दनीय हों, उनके पालन न करने वालों पर धर्म-कोर्ट जुरमाना करता है तो अधिकारी उसके निर्णय को अमल में लाने में सहायक होते हैं।

राजकीय अनुमति प्राप्त किये बिना आदमी फसल को नुकसान पहुँचाने वाले जंगली जानवरों को नहीं मार सकते और अनुमति प्राप्त करने के लिए तीन रुपये फीस देनी होती है, और पीछे जब कोई पशु मारा जाता है, तो उसके लिए अलग फीस देनी पड़ती है; हिरण

---

* दयानिधि धाल नामक एक व्यक्ति से कहा गया था कि तुमने नीचे की अदालत के फैसले की अपील की है, इसलिए तुम पर अदालत की मानहानि के अभियोग की कार्यवाही क्यों न की जाय!

के दो रुपये, सांबर के चार रुपये इत्यादि। अन्य करों की अधिकता और 'मागन', रसद और एकाधिकार की ज्यादतियाँ यहाँ पहले उड़ीसा के अन्य राज्यों के समान ही थीं। राजा साहब ने मई १९३६ की घोषणा में संसार की प्रगति तथा चहुंओर शिक्षा और सभ्यता के प्रचार का उल्लेख करके 'बेठी' ( बेगार ) बन्द करने और उसकी जगह लगान में फी रुपया तीन आने के हिसाब से शुल्क लिये जाने की सूचना की; पर साथ में यह भी कह दिया कि महल में होनेवाले उत्सव, तथा शिकार आदि के अवसर पर लोगों को मुफ़्त में काम करते रहना चाहिए। बस, व्यवहार में बेठी भी प्रचलित रही, और शुल्क भी वसूल किया जाने लगा। हाथी पकड़ने के समय आदमी काम करने के लिए बाध्य किये जाते हैं। उन्हें कोई मजदूरी नहीं मिलती, और भोजन भी अपने पास से ही करना होता है।

सन् १९३८ और १९३६ की घोषणाओं में निम्नलिखित बातें विशेष उल्लेखनीय हैं:—

(१) सभा समिति करने का अधिकार। (२) 'रसद' उठा देना। (३) मिट्टी का तेल, पान, और कोल्हू की लाइसेन्स फीस हटा देना। (४) 'बेठी' उठा देना। (५) फसल को नुकसान पहुँचाने वाले जंगली जानवरों को मारने का लाइसेन्स बिना फीस दिया जाना। (६) बकाया लगान पर सूद २५ फीसदी से घटा कर साढ़े बारह फीसदी करना। (७) खेती की पैदावार का निःशुल्क निर्यात और बिक्री। (८) पशुओं की चराई माफ होना। (९) काश्तकारी और जंगल के नियमों में कुछ सुधार। (१०) शासन-सुधार। एक प्रजापरिषद् संगठित की जाय, जिसमें जनता के प्रतिनिधि बालिग मताधिकार के आधार पर चुने जायँ, और दरबार द्वारा नामजद सदस्य कुल सदस्यों के आधे से अधिक न हों;

सभापति दरबार द्वारा नियुक्त हो। इस परिषद को बजट की सीमा में रहते हुए प्रारम्भिक शिक्षा, आबपाशी, ग्राम-यातायात, और स्वास्थ्य की व्यवस्था करने का अधिकार हो। प्रजापरिषद के सहमत हुए बिना कोई नया कर न लगाया जाय। परिषद राजकर्मचारियों के विरुद्ध उपस्थित की जाने वाली शिकायतों पर भी विचार करे।

समय के तकाजे को देखते हुए ये घोषणाएँ, बहुत अपर्याप्त हैं, परन्तु इनकी भी सब बातें अमल में आने का निश्चय नहीं है। उड़ीसा के राज्यों में हिंडोल अपेक्षाकृत उन्नत माना जाता है। वहां कई बहुत ही साधारण बातों की घोषणा की गयी, इससे उन अन्य राज्यों की स्थिति का अच्छा अनुमान हो सकता है, जो इतने भी उन्नत नहीं हैं।

---

# सरसठवां अध्याय

## उड़ीसा के कुछ अन्य देशी राज्य

### [ ढेंकनाल, रानपुर, और मयूरभंज ]

उड़ीसा की देशी रियासतों की शासकों की मध्यकालीन बर्बरता एवं नृशंसता की रक्तरंजित कहानियों से समस्त देश की मानवता कांप उठी है।

—कर्मयोगी

### ढेंकनाल

इस राज्य का क्षेत्रफल १४३६ वर्गमील, जनसंख्या लगभग तीन लाख, और औसत वार्षिक आय साढ़े पांच लाख रुपये है। राजा

शंकर-तापसिंह देव की नाबालिगी के कारण, सन् १९१८ से १९२५ तक यहाँ का राजप्रबन्ध सरकार ने किया, सन् १९२५ में राजा साहब को शासनाधिकार मिला।

सन् १९३६ में राजा साहब ने एक प्रबन्धकारिणी कौंसिल की घोषणा की, इसके सभापति वे स्वयं ही हुए; उनका छोटा भाई उप-सभापति, दूसरा भाई होम मेम्बर, और एक अन्य सज्जन जुडीशल मेम्बर नियुक्त किया गया। पीछे २८ नामजद सदस्यों की एक सलाहकार सभा बनायी गयी। पर ये दोनों ही संस्थाएँ नाममात्र की हैं। सब सत्ता शासक में केन्द्रित है, वह चाहे-जिस कानून को बनवा सकता है, और चाहे-जिसको रद्द करवा सकता है। वह चाहे-जिस अधिकारी को नियुक्त या बरखास्त कर सकता है। वह मनचाहा टेक्स लगा सकता है। शासन सम्बन्धी किसी विषय के नियम या सिद्धान्त निर्धारित नहीं हैं।

न्याय-कार्य के लिए हाईकोर्ट-स्थापना की घोषणा हुए छः वर्ष हो गये, अभी तक वह स्थापित नहीं हुआ। पहले राज्य में एक मुंसिफ और एक जज था। पीछे मुंसिफ को चीफ-जज बना दिया गया। आदमी, बिना वारंट, केवल संदेह के आधार पर भी गिरफ़्तार कर लिये जाते हैं, और दीर्घकाल तक हवालात में रखे जाते हैं।

यहाँ नागरिक स्वतंत्रता का अभाव है। सार्वजनिक सभाएँ नहीं होने दी जातीं। प्रजामंडल पर प्रतिबन्ध है। उड़िया भाषा में प्रकाशित समाचारपत्रों के यहाँ आने पर रोक है, और क्योंकि अंगरेज़ी तो इनेगिने व्यक्ति ही जानते हैं, सर्वसाधारण समाचारपत्रों के पढ़ने

से वंचित रह जाते हैं। राज्य में स्त्रियों पर बलात्कार आदि की घटनाएँ बहुत होती हैं, और बहुधा पुलिस और अन्य अधिकारी भी इस विषय में दोषी होते है। उड़ीसा राज्य जाँच कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में इस सम्बन्ध में कई व्यक्तियों की साक्षी उपस्थित की है। इस कमेटी के इस राज्य सम्बन्धी जाँच के काग़जात चोरी किये जाने की बात पहले कही जा चुकी है। लगान और करों आदि की अधिकता, एकाधिकार की ज्यादतियाँ, वेठो, वेगार आदि के अत्याचार तालचेर राज्य की तरह हैं।

राज्य ने जनता को सुविधाएँ दी हैं तथा कुछ कर्मचारियों को, जिनके विरुद्ध सन् १९३१ से गम्भीर शिकायतें थीं, बरखास्त किया है। परन्तु वह पर्याप्त नहीं, शासन-व्यवस्था बहुत असंतोष बनी हुई है।

## रानपुर

इस राज्य का क्षेत्रफल २०३ वर्गमील, जनसंख्या लगभग अड़तालीस हजार, और औसत वार्षिक आय इकहत्तर हजार रुपये है। राजा बीरवर कृष्णचन्द्रसिंह सन् १८९९ से चालीस वर्ष तक गद्दी पर रहे।

राजा साहब शासन-कार्य में बहुत कम मन लगाते थे। सब अधिकारों का उपयोग दीवान करता था, जिनके व्यवहार के विरुद्ध उड़ीसा राज्य जाँच कमेटी को अनेक प्रमाण मिले हैं। रिश्वत का बाजार खूब गर्म है। न्याय उन आदमियों को बेचा जाता है, जो उसके अधिक दाम लगाते हैं। कई मध्यकालीन प्रथाओं का चलन है। बहुत से आदमियों को विवाह-शादी के अवसर पर पालकी के उपयोग का अधिकार नहीं है। यहाँ २७ प्रकार की 'वेठी' प्रचलित है।

निर्धन किसानों को प्रायः साल में पाँच महीने बिना मज़दूरी काम करना पड़ता है। राज्य में समाचारपत्रों का आना निषिद्ध है। पाँच या अधिक आदमियों की सभा करना जुर्म ठहराया जाता है। तथापि समय के प्रवाह से यहाँ प्रजामंडल की स्थापना हुई और उसने राजा साहब के सामने अपनी माँगें उपस्थित कीं। दो-तीन अवसरों पर गिरफ़्तारियाँ हुईं, परन्तु पीछे नेताओं को मुक्त कर दिया गया। १९३८ में कुछ नियमों में सुधार की सूचना दी गयी। परन्तु नागरिक स्वतंत्रता या उत्तरदायी शासन की कोई बात नहीं कही गयी।

सन् १९३९ में यहाँ पोलिटिकल एजन्ट की हत्या की गयी। इसकी चहुंओर निन्दा हुई। इस दुखदायी कांड का रहस्य समझने के लिए यहाँ की पृष्ठ भूमि ध्यान में रखना आवश्यक है। जब लोगों को शासन की ओर से तरह-तरह के कष्ट और अपमान मिलते हैं, उन्हें वैधानिक आन्दोलन करने की अनुमति नहीं होती, तो वे बहुत समय तक संयम से काम नहीं ले सकते। 'अगर एजन्ट ने उड़ीसा के देशी राज्यों को उचित सलाह दी होती, और भयंकर दमन में खुद हिस्सा न लिया होता तो लोग काबू से बाहर न होते।'

उपर्युक्त दुर्घटना के बाद असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजन्ट ने ढेंकनाल के एक राजकर्मचारी को दीवान नियुक्त कर दिया। राजा साहब के अधिकार कम कर दिये गये। उक्त कांड सम्बन्धी विविध मुकदमों में लगभग सत्तर हजार रुपये खर्च हो गये। राज्य की आर्थिक स्थिति खराब हो गयी। ऋण लेना आवश्यक हो गया। इस विषय में राजा, और (सरकार के) राजनैतिक विभाग में मतभेद होने पर राजा

साहब ने वायसराय के पास अपील करने की धमकी दी, पर उन्हें तुरन्त ही यह सूचना मिल गयी कि सम्राट्-प्रतिनिधि ने उनको पहले ही अधिकार-हीन कर दिया है। गत वर्षों में समय-समय पर राजनैतिक विभाग के पास जनता की शिकायतें पहुँची, पर उसका उत्तर अब से पहले तक यही रहा कि राज्य के आन्तरिक शासन में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। अब उसने स्वयं ही हस्तक्षेप किया और चालीस वर्ष के बाद राजा साहब के कुशासन का अन्त हुआ।

## मयूरभंज

इस राज्य का क्षेत्रफल ४२४३ वर्गमील, जनसंख्या नौ लाख, और औसत वार्षिक आय साढ़े तेतीस लाख रुपये हैं। राजवंश क्षत्रीय है। श्री महाराजा प्रतापचन्द्र भंजदेव सन् १६२८ ई० में गद्दी पर बैठे।

यह राज्य बंगाल के कूचविहार और त्रिपुरा राज्य सहित बंगाल राज्य एजन्सी में है। यह उड़ीसा का सब से बड़ा राज्य है, और इसकी आय भी उनमें सब से अधिक है। यहाँ महाराजा श्रीरामचन्द्र भंजदेव (१८८२-१६१२) के समय में अच्छी उन्नति हुई। उन्होंने राजप्रबन्ध के लिए एक कौंसिल की भी स्थापना की थी। उनकी नीति कुछ उदार थी। परन्तु उनके पीछे वह बात नहीं रही। अब शासन-कार्य राजासाहब की व्यक्तिगत इच्छा के अनुसार होता है। वह बहुत खर्चीला है। इससे जनता के कष्ट बहुत बढ़े हुए हैं। राजा साहब चाहे-जिस विभाग को अपने हाथ में ले लेते हैं। पिछले दिनों उन्होंने आय-व्यय-परीक्षा विभाग को ही अपने अधीन कर लिया था।

उड़ीसा के राज्यों में, यहाँ कुछ कानून का राज्य कहा जा सकता

है। परन्तु यहाँ भी थोड़े समय से ही लोगों को सभा करने या राजनैतिक संस्थाएँ स्थापित करने की स्वतंत्रता है। एक प्रतिनिधिमूलक सभा बनायी गयी है, परन्तु इसे शासन या बजट को नियंत्रण करने का अधिकार नहीं है।

यहाँ लगभग तीन-चौथायी जनता आदिम निवासी है। इनमें शिक्षा का प्रचार नहीं, इनके दवादारू का राज्य की ओर से कोई प्रबन्ध नहीं। इनकी कड़ी मेहनत से शेष एक-चौथायी जनता और राज्य का हित होता है। फिर भी इन्हें आवश्यक भोजन-वस्त्र की कमी हो रहती है। ये राज्य की सख्तियों की शिकायत करना भी नहीं जानते। पर इस स्थिति से अधिकारियों को संतुष्ट या निश्चिन्त नहीं रहना चाहिए। ऐसे आदमी जब तक समाज या राज्य का विरोध नहीं करते, तब तक नहीं करते, पर जब एक बार ये लोग विरोध पर कमर कस लेते हैं, इन्हें संभालना कठिन हो जाता है। पुनः मानवता की दृष्टि से भी आदिम निवासियों के उद्धार का प्रयत्न किया जाना आवश्यक है।

# अड़सठवाँ अध्याय

## मध्यप्रान्त के देशी राज्य

राजाओं में से प्रत्येक आज संसार से हिटलरशाही का नाश करने के लिए प्रयत्नशील है, मगर हिटलरशाही का नाश करनेवाले ये नरेन्द्र अपने राज्यों में फैली हुई हिटलरशाही नहीं मिटाते।

—ब्रिजलाल बियाणी

मध्यप्रान्त में निम्नलिखित देशी राज्य हैं:—बस्तर, छुईखदान, जशपुर, कलहंडी, कांकेर, कवर्धा, खैरागढ़, कोरिया, नंदगांव,

रायगढ़, सकती, सारंगढ़, सरगुजा, उदयपुर और मकडई। इनमें से मकडई भोपाल एजन्सी में, और शेष पूर्वी राज्य एजन्सी के अन्तर्गत छत्तीसगढ़ राज्य एजन्सी में हैं। मध्यप्रान्त के राज्यों में सबसे बड़ा बसतर है। इसका क्षेत्रफल १३,०६२ वर्गमील, जनसंख्या पाँच लाख से अधिक, और औसत वार्षिक आय दस लाख रुपये है। सब से छोटा राज्य सकती है। इसका क्षेत्रफल १३८ वर्गमील, जनसंख्या लगभग पचास हजार, और औसत वार्षिक आय एक लाख रु० से कुछ अधिक है। आगे नंदगाँव के विषय में कुछ विस्तार से लिखा जाता है।

## नंदगाँव

यह रायपुर जिले में एक छोटा सा राज्य है। इसका क्षेत्रफल ८७१ वर्गमील, जनसंख्या लगभग दो लाख, और औसत वार्षिक आय पाँच लाख रुपये है।

यह राज्य चार परगनों से मिलकर बना है। नागपुर के भोंसला राजा ने पहले अपने पुरोहित को कुछ जागीर पुण्य की थी, पीछे इसका विस्तार हो गया, और यह राज्य मान लिया गया। राजवंश वैरागी है, और अपनी उत्पत्ति प्रह्लाददास से मानता है। पहले इस सम्प्रदाय वाले अविवाहित रहते थे; चेला अपने गुरू का उत्तराधिकारी होता था। पीछे किसी-किसी शासक ने विवाह किया, या कोई लड़का गोद लिया। उस दशा में उत्तराधिकारी उसका औरस या दत्तक पुत्र हुआ।

महन्त सर्वेश्वरदास को सन् १९१३ में गद्दी मिली, जबकि ये सात वर्ष के थे। इन्हें शासनाधिकार १९२७ में प्राप्त हुए। इनके

शासन-काल में राज्य के आर्थिक विषयों पर राजनैतिक विभाग का नियंत्रण रहा। ये दीवान की सहायता से राजप्रबन्ध करते थे। सन् १९४१ में इनका देहान्त हो जाने पर, इनके पुत्र दिग्विजयदास गद्दी पर बैठाये गये, इनकी उम्र इस समय आठ साल की थी।

राज्य में एक कौंसिल (परिषद) है, जिसके १८ सदस्यों में से ५ नामजद होते हैं। सभापति राजा साहब द्वारा नियुक्त होता है। राजनांदगांव (राजधानी) में एक म्युनिसपैलटी है, जिसमें निर्वाचित सदस्यों की अधिकता रहती है। इस समय स्टेट-कांग्रेस की ओर से खड़े सदस्यों का बहुमत है।

जनता का असंतोष यहाँ पहले राजनांदगांव की मिल के मजदूरों की हड़ताल में प्रकट हुआ। संघर्ष बहुत समय तक चलता रहा। अन्ततः जनता को शासन-सुधारों की आवश्यकता अनुभव हुई। इस प्रकार नंदगांव स्टेट-कांग्रेस स्थापित की गयी। राज्य ने सन् १९३८ में एक फरमान जारी किया कि दीवान की पूर्व स्वीकृति बिना, सार्वजनिक सभाएँ न की जायँ। स्टेट-कांग्रेस ने सत्याग्रह किया। फल-स्वरूप गिरफ़ारियाँ हुईं। आन्दोलन बढ़ता देखकर आर्डिनैन्स अकस्मात वापिस ले लिया गया। परन्तु राज्य ने दमन के लिए दफा १४४ जारी की। स्टेट-कांग्रेस ने इसका भी विरोध किया। ६५४ गिरफ़ारियाँ हुईं, परन्तु केवल ८० सत्याग्रही कैद किये गये, और शेष छोड़ दिये गये।

संघर्ष अन्य दिशाओं में भी चलता रहा। लगभग १४० गाँवों में जंगल सम्बन्धी कानून भंग किये गये। दमन ने प्रबल स्वरूप धारण

किया। घरों की तलाशियाँ, लूट, गिरफ़्तारी, लाठी-चार्ज तो हुआ ही, जनवरी १९३९ में भीड़ पर गोली भी चलायी गयी, जिससे अनेक आदमी जख्मी हुए। स्टेट-कांग्रेस के जोरदार आन्दोलन और लोकमत बलवान होने पर इस कांड की जाँच के लिए कमेटी नियुक्त हुई, परन्तु उसकी रिपोर्ट प्रकाशित नहीं की गयी। यद्यपि गिरफ़्तार किये हुए व्यक्ति छोड़ दिये गये, परन्तु इस ज्यादती की दुखद स्मृति बनी ही रही।

एक अन्य अवसर पर सभा से लौटती हुई भीड़ पर पुलिस ने लाठी-वर्षा की, और सेना ने भीड़ को हटाने के अतिरिक्त बाजारों और घरों में घुसकर आदमियों एवं औरतों को निर्दयता पूर्वक मारा, जिससे २०० व्यक्ति जख्मी हो गये। इसके विरोध में, अनिश्चित समय के लिए हड़ताल की गयी, और म्युनिसपैलटी के कुछ सदस्यों ने त्यागपत्र दिया। एक सप्ताह बाद राज्य ने सुधारों का वायदा किया। हड़ताल बन्द करदी गयी, परन्तु वायदा पूरा न हुआ। अप्रेल १९३९ से म० गांधी के आदेशानुसार, सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया और स्टेट-कांग्रेस शिक्षा तथा रचनात्मक कार्य में लग गयी।*

सन् १९३९ में महायुद्ध आरम्भ हो जाने पर बहुत से देशी राज्यों ने दमन कानून बनाये। नन्दगाँव ने इस ओर कुछ देर से कदम उठाया, पर उसने उग्रता का परिचय कुछ कम नहीं दिया। सन् १९४० में उसने जो सभाओं की रजिस्टरी का कानून बनाया, उसमें सभा का

* 'स्टेट्स पीपल' में प्रकाशित, श्री० एकनाथ मारुतीराव के लेख के आधार पर।

अर्थ अत्यधिक व्यापक लिया गया, और रजिस्टरी न होने की दशा में उसके सदस्य या सहायक बननेवालों के लिए ऐसा कठोर दंड ठहराया गया कि नागरिकों के मन में किसी भी प्रकार की सभा या सम्मेलन करने की प्रवृत्ति न रहे। नागरिक स्वतंत्रता पर ऐसे प्रहार होने से अन्ततः लोगों की उत्तरदायी शासन की माँग बढ़ती ही है।

# उनहत्तरवाँ अध्याय

## हैदराबाद

जिस राज्य में एक ही धर्म वाली जनता की प्रधानता हो, वहाँ साम्प्रदायिकता का क्या अर्थ हो सकता है? कश्मीर या सीमाप्रान्त में, जहाँ अधिकतर एक ही मत की आबादी है साम्प्रदायिकता का क्या अर्थ! हैदराबाद में स्टेट-कांग्रेस उस अर्थ में 'साम्प्रदायिक' कदापि नहीं हो सकती, जिसमें इस शब्द का प्रयोग भारतवर्ष में किया जाता है।

—म० गाँधी

मुसलमानों की भारी अधिकता वाले कश्मीर राज्य के हिन्दू नरेश, और हिन्दुओं की ऐसी ही बहुतायत वाले हैदराबाद राज्य के मुसलिम शासक—इन दोनों को मैं अब से कुछ ही समय पहले तक हिन्दू मुसलमानों की स्थायी एकता के दो लक्षण मानता था।

—एम० एस० अणे

हैदराबाद भारतवर्ष के सब देशी राज्यों से अधिक धनवान राज्य है। विस्तार की दृष्टि से एक कश्मीर राज्य ही इससे बड़ा है, इस

प्रकार इसका नम्बर दूसरा है। इस राज्य का क्षेत्रफल ८२,६९८ वर्ग मील, जनसंख्या डेढ़ करोड़, और औसत वार्षिक आय आठ करोड़ रुपये है। यहाँ की जनता अधिकांश हिन्दू है। राजवंश मुसलमान है। शासक 'निजाम' कहलाता है।

मुसलमानों का आधिपत्य यहाँ सोलहवीं शताब्दी में हुआ। सम्राट् औरंगज़ेब ने सन् १७१२ में मीर कमरुद्दीन को यहाँ अपना सूबेदार बनाकर भेजा, जो 'आसफजाह' और 'निजामुलमुल्क' उपाधियों से प्रसिद्ध है। मुगल साम्राज्य का बल घटने पर सन् १७२४ तक वह प्रायः स्वतंत्र हो गया, और उसने अपना राज्य स्थापित कर लिया। उसने सन् १७४८ तक शासन किया। वर्त्तमान निजाम उसी के वंशजों में से है।

सन् १८५३ में निजाम ने बरार प्रान्त तथा उसमानाबाद और रायपुर ज़िले कम्पनी को इसलिए दिये कि इनकी आय से कम्पनी की हैदराबाद सम्बन्धी फौज का खर्च चले, और जो रकम शेष रहे, वह निजाम को दे दी जाया करे। सन् १८५७ ई० में निजाम ने सरकार को खूब सहायता दी। इसके उपलक्ष्य में उसमानाबाद और रायपुर ज़िले उसे वापिस कर दिये गये। सन् १९०२ के समझौते के अनुसार निजाम ने ब्रिटिश सरकार को २५ लाख रु० सालाना में बरार प्रान्त का स्थायी पट्टा दे दिया। हैदराबाद सम्बन्धी फौज भारतीय सेना का अंग बन गयी, और बरार ब्रिटिश भारत में मिलाया जाकर मध्यप्रान्त के चीफ कमिश्नर ( पीछे गवर्नर ) के अधीन हो गया।

सन् १९१४-१८ ई० के योरपीय महायुद्ध में निजाम ने ब्रिटिश

सरकार की जो सहायता की, उसके प्रतिफल-स्वरूप सन् १९१८ में सम्राट् पंचम जार्ज ने निज़ाम को 'हिज़ ऐग्ज़ाल्टेड हाईनेस' की पैतृक उपाधि तथा ब्रिटिश सरकार के विश्वासपात्र-मित्र ('फेथफुल एलाई') का पद प्रदान किया। १९२३ में निज़ाम ने बरार वापिस लेने की माँग उपस्थित की, परन्तु वायसराय एवं भारतमंत्री ने उनके इस दावे को नामंज़ूर कर दिया। सन् १९३६ में भारत-सरकार और इस राज्य की नयी संधि हुई। निज़ाम को बरार के सम्बन्ध में जो पचीस लाख रुपये सालाना मिलते थे, वे मिलते रहेंगे। बरार पर निज़ाम का प्रभुत्व माना गया है, वहाँ ब्रिटिश पताका ('यूनियन जैक') के साथ निज़ाम का झंडा भी फहराएगा, और हैदराबाद के युवराज को 'हिज-हाइनेस प्रिंस-आफ-बरार' की उपाधि रहेगी। निज़ाम सरकार बरार में अपना दरबार कर सकेगी, और उपाधियाँ दे सकेगी। उस का एक एजेन्ट मध्यप्रान्त-बरार की राजधानी नागपुर में रहा करेगा और समय-समय पर यहाँ की प्रान्तीय सरकार के सामने निज़ाम सरकार सम्बन्धी दृष्टिकोण रखेगा। इसके अतिरिक्त, मध्यप्रान्त और बरार का गवर्नर नियुक्त किये जाने के समय ब्रिटिश सरकार निज़ाम हैदराबाद का भी परामर्श लिया करेगी। इन शर्तों से निज़ाम को संतोष हुआ है, पर बरार की जनता को पूछा तक नहीं गया।

हैदराबाद राज्य की प्राचीन व्यवस्था वैयक्तिक शासन के रूप में थी, सब शासन-कार्य दीवान के द्वारा संचालित होता था। नवाब सालारजंग (द्वितीय) के मंत्रित्व-काल में स्व० निज़ाम महबूबअली खाँ ने सन् १८९३ ई० में एक राजपरिषद (कौंसिल-आफ-स्टेट)

की नियुक्ति की। पीछे राजपरिषद के स्थान पर एक परामर्श-समिति बना दी गयी। इसका सभापति प्रधान मंत्री होता था। इस संस्था को मंत्रिपरिषद (कैबिनेट-कौंसिल) कहा जाने लगा। परन्तु इसे कुछ विशेष अधिकार न होने से यह अपरिणामकारक रही।

निजाम महबूबअलीखां के देहान्त पर, उनके पुत्र नवाब उसमान अलीखां सन् १९११ में गद्दी पर बैठे। सन् १९१४ में, महाराज किशन-प्रसाद के प्रधानमंत्री-पद से त्यागपत्र देने पर लगभग पाँच वर्ष तक आपने बिना किसी प्रधानमंत्री या दीवान के काम किया। सन् १९१९ में प्रबन्धकारिणी सभा (एग्जीक्यूटिव कौंसिल) स्थापित की गयी। इसमें सात सदस्य हैं। राज्य का शासन-कार्य इन सात सदस्यों को सौंपे हुए विविध विभागों में विभक्त है। प्रबन्धकारिणी सभा व्यवस्थापक सभा के प्रति उत्तरदायी नहीं है, यद्यपि व्यवस्थापक सभा में भी प्रति-निधितत्व नाममात्र का ही है।

अब व्यवस्थापक सभा की बात लें। सन् १८९३ ई० से पूर्व तो इसका अस्तित्व ही नहीं था। उक्त वर्ष एक 'व्यवस्थापक परिषद' नाम की संस्था स्थापित की गयी। उसके संगठन में सन् १८९४ में, तथा पीछे समय-समय पर कुछ परिवर्तन किये गये। सन् १९०५ से इसका संगठन इस प्रकार है। इसमें कुल मिला कर २० सदस्य हैं, जिनमें से १२ सरकारी ६ गैर-सरकारी और २ असाधारण। सरकारी सदस्यों में से तीन अपने पद के कारण, और ९ अन्य हैं। गैर-सरकारी सदस्यों में से दो नामजद हैं, और दो कानून पेशे वालों द्वारा और दो जागीरों द्वारा निर्वाचित हैं। इस प्रकार हैदराबाद जैसे बड़े राज्य में केवल

२० सदस्यों की व्यवस्थापक परिषद है, और उनमें से केवल चार सदस्य निर्वाचित हैं। इससे सहज ही अनुमान हो सकता है कि यह संस्था कितनी कम प्रतिनिधिमूलक है।

इस समय ( १९४२ ) तक परिषद का यही संगठन है। इस बीच में समय-समय पर जनता ने शासन-सुधार का आन्दोलन किया। राज्य की ओर से कुछ कार्य होता दिखा, पर कोई सफल प्रयत्न न हुआ। अन्ततः आयंगर कमेटी की सिफारिशों के आधार पर सन् १९३९ में शासन-सुधारों की घोषणा की गयी।

इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में प्रधान शासक की स्थिति इस प्रकार बतलायी है:—'शासक ( निजाम ) व्यक्तिगत रूप से जनता का प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए प्रजा के साथ उसका सम्बन्ध कुछ समय के लिए चुने हुए प्रतिनिधियों की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक और स्थायी है। वह राज्य का प्रधान अधिकारी भी है, और जनता की प्रभुता का प्रतीक भी है। इससे यह सिद्ध है कि ऐसी शासन-व्यवस्था में प्रधान शासक के हाथ में न केवल किसी कानून को स्वीकार या अस्वीकार करने का ही अधिकार रहता है, वरन् उसे यह विशेषाधिकार भी है कि वह अपनी कार्यकारिणी को बना और मिटा सके, और उस शासन-यंत्र को भी बदल सके जिसके द्वारा वह अपनी प्रजा की बढ़ती हुई जरूरतों को पूरा करता है। हमारे विधान का आधार ऐसी ही प्रभुता है, और इसकी हमें रक्षा करनी है।' कौंसिल ने अपनी अर्जदाश्त में इस सिद्धान्त से अपनी पूर्ण सहमति सूचित की है, और इसे अपनी सम्मति का भी आधार बतलाया है। इस सिद्धान्त का आशय यह है कि राजा ही समस्त सत्ता का स्रोत है और वह शासन-व्यवस्था को बनाने और बिगाड़ने का पूर्ण अधिकारी है; जनता का इसमें कोई स्थान नहीं। इसमें युग-धर्म के

इस तत्व को भुला दिया गया है कि वास्तव में सत्ता का स्रोत जनता है, राजा आदि के अधिकार उसी से प्राप्त होते हैं; इस प्रकार शासन-शक्ति मूलत: जनता के हाथ में रहनी और उसी के द्वारा संचालित होनी चाहिए। अस्तु, नये शासन-सुधारों के अनुसार सरकार किसी भी अंश में उत्तरदायी नहीं है।

व्यवस्थापक परिषद का नाम भविष्य में व्यवस्थापक सभा (लेजिसलेटिव असेम्बली) होगा। इसमें कुल ८५ सदस्य होंगे—४२ निर्वाचित, और ४३ नामजद।

निर्वाचित सदस्यों में प्रतिनिधित्व प्रादेशिक न होकर धंधेवार रखा गया है। इनका ब्यौरा इस प्रकार है:—जागीरदार और संस्थान वाले ४, माशदार २, पट्टेदार ८, काश्तकार ८, उद्योग-धंधे २, वाणिज्य २, बैंकिंग २, कानून २, चिकित्सा १, ग्रेजुएट २, जिला-बोर्ड २, जिला-म्युनिसपैलटी और टाउन-कमेटियाँ २, हैदराबाद म्युनिसपल कारपोरेशन २।*

नामजद सदस्य इस प्रकार होंगे:—इलाकों की ओर से ५, सरकारी नामजद १४, गैर-सरकारी नामजद १४, प्रबन्धकारिणी के सदस्य ७, तथा सर्फे खास के सदस्य (निजाम द्वारा नियुक्त) ३।

निर्वाचित एवं नामजद सदस्यों के स्थानों को मुसलमानों और

---

*धंधेवार प्रतिनिधित्व के पक्ष में कहा जाता है कि इसके द्वारा लोगों के आर्थिक हितों का पूरा प्रतिनिधित्व होगा। परन्तु जबकि राज्य की आबादी के अस्सी प्रतिशत किसान हैं (और जब राज्य अपनी आय का लगभग आधा भाग किसानों से लगान के रूप में लेता है), तब व्यवस्थापक सभा के ८५ सदस्यों में से उनके प्रतिनिधि बहुत अधिक न होकर केवल ८ ही क्यों हो?

हिन्दुओं में बराबर बाँटा गया है, यद्यपि राज्य की जनसंख्या में हिन्दू ८५ फीसदी, और मुसलमान केवल ११ फीसदी के लगभग हैं।

प्रबन्धकारिणी सभा की अर्ज़दास्त में कहा गया है कि "इस राज्य में मुसलमानों की ऐतिहासिक स्थिति और राजनैतिक दर्जे के कारण इस जाति का महत्व ऐसा स्पष्ट है कि व्यवस्थापक सभा में इसको अल्प-संख्यक की स्थिति नहीं दी जा सकती। प्रत्येक व्यक्ति को यह बात मान्य करनी चाहिए कि मुसलमानों की यहाँ ऐसी स्थिति है कि उसके कारण इस राज्य के राजनैतिक तथा नैतिक शक्ति बढ़ाने में उन्होंने जो योग दिया है, वह कभी भी हिन्दुओं से कम नहीं रहा है।...निर्वाचित एवं नामजद सदस्यों में हिन्दुओं तथा मुसलमानों की संख्या बराबर रहे।"

व्यवस्थापक सभा की आयु पाँच साल निर्धारित की गयी है। उसके लिए सरकारी भाषा राजभाषा अर्थात् उर्दू होगी। परन्तु सभापति उर्दू न जानने वाले किसी सदस्य को तेलगू, मराठी, कनारी या अंगरेजी में भाषण करने की अनुमति दे सकता है। सुधारों में प्रशंसनीय बात यह है कि व्यवस्थापक सभा एक ही रखी गयी है, दो नहीं। पुनः पृथक् निर्वाचन को इसके संगठन में स्थान नहीं दिया गया। हितों या धंधों के आधार पर सदस्यों की संख्या सुरक्षित रखते हुए, संयुक्त निर्वाचन में यह शर्त रखी गयी है, कि प्रत्येक उम्मेदवार अपनी जाति के प्रत्येक हित सम्बन्धी मतों में से कम-से-कम ४० प्रतिशत प्राप्त करे।

व्यवस्था सम्बन्धी विषय चार श्रेणियों में विभक्त किये गये हैं—(१) वे विषय, जिन पर व्यवस्थापक सभा में न कोई प्रस्ताव किया जा सकेगा और न कोई प्रश्न ही पूछा जा सकेगा। (२) वे विषय

जिनके सम्बन्ध में व्यवस्थापक सभा का कोई सदस्य सरकार की अनुमति विना, प्रस्ताव उपस्थित कर सकता है अथवा प्रश्न पूछ सकता है। (३) वे विषय जिनके सम्बन्ध में सरकार या सरकारी सदस्य ही कोई प्रस्ताव उपस्थित कर सकते हैं। (४) ऐसे विषय, जो उपर्युक्त श्रेणियों में स्पष्ट नहीं किये गये हैं; इनके सम्बन्ध में व्यवस्थापक सभा का कोई सदस्य, सरकार द्वारा निर्धारित शर्तों को ध्यान में रखते हुए, कोई प्रस्ताव उपस्थित करने या प्रश्न पूछने का कार्य उसी दशा में कर सकता है जब वह पहले से सरकार की लिखित अनुमति प्राप्त कर ले। किसी विषय के सम्बन्ध में यह निर्णय करने का अधिकार सरकार को है कि वह किस श्रेणी के अन्तर्गत है। निजाम चाहें जिस श्रेणी के विषयों की वृद्धि कर सकते हैं।

इससे स्पष्ट है व्यवस्थापक सभा का अधिकार-क्षेत्र बहुत परिमित है। पुलिस और जागीरदारी के विषय में सदस्यों को कोई अधिकार नहीं है। जेल, कर-निर्धारण, खनिज उन्नति आदि के सम्बन्ध में वे कोई प्रस्ताव उसी दशा में कर सकेंगे या प्रश्न तभी पूछ सकेंगे, जब सरकार की अनुमति पहले से प्राप्त कर लें।

भावी विधान में व्यवस्थापक सभा की कानून बनाने की शक्ति कितनी कम है, इसका परिचय इसी बात से हो सकता है कि सभा अपने परिमित और निर्धारित क्षेत्र में भी जो प्रस्ताव पास करती है, उसे स्वीकार करने या रद्द करने का निजाम साहब को पूर्ण अधिकार है। इस प्रकार किसी कानून का बनना या न बनना सर्वथा निजाम साहब की इच्छा पर निर्भर है। व्यवस्थापक सभा केवल जनता की

भावना सूचित कर सकती है, वह भी बहुत सीमित क्षेत्र में।

अब व्यवस्थापक सभा के आय-व्यय सम्बन्धी अधिकार की बात लें। बजट सभा के सामने पेश किया जायगा, उसमें बड़ी और छोटी मदों की रकमें बतायी जायँगी। सभा उस पर साधारण वाद-विवाद करने के अतिरिक्त उन मदों के सम्बन्ध में निश्चित प्रस्ताव कर सकेगी, जो उसके अधिकार-क्षेत्र से बाहर न हों। सरकार सभा के किसी भी प्रस्ताव को मानने के लिए बाध्य नहीं है। बजट सम्बन्धी अन्तिम निर्णय करने में सरकार स्वतंत्र है। (राज्य द्वारा प्रति वर्ष लाखों रुपया बाहर की संस्थाओं को दिया जाता है, जो अधिकांश में इसलाम धर्म सम्बन्धी होती हैं; यद्यपि यहाँ की जनता का, एवं टेक्स देने वालों का बड़ा भाग हिन्दुओं का है।)

निम्नलिखित विषयों की परामर्श देने वाली कमेटियों की व्यवस्था की गयी है—(१) कृषि विभाग।(२) शिक्षा (३) राजस्व। (४) औद्योगिक उन्नति। (५) सार्वजनिक स्वास्थ्य। (६) हिन्दू धर्मादा। (७) मुसलिम धर्मादा। (८) धार्मिक विषय। इन कमेटियों के सदस्यों की संख्या समय-समय पर आवश्यकतानुसार घटती-बढ़ती रहेगी, परन्तु इनमें सरकारी और गैर-सरकारी सदस्य बराबर रहेंगे। इन कमेटियों के अधीन कुछ विशेषज्ञों की उपसमितियां बन सकेंगी। प्रत्येक कमेटी का सभापति, उस विषय सम्बन्धी सरकारी विभाग का अधिकारी होगा। इन कमेटियों के सदस्य साधारणतया व्यवस्थापक सभा के सदस्यों में से होंगे।

यहाँ न्याय सम्बन्धी कार्य सुव्यवस्थित है। सन् १९२१ ई०

से निजाम ने अपने राज्य में न्याय विभाग को शासन से पृथक करने का प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय कार्य किया। एक हाईकोर्ट है, जो अधीन अदालतों सहित कार्य कर रहा है। डिविजनल जज, जिला-जज और ताल्लुका-मुन्सिफों को अपने-अपने क्षेत्र में दीवानी तथा फौजदारी के अधिकार हैं। न्याय सम्बन्धी अन्य अधिकारी सिटी-सिविलजज, सिटी-मजिस्ट्रेट, स्पेशल मजिस्ट्रेट, आनरेरी सेशनजज, और आनरेरी मजिस्ट्रेट हैं।

स्थानीय स्वराज्य-संस्थाओं के विषय में इस राज्य की स्थिति अच्छी नहीं रही है। हैदराबाद नगर की म्युनिसिपल कारपोरेशन तक के संगठन में, अब से आठ वर्ष पहले निर्वाचन-सिद्धान्त का समावेश नहीं किया गया था। प्रथम निर्वाचन सन् १९३४ में हुआ। कारपोरेशन में सरकारी सभापति और उपसभापति के अतिरिक्त ३६ कौंसिलर हैं, जिनमें से केवल १२ निर्वाचित होते हैं; उनकी बात का कोई वज़न नहीं होता, जब तक कि सरकारी या नामजद सदस्यों का उन्हें समर्थन प्राप्त न हो जाय।

सब दीवानी जिलों में जिला-बोर्ड हैं, और प्रत्येक ताल्लुके में ताल्लुका-बोर्ड है। इनके सभापति रेवन्यू अफसर होते हैं, और इनके सदस्यों में सरकारी और गैर-सरकारी सदस्य बराबर-बराबर संख्या में नामजद किये हुए रहते हैं। आठ बड़े-बड़े कस्बों में म्युनिसिपल कमेटियाँ स्थापित हैं, जिनमें से प्रत्येक में ५ सरकारी और ३ से १५ तक गैर-सरकारी नामजद सदस्य रहते हैं।

सन् १९३९ के फरमान में जिला-बोर्डों, जिला-म्युनिसपैलटियों,

टाउन कमेटियों और हैदराबाद म्युनिसपल कारपोरेशन का नया संगठन करने की घोषणा की गयी है। छावनी-बोर्ड, जागीर या इलाका बोर्ड, जागीर या इलाका म्युनिसपैलटी या टाउन कमेटी स्थापित करने की भी सूचना दी गयी है। यह कहा गया है कि इनका संगठन इस प्रकार किया जायगा कि राज्य के मुख्य-मुख्य हितों का प्रतिनिधित्व हो, निर्वाचित और नामजद सदस्यों की संख्या में यथा-सम्भव ५ और ३ का अनुपात रहेगा, और इनमें हिन्दू और मुसलमान सदस्य बराबर-बराबर रहेंगे। इन कमेटियों पर सरकार का प्रभावपूर्ण नियंत्रण रहेगा; सरकार इनके आय-व्यय का निरीक्षण और जाँच करेगी, और इनके करों को निर्धारित करेगी। इनको अपने बजट तथा ऋण के लिए, तथा कुछ पदों पर नियुक्ति के लिए, सरकार की स्वीकृति लेनी होगी। इनसे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि इन संस्थाओं का संगठन कितना असंतोषप्रद तथा अधिकार-क्षेत्र कितना सीमित होगा।

अब तक हैदराबाद राज्य में पंचायतों की स्थापना नहीं हुई है। निजाम साहब के सन् १९३९ के फरमान में यह घोषणा की गयी है कि २५०० और ५००० के बीच की जनसंख्या वाले गाँवों में पंचायतों की स्थापना की जायगी।

इस राज्य की आर्थिक स्थिति खूब दृढ़ है। सरकारी बजट तीन-तीन साल के लिए बनाया जाता है। भिन्न-भिन्न विभागों को त्रिवार्षिक बजट के आधार पर, उनके वार्षिक व्यय के अनुमानानुसार धन दिया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक विभाग के कार्य में स्थिरता रहती है, हर

साल नया आयोजन न होकर उसका सिलसिला बना रहता है, और उसकी प्रगति में सुविधाएँ मिलती हैं। यदि तीन वर्ष के बाद हिसाब में बचत होती है तो उस रुपये में से कुछ सुरक्षित कोष में रखा जाता है और शेष जनहितकारी कार्य में खर्च किया जाता है। इस प्रकार गत वर्षों में अकाल फंड, औद्योगिक ट्रस्ट फंड, उसमानिया सिक्का स्थायीकरण, और कागजी मुद्रा कोष ( पेपर करेन्सी रिजर्व ) में खूब वृद्धि हुई है।

राज्य के अन्तर्गत निजाम के डाक, स्टाम्प और टकसाल विभाग स्वतंत्र है, बहुत सी रेलवे लाइन भी राज्य की अपनी है। राज्य की मुद्रा, शासक के वंश के नाम पर, उसमानिया सिक्का कहलाती है। सन् १९१८ से यहाँ उसमानिया यूनिवर्सिटी विविध विषयों की उच्च शिक्षा उर्दू द्वारा देती है; उसमें अंगरेजी भाषा अनिवार्य है। निजाम कालिज, जो प्रथम श्रेणी का है, मदरास विश्वविद्यालय से संलग्न है। उर्दू में ऊंचे दर्जे का साहित्य बढ़ाने का बहुत प्रयत्न किया जा रहा है। अनुवाद विभाग ने इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, दर्शन, गणित, विज्ञान, ऐंजिनयरिंग, कानून और चिकित्सा आदि के बहुत से ग्रन्थों का उर्दू में अनुवाद कराया है। ग्राम-सुधार, प्राइमरी शिक्षा के प्रचार तथा निरक्षरता-निवारण की ओर ध्यान दिया जा रहा है। कन्याओं की शिक्षा बढ़ायी जा रही है; राज्य में एक प्रथम श्रेणी का महिला कालिज भी है।

शिक्षा के सम्बन्ध में यह शिकायत है कि जबकि उच्च कक्षाओं में ही नहीं, प्रारंभिक और माध्यमिक श्रेणियों तक में उर्दू के अध्ययन

के लिए अनेक प्रोत्साहन दिये जाते हैं, सर्वसाधारण ८५ प्रतिशत जनता की मातृभाषा ( मराठी, कनारी और तेलगु ) की उपेक्षा की जाती है। राज्य की ओर से संचालित प्राइमरी स्कूलों में भी बालक उर्दू शब्द और फारसी लिपि सीखने को बाध्य होते हैं। बालकों को उनकी मातृभाषा सिखाने के लिए उनके संरक्षकों को अपने तौर से अलग प्रबन्ध करना पड़ता है। हिन्दी की शिक्षा की व्यवस्था अत्यन्त कम है। प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं को अनुत्साहित किया जाता है।* सन् १९४१ ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन यहाँ होनेवाला था, पर राज्य से अनुमति नहीं मिली। सन् १९४२ में आर्य समाज के सम्मेलन के अवसर पर हिन्दी मंडल केवल इस राज्य की सीमा में रहनेवाले हिन्दी-प्रेमियों का ही सम्मेलन करना चाहता था, परन्तु उसके लिए भी अनुमति नहीं दी गयी।

हैदराबाद में जनता की राजनैतिक जागृति पिछले योरपीय महायुद्ध के समय से तो है ही। विशेषतया सन् १९१० ई० से यहाँ अनेक संस्थाओं ने शासन-सुधार तथा उत्तरदायी शासन की प्राप्ति के लिए भरसक आन्दोलन किया। परन्तु थोड़े-बहुत समय में प्रत्येक संस्था गैर-कानूनी ठहरा दी गयी, या अन्य प्रकार से उसका दमन किया गया। ऐसी कुछ संस्थाओं के नाम ये हैं:—हैदराबाद राज्य सुधार सभा ( हैदराबाद स्टेट रिफार्म्स असोसियेशन ), हैदराबाद असोसियेशन; निज़ाम प्रजा संघ ( निज़ाम सबजेक्ट्स लीग ), हैदराबाद जनता सभा ( हैदराबाद पीपल्स कन्वेंशन ), हैदराबाद राज्य कांग्रेस आदि। कितनी

* Hyderabad Administration *by* M. S. Aney के आधार पर।

ही बार सार्वजनिक संस्थाओं को राज्य में सभाएँ करने की अनुमति नहीं मिली, और कार्यकर्त्ताओं को राज्य की सीमा से बाहर ही अपने विचार प्रकट करने की व्यवस्था करनी पड़ी। साम्प्रदायिक भावनाओं से दूर रहनेवाली तथा बहुत शान्ति और गम्भीरता से कार्य करनेवाली स्टेट-कांग्रेस तक पर रोक लगाया जाना एक ऐसी बात है, जिससे राज्य की स्थिति का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। राज्य को 'कांग्रेस' शब्द ही नापसन्द रहा। कार्यकर्त्ताओं ने कांग्रेस का नाम 'नेशनल कान्फ्रेन्स' रखने का विचार किया। इसपर भी राज्य की आपत्तियों का अन्त न था। यह कहा गया कि "(१) यह संस्था 'नेशनल' (राष्ट्रीय) नहीं है, क्योंकि इसने पारस्परिक समझौते द्वारा दूसरी जातियों के प्रतिनिधि-सदस्यों का समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं किया। (२) हैदराबाद सरकार लोगों का उत्तरदायी शासन माँगने का अधिकार मान्य करने को तैयार नहीं है, जिसे प्राप्त करने का इस संस्था ने निश्चय किया है। इसलिए इस संस्था के विधान से उत्तरदायी शासन माँगने वाली धारा निकाल दी जानी चाहिए। निज़ाम की प्रभुता अविभाज्य, अ-हस्तान्तरयोग्य और पूर्ण है।"

स्मरण रहे कि निज़ाम साहब ने २५ अक्तूबर १९२३ को एक पत्र में तत्कालीन वायसराय लार्ड रीडिंग को सूचित किया था कि 'बरार मुझे मिल जाने पर मैं इस प्रान्त वालों को शासन में इतना सहयोग देने का अवसर प्रदान करूँगा, जितना ब्रिटिश भारत में इस समय कहीं भी नहीं किया जाता। मैं बरारियों को उत्तरदायी शासन-विधान देने के लिए निश्चित व्यवस्था करूँगा, जिसके अनुसार मेरे द्वारा नियुक्त वैधानिक गवर्नर के अधीन जनता को आन्तरिक विषयों

में पूर्ण स्वराज्य होगा।' इस बात में, और निज़ाम की प्रभुता अविभाज्य अ-हस्तान्तरयोग्य और पूर्ण मानने की बात में कैसे संगति मिलती है? यदि पहली बात केवल 'राजनैतिक चाल' हो, तो अब तो समय बीस वर्ष आगे बढ़ गया है। युग-प्रवाह को देखते हुए, क्या भारतवर्ष के इस प्रमुख राज्य को उत्तरदायी शासन पद्धति से इतना विमुख होना शोभा देता है?

हैदराबाद में स्टेट कांग्रेस के कार्यकर्ताओं को अपनी उत्तरदायी शासन की मांग स्पष्ट रूप से सामने रखने के कारण सत्याग्रह करने का अवसर आया, उनकी गिरफ़्तारियाँ हुई, कैद की सजा हुई, और उन्हें नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़े। इस राज्य के अधिकारियों की राष्ट्रीयता-विरोधी प्रवृत्तियों का खेदजनक परिचय इस बात से भी मिलता है कि पिछले दिनों सैकड़ों विद्यार्थी वन्देमातरम् का राष्ट्रीय गान गाने आदि के कारण उसमानिया विश्वविद्यालय से पृथक् किये गये थे। इसके विपरीत, राज्य की बहुत बलवान सम्प्रदायवादी मुसलिम संस्था 'मजलिस इत्तहादुल मुसलमीन' पर कई वर्ष कोई प्रतिबन्ध नहीं लगायागया।

यह संस्था ज़ोर-शोर से इस बात का प्रचार करती रही है कि 'हम (मुसलमान) दक्खिन के बादशाह हैं, दक्खिन का सिंहासन और मुकुट हमारे राजनैतिक और सांस्कृतिक शासनाधिकार के चिन्ह हैं। हमारे निज़ाम साहब हमारे राज्य की रूह (आत्मा) हैं, और हम उनके राज्य के शरीर हैं। उसके अन्त के साथ हमारा अन्त है। यदि हम नहीं हैं तो वह भी नहीं है।' मजलिस का स्पष्ट मत है कि मुसलमानों की प्रधानता राज्य-शासन में, एवं सरकारी नौकरी में, रहनी चाहिए। इसने कांग्रेसवादियों को यहाँ राजद्रोही कहा और हैदराबाद राज्य को

स्टेट-कांग्रेस पर लगे हुए प्रतिबन्ध उठाने के विरुद्ध चेतावनी दी। उसने सुधारों को अत्यन्त प्रगतिशील और नवीनतम माना, और मुसलमानों को उनके विरुद्ध प्रदर्शन करने के लिए प्रेरित किया। इस संस्था का नारा 'अ-अनलमलिक' ( मैं बादशाह हूँ ) रहा है।

सितम्बर १६४१ ई० के 'फरमान मुबारिक' में प्रकाशित किया गया कि निजाम साहब ने इस संस्था के प्रमुख नेता ( और अखिल भारतवर्षीय देशी राज्य मुसलिम लीग के सभापति ) नवाब बहादुर यारजंग का माफीनामा स्वीकार किया, जिससे उन्हें अपने व्यवहार सुधारने का एक और अवसर मिले। यह तो ठीक है। परन्तु क्या राज्य ने स्वयं ही साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को प्रोत्साहन नहीं दिया है? अप्रेल सन् १६०६ और पीछे जुलाई १६३१ के सरकारी फरमानों में हैदराबाद को मुसलिम राज्य कहा गया है। ऐसी दशा में छोटे-बड़े राजभक्त पदाधिकारी तथा सरकार के कृपापात्र बनने के अभिलाषी व्यक्ति इस घातक सिद्धान्त का प्रचार करें तो क्या आश्चर्य!

अन्य कितने ही देशी राज्यों की भांति इस राज्य में भी जनता के नागरिक अधिकार बहुत कम रहे हैं। सभाएँ करने, जलूस निकालने, सार्वजनिक उत्सव मनाने, यहाँ तक कि प्राइवेट स्कूल स्थापित करने तक में बहुत प्रतिबन्ध रहे। सन् १६३८ ई० के अन्त में हिन्दू महासभा ने नागरिक स्वतंत्रता के विचार से तथा आर्यसमाज ने विशेषतया धार्मिक अधिकार प्राप्ति के लिए सत्याग्रह किया। हजारों आदमी जेल गये, और कई-एक ने अपने प्राणों की भेंट चढ़ायी। उसकी विशेष चर्चा न कर, हमें यही कहना है कि आखिर, जुलाई सन् १६३६ में

निजाम साहब ने अपने फरमान में सुधारों की घोषणा की और यह स्पष्ट किया कि भविष्य में साधारणतया सभा करने के लिए पहले से स्वीकृति लेने की आवश्यकता न होगी, केवल सूचना देना पर्याप्त होगा; समाचारपत्र-प्रकाशन को प्रोत्साहन देनेवाले नियमों के बनाये जाने का भी आश्वासन दिया गया है। नये शासन सुधार अभी पूरी तरह अमल में नहीं आने लगे हैं। हिन्दू-मुसलिम एकता के प्रेमी बड़ी उत्सुकता से इस बात की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि भारतवर्ष के इस प्रधान राज्य में साम्प्रदायिता का निवारण हो, नागरिकों को निस्पक्षता पूर्वक अधिकार मिलें, और उत्तरदायी शासन की स्थापना हो।



# सत्तरवाँ अध्याय



## दक्षिण के देशी राज्य

दक्षिण के देशी राज्यों में से अधिकांश अपने यहाँ प्रजातंत्रात्मक सुधारों को प्रचलित करने में उत्तर या पश्चिम के देशी राज्यों की अपेक्षा आगे बढ़े हुए हैं। —एच० जी० तिलक

साधारणतया हैदराबाद की गणना भी दक्षिण के ही देशी राज्यों में होती है, परन्तु वह एक बड़ा और प्रमुख राज्य है। राजनैतिक दृष्टि से भी उसका प्रथक् और स्वतंत्र स्थान है। इस लिए उसके सम्बन्ध में हमने अलग पिछले अध्याय में, लिख दिया है। अब विचारणीय राज्य निम्नलिखित हैं:—(१) बम्बई प्रान्त के राज्य,

(काठियावाड़ और गुजरात के राज्यों को छोड़ कर), (२) मैसूर, रेजीडैन्सी के राज्य, और (३) मदरास के राज्य।

इनमें से प्रथम समूह के देशी राज्य 'कोल्हापुर रेजीडेन्सी और दक्षिण राज्य एजन्सी' में हैं। इनमें मुख्य कोल्हापुर, औंध, अकलकोट, भोर, जंजीरा, मुधोल, सांगली और सावंतवाडी है। कोल्हापुर के अतिरिक्त अन्य राज्य छोटे-छोटे, कम आय और थोड़ी आबादी वाले हैं। इनमें सब से बड़ा सांगली है, जिसका क्षेत्रफल ११३६ वर्गमील, आबादी ढाई लाख से अधिक और औसत वार्षिक आय सोलह लाख रुपये है। इन राज्यों में से सावनू और जंजीरा के शासक तो मुसलमान हैं। शेष सब राज्यों के शासक मराठा या कोकनस्थ ब्राह्मण हैं; इनके संस्थापक प्रायः शिवा जी महाराज या पेशवाओं के वंशज या उनके जागीदार थे।

शासन-सुधार की दृष्टि से औंध का अपना एक विशेष स्थान है। अन्य राज्यों में द्वैध शासनपद्धति ( जैसी ब्रिटिश भारत में सन् १९१९ के विधान से प्रचलित की गयी थी ) जारी करने में कोचीन अग्रगामी रहा है। उसका अनुकरण महाराष्ट्र के कई छोटे-छोटे राज्यों ने किया है। सांगली में इस पद्धति के अनुसार व्यवस्थापक सभा कार्य कर रही है। जामखंडी में भी ऐसा होने लग गया है। मिराज ने उसी ढङ्ग की योजना बना ली है, और भोर ने उसका वायदा किया है। परन्तु जब कि कोचीन में यह पद्धति वास्तविक रूप में है, महाराष्ट्र राज्यों में यह बहुत-कुछ दिखावटी ही है।

मैसूर रेजीडैन्सी में तीन राज्य हैं, उनमें मैसूर सब से बड़ा और

प्रमुख है। भारत-सरकार के सम्बन्ध की दृष्टि से इसका विशेष स्थान है। मदरास प्रान्त में त्रावंकोर, कोचीन, और पद्दूकोटा राज्य हैं। ये भारत-सरकार के सम्बन्ध की दृष्टि से मदरास राज्य एजन्सी में हैं। शासन के विचार से, इस समय तो औंध भारतवर्ष के सभी देशी राज्यों में अग्रगामी है; परन्तु अब से कुछ समय पहले तक साधारणतया मैसूर, कोचीन और त्रावंकोर बहुत प्रसिद्ध रहे हैं।

श्री० सत्यमूर्ति जी ने लिखा है—इन राज्यों में सुव्यवस्थित और स्वतन्त्र हाईकोर्ट और चीफ-कोर्ट स्थापित हैं। इनमें जो न्यायाधीश हैं, वे हटाये नहीं जा सकते, और विशेषतः वे जो अपने आपको स्वतन्त्र और ईमानदार सिद्ध कर चुके हैं। इन राज्यों के शासकों का शाही खर्च ('प्रिव पर्स') निश्चित है। इनमें धारा सभाएँ हैं, जिनमें निर्वाचित सदस्य बैठते हैं। अन्य नरेशों के विषय में जो बदनाम करनेवाली बातें उड़ती हैं, वे दक्षिण भारतीय नरेशों के विषय में स्वप्न में भी सुनायी नहीं देतीं। एकाध अपवाद को छोड़कर इन राज्यों के शासक चरित्रवान और योग्य व्यक्ति हैं। इनका पैसा व्यर्थ के तमाशों में या योरप की सैर में कदाचित ही खर्च होता है। जनता इनके पास आसानी से पहुँच सकती है। इन राज्यों के प्रबन्धक उत्साह और लगन पूर्वक कृषि, व्यापार और व्यवसाय के विकास उद्योग में लगे हुए हैं। इन सब बातों से मेरा मतलब यह है कि इन राज्यों की प्रजा सुशासित है।

इतने पर भी मैं इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि इन राज्यों के शासन का अन्तिम आधार स्वेच्छाचार है। मेरा दावा केवल इतना है कि वह एक सहानुभूति-पूर्ण स्वेच्छाचार है। इसके साथ ही साथ वहाँ पर काफी दमन भी होता है। प्रकाशन की स्वतन्त्रता बहुत कम है। राज्यों की ओर से यह कह कर सफाई पेश की जाती

है कि वहाँ के पत्र ही इस प्रकार के हैं कि उनका दमन करना पड़ता है। मगर यह तो व्यर्थ की बात है। साथ ही मुझे यह भी कहना पड़ेगा कि इन राज्यों में लोकमत दिनों दिन मजबूत होता जा रहा है। अतः मुझे आशा है कि शासन तथा लोकमत के संघर्ष तथा ब्रिटिश भारतीय घटनाक्रम के फल-स्वरूप आज का अर्द्ध-प्रतिनिधि-सत्तात्मक शासन जनता के प्रति पूर्ण रूपेण उत्तरदायी हो जायगा।' [ 'अर्जुन' रियासत अंक ]।

इस अध्याय में दक्षिण के देशी राज्यों के सम्बन्ध में कुछ सामूहिक बातें लिख चुकने पर, अगले अध्यायों में, नमूने के तौर पर इनमें से कुछ राज्यों की शासनपद्धति पर विचार किया जायगा।

# इकहत्तरवाँ अध्याय

## कोल्हापुर

कोल्हापुर राज्य इस शताब्दी के आरम्भ में राष्ट्रीय और सामाजिक आन्दोलन का केन्द्र था। शिक्षा में यह राज्य पूना के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर प्रगति कर रहा था।...तथापि यहाँ का राजनैतिक जीवन मरणोन्मुख रहा।
—कृष्ण शर्मा

यहाँ के राजवंश की स्थापना सुप्रसिद्ध शिवाजी महाराज के छोटे पुत्र से हुई है। राजा का पद 'छत्रपति महाराज' है। इस राज्य की अंगरेजों से संधि सन् १८१२ ई० में हुई। राजधानी कोल्हापुर नगर है। राज्य

का क्षेत्रफल ३२१७ वर्गमील है, इसमें से २१२४ वर्गमील का क्षेत्र तो खास राज्य का है, और शेष नौ जागीरदारों का। जनसंख्या दस लाख के लगभग है, जिसमें से अधिकांश हिन्दू हैं। औसत वार्षिक आय पचास लाख रुपये से अधिक है। आय का मुख्य साधन मालगुजारी है। श्री० राजाराम जी ने सन् १६२२ से १६४० तक राज्य किया। आपके देहान्त के बाद राजप्रबन्ध के लिए एक कौंसिल-आफ-एडमिनिस्ट्रेशन स्थापित की गयी है, उसके सभापति राज्य के दीवान मिस्टर पेरी हैं।

यद्यपि यह राज्य शिक्षा और समाज-सुधार में अपेक्षाकृत बहुत अग्रगामी रहा है, यहाँ शासन-यंत्र मध्ययुग का सा, सामन्तशाही के ढंग का ही रहा। श्री० राजाराम जी के समय में राजप्रबन्ध व्यक्तिगत था, लोक-प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी या उनके द्वारा नियंत्रित नहीं। महाराज को शासन और न्याय सम्बन्धी सर्वोपरि अधिकार था। कुछ महत्वपूर्ण विषय राज्य की कौंसिल के विचारार्थ उपस्थित किये जाते थे, जिसमें प्रधान मंत्री, माल-मंत्री, न्याय-मंत्री, और चीफ-सेक्रेटरी, राजस्व-सेक्रेटरी और महाराज के प्राइवेट सेक्रेटरी होते थे। विशेष विषय महाराज के लिए सुरक्षित थे।

राज्य में व्यवस्थापक सभा नहीं है। पंचायतों का प्रचार हो रहा है। मंदिरों का प्रबन्ध देवस्थान-मंडल करता है, जो पंचायतों से सम्बद्ध है। राज्य में कई म्युनिसपैलटियाँ हैं। कृषि और उद्योग-धंधों की उन्नति हो रही है। यहाँ शिक्षा के कार्य में अच्छी प्रगति रही है। एक 'आर्ट्स' ( साहित्य ) कालिज, एक 'ला' ( कानून ) कालिज,

और एक ट्रेनिंग कालिज यहाँ बहुत समय से हैं। स्त्री-शिक्षा, औद्योगिक तथा धार्मिक शिक्षा की भी व्यवस्था है। राज्य में लगभग दो दर्जन अस्पताल और शफाखाने हैं। कोढ़ियों तथा पागलों के लिए अलग-अलग संस्थाएँ हैं। पशु-चिकित्सा की भी व्यवस्था है।

राज्य में नौ जागीरें हैं, उनमें अंशतः जागीरदारों का अधिकार है। जागीरदारों को प्राचीन काल में जमीन या गाँव इसलिए मिले थे कि उनकी आय से वे सेना की व्यवस्था करें, और अपनी प्रतिष्ठा बनायी रखें, अब वे राज्य की सैनिक सेवा न करके उसके उपलक्ष्य में निर्धारित रकम देते हैं। उत्तराधिकार के समय वे नजराना देते हैं। सन १६३० ई० से पहले उनपर कुछ हद तक कोल्हापुर के रेजीडेंट की भी निगरानी रहती थी, अब वे प्रायः दरबार के ही अधीन हैं। छोटे जागीरदार रेजीडेंट और दरबार के संयुक्त संरक्षण में हैं। जागीरदारों के विरुद्ध दीवानी मामलों का फैसला दरबार का एक प्रतिनिधि तथा रेजीडेन्ट मिलकर करते हैं। अधिकांश जागीरों के फौजदारी मामलों में दरबार को निर्धारित अधिकार है। कुछ जागीरों में जागीरदारों को ही बहुत-कुछ अधिकार दिया गया है।

यहाँ लोगों का आर्थिक तथा नागरिक जीवन बहुत अवनत अवस्था में ही रहा है। उनके कष्टों का एक मूल कारण राज्य के शिकार-सम्बन्धी नियम थे। राज्य में उपजाऊ भूमि के अन्दर कई-कई वर्गमीलों के क्षेत्रफल वाले बड़े-बड़े बागीचे जंगली सुअरों या हिरनों के शिकार के लिए सुरक्षित रखे गये हैं, और इन जंगली जानवरों से बहुत हानि होती है। सन् १६३०-३१ में लोगों को असह्य क्षति हुई।

उन्होंने दरबार के सामने स्थिति रखी। उसके फल-स्वरूप कुछ अस्थायी सुधार हुआ।

पिछली मनुष्य-गणना के समय राज्य में तेरह समाचार पत्र थे, पर पीछे सरकारी दमन आदि के कारण इनमें केवल तीन ही रह गये, और ये भी स्वतंत्रता पूर्वक आलोचना करनेवाले न रहे। प्रजापरिषद को कैसी मुसीबतों का सामना करना पड़ा, यह इससे विदित हो जायगा कि यहाँ दो ग्राम-पटेलों के विरुद्ध इसलिए कार्रवाई की गयी कि उन्होंने परिषद के नेताओं की हरकतों के सम्बन्ध में ब्यौरेवार सूचना न देकर अपनी 'अयोग्यता' सूचित की थी; इन्हें ढाई-ढाई साल की सज़ा दी गयी। परिषद को अपना प्रथम संगठित सम्मेलन राज्य की सीमा से बाहर ही करना पड़ा।

पहले कहा गया है कि सन् १९४१ से यहाँ राजप्रबन्ध के लिए एक कौंसिल-आफ-एडमिनिस्ट्रेशन है जिसके सभापति मिस्टर पेरी हैं। इस कौंसिल की स्थापना से जनता को बहुत समय के बाद खुली हवा में साँस लेने का अवसर मिला। विगत वर्षों में रिश्वत, माल की जब्ती, नागरिक-स्वतंत्रता का अपहरण आदि कई दृष्टियों से यहाँ की राजव्यवस्था बहुत असंतोषजनक थी। अब लोगों की शिकायतें दूर करने की ओर ध्यान दिया जाने लगा है। विचित्र संयोग है कि राज्य के वास्तविक शासक और उसके भारतीय दीवान के समय में जो बात न हो पायी, अब अस्थायी रूप से शासन करने वाले विदेशी पदाधिकारी द्वारा होने की आशा है। परन्तु इसे अपवाद ही समझना चाहिए। और हाँ, मुख्य बात यह है कि कार्यकर्ता लोगों के सामयिक कष्टों के दूर करने में ही न लगे रहें। जनता का स्थायी हित उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित करने से ही होगा, उसके लिए भरसक उद्योग किया जाना चाहिए।

---

# बहत्तरवाँ अध्याय

## औंध

निस्सन्देह औंध एक छोटा सा राज्य है, परन्तु उसने वह मार्ग दर्शा दिया है, जिसपर बड़े-बड़े राज्यों का यथा-सम्भव जल्दी ही चलना बुद्धिमानी का कार्य होगा। —एम० एस० अणे

बम्बई प्रान्त का यह छोटा सा राज्य अपने शासन-सुधारों के कारण खूब प्रसिद्ध है। इसका क्षेत्रफल ५०१ वर्गमील, जनसंख्या लगभग अस्सी हजार, और औसत वार्षिक आय चार लाख रुपये हैं। यहाँ के शासक ब्राह्मण हैं, और पन्त प्रतिनिधि कहलाते हैं। ये दक्षिण के प्रथम श्रेणी के सरदारों में गिने जाते है। ये परशुराम त्रिम्बक के वंशज कहे जाते हैं, जिन्हें सन् १७०० के लगभग, सतारा की राणी ताराबाई (राजाराम भोंसले की विधवा) ने जागीर दी थी।

मेहरबान गोपाल कृष्णराव (उपनाम नानासाहब पन्त) को जो सन् १६०५ में गद्दी पर बैठे थे, गद्दी से उतार कर सरकार ने उनके चाचा भवनराव (उपनाम बालासाहब पन्त) को सन् १६०६ में गद्दी पर बैठाया। आपकी महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि आपने स्वेच्छा से जनता को वह शासनाधिकार प्रदान किया जिसे देने में अनेक राजा, प्रजा के बहुत आन्दोलन करने पर भी, बड़ी शिथिलता और संकोच किया करते है।

राजा साहब के दिसम्बर १६२३ के आदेशानुसार यहाँ एक प्रतिनिधि सभा (रेप्रेजेन्टेटिव असेम्बली) बनायी गयी थी। सन् १६३० में दूसरा विधान बनाया गया। इसके अनुसार यह निश्चय हुआ दोनों मंत्री व्यवस्थापक सभा के सदस्यों में से चुने जायँगे, और उनमें से कम-से-कम एक सभा के निर्वाचित सदस्यों में से होगा। पश्चात् राजा साहब के पुत्र श्री० अप्पा जी ने म० गाँधी से विचार-विनिमय किया। सन् १६३६ का नया विधान बनाया गया, और बम्बई के भूतपूर्व कांग्रेसी प्रधान-मंत्री श्री० खेर से उत्तरदायी शासन का उद्‌घाटन कराया गया।

नये विधान के अनुसार राजा साहब राज्य के प्रथम सेवक हैं। उनके तीन मंत्री हैं। ये व्यवस्थापक सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। व्यवस्थापक सभा द्वारा अविश्वास का प्रस्ताव आने पर मंत्री अपना स्थान रिक्त कर देंगे।

व्यवस्थापक सभा में १५ सदस्य होते हैं। पाँच ताल्लुका-कौंसिलों के सभापति अपने पद के कारण इस सभा के सदस्य होते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक ताल्लुका-कौंसिल व्यवस्थापक सभा की सदस्यता के लिए दो अन्य व्यक्ति चुनती है; इन दो व्यक्तियों में से एक कौंसिल के बाहर का भी हो सकता है। जिन कानूनी मसविदों को सभा पास कर देती है, वे श्रीमन्त राजा साहब की स्वीकृति मिलने पर कानून बन जाते हैं। श्रीमन्त राजा साहब अपनी स्वीकृति, केवल तीन बार रोक सकते हैं। शासन विधान सम्बन्धी किसी विषय की व्याख्या के सम्बन्ध में मतभेद उपस्थित होने पर उसका निर्णय हाईकोर्ट करेगा,

और वह निर्णय अन्तिम माना जायगा। व्यवस्थापक सभा को राज्य की आय पर पूर्ण एकाधिकार है।

किसी ताल्लुका-कौंसिल का सभापति वह व्यक्ति होता है, जिसे उस कौंसिल के सदस्य निर्वाचित करें। और, ताल्लुका-कौंसिल के सदस्य वे व्यक्ति होते हैं, जो उस ताल्लुके के गाँवों और कस्बों की पंचायतों के सभापति हों। पंचायतों के सदस्यों के निर्वाचन के लिए प्रत्येक बालिग पुरुष स्त्री को मताधिकार है। इससे यह स्पष्ट है कि शासनयंत्र का आधार पंचायतें हैं। ताल्लुक-कौंसिल के सदस्यों का निर्वाचन परोक्ष है और व्यवस्थापक सभा का तो और भी परोक्ष। प्रारम्भिक अवस्था में यह विशेष आपत्तिजनक नहीं कहा जा सकता। आशा है, आगे जाकर इसमें यथेष्ट संशोधन किया जायगा और प्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति का अधिक व्यवहार होगा।

राज्य भर में पंचायतों द्वारा साधारण न्याय-कार्य निश्शुल्क ही होता है। यही नहीं, राज्य की ओर से एक वकील रहता है जो बिना किसी तरह की फीस लिये, लोगों को कानूनी सलाह देता है। सन् १९३९ में व्यवस्थापक सभा ने एक कानून पास करके दीवानी और फौजदारी नियमों का संगठन और संशोधन किया है। इसके अनुसार पाँच-पाँच ग्राम-पंचों की न्याय-सभाएँ हैं, जिनके अध्यक्ष न्यायाधीश हैं। न्याय सभा को ५००० रु० तक दीवानी के तथा अव्वल दर्जे के मजिस्ट्रेट तक के फौजदारी के अधिकार होते है। सब से ऊँचा न्यायालय सरन्यायाधीश ( चीफ जज ) का है, जिसे निम्न न्यायालयों की अपील सुनने तथा उनके निरीक्षण और नियंत्रण का अधिकार है। उपर्युक्त कानून का उद्देश्य अनावश्यक मुकदमेबाजी पर प्रतिबन्ध लगाने और फैसला जल्दी होने की व्यवस्था करना है। भारतवर्ष में

जनता का कितना समय, शक्ति और द्रव्य अदालतों के इन्द्रजाल में नष्ट होता है, यह सर्वविदित है। ऐसी स्थिति में औंध ने सुन्दर पथ-प्रदर्शन किया है। राजकीय प्रकाशन* में इस विषय की अनेक शिक्षा-प्रद बातों का समावेश है।

श्री राजा साहब पहले अपने लिए ६० हजार रुपये वार्षिक लेते थे, अब इन्होंने स्वयं ही उसे कम करके केवल ३६ हजार रुपये लेना स्वीकार कर लिया है, तथा सब को किफायत से काम करने का परामर्श दिया है। व्यवस्थापक सभा के इस प्रस्ताव को कि 'सरकारी नौकर, कौंसिल के सभासद, तथा तालुका-समिति और पंचायतों आदि के सदस्य राज्य में बनी हुई शुद्ध खादी का ही व्यवहार करें', प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार करते हुए राजा साहब ने कहा है कि "इस प्रस्ताव में सरकारी नौकरों का जो अलग वर्ग माना गया है, वह हमें पसन्द नहीं है। आप सब प्रजा ही औंध-सरकार है, और हम सब प्रजा के नौकर हैं; जो आदमी वेतन लेते हैं, वे ही नौकर नहीं हैं। औंध राज्य की सेवा करके उसकी उन्नति करने का अधिकार हम सब को है। इसलिए आप यह भेद-भाव अपने मन से निकाल दीजिए।"

जब राजा और प्रजा दोनों मिलकर किसी राज्य की सेवा में योग दें, तो उसकी उन्नति में क्या सन्देह! औंध का यह उदाहरण अन्य राजाओं के लिए कितना अनुकरणीय है!

---

*Administration, of Justice in Aundh : *by* V. S. Bakhle Sarnyayadhish.



# तिहत्तरवाँ अध्याय

## मैसूर

सब कुछ देखते हुए दक्षिण भारतीय राज्यों का शासन अन्य भारतीय राज्यों की अपेक्षा उत्तम है। मैसूर, कोचीन और त्रावंकोर दक्षिण भारत के सब से महत्वपूर्ण राज्य हैं। —सत्यमूर्ति

यह दक्षिण का एक प्रमुख देशी राज्य है। इसका क्षेत्रफल २९,४७५ वर्गमील, जनसंख्या सन् १९४१ की मनुष्य-गणना के अनुसार, ७३ लाख, और औसत वार्षिक आय लगभग चार करोड़ रुपये है।

पहले यहाँ हिन्दू राज्य रहा। इस समय भी हिन्दू राजवंश है, जिसका सम्बन्ध इस राज्य से, चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग से है। चिक कृष्णराज वाडियर के शासन-काल (१७३४-६५) में हैदरअली ने इस राज्य को दबा लिया और वह यहाँ का शासक बन बैठा। उसके बाद उसके पुत्र टीपू सुलतान का अधिकार हुआ। सन् १७९९ में वह हार गया और लड़ते-लड़ते मारा गया। तब यहाँ का राज्य अंगरेजों ने हिन्दू राजघराने को दिला दिया। सन् १८३१ में, कुव्यवस्था होने पर सरकार ने इसका प्रबन्ध अपने हाथ में लिया। पचास वर्ष बाद यह राज्य पुनः हिन्दू राजा के अधिकार में आया। महाराजा श्रीकृष्णराज वाडियर सन् १८९४ ई० में गद्दी पर बैठे। उस समय वे केवल दस वर्ष के थे। राजकाज उनकी माताजी देखने

लगीं; उनकी सहायता के लिए एक दीवान के अतिरिक्त तीन सदस्यों की कौंसिल थी। आठ वर्ष तक रीजेन्सी द्वारा शासन-प्रबन्ध बहुत उत्तम रीति से हुआ। पश्चात् सन् १९०२ में महाराजा श्रीकृष्णराज वाडियर ने राजकाज संभाला।

यहाँ शासन-कार्य आधुनिक पद्धति से किया जाता है। प्रत्येक प्रकार के महत्वपूर्ण कार्यों के लिए अलग-अलग विभागों की व्यवस्था है, और उनके संचालन के लिए यथेष्ट अधिकारी नियत हैं। शासन-पद्धति प्रायः वही है जो सन् १८३१ से १८८१ तक के पचास वर्षों में प्रचलित थी, जब कि यह राज्य अंगरेजी अमलदारी में रहा था। इतने दीर्घकाल तक व्यवस्थित ढंग से शासन होते रहने से यहाँ उसके स्वरूप में नवीनता का समुचित समावेश हो गया है।

यहाँ प्रतिनिधि-सभा (रेप्रेजंटेटिव एसेम्बली) की स्थापना सन् १८८१ में हुई। इसका उद्देश्य यह था कि राज्य के कामों में, और जनता की इच्छाओं तथा हितों में अधिक अनुरूपता अथवा मेल हो। सन् १९०७ में यहाँ व्यवस्थापक परिषद् स्थापित की गयी, 'जिससे कानून बनाने में उन गैर-सरकारी सज्जनों का सहयोग मिले, जो क्रियात्मक अनुभव और स्थानीय परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं का ज्ञान रखने के कारण इस कार्य के लिए योग्य हों।'

यह बात बहुत चिन्तनीय है कि शासन-सुधार-प्रेमी होने का दम भरनेवाली भारत-सरकार का इस विषय में अच्छा रुख न रहा। उसने मैसूर राज्य के सुधारों का जी खोलकर स्वागत न किया। अपनी स्वीकृति प्रदान करते हुए सर्वोच्च सत्ता ने यह स्पष्ट कर दिया कि 'कानून बनाने

के लिए चाहे जिस संस्था का उपयोग किया जाय, मैसूर राज्य की सब व्यवस्था का अन्तिम उत्तरदायित्व एकमात्र मैसूर के महाराजा साहब पर है, और कौंसिलयुक्त गवर्नर-जनरल को इस व्यवस्था के नियंत्रण पर जो अधिकार सन् १८८१ के शासनाधिकार-परिवर्तन-पत्र ( 'इन्स्ट्रूमेंट-आफ ट्रांसफर' ) से है, उसमें कोई अन्तर नहीं आता।'

सन् १९२३ में शासन-सुधार के प्रश्न पर एक कमेटी द्वारा पुनः विचार हुआ। इस कमेटी के अध्यक्ष सर वृजेन्द्रनाथ सील थे। इसकी सिफारिशों से कई महत्वपूर्ण सुधार किये गये। मैसूर की संधि के अनुसार, इन सुधारों पर भारत-सरकार की स्वीकृति ली गयी।

वर्तमान विधान सन् १९३९ में जारी किया गया था। राज्य की प्रवन्धकारिणी में दीवान के अतिरिक्त चार मंत्री होंगे। उनमें से दो मंत्री जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों में से हुआ करेंगे; और, गैर-सरकारी होने के आधार पर किसी मंत्री को किसी भी विभाग का काम संभालने के लिए अयोग्य नहीं ठहराया जा सकेगा। इस प्रकार नामजद और निर्वाचित मंत्रियों में कोई अन्तर नहीं माना जायगा। यह ठीक ही है। पर अब तो इस उन्नत राज्य से यह आशा की जाती है कि चारों ही मंत्री प्रजा-प्रतिनिधियों में से, और उनके प्रति उत्तरदायी हों।

राज्य में कानून-निर्माण से सम्बन्ध रखनेवाली दो सभाएँ हैं— (१) प्रतिनिधि-सभा ( 'रेप्रेजेन्टेटिव असेम्बली' ) और व्यवस्थापक परिषद ( 'लेजिसलेटिव कौंसिल' )। दोनों की अवधि चार-चार वर्ष की है। प्रतिनिधि-सभा में ३१० सदस्य होंगे। इसे कानूनी मसविदों

पर परामर्श देने भर का अधिकार है। यदि किसी मसविदे के सिद्धान्त को इस सभा के कुल सदस्यों में से दो-तिहाई भी विरोध करें तो भी सरकार केवल साधारण दशा में ही इस सभा के निर्णय को स्वीकार करेगी, अर्थात् उसके लिए इस सभा का निर्णय मान्य करना अनिवार्य नहीं है। जिस कानूनी मसविदे को यह पास कर दे, वह व्यवस्थापक परिषद में उपस्थित किया जा सकता है। जब वह मसविदा अन्ततः परिषद में स्वीकार हो जाय तो उसे प्रतिनिधि-सभा के सामने रखना आवश्यक नहीं होता। वह सभा की सम्मति सूचित करने वाले वक्तव्य सहित महाराज की स्वीकृति के लिए उपस्थित किया जाता है। आकस्मिक आवश्यकता होने पर, इस सभा के परामर्श बिना ही दो बार छः-छः माह के लिए कानून बनाये जा सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि प्रतिनिधि-सभा का कानून-निर्माण में जो भाग है, वह कितना परिमित है।

व्यवस्थापक परिषद में ६८ सदस्य होंगे—४४ निर्वाचित, और शेष नामज़द। इसका सभापति प्रथम बार तो महाराज द्वारा नामज़द है, उसके बाद वह परिषद द्वारा चुना हुआ ग़ैर-सरकारी व्यक्ति होगा; हाँ इसमें यह शर्त होगी कि महाराज उसे स्वीकार कर लें। उपसभापति भी निर्वाचित, किन्तु महाराज द्वारा स्वीकृत, होगा। परिषद के कुल सदस्यों में कम-से-कम दो-तिहाई द्वारा अविश्वास का प्रस्ताव होने पर सभापति तथा उपसभापति अपने पद से पृथक् हो जायँगे।

व्यवस्थापक परिषद में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत अवश्य है, परन्तु एक-तिहाई से अधिक सदस्यों का नामज़द होना मैसूर जैसे उन्नत

राज्य में शोभास्पद नहीं है। आवश्यकता है कि समस्त अथवा अधिकांश सदस्य निर्वाचित हों। इस विषय में दूसरी चिन्तनीय बात राज्य की पूर्व प्रथा का परित्याग करके पृथक् निर्वाचक संघों की स्थापना है। यह कहा गया है कि मुसलमानों की सर्वसम्मत इच्छा होने से उनके लिए पृथक् निर्वाचक संघों की प्रतिगामी व्यवस्था की गयी है।* मैसूर सरकार ने यह आशा की है कि इससे साधारण नागरिक भावना की वृद्धि में बाधा न होगी। ब्रिटिश भारत में गत वर्षों में जो कटु अनुभव हुआ है, उसका विचार करते हुए उपर्युक्त आशा दुराशामात्र है। शासन-सुधार कमेटी की सिफारिश होने पर भी नवीन शासन विधान में नागरिक अधिकारों का निर्देश नहीं किया गया है। यह कहा गया है कि 'ऐसा करना अनावश्यक है। इस राज्य में जनता को नागरिक अधिकार बहुत कुछ हैं ही।' तथापि विधान में इनका स्पष्ट निर्देश हो जाना अच्छा ही रहता।

म्युनिसपैलटियाँ और जिला-बोर्ड अच्छा काम कर रहे हैं। पंचायतों का यहाँ खूब प्रचार है। शिक्षा की दृष्टि से, सन् १९४१ ई० की मनुष्य-गणना के अनुसार मैसूर ब्रिटिश भारत से कुछ ही कम है।† देशी राज्यों में सबसे प्रथम स्थापित विश्वविद्यालय मैसूर का ही है। यह १९१६ में स्थापित हुआ। इसमें राज्य की मातृभाषा के अध्ययन तथा साहित्य-निर्माण की ओर बहुत ध्यान दिया जाता है। राज्य में प्रायः हाई स्कूल से नीचे की शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य है। कृषि, व्यापार,

---

* ईसाइयों को भी पृथक् निर्वाचन का 'अधिकार' दिया गया है।

† ब्रिटिश भारत में फी हजार १२५ स्त्री-पुरुष शिक्षित हैं, मैसूर में १२१।

इञ्जिनयरी, डाक्टरी तथा औद्योगिक विषयों की शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध है। कुल मिलाकर राज्य की आय का लगभग छठा भाग शिक्षा-प्रचार में खर्च किया जाता है।

जनता में राजनैतिक जागृति, संगठन और रचनात्मक कार्य के लिए यहाँ मैसूर-राज्य-कांग्रेस कई वर्षों से प्रयत्नशील है। सन् १९१७ से यहाँ प्रजामित्र मंडली विशेषतया दलित जातियों के उत्थान का कार्य करने लगी। सन् १९३० में 'पीपल्स पार्टी' नामक संस्था उत्तर-दायी शासन की प्राप्ति के लिए स्थापित हुई। वह पीछे प्रजामित्र मंडली में मिल गयी। यह संयुक्त संस्था 'पीपल्स फेडरेशन' कहलाने लगी। सन् १९३७ में यह संस्था कांग्रेस में मिल गयी। अब राष्ट्रीय कार्य के लिए कांग्रेस की शक्ति बढ़ गयी।*

खेद का विषय है कि देशी राज्यों में बहुत उन्नत समझे जाने वाले इस राज्य में भी नागरिक स्वाधीनता के प्रति यथेष्ट भावना का परिचय नहीं मिलता।

यहाँ भी कांग्रेस वालों को दमन-कानूनों, तथा लाठियों और गोलियों तक का शिकार होना पड़ा है। पहले (सोलहवें अध्याय में) यह उल्लेख किया जा चुका है कि अक्तूबर १९३७ में कांग्रेस महासमिति ने इस राज्य के दमन के विरोध में प्रस्ताव पास किया था। सन् १९४० की बात है। जिला-बोर्डों और म्युनिसपैलटियों के नये निर्वाचन हुए, उनमें कांग्रेस ने भाग लिया तो राज्य की ओर से अनावश्यक और अनुचित बाधाएँ उपस्थित की गयीं। सार्वजनिक सभा करने, नारे लगाने

* Mysore: A Study, *by* Dr. P. Sitaramayya & B. Mehta.

और 'लाउड स्पीकर' आदि का उपयोग करने पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। परन्तु राज्य का इतना हस्तक्षेप होते हुए भी कांग्रेस ने निर्वाचन में अद्भुत सफलता प्राप्त की और यह सिद्ध कर दिया कि ग्रामीण तथा नागरिक जनता पर उसका यथेष्ट प्रभाव है।

राज्य का नया विधान मैसूर कांग्रेस की दृष्टि में संतोषजनक न था, तथापि उसने प्रतिक्रियावादियों को रोकने के उद्देश्य से व्यवस्थापक परिषद और प्रतिनिधि सभा के चुनाव में भाग लिया, और राज्य की ओर से विविध बाधाएँ होते हुए भी खासी सफलता प्राप्त की। परन्तु राज्य ने इससे कुछ शिक्षा न ली। गैर-सरकारी मंत्रियों का चुनाव करते समय कांग्रेस की सर्वथा उपेक्षा की गयी। यदि वास्तव में राज्य उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित करना चाहता है तो उसे अपना दृष्टिकोण सुधारना और कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करना चाहिए।

# चौहत्तरवाँ अध्याय

## कोचीन

मैसूर, कोचीन और त्रावंकोर अपने वैधानिक विकास में, कई बातों में समान हैं। ये प्रथम स्थान प्राप्त करने के लिए, बिना जाने आपस में बाजी लगा रहे हैं। —डा० पट्टाभि सीतारमैय्या

इस राज्य का क्षेत्रफल १७१८ वर्गमील, जनसंख्या सन् १९४१ ई० की मनुष्य-गणना के अनुसार सवा चौदह लाख, और वार्षिक औसत

आय अस्सी लाख रुपये है।

यहाँ के शासक चेरामल पीरूमल के वंशज हैं, जिनके विषय में कहा जाता है कि ये नवीं शताब्दी के आरम्भ में केरल प्रान्त के शासक थे। सोलहवीं-सतरहवीं शताब्दी में पुर्तगाल और हालैंड वाले इस राज्य में व्यापार के लिए रहे। सन् १७७६ ई० में हैदरअली ने, और पीछे टीपू ने इस राज्य पर अधिकार कर लिया था। सन् १७६१ ई० में यहाँ के राजा और ईस्ट-इंडिया-कम्पनी के बीच संधि हुई, जिसके अनुसार राजा ने अंगरेजों की अधीनता स्वीकार की, और वह अंगरेजों को सालाना खिराज देने लगा।

इस राज्य का शासन बहुत समय से प्रगतिशील रहा है। अब से तीस वर्ष पहिले सन् १६१२ में यहाँ के दीवान साहब सर ए० आर० बनर्जी ने एक सलाहकार समिति (एडविजरी कौंसिल) की योजना उपस्थित की थी, जिसमें लगभग दो-तिहाई सदस्य निर्वाचित हों, और शेष नामज़द।

कुछ पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि शासन-सुधार की ऐसी बात सर्वोच्चसत्ता को अच्छी नहीं लगी। कोचीन दरबार को उसकी ओर से यह सुनना पड़ा, 'सरकार यह विचार करने में असमर्थ है कि महाराजा साहब ने इस बात को भली भाँति महसूस कर लिया हो कि इससे दरबार के अधिकारों को—जिनके साथ दीवान के अधिकार अविच्छिन्न रूप से मिले हुए हैं—कैसा धक्का लगेगा, अथवा उन अधिकारों की पूर्णता कितनी खतरे में पड़ जायगी, जो महाराजा साहब अपने उत्तराधिकारियों के लिए अमानत (ट्रस्ट) के रूप में लिये हुए हैं, और जो सर्वोच्च सत्ता के साथ की हुई संधियों के दायित्व के मुख्य आधार हैं।'

महाराजा श्री० सरराम वर्मा सन् १९१४ में गद्दी पर बैठे। शासन-कार्य के लिए राज्य छः ताल्लुकों में बँटा हुआ है। राजधानी एरना-क्यूलम है।

सब शासन-कार्य महाराजा साहब के नाम से, उनके नियंत्रण में होता है। उनका प्रधानमंत्री दीवान है। उसकी नियुक्ति महाराजा साहब द्वारा होती है* और वह उनके आदेशानुसार कार्य करता है। कार्यकारिणी में दीवान के अतिरिक्त एक मंत्री होता है, जिसे महाराजा साहब व्यवस्थापक परिषद के सदस्यों में से चुनते हैं। वह अपने कार्य के लिए परिषद के प्रति उत्तरदायी होता है। उसके सुपुर्द प्रायः निम्न-लिखित विभाग रहते हैं:—कृषि, सहकारिता, गृह-उद्योगों की उन्नति, सार्वजनिक स्वास्थ्य, आयुर्वेद, पंचायतों का प्रबन्ध, और दलितोद्धार। मंत्री के सुपुर्द किये हुए विषय हस्तान्तरित विषय कहलाते हैं, और शेष (दीवान के सुपुर्द) विषय, रक्षित। कौन-कौन से विषय हस्ता-न्तरित हो, इसका निश्चय महाराजा साहब करते हैं, और ऐसा करने में वे आवश्यकतानुसार दीवान से परामर्श करते हैं।

एडवोकेट-जनरल राज्य को कानूनी विषयों में परामर्श देता है, तथा राज्य का कानूनी या अदालती कार्य करता है। उसकी नियुक्ति

---

* पिछले दिनों सर शमुखम चेटी के दीवान पद से हट जाने के बाद महाराजा साहब किसी कोचीनवासी को ही इस पद पर नियुक्त करना चाहते थे, पर ब्रिटिश सरकार ने यह स्वीकार न किया। अन्ततः महाराज को उसकी इच्छानुसार एक योरपियन को दीवान बनाना पड़ा। कोचीन जैसे सुशासित राज्य में ब्रिटिश सरकार का यह हस्तक्षेप क्या अर्थ रखता है? क्या यह सुशासन सरकार को पसन्द नहीं, अथवा वह सत्ता के स्थान पर अपने ही आदमी को रखना चाहती है?

महाराज द्वारा की जाती है; और इस पद पर ऐसा व्यक्ति नियुक्त किया जाता है, जिसमें हाईकोर्ट का जज होने की योग्यता हो।

व्यवस्थापक परिषद ( 'लेजिसलेटिव कौंसिल' ) की स्थापना यहाँ सन् १६२५ ई० में हुई थी। आरम्भ में उसमें ३० निर्वाचित और १५ नामजद सदस्य थे। सन् १६३२ की घोषणानुसार मताधिकार बढ़ाया गया, और परिषद में ३६ निर्वाचित और १८ नामजद सदस्य रखे गये। सन् १६३८ की घोषणा के अनुसार अब इसका संगठन इस प्रकार है:—

| | | |
|---|---|---|
| निर्वाचित | | ३८ |
| साधारण | २७ | |
| विशेष | ११ | |
| नामजद | | २० |
| गैर-सरकारी | १२ | |
| सरकारी | ८ | |
| योग | | ५८ |

उपर्युक्त निर्वाचन तथा नामजदगी निर्धारित नियमों के अनुसार होती है। इन सदस्यों के अतिरिक्त, महाराजा किसी प्रस्ताव के प्रसंग में दो ऐसे व्यक्तियों को नामजद कर सकते हैं, जिन्हें उक्त प्रस्ताव के विषय के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान या अनुभव हो। इन व्यक्तियों को, जितने समय के लिए ये नामजद हों, सदस्यों के पूर्ण अधिकार होंगे।

मंत्री और एडवोकेट-जनरल को परिषद में बैठने और भाषण करने का अधिकार होगा, परन्तु वे उसमें मत नहीं दे सकेंगे।

परिषद का सभापति दीवान होता है। उसके सहित कम-से-कम १५ सदस्यों की उपस्थिति में परिषद का कार्य होता है। सभापति की अनुपस्थिति में उसका कार्य उपसभापति ( डिप्टी प्रेसीडेन्ट ) करता है, जो परिषद द्वारा निर्वाचित होता है। उसका वेतन परिषद निश्चित करती है।

विशेषतया निम्नलिखित विषय परिषद के क्षेत्र से बाहर रखे गये हैं:—(१) राजपरिवार। (२) महाराजा का सर्वोच्च सत्ता तथा अन्य राज्यों से सम्बन्ध। (३) जिन विषयों का सम्बन्ध, सम्राट् से की हुई संधियों से है। (४) राज्य की सेना। (५) हाईकोर्ट के जजों का, अपने सरकारी कर्तव्य को पालन करने में, व्यवहार। (६) महाराज के नियंत्रण के मंदिरों सम्बन्धी विषय। (७) अपराधियों का प्रत्यार्पण। (८) योरपियन ब्रिटिश प्रजा।

कुछ विषयों सम्बन्धी प्रस्तावों या संशोधनों को परिषद में उपस्थित किये जाने के लिए महाराजा साहब की पूर्व स्वीकृति लेना आवश्यक है। प्रत्येक प्रस्ताव सिफारिश के रूप में होता है। परिषद द्वारा पास किये हुए प्रस्ताव को महाराजा की स्वीकृति मिल जाय तो वह कानून बन जाता है।

परिषद का कार्यकाल साधारणतया तीन साल का होता है; महाराजा साहब चाहें तो विशेष दशा में इस अवधि को बढ़ा सकते हैं, अथवा इससे पहले परिषद को भंग कर सकते हैं। परिषद की सदस्यता के लिए वैसी ही बातें अयोग्यता मानी जाती हैं, जैसी ब्रिटिश भारत में। कोई व्यक्ति ब्रिटिश भारत का नागरिक होने के कारण मेम्बरी के अयोग्य नहीं ठहराया जाता।

परिषद का कार्य संचालन, सदस्यों की राजभक्ति की शपथ, मत देने, भत्ते और विशेषाधिकार, प्रश्न पूछने तथा निर्वाचन आदि के विषय में वैसे ही नियम हैं, जैसे ब्रिटिश भारत की व्यवस्थापक सभाओं में हैं। शपथ कोचीन के महाराजा तथा भारत-सम्राट दोनों के प्रति वफादार रहने की ली जाती है। परिषद का कार्य अंगरेजी में होता है परन्तु जो सदस्य अंगरेजी बोलने में असमर्थ होता है, वह मलायलम या तेलगू में भाषण दे सकता है।

बजट व्यवस्थापक परिषद में प्रति वर्ष नियमानुसार उपस्थित किया जाता है। यथा-सम्भव रक्षित और हस्तान्तरित विषयों के लिए पृथक् माँग रखी जाती है। दीवान से निर्धारित किये हुए समय में बजट पर बहस होती है और बाद में सरकारी माँगों के विषय में विचार होता है। परिषद चाहे जिस माँग की रकम को घटा सकती है, अथवा रद्द भी कर सकती है। परन्तु यदि दीवान चाहे तो वह किसी घटायी या रद्द की हुई माँग की रकम पूरी करा सकता है। इस राज्य को अपना बन्दरगाह रखने का सौभाग्य है, उससे उसे आयात-निर्यात-कर की अच्छी आय होती है।

राज्य में न्याय करने वाली प्रधान संस्था हाईकोर्ट है। उसमें चीफ-जस्टिस सहित तीन जज हैं, उनकी नियुक्ति महाराज द्वारा होती है। निर्धारित योग्यता वाला व्यक्ति ही जज नियत किया जा सकता है। उसके नीचे दीवानी मामलों का विचार करने के लिए जिला-अदालतें, तथा मुंसिफों की अदालतें हैं। फौजदारी मुकदमों का फैसला सेशन अदालतों तथा सब-मजिस्ट्रेटों की अदालतों में होता है। पचास

रुपये तक की मालियत के मामले ग्राम-पंचायतों द्वारा निपटाये जाते हैं।

शिक्षा-प्रचार की दृष्टि से भारतवर्ष भर में, केवल त्रावंकोर को छोड़कर, यह राज्य सबसे बढ़कर है। यहाँ फी हजार साक्षरों की संख्या ३५४ है। पाँच वर्ष से लेकर नौ वर्ष तक की आयु के समस्त बालकों में ८० प्रतिशत, प्राइमरी स्कूलों में शिक्षा पा रहे हैं। प्रारम्भिक शिक्षा देशी भाषाओं के स्कूलों में निश्शुल्क है, परन्तु जिन स्कूलों में अंगरेजी पढ़ायी जाती है, उनमें निश्शुल्क नहीं है। इन स्कूलों में भी आधे से अधिक खर्च राज्य ही करता है। यदि थोड़ा सा खर्च और सहकर इनमें भी प्रारम्भिक शिक्षा निश्शुल्क कर दी जाय तो बहुत अच्छा हो। ग्राम-पुस्तकालयों का कार्य खूब चल रहा है।

राज्य में तीन-चार दैनिक तथा एक दर्जन के लगभग साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होते हैं। राज्य की जनसंख्या को देखते हुए पत्र-पत्रिकाओं का यह प्रचार अच्छा है, और शिक्षा-विस्तार के साथ इसका बढ़ना स्वाभाविक ही है। हाँ, पिछले दिनों यहाँ पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन पर बहुत प्रतिबन्ध रहा है। इससे लोकमत स्वतंत्रता-पूर्वक व्यक्त नहीं पाता। प्रेस एक्ट में आवश्यक सुधार किया जाना चाहिए।

महाराजा साहब ने शासन-विधान में सुधारों का अन्तिम ध्येय उत्तरदायी शासन स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है, और कुछ विषय मंत्री को सौंपे हैं। आवश्यकता है कि मंत्री व्यवस्थापक परिषद् का विश्वास-पात्र रहे, और जब उसके प्रति अविश्वास का प्रस्ताव आवे तो वह त्याग पत्र दे। अन्यथा उसकी स्थिति एक नामजद व्यक्ति की सी हो जाती है।

कोचीन में अभी इस विषय की यथेष्ट व्यवस्था नहीं है। पुनः यहाँ जनता की माँग है कि अन्य जनहितकारी विषयों का प्रबन्ध भी लोक-निर्वाचित मंत्रियों को सौंपे जाँय। कोचीन शासन सुधार में बहुत प्रगतिशील राज्य रहा है, क्या वह शीघ्र ही इस माँग की पूर्ति करके अन्य राज्यों के लिए अच्छा उदाहरण, और भारतीय जनता का प्रशंसा-पात्र बनेगा ?

# पिछत्तरवाँ अध्याय

## ट्रावंकोर

ट्रावंकोर एक उन्नत राज्य है, परन्तु असली कसौटी यह है कि जनता को आर्थिक और राजनैतिक अधिकार कितना प्राप्त है।

—जवाहरलाल नेहरू

यह राज्य भारतवर्ष के ठेठ दक्षिण में, पश्चिम की ओर है। इसका क्षेत्रफल ७६२५ वर्गमील और जनसंख्या ६१ लाख (सन् १९४१ में) तथा औसत वार्षिक आय दो करोड़ सत्तर लाख रुपये है। राजधानी त्रिवेन्दुरम है।

यहाँ का राजा उन क्षत्रियों में से है, जो अपने आपको दक्षिण भारत के प्राचीन चेरा राजवंश के मानते हैं। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में जब टीपू का अंगरेजों से युद्ध हुआ तो यहाँ के राजा ने अंगरेजों का साथ दिया। सन् १७९५ में इस राज्य की अंगरेजों से संधि हुई। सन् १८०५ में दोनों का और भी घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ।

सन् १८६२ में यहाँ के राजा को सनद दी गयी, जिससे राजा मालावार के रिवाज* के अनुसार राजघराने की लड़की या बहिन के बड़े पुत्र को गद्दी दे सकता है।

शासन-कार्य महाराज के नाम से तथा उनके नियंत्रण में होता है। उनकी ओर से उनका मंत्री अर्थात् दीवान राजप्रवन्ध करता है। दीवान की नियुक्ति राजा साहब करते हैं। 'आधी शताब्दी से अधिक समय हो गया, जब से यहाँ के शासक राज्य की आय को सार्वजनिक कोष की तरह समझते हैं, और अपने निजी व्यय के लिए अपेक्षाकृत बहुत कम रकम लेते हैं और उसे बजट में सूचित करते हैं।'

यहाँ व्यवस्थापक परिषद की स्थापना सन् १८८८ में हुई। आरम्भ में उसके सदस्य पाँच से आठ तक होते थे, जिनमें से दो या अधिक गैर-सरकारी होते थे, परन्तु ये नामजद किये जाते थे। पश्चात् सन् १८६८ में परिषद का विस्तार किया गया। अब सदस्यों की संख्या कम-से-कम ८ और और अधिक से अधिक १५ निर्धारित की गयी। कुल सदस्यों में से $\frac{२}{५}$ सदस्य गैर-सरकारी होने का नियम किया गया। इसके बाद परिषद का सुधार सन् १६१६ में हुआ। जनता को सदस्यों के निर्वाचन का अधिकार देने की व्यवस्था की गयी; कुछ सदस्य नामजद करने का अधिकार सरकार को रहा। परिषद में सन् १६२१ तथा १६३२-३ में पुनः सुधार हुआ। अब इसे श्री० चित्र-राज्य-परिषद (श्री चित्र स्टेट कौंसिल) कहते हैं। इसमें ३७ सदस्य होते हैं,

---

* इस रिवाज के अनुसार घर की जायदाद का अधिकारी मालिक का बड़ा लड़का नहीं होता; वरन् मालिक की बहिन या लड़की का पुत्र होता है।

इसका संगठन इस प्रकार है :—

| | | |
|---|---|---|
| निर्वाचित | | २२ |
| साधारण | १७ | |
| विशेष | ५ | |
| नामजद | | १५ |
| गैर-सरकारी | ५ | |
| सरकारी | १० | |
| योग | | ३७ |

विशेष निर्वाचक संघों के पाँच सदस्यों में से दो वाणिज्य और उद्योग के, एक 'प्लांटिंग' का, और दो 'जेन्मी' (जमींदारों) के होते हैं।

दीवान अपने पद के कारण इस परिषद का सभापति होता है। परिषद अपने सदस्यों में से एक व्यक्ति को उपसभापति नियत करती है, जो सभापति की अनुपस्थिति में उसका कार्य करता है।

इस परिषद के अतिरिक्त राज्य के व्यवस्थापक मंडल में एक सभा और है—श्री मूलम लोकसभा या असेम्बली। इसमें ७२ सदस्य होते हैं, संगठन इस प्रकार है—

| | | |
|---|---|---|
| निर्वाचित | | ४८ |
| साधारण | ४३ | |
| विशेष | ५ | |
| नामजद | | २४ |
| गैर-सरकारी | १४ | |
| सरकारी | १० | |
| योग | | ७२ |

विशेष निर्वाचक संघों के पाँच सदस्यों में से दो वाणिज्य और उद्योग के, एक 'प्लांटिंग' ( काश्त ) का, और दो 'जेन्मी' ( जमींदारों ) के होते हैं। चौदह गैर-सरकारी सदस्य विशेषतया इसलिए नामजद किये जाते हैं, जिससे अल्प संख्यक जातियों, तथा ऐसे हितों का प्रतिनिधित्व हो सके, जिनकी ओर से यथेष्ट सदस्य निर्वाचन में न आवें। अध्यक्ष दीवान होता है। उपाध्यक्ष लोकसभा द्वारा उसके सदस्यों में से निर्वाचित होता है, और उसे अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उसका कार्य संचालन करने का अधिकार रहता है।

स्त्रियों को पुरुषों के समान मताधिकार है, और वे दोनों व्यवस्थापक सभाओं में से किसी की सभासद हो सकती हैं। असेम्बली में मताधिकार अपेक्षाकृत व्यापक आधार पर है। दोनों सभाओं के सदस्यों को प्रश्न पूछने, प्रस्ताव करने, कानून बनाने और बजट पर बहस करने का प्रायः वैसा ही अधिकार है, जैसा भारतीय व्यवस्थापक मंडल की सभाओं को, जिनकी रचना १६१६ के विधान के अनुसार है।

राज्य ३१ ताल्लुकों में विभक्त है। न्याय-विभाग प्रबन्ध-विभाग से पृथक् है। राज्य में एक हाईकोर्ट के अतिरिक्त कई जिला-कोर्ट, सेशन कोर्ट, मुंसिफ कोर्ट तथा अनेक पंचायती अदालतें हैं। इस राज्य में शिक्षा का प्रचार भारतवर्ष भर के किसी भी भाग से अधिक है। यहाँ ४८ प्रतिशत व्यक्ति साक्षर हैं।* राज्य भर में प्रारम्भिक शिक्षा निश्शुल्क और अनिवार्य है। स्त्री-शिक्षा का खूब प्रचार है। यहाँ दस कालिज

---

* कोचीन में, जो कि इससे दूसरे दर्जे पर है, यह संख्या ३५ है; और, ब्रिटिश भारत में शिक्षितों की प्रतिशत औसत संख्या साढ़े बारह ही है।

और बहुत से हाई स्कूल आदि हैं। पहले यहाँ की शिक्षा-संस्थाएँ मदरास विश्वविद्यालय के अधीन थीं। यहाँ स्वतंत्र विश्वविद्यालय सन् १९३७ ई० में स्थापित किया गया। पाठ्यक्रम में, आधुनिक भाषाओं में राष्ट्र-भाषा हिन्दी का भी समावेश है। कला और उद्योग तथा प्रयोगात्मक विज्ञान की ओर यथेष्ट ध्यान दिया जाता है। कानून, आयुर्वेद, वनस्पति-शास्त्र और कृषि आदि के भी विद्यालय हैं। स्वास्थ्य और चिकित्सा की अच्छी व्यवस्था है। राज्य का अपना स्वयं का डाक-विभाग तथा टकसाल-विभाग है।

यह खेद का विषय है कि इतना उन्नत और शिक्षित राज्य भी जनता के अधिकारों के विषय में यथेष्ट उदार नहीं रहा है। यहाँ कई वर्ष से ट्रावंकोर-स्टेट-कांग्रेस स्थापित है। इसका उद्देश्य महाराज की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन प्राप्त करना है। पर इसके रचनात्मक कार्य—खादी-प्रचार, हरिजन-उत्थान, मद्यपान-निषेध और हिन्दी-प्रचार—पर भी राज्य की ओर से समय-समय पर प्रतिबन्ध रहा है। स्टेट-कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं को दमन, गिरफ़्तारी, जेल आदि की सख्तियां सहनी पड़ी हैं। यहाँ प्रेस और समाचारपत्रों पर पाबन्दियाँ रही हैं। विद्यार्थियों पर आतंक और मजदूरों पर ज्यादतियाँ होती रही हैं। निदान, नागरिक स्वतन्त्रता यहाँ बहुत कम रही है। पहले की बातों को जाने दें। सन् १९४२ की घटना है कि अधिकारियों की ओर से आज्ञा दी गयी कि राज्य में १९ अप्रेल को अ० भा० देशी राज्य दिवस नहीं मनाने दिया जायगा। स्वाभिमानी नागरिक ऐसी आज्ञा का पालन कैसे करते! सभा की गयी, जो बहुत शान्ति और सुव्यवस्थापूर्वक हुई। यद्यपि सभा किसी सार्वजनिक स्थान में न की जाकर कांग्रेस भवन के मैदान में की गयी थी, दो प्रमुख कार्यकर्त्ताओं को छः-छः माह की सख्त सजा दी गयी।

इस राज्य के व्यवस्थापक मंडल में दो सभाएँ हैं, दोनों में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत है। राज्य उन्नत है, नागरिकों की शिक्षा सम्बन्धी योग्यता भी बहुत अच्छी है। यह होते हुए भी यहाँ शासन को उत्तरदायी स्वरूप नहीं दिया जा रहा है। विशेषतया दीवान साहब उत्तरदायी शासन के विरोधी रहे हैं। उन्होंने पहले ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति की बात कही, और पीछे युद्धकालीन परिस्थिति की आड़ ली, जिसमें कुछ दम नहीं है। आवश्यकता है कि यह उन्नत राज्य समय के तकाजे को समझे और वैधानिक प्रगति का परिचय दे।



# छियत्तरवाँ अध्याय



## उपसंहार

आज पुरानी संधियों को स्मरण करने का अवसर नहीं है। आज हमारी निगाहें पीछे की ओर न मुड़ें। आज हम सुदूर, स्वर्ण भविष्य के दर्शन करने में समर्थ हों। इसी में हमारा, हमारे देश का, हमारे नरेन्द्रों का, और समूची मानवता का कल्याण है।

—बालकृष्ण शर्मा

पिछले पृष्ठों में हमने भारतवर्ष के उत्तरीय प्रदेश में स्थित कश्मीर राज्य से लेकर दक्षिण के त्रावंकोर राज्य तक के शासन और राजनैतिक स्थिति पर विचार किया; पश्चिम, मध्य, और पूर्व भारत के

सभी भागों के राज्यों के कुछ-कुछ नमूने देखे। परन्तु इनकी कथा तो अनन्त है। हमें अब इस विषय को समाप्त करना चाहिए। उपसंहार-स्वरूप यह थोड़ा सा वक्तव्य दिया जाता है।

देशी राज्यों से सम्बन्ध रखनेवाले प्रमुख दल निम्नलिखित हैं :—

(१) ब्रिटिश सरकार

(२) राजा-महाराजा

(३) भारतीय जनता

हम इनमें से प्रत्येक के सम्बन्ध में क्रमशः विचार करते हैं। पहले ब्रिटिश सरकार की बात लीजिए। वह इनका, इनके वर्त्तमान स्वरूप में, जो अधिकांश में निरंकुश और स्वेच्छाचारी है, रक्षण और पोषण करने की जिम्मेवार है। भारत-मंत्री, वायसराय, और पोलीटिकल एजन्ट आदि ने, लोगों की निगाह में ऊंचा जचने के लिए समय-समय पर नरेशों को शासन-सुधार का उपदेश भले ही दिया हो, साधारणतया इस दिशा में कार्य करने के लिए दृढ़ता नहीं दिखायी गयी। सरकार के व्यवहार से, प्रायः भारतीयों की यह धारणा है कि उसे देशी नरेशों के रूप में साम्राज्यशाही के भक्तों की बहुत आवश्यकता है, वह इनकी सत्ता या शक्ति उस सीमा तक अटूट बनाये रखना चाहती है, जहाँ तक ये उसके सहायक रहें। वह इन 'लाड़ले सरदारों' का हास क्यों चाहने लगी, जो अपनी रंग-बिरंगी भड़कीली पोशाक, बहुमूल्य हीरे-जवाहरात वाले मुकुट और बांकी छटा से न केवल भारतवर्ष या ब्रिटिश साम्राज्य में वरन् राष्ट्र-संघ आदि अन्तर्राष्टीय संस्थाओं में भी उसके प्रभुत्व के जीते-जागते

और चलते-फिरते, विज्ञापन हैं। साधारणतया जनता की ऐसी धारणा होते हुए भी यह विचारणीय है कि क्या बहुत से अंगरेज 'साम्राज्य' शब्द से अरुचि नहीं प्रकट कर रहे हैं? क्या ब्रिटिश साम्राज्य की अपेक्षा 'ब्रिटिश कामनवेल्थ' (जनपद या पंचायती राज्य) नाम अधिक पसन्द नहीं किया जा रहा है? और, क्या ब्रिटिश अधिकारी महायुद्ध का उद्देश्य जनतंत्र या लोकतंत्र की विजय नहीं बता रहे हैं? ऐसी परिस्थिति में क्या यह अत्यन्त आवश्यक और उचित नहीं है कि ब्रिटिश सरकार देशी राज्यों में प्रचलित निरंकुशता का अन्त करने का वास्तविक प्रयत्न करे?

अब देशी नरेशों की भावना का विचार करें। कुछ नरेश ऐसे अवश्य हैं, जो समय की गति को पहचानने लगे हैं, और स्वयं ही, अथवा लोक-नेताओं के प्रभाव से, अपने-अपने राज्य में क्रमशः सुधार करके उसका स्वरूप बदल रहे हैं; उसे ऐसा बना रहे हैं कि नवयुग में उनका निभाव हो सके। परन्तु ये अभी कितने हैं? सैकड़ों की संख्या में ये अगुलियों पर गिने जाने योग्य ही तो हैं। औरों की तो यही नीति प्रतीत होती है कि हमारे सुख और ऐश्वर्य के साधनों में कमी न आये, चाहे उनको जुटाने के लिए प्रजा का कितना हो दमन क्यों न हो। ये समझते है कि जब तक सम्राट् की छत्र-छाया है, उसकी रक्षक तोपें और संगीने हैं, हमारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। अफसोस! ये यह नहीं सोचते कि जिस साम्राज्यशाही के बल पर ये अपनी निरंकुशता का परिचय देते हैं, वह बीते हुए युग की चीज़ है; नये जनतंत्रवाद के प्रवाह में वह ठहर नहीं सकता। राज्यों का स्थायी बल जनता की

सहानुभूति और समर्थन होता है। समझदार राजा-महाराजाओं को चाहिए कि भारत-सन्तान में, स्वदेश के नागरिकों में, सर्वोच्च सत्ता का अनुभव करें। राजाओं को आशंका है कि ऐसा करने से उनके स्वार्थों को धक्का पहुँचेगा, परन्तु दूरदर्शिता से विचार किया जाय तो उनका भय निर्मूल है।

महात्मा गाँधी ने 'हरिजन' में लिखा है—

यदि देशी नरेश अपने को साम्राज्यवादी मशीन का एक आवश्यक अंग न समझ कर—जो कि वे हैं—राष्ट्र का एक आवश्यक अंग समझें तो उन्हें इस प्रकार असहाय अनुभव करने की आवश्यकता नहीं है। यदि वे राष्ट्र का ही अंग नहीं बन जाते और उसी के ऊपर नहीं निर्भर करते तो इस साम्राज्यवादी मशीन के नष्ट होते ही वे भी अदृश्य हो जायँगे।......उदार होने से देशी नरेश कुछ गँवा नहीं देंगे, किन्तु अपनी निरंकुशता पर कायम रहने पर वे अपना सर्वस्व गँवा देंगे। मैं उनके शासन को नष्ट नहीं करना चाहता, बल्कि यह चाहता हूँ कि वे निरंकुशता को संरक्षकता में बदल दें—केवल नाममात्र के लिए नहीं, बल्कि वास्तव में। जनता की आजादी किसी एक व्यक्ति की इच्छा पर नहीं निर्भर करनी चाहिए—वह व्यक्ति चाहे कितने ही प्राचीन और श्रेष्ठ वंश का क्यों न हो।

भारतीय जनता की बात लें। अधिकांश आदमी कांग्रेस का संगठन कर ब्रिटिश साम्राज्यशाही के पाश से छुटकारा पाने का प्रयत्न कर रहे हैं, और देशी राज्यों को अपने मार्ग का रोड़ा समझते हैं। वे चाहते हैं कि भारतवर्ष में ये सैकड़ों 'अल्स्टर' न रहें। देशी राज्यों की संख्या बहुत कम हो, और जो राज्य रहें, उनके शासक उत्तरदायी

शासनपद्धति को चलाते हुए अपने-अपने क्षेत्र में नागरिकों को सुख-समृद्धि की वृद्धि करने वाले हों।* एक विचार-धारा यह भी है कि देशी राज्यों में सुधारों की गति अत्यन्त मन्द है, प्रायः राजा लोग प्रतिगामी और प्रतिक्रियावादी हैं, अतः देश में राजतंत्र कहीं न रहे, सर्वत्र प्रजातंत्र का व्यवहार होना चाहिए।

देशी राज्यों की जनता अधिकतर अशिक्षित, असंगठित और प्रायः बेजबान है। बहुत से आदमियों को अपना मत प्रकट करने का न अवसर है, और न अभ्यास ही। तथापि पिछले अध्यायों के अवलोकन से यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि स्थान-स्थान पर जनता को अपने कष्टों और अभावों का अनुभव होने लगा है, और वह अपने अधिकारों की माँग कर रही है, तथा इसके फल-स्वरूप वह राजकीय दमन का शिकार बन रही है। अस्तु, देशी राज्यों से भी राजतंत्र के विरोध की ध्वनि सुनायी पड़ने लगी है। और, ध्यान देने की बात यह है कि राजपूताने जैसे पिछड़े हुए प्रदेश में भी इस प्रसंग के उदाहरण मिलते रहे हैं।

नवम्बर १९४१ में सीकर (जयपुर) राजनैतिक सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन में जयपुर प्रजा-मण्डल के वर्त्तमान सभापति श्री० हीरालालजी शास्त्री ने उत्तरदायी शासन सम्बन्धी अपने प्रभावपूर्ण भाषण में बतलाया कि हमने अपनी अनेक तकलीफों के लिए प्रस्ताव पास किये, राज्य और प्रजा के हित के लिए सुझाव पेश किये, अधिकारियों से मिले, लेकिन कोई

* इस विषय का विशेष विचार अठारहवें अध्याय में किया गया है।

फल नहीं निकला। हमने महाराज के कानों तक अपनी आवाज पहुँचानी चाही, पर हमारी वह अभिलाषा पूरी नहीं हुई। प्रजामण्डल का उद्देश्य भी महाराज की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन प्राप्त करना है। पर जो छत्र हमारी सब कोशिशों के बावजूद, हमारे सिर पर छाया नहीं करना चाहता, उसके लिए हम क्या सोचें? मैं तो सोचने लगा हूँ कि प्रजा-मण्डल के उद्देश्य की शब्दावली में परिवर्तन क्यों नहीं कर दिया जाय? जैसे कांग्रेस ने अपने उद्देश्य में समय-समय पर परिवर्तन किया है, इसी तरह हमारी भी यही गति होती दिखती है। छत्रछाया चाहने से कुछ नहीं मिले तो फिर छत्रछाया के बिना ही काम चलाना पड़े। आज हम फिर एक बार नम्र निवेदन कर देना चाहते हैं, लेकिन कल की कौन जाने; हम दरख्वास्त पेश करना भी बन्द कर दें!

ये शब्द जनता की उस भावना को व्यक्त करते हैं, जो दिनों दिन बढ़ती जा रही है। अस्तु, ब्रिटिश सरकार, देशी नरेश और भारतीय जनता तीनों के लिए देशी राज्यों के शासन का प्रश्न विचारणीय है। प्रत्येक को अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिए। और, किसी को, विशेषतया जनता को, दूसरों की प्रतीक्षा की आवश्यकता नहीं है। देशी राज्य शासन भारतवर्ष के एक तिहाई भाग और नौ करोड़ मनुष्यों का सवाल है। यह मानवता का प्रश्न है, विश्व-कल्याण का प्रश्न है।



# परिशिष्ट—१

## देशी राज्यों की जनसंख्या और शिक्षा प्रचार

| राज्य या एजन्सी | १९४१ में जनसंख्या (हजार) | १९३१ में जनसंख्या (हजार) | वृद्धि या ह्रास प्रतिशत | १९४१ में शिक्षित व्यक्ति प्रतिशत |
|---|---|---|---|---|
| आसाम के राज्य | ७,२५ | ६,२६ | +१५.९ | ७.९ |
| उड़ीसा के राज्य | ३०,२५ | २६,८३ | +१२.७ | ८.८ |
| कोचीन | १४,२३ | १२,०५ | +१८.१ | ३५.४ |
| कश्मीर | ४०,२१ | ३६,४६ | +१०.३ | ६.५ |
| गुजरात के राज्य | १४,५७ | १२,६५ | +१५.२ | ८.२ |
| गवालियर | ३९,९२ | ३५,२३ | +१३.३ | ७.४ |
| छतीसगढ़ के राज्य | ४०,५४ | ३५,४८ | +१४.२ | ३.१ |
| त्रावंकोर | ६०,७० | ५०,९६ | +१९.१ | ४७.५ |
| दक्षिण और कोल्हापुर के राज्य | २७,८६ | २४,५८ | +१३.४ | १३.१ |
| पंजाब के राज्य | ५४,५९ | ४४,९७ | +२१.४ | ६.१ |

| राज्य या एजन्सी | १९४१ में जनसंख्या (हजार में) | १९३१ में जनसंख्या (हजार में) | वृद्धि या ह्रास प्रतिशत | १९४१ में शिक्षित व्यक्ति प्रतिशत |
|---|---|---|---|---|
| पंजाब के पहाड़ी राज्य | १०,९४ | ९,९० | +१०.५ | ७.४ |
| पश्चिम भारत राज्य एजन्सी | ४९,०१ | ४२,२२ | +१६.१ | १४.६ |
| पश्चिमोत्तर सीमा राज्य एजन्सी | २३,७८ | २२,५९ | +५.३ | .८ |
| बलोचिस्तान के राज्य | ३,५६ | ४,०५ | —१२.१ | २.३ |
| बड़ौदा | २८,५५ | २४,४८ | +१६.६ | २३.० |
| बङ्गाल के राज्य | २१,४२ | १८,६३ | +१४.९ | ५.९ |
| मध्य भारत एजन्सी | ७३,०२ | ६६,४६ | +१०.३ | ३.६ |
| मदरास के राज्य (पदुकोटा, बंगनपल्ले और संदूर) | ४,९९ | ४,५३ | +१०.० | ११.० |
| मैसूर | ७३,२९ | ६५,५७ | +११.८ | १२.२ |
| राजपूताना एजन्सी | १,३६,७० | १,१५,७१ | +१८.१ | ५.७ |
| सिक्किम | १,२२ | १ १० | +१०.९ | ४ ८ |
| संयुक्तप्रान्त के राज्य (रामपुर, बनारस) | ९,२८ | ८,५१ | +८.३ | ६.२ |
| हैदराबाद | १,६३,८४ | १,४४,३६ | +१३.१ | ६.९ |

# सूचना

इस परिशिष्ट में हम देशी राज्यों के मुख्य-मुख्य समूहों के ही, जनसंख्या और शिक्षा के अंक दे सके हैं। हम चाहते थे कि समस्त (५८४) राज्यों में से प्रत्येक के अलग-अलग अंक दें। परन्तु इन पंक्तियों के छपते समय (१५ अगस्त १९४२) तक भी पिछली मनुष्य-गणना की सरकारी रिपोर्ट नहीं मिल सकी। जब वह रिपोर्ट छप जायगी, तो सुविधा होने पर हम उसके आधार पर विविध विषयों के नये अंकों की एक अलग पुस्तक देने का प्रयत्न करेंगे। अभी तो पाठक हमारी असमर्थता का अनुभव कर, इसी से संतोष करें।



## परिशिष्ट—२

### देशी राज्य प्रश्नावली

प्रिय पाठक ! क्या आप वास्तव में अपने राज्य का हित और उन्नति चाहते हैं ? क्या आप उसकी शासनपद्धति में सुधार के अभिलाषी हैं ! इसके लिए आपको निरन्तर सतर्क रहना और उद्योग करते रहना आवश्यक है। आप के पथ-प्रदर्शन के लिए उदाहरण-स्वरूप कुछ प्रश्न आगे दिये जाते हैं (इस पुस्तक के 'निवेदन' में इसी प्रश्नावली का उल्लेख है)। प्रत्येक नागरिक को चाहिए कि अपने-अपने राज्य के सम्बन्ध में इन प्रश्नों का ठीक उत्तर प्राप्त करके अपने पास रखे, और हर वर्ष प्राप्त उत्तरों की, गत वर्ष के विवरण से तुलना करे। इससे उसे यह निश्चय करने में सुविधा होगी कि हम कहाँ हैं, क्या प्रगति कर रहे हैं, और हमारा क्या कर्त्तव्य है।

### प्रश्नावली

(१) राज्य का नाम।

(२) राजा या नवाब का पद।

(३) शासन-व्यवस्था का स्वरूप—

(क) मंत्री हैं या सलाहकार ?

(ख) उनकी संख्या और पद तथा अधिकार।

(ग) उनके जिम्मे कौन-कौन से विभाग हैं ?

(घ) वे कहाँ तक जनता के प्रति जिम्मेवार हैं ?

(४) कानून-निर्माण की व्यवस्था—

(क) व्यावस्थापक सभा है या सलाहकार सभा ?

(ख) उसका संगठन किस प्रकार है ? कितने सदस्य किस किस समूह द्वारा चुने जाते है ? कितने सदस्य नामजद होते है ?

(ग) उसके क्या अधिकार हैं ?

(५) न्याय व्यवस्था—

(क) छोटी-बड़ी किस-किस प्रकार की अदालते हैं ?

(ख) न्याय विभाग स्वतंत्र है; या उस पर नरेश, दीवान या रेवन्यु विभाग का प्रभाव पड़ता है ?

(ग) न्याय जल्दी हो जाता है या देर में ?

(घ) क्या वह बहुत मँहगा है ?

(६) स्थानीय स्वराज्य—

(क) म्युनिसपैलटियाँ कितनी और कैसी प्रतिनिधि मूलक हैं ?

(ख) पंचायतों की स्थिति क्या है ?

(ग) म्युनिसपैलटियों और पंचायतों के अधिकार और आय के साधन क्या हैं ?

(७) राज्य का आय-व्यय—

(क) क्या बजट प्रतिवर्ष नियमानुसार बनता है ?

(ख) उस पर जनता का कहाँ तक नियंत्रण है ?

(ग) कुल आमदनी में से नरेश की जेब खास या उसके ऐशो-आराम के लिए कितना खर्च होता है ?

(८) जनहितकारी कार्य—

(क) राज्य की ओर से शिक्षा की क्या व्यवस्था है ? प्राइवेट पाठशालाओं पर कुछ प्रतिबंध तो नहीं है ? उन्हें क्या प्रोत्साहन दिया जाता है ?

(ख) अस्पतालों और औषधालयों का प्रबन्ध कैसा और कितना है ?

(ग) सड़कों की दशा कैसी है ?

(घ) भोजन, वस्त्र और पीने आदि के लिए पानी यथेष्ट परिमाण में मिलने के लिए क्या और कितना प्रबन्ध है ?

(च) कृषि और दूसरे उद्योग-धंधों की क्या स्थिति है ?

(छ) सहकारी संस्थाओं तथा बैंकिंग की कोई व्यवस्था है या नहीं ?

(९) नागरिक अधिकार—

(क) क्या जनता को बोलने, लिखने, पत्र प्रकाशित करने, पत्र-पत्रिकाएँ मँगाने आदि की स्वतंत्रता है ? यदि नहीं तो क्या प्रतिबंध है ?

(ख) राज्य में कौन-कौन से पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं ? कौन सी स्वतंत्र हैं, और कौनसी राज्य के आश्रित हैं ?

(ग) क्या राज्य में छपे हुए कानून हैं ? और, क्या उनका ठीक तरह से पालन होता है ?

(घ) क्या राज्य में बेगार ली जाती है ? किस रूप में ?

(१०) जन-जागृति—

(क) गत बीस-पचीस वर्ष में जनता में प्रजामंडल या लोक-परिषद् आदि संस्थाओं ने क्या-क्या कार्य किया ?

(ख) उनके कार्य में क्या बाधाएँ आयीं ? दमन कहाँ तक हुआ ?

(ग) इस समय राजनैतिक जागृति का क्या कार्य हो रहा है ?

(११) विविध—

(क) क्या राज्य में शासन-सुधार की कुछ योजना हो रही है ? उसका क्या स्वरूप है, जनता की माँग क्या है ?

(ख) जागीरी इलाके में जागीरदारों के अधिकार क्या हैं ? उनका जनता से व्यवहार कैसा है ?

(ग) जनता में कौन-कौन सी समाजिक कुरीतियाँ विशेष रूप से प्रचलित हैं ? उन्हें निवारण करने के लिए राज्य की मनोवृत्ति कैसी रही है ? वह इसमें सहायक है, इस ओर उदासीन है, या इसमें कुछ बाधक ही होता है ?

(घ) राज्य की विशेष समस्याएँ तथा आवश्यकताएँ क्या हैं ?

(च) सालाना शासन-रिपोर्ट प्रकाशित होती है या नहीं; और, वह सर्वसाधारण को मिल सकती है या नहीं ?





# भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन

इस ग्रन्थमाला की स्थापना सन् १९१५ ई० हुई। इसका उद्देश्य विशेषतया नागरिक, राजनैतिक और आर्थिक साहित्य तैयार करना है। इसकी कई पुस्तकें राष्ट्रीय एवं सरकारी शिक्षा-संस्थाओं में स्वीकृत और प्रचलित हैं, तथा कुछ पर शिक्षा-विभागों तथा साहित्य-संस्थाओं द्वारा पुरस्कार भी मिल चुका है।

## माला की पुस्तकें [ अगस्त १९४२ ई० ]

१—भारतीय शासन—"राजनैतिक ज्ञान के लिए आईने का काम देनेवाली" तथा "विद्यार्थियों, पत्र-सम्पादकों और पाठकों के बड़े काम की।" सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार। आलोचना सहित। आठवाँ संस्करण। मूल्य १।)

२—भारतीय विद्यार्थी विनोद—भाषा, विज्ञान, भूगोल, इतिहास गणित, आदि दस पाठ्य विषयों की उपयोगिता। मातृभूमि, जीवन का लक्ष्य, आदि विषयों का विवेचन। तीसरा संस्करण। मूल्य ।।=)

३—हमारी राष्ट्रीय समस्याएँ—राष्ट्र-निर्माण के साधन, राष्ट्र-भाषा, राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रीय पताका और स्वाधीनता, आदि विषयों पर गम्भीर विचार। तीसरा संस्करण। मूल्य ।।।)

४—हिन्दी में अर्थशास्त्र और राजनीति साहित्य—पाठकों, लेखकों और पुस्तकालयों के लिए पथ-प्रदर्शक। लेखक—प्रोफ़ेसर दयाशंकर दुबे एम० ए० और श्री० केला जी। मूल्य ।।।)

५—भारतीय सहकारिता आन्दोलन—ग्राम-सुधार और ग्राम-संगठन की क्रियात्मक बातें। सहकारी विभाग द्वारा प्रशंसित और प्रोत्साहित। ले०—प्रोफ़ेसर शंकरसहायजी सक्सेना एम० ए०। मूल्य २)

६—भारतीय जागृति—गत सौ वर्षों के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक आदि इतिहास का सुन्दर विवेचन। तीसरा संस्करण। मूल्य १।)

७—विश्व वेदना—मज़दूर, किसान, लेखक, बच्चे, विधवा, बेकार, दलित, क़ैदी और अनाथ आदि की आत्म-कथा। मूल्य ।।।=)

८—भारतीय चिन्तन—समाप्त।

९—भारतीय राजस्व—सरकार प्रति वर्ष दो सौ करोड़ रुपये से अधिक की आय कैसे प्राप्त करती है, उसे किन-किन कामों में खर्च करती है ? दूसरा संस्करण। मूल्य ।।।=)

१०—निर्वाचन पद्धति—मताधिकार का महत्व, मत-गणना प्रणाली, निर्वाचकों के कर्त्तव्य, उम्मेदवार का उत्तरदायित्व आदि का विवेचन। ले०—श्री० दुवे और केलाजी। तीसरा संस्करण। मूल्य ।।-)

११—नागरिक कहानियाँ—निर्वाचन, मताधिकार, ग्राम-सुधार, कर्त्तव्य-पालन, अस्पृश्यता-निवारण और साक्षरता-प्रचार आदि विषयों की प्रभावशाली कहानियाँ। ले०—श्री सत्येन्द्र एम० ए०। मूल्य ।।=)

१२—राजनीति शब्दावली—राजनीति के अँगरेजी-हिन्दी पारिभाषिक शब्दों का बहुत उपयोगी संग्रह। ले०—श्री० गदाधरप्रसादजी अम्बष्ट विद्यालंकार, और केलाजी। दूसरा संस्करण; मूल्य ।।।)

१३—नागरिक शिक्षा—सरकार के कार्यों—सेना, पुलिस, न्याय, जेल, कृषि, उद्योग-धन्धे, शिक्षा-स्वास्थ्य आदि का सरल भाषा में नागरिकोपयोगी विचार। तीसरा संस्करण। मूल्य ।।=)

१४—ब्रिटिश साम्राज्य शासन—इंगलैंड तथा उसके उपनिवेशों

की शासनपद्धति। ले०—प्रोफेसर दुबे और केलाजी। मूल्य ॥|≡)

१५—श्रद्धांजलि—श्रद्धा के पथ में पूर्व और पश्चिम, नवीन और प्राचीन, स्त्री और पुरुष, धर्मी और अधर्मी आदि सबकी अर्चना। २१ महापुरुषों के दर्शन। मूल्य ॥|=)

१६—भारतीय नागरिक—अधिकार और कर्त्तव्य। मूल्य ॥)

१७—भव्य विभूतियाँ—महाराणा प्रताप, शिवाजी, छत्रसाल गुरु गोविन्दसिंह, लक्ष्मी बाई, और दुर्गादास आदि के मनोहर, शिक्षाप्रद वृत्तान्त। लेखक—प्रोफेसर सकसेना। मूल्य ॥=)

१८—अर्थशास्त्र शब्दावली—अर्थशास्त्र के लेखकों, अध्यापकों, और विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य। लेखक—सर्वश्री दुबे, अम्बष्ठ और केला जी। दूसरा संस्करण। मूल्य १)

१९—कौटल्य के आर्थिक विचार—सुप्रसिद्ध प्राचीन आचार्य कौटल्य के आर्थिक विचारों का आधुनिक पद्धति से विवेचन। ले०—श्री० जगनलाल गुप्त और केलाजी। दूसरा संस्करण मूल्य ॥|=)

२०—अपराध चिकित्सा—( जेल, कालापानी और फाँसी !) 'सचेत हिन्दी-प्रेमी इस पुस्तक को ध्यान-पूर्वक पढ़ें।' मूल्य १॥)

२१—पूर्व की राष्ट्रीय जागृति—टर्की, मिश्र, अरब, फारिस और अफगानिस्तान की शिक्षाप्रद कथा। ले०—प्रोफेसर सकसेना। मूल्य १॥)

२२—भारतीय अर्थशास्त्र—धन की उत्पत्ति, उपभोग, विनिमय, व्यापार और वितरण का भारतीय दृष्टि से सम्यक् विवेचन। तीसरा संस्करण। मूल्य ३)

२३—गाँव की बात—युवकों के बड़े काम की। मूल्य ।)

२४—साम्राज्य और उनका पतन—"इसका ढङ्ग शुद्ध वैज्ञानिक है, जिससे साम्राज्य-संस्था के विश्वासी, और उसके विरोधी दोनों सबक सीख सकते हैं।" मूल्य सवा रुपया।

२५—मातृवन्दना—जननी-जन्मभूमि की पूजा-पाठ के लिए अत्युपयोगी। ले०—श्री० भगवतप्रसाद शुक्ल। मूल्य ।=)

२६—देशी राज्य शासन—भारतवर्ष के देशी राज्यों की राजनैतिक समस्याओं, शासनपद्धति, और जनता के नागरिक अधिकार और सार्वजनिक हलचल पर सुन्दर प्रकाश। मूल्य ३।।)

## अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें

| | |
|---|---|
| १—सरल भारतीय शासन ( दूसरा संस्करण ) | ।।) |
| २—नागरिक शास्त्र (Citizenship) | १।।) |
| ३—भारतीय राज्य शासन। मध्यप्रान्त, आठवीं श्रेणी। | ।।।) |
| ४—नागरिक ज्ञान। मध्यप्रान्त; मेट्रिक। ( दूसरा संस्करण ) | १) |
| ५—सरल नागरिक ज्ञान। मध्यप्रान्त, छठी, सातवीं श्रेणी। | ।।=) |
| ६—सरल अर्थशास्त्र। इंटर। ले०—श्री० दुबे और केला। | २) |
| ७—सरल नागरिक शास्त्र। संयुक्तप्रान्त, इन्टर। | ३) |
| ८—धन की उत्पत्ति। ले०—श्री दुबे और केला। | १।) |
| ९—राजस्व। सरकारी आय व्यय के सिद्धान्त। | १) |
| १०—ऐलिमेंटरी सीविक्स। संयुक्तप्रान्त, मेट्रिक। दूसरा संस्करण | ।।।) |
| ११—कौटल्य की शासनपद्धति | १।=) |

जिन पुस्तकों के लेखक का नाम नहीं दिया गया वे श्री भगवानदास जी केला की कृतियाँ हैं।

मिलने का पताः—(१) मैनेजर, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन

(२) भगवानदास केला, भारतीय ग्रन्थमाला, दारागञ्ज, (प्रयाग)